इसलिए बुद्ध जितने करीब हैं इस सदी के और कोई भी नही। . .'

भगवान बुद्ध की करुणा अनत थी। मनुष्य और मनुष्य की बीमारी में ही उनका रस था। आत्मा-परमात्मा की बातो से वे बोधपूर्वक दूर रहे। मनुष्य की चिरतन पीड़ा कैसे समाधान को उपलब्ध हो मनुष्य में कैसे आमूल रूपातरण घटित हो--जिससे वो स्वय ही अपने सत-चित-आनद स्वरूप को देख सके, उसमें प्रतिष्ठित हो सके — इसपर ही उनका सारा जोर रहा। इस सबध में भगवान श्री रजनीश कहते हैं —

' ... अलग अलग द्वारो से वे फिर वही लौट आते हैं -- कैसे तुम्हारा रूपातरण हो। बुद्ध की सारी आकाक्षा अभीप्सा मनुष्य केंद्रित है। महावीर मोक्ष केंद्रित हैं। वो मोक्ष की चर्चा करते है। जीसस ईश्वर-केंद्रित हैं, वो ईश्वर की चर्चा करते हैं। बुद्ध मनुष्य केंद्रित हैं। जैसे मनुष्य से ऊपर कोई सत्य नही है बुद्ध के लिए। '

पुनश्च —

' .. बुद्ध ने कहा मै चिकित्सक हूँ मै कोई दार्शनिक नही। लाओ मै तुम्हारा कांटा निकाल दूं। कैसे इनकार करोगे इस आदमी को ? '

अतरक्राति ही एकमेव क्राति है। शेष सब क्राति के नाम से धोखे हैं भ्रम है। यही कारण है, जब भी जिस देश-काल-स्थिति मे भी किसी बुद्धपुरुष का अवतरण होता है, उनका सारा प्रयास, उनकी सारी धारा अतरक्राति मुमुक्षुओ के लिए होती है। भगवान बुद्ध के समय में भी यही हुआ। उनके सान्निध्य में हजारो-हजार लोग अतरजागरण की महाक्राति मे उतरे।

भगवान श्री रजनीश के निकट भी आज वही हो रहा है।

भगवान बुद्ध के ये सूत्र अतरक्राति के सूत्र है -- जो सार्वकालिक हैं। सभी काल में उनकी सार्थकता है।

भगवान रजनीश की करुणा है कि वे अपन साधको के लिए—समष्टि के लिए—'धम्मपद' के इन सरल किंतु गहन सूत्रो को पुनरुज्जीवित कर रहे हैं।

'धम्मपद' में २६ वग्ग (अध्याय) में विभाजित कुल ४२४ गाथाएँ हैं। प्रारंभ की ५३ गाथाओ पर हुई भगवान श्री की प्रथम वार्त्तामाला का यह सग्रह आपके हाथ में है।

भगवान श्री [illegible] को में हम नमित हैं।

गुरुपूर्णिमा,
१९७६

— स्वामी योग प्रताप भारती

पूना.

उद्‌बोधन-क्रम

आत्मक्रांति का प्रथम सूत्र : अवैर

२१ नवंबर १९७५

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा,
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं' व वहतो पदं ॥ १ ॥
मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा,
ततो नं सुखमन्वेति छाया' व अनपायिनी ॥ २ ॥
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥ ३ ॥
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥
परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥ ६ ॥

गौतम बद्ध एसे है जस हिमाच्छादिन हिमालय। पवत ता ओर भी है हिमाच्छादित पवत और भी हैं पर हिमालय अतुलनीय है उसकी कोई उपमा नही है। हिमालय बस हिमालय जसा है। गौनम बद्ध बस गौतम बुद्ध जैसे। पूरी मनुष्यजाति के इतिहास म वसा महिमापूण नाम दूसरा नही। गौतम बुद्ध ने जितन हृदयो की वीणा को बजाया है उनना किसी और न नही। गौतम बुद्ध के माध्यम से जितन लोग जागे और जितन लोगो न परम भगवत्ता उपलब्ध की है उतनी किसी और के माध्यम से नही।

गौतम बुद्ध की वाणी अनूठी है। और विशेषकर उन्हे जो साच विचार चिंतन मनन विमश के आदी है।

हृन्य से भरे हुए लोग सुगमता से परमात्मा की तरफ चले जाते हैं। लेकिन हृदय से भरे हुए लोग कहा है? और हृदय से भरन का कोई उपाय भी तो नही ह। हो तो हो न हो तो न हो। एसी आकस्मिक नैसर्गिक बात पर निर्भर नही रहा जा सकता। बुद्ध ने उनको चेताया जिनको चेताना सर्वाधिक कठिन है—विचार से भरे लोग, बुद्धिवादी चिंतन मननशील।

प्रेम और भाव से भरे लोग तो परमात्मा की तरफ सरलता से झुक जाते हैं; उन्हें झुकाना नहीं पड़ता। उनसे कोई न भी कहे, तो भी वे पहुँच जाते हैं; उन्हें पहुँचाना नहीं पड़ता। लेकिन वे तो बहुत थोड़े हैं, और उनकी संख्या रोज थोड़ी होती गयी है। उँगलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग हैं।

मनुष्य का विकास मस्तिष्क की तरफ हुआ है। मनुष्य मस्तिष्क से भरा है। इसलिए जहाँ जीसस हार जाएँ, जहाँ कृष्ण की पकड़ न बैठे, वहाँ भी बुद्ध नहीं हारते हैं; वहाँ भी बुद्ध प्राणों के अंतरतम में पहुँच जाते है।

बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म कहा गया है। बुद्धि पर उसका आदि तो है, अंत नही। शुरुआत बुद्धि से है। प्रारंभ बुद्धि से है। क्योकि मनुष्य वहाँ खड़ा है। लेकिन अंत, अत उसका बुद्धि में नहीं है। अंत तो परम अतिक्रमण है, जहाँ सब विचार खो जाते हैं, सब बुद्धिमत्ता विसर्जित हो जाती है, जहाँ केवल साक्षी, मात्र साक्षी शेष रह जाता है। लेकिन बुद्ध का प्रभाव उन लोगों में तत्क्षण अनुभव होता है जो सोच-विचार मे कुशल हैं।

बुद्ध के साथ मनुष्यजाति का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पच्चीस सौ वर्ष पहले बुद्ध ने वह कहा जो आज भी सार्थक मालूम पडेगा, और जो आनेवाली सदियों तक सार्थक रहेगा। बुद्ध ने विश्लेषण दिया, 'एनालिसिस' दी। और जैसा सूक्ष्म विश्लेषण उन्होने किया, कभी किसीने न किया था, और फिर दुबारा कोई न कर पाया। उन्होंने जीवन की समस्या के उत्तर शास्त्र से नहीं दिये, विश्लेषण की प्रक्रिया से दिये।

बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी, तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की माँग बुद्ध की नही है। बुद्ध यह नहीं कहते कि जो मैं कहता हूँ, भरोसा कर लो। बुद्ध कहते है, सोचो, विचारो, विश्लेषण करो; खोजो, पाओ अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना।

दुनिया के सारे धर्मों ने भरोसे को पहले रखा है, सिर्फ बुद्ध को छोड़कर। दुनिया के सारे धर्मों में श्रद्धा प्राथमिक है, फिर ही कदम उठेगा। बुद्ध ने कहा, अनुभव प्राथमिक है, श्रद्धा आनुसंगिक है। अनुभव होगा, तो श्रद्धा होगी। अनुभव होगा, तो आस्था होगी।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, आस्था की कोई जरूरत नही है; अनुभव के साथ अपने से आ जाएगी, तुम्हें लानी नहीं है। और तुम्हारी लायी हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लायी आस्था के पीछे भी छिपे होंगे तुम्हारे संदेह।

तुम आरोपित भी कर लोगे विश्वास को, तो भी विश्वास के पीछे अविश्वास खड़ा होगा। तुम कितनी ही दृढ़ता से भरोसा करना चाहो, लेकिन तुम्हारी दृढ़ता कँपती रहेगी और तुम जानते रहोगे कि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं उतरा है, उसे तुम चाहो भी तो भी कैसे मान सकते हो? मान भी लो, तो भी कैसे मान सकते हो? तुम्हारा ईश्वर कोरा शब्दजाल होगा, जब तक अनुभव की किरण न उतरी हो। तुम्हारे मोक्ष की धारणा मात्र शाब्दिक होगी, जब तक मुक्ति का थोड़ा स्वाद तुम्हें न लगा हो।

बुद्ध ने कहा : मुझ पर भरोसा मत करना। मैं जो कहता हूँ, उस पर इसलिए भरोसा मत करना कि मैं कहता हूँ। सोचना। विचारना। जीना। तुम्हारे अनुभव की कसौटी पर सही हो जाए, तो ही सही है। मेरे कहने से क्या सही होगा?

बुद्ध के अंतिम वचन हैं : 'अप्प दीपो भव'। अपने दीये खुद बनना। और तुम्हारी रोशनी में तुम्हें जो दिखायी पड़ेगा, फिर तुम करोगे भी क्या — आस्था न करोगे तो करोगे क्या? आस्था सहज होगी। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है।

बुद्ध का धर्म विश्लेषण का धर्म है। लेकिन विश्लेषण से शुरू होता है, समाप्त नहीं होता वहाँ। समाप्त तो परम संश्लेषण पर होता है। बुद्ध का धर्म संदेह का धर्म है। लेकिन संदेह से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।

इसलिए बुद्ध को समझने में बड़ी भूल हुई। क्योंकि बुद्ध संदेह की भाषा बोलते है। तो लोगों ने समझा, यह संदेहवादी है। हिंदू तक न समझ पाए, जो जमीन पे सबसे ज्यादा पुरानी कौम है। बुद्ध निश्चित ही बड़े अनूठे रहे होंगे, तभी तो हिंदू तक समझने से चूक गये। हिंदुओं तक को यह आदमी खतरनाक लगा, घबड़ाने वाला लगा। हिंदुओं को भी लगा कि यह तो सारे आधार गिरा देगा धर्म के। और यही आदमी है, जिसने धर्म के आधार पहली दफा ढंग से रखे।

श्रद्धा पर भी कोई आधार रखा जा सकता है! अनुभव पर ही आधार रखा जा सकता है। अनुभव की छाया की तरह श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा अनुभव की सुगंध है। और अनुभव के बिना श्रद्धा अंधी है। और जिस श्रद्धा के पास आँख न हों, उससे तुम सत्य तक पहुँच पाओगे? क्या?

बुद्ध ने बड़ा दुस्साहस किया। बुद्ध जैसे व्यक्ति पर भरोसा करना एकदम सुगम होता है। उसके उठने-बैठने में प्रामाणिकता होती है। उसके शब्द-शब्द में वजन होता है। उसके होने का ढंग स्वयंसिद्ध होता है। उसपे श्रद्धा आसान हो जाती है। लेकिन बुद्ध ने कहा, तुम मुझे अपनी बैसाखी मत बनाना। तुम अगर लंगड़े हो, और मेरी बैसाखी के सहारे चल लिए — कितनी दूर चलोगे? मंजिल तक न पहुँच

पाओगे। आज मैं साथ हूँ, कल मै साथ न रहूँगा, फिर तुम्हें अपने ही पैरों पर चलना है। मेरी रोशनी से मत चलना, क्योंकि थोड़ी देर को संग-साथ हो गया है अँधेरे जंगल में। तुम मेरी रोशनी में थोड़ी देर रोशन हो लोगे; फिर हमारे रास्ते अलग हो जाएँगे। मेरी रोशनी मेरे साथ होगी, तुम्हारा अँधेरा तुम्हारे साथ होगा। अपनी रोशनी पैदा करो। 'अप्प दीपो भव'!

यह बुद्ध का धम्मपद, कैसे वह रोशनी पैदा हो सकती है अनुभव की, उसका विश्लेषण है। श्रद्धा की कोई माँग नहीं है। श्रद्धा की कोई आवश्यकता भी नहीं है। इसलिए बुद्ध को लोगों ने नास्तिक कहा। क्योंकि बुद्ध ने यह भी नहीं कहा कि तुम परमात्मा पे श्रद्धा करो। तुम कैसे करोगे श्रद्धा? तुम्हें पता होता तो तुम श्रद्धा करते ही। तुम्हें पता नहीं है। इस अज्ञान में तुम कैसे श्रद्धा करोगे? और अज्ञान में तुम जो श्रद्धा बाँध भी लोगे, वह तुम्हारी अज्ञान की ईंटों से बना हुआ भवन होगा; उसे तुम परमात्मा का मंदिर कैसे कहोगे? वह तुमने भय में बना लिया होगा। मौत डराती होगी, इसलिए सहारा पकड़ लिया होगा। यहाँ जिंदगी हाथ से जाती मालूम होती होगी, इसलिए स्वर्ग की कल्पनाएँ कर ली होंगी। लेकिन इन कल्पनाओं से, भय पर खड़ी हुई इन धारणाओ से, कहीं कोई मुक्त हुआ है! इसीसे ही तो आदमी पंगु है। इससे ही तो आदमी पक्षाघात में दबा है। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर की बात नही की।

एच. जी. वेल्स ने बुद्ध के संबंध में कहा है कि पृथ्वी पर इस जैसा ईश्वरीय व्यक्ति और इस जैसा ईश्वर-विरोधी व्यक्ति एक साथ पाना कठिन है —'सो गॉड लाइक एण्ड सो गॉडलेस!' अगर तुम ईश्वरीय प्रतिभाओं को खोजने निकलो तो तुम बुद्ध से ज्यादा ईश्वरीय प्रतिभा कहाँ पाओगे? 'सो गॉडलेस!' और फिर भी इतना ईश्वर-शून्य! ईश्वर की बात ही नहीं की। इस शब्द को ही गंदा माना। इस शब्द का उच्चार नही किया। इससे यह मत समझ लेना कि ईश्वर-विरोधी थे बुद्ध। उच्चार नही किया, क्योंकि उस परम शब्द का उच्चार किया नही जा सकता।

उपनिषद् कहते है, ईश्वर के संबंध में कुछ कहा नही जा सकता; लेकिन इतना तो कह ही देते है। बुद्ध ने इतना भी न कहा। वे परम उपनिषद् हैं। उनके पार उपनिषद् नही जाता। जहाँ उपनिषद् समाप्त होते हैं, वहाँ बुद्ध शुरू होते हैं। आखिर इतना तो कह ही दिया, रोक न सके अपने को, कि ईश्वर निर्गुण है। तो निर्गुण उसका गुण बना दिया। कहा कि ईश्वर निराकार है, तो निराकार उसका आकार हो गया। लेकिन बिना कहे न रह सके। उपनिषद् के ऋषि भी बोल गये! मौन में ही सँभालना था उस संपदा को; बोलकर गँवा दी। बँधी मुट्ठी

लाख की थी, खुली दो कौड़ी की हो गयी। वह बात ऐसी थी कि कहनी नहीं थी। क्योंकि तुम जो कुछ भी कहोगे, वह गलत होगा। यह कहना भी कि परमात्मा निराकार है, गलत है, क्योंकि निराकार भी एक धारणा है। वह भी आकार से ही जुड़ी है। आकार के विपरीत होगी, तो भी आकार से संबंधित है।

निराकार का क्या अर्थ होता है? जब भी अर्थ खोजने जाओगे, आकार का उपयोग करना पड़ेगा। निर्गुण का क्या अर्थ होता है? जब भी कोई परिभाषा पूछेगा, गुण को परिभाषा में लाना पड़ेगा। ऐसी निर्गुणता भी बड़ी नपुंसक है, जिसकी परिभाषा में गुण लाना पड़ता है! और ऐसे निराकार में क्या निराकार होगा, जिसको समझाने के लिए आकार लाना पड़ता है!

बुद्ध से ज्यादा कोई भी नहीं बोला; और बुद्ध से ज्यादा चुप भी कोई नहीं है। कितना बुद्ध बोले हैं! अन्वेषक खोज करते हैं तो वे कहते हैं, एक आदमी इतना बोला, यह संभव कैसे है! उन्हें डर लगता है कि इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त है — दूसरों ने डाल दिया है। कुछ भी प्रक्षिप्त नहीं है। जितना बुद्ध बोले, पूरा संग्रहीत ही नहीं हुआ है। खूब बोले। और फिर भी उनसे ज्यादा चुप कोई भी नहीं है। क्योंकि जहाँ-जहाँ नहीं बोलना था, वहाँ नहीं बोले। ईश्वर के संबंध में एक शब्द न कहा। इस खतरे को भी मोल लिया कि लोग नास्तिक समझेंगे। और आज तक लोग नास्तिक समझे जा रहे हैं। और इससे बड़ा कोई आस्तिक कभी हुआ नहीं।

बुद्ध महा आस्तिक हैं। अगर परमात्मा के संबंध में कुछ कहना संभव नहीं है, तो फिर बुद्ध ने ही कुछ कहा — चुप रहके; इशारा किया।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक विट्‌गिंस्टीन ने अपनी बड़ी अनूठी किताब 'ट्रेक्टेटस' में लिखा है कि जिस संबंध में कुछ कहा न जा सके, उस संबंध में बिलकुल चुप रह जाना उचित है। 'दैट व्हिच कैन नॉट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड।' जो नहीं कहा जा सकता, कहना ही मत, कहना ही नहीं चाहिए।

अगर विट्‌गिंस्टीन बुद्ध को देखता तो समझता। अगर विट्‌गिंस्टीन के वचन को बुद्ध ने समझा होता तो वे मुस्कराते और उन्होंने स्वीकृति दी होती। विट्‌गिंस्टीन को भी पश्चिम में लोग नास्तिक समझे। वह नास्तिक नहीं हैं। पर जो कही नहीं जा सकती बात, अच्छा है न ही कही जाए। कहने से बिगड़ जाती है। कहने से गलत हो जाती है।

लाओत्से तक, कहता तो है प्रथम वचन में अपने 'ताओ-तेह-किंग' में, कि सत्य कहा नहीं जा सकता, और जो भी कहा जाए वह असत्य हो जाता है। लेकिन फिर भी सत्य के संबंध में बहुत-सी बातें कही हैं। बुद्ध ने नहीं कहीं। तुम कहोगे,

फिर बुद्ध कहते क्या रहे ? बुद्ध ने स्वास्थ्य के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा, केवल बीमारी का विश्लेषण किया और निदान किया; औषधि की व्यवस्था की। बुद्ध ने कहा, मैं एक वैद्य हूँ; मैं कोई दार्शनिक नहीं हूँ। मैं तुम्हारी बीमारी का विश्लेषण करूँगा, निदान करूँगा, औषधि सुझा दूँगा; और जब तुम ठीक हो जाओगे, तभी तुम जानोगे कि स्वास्थ्य क्या है। मैं उस संबंध में कुछ भी न कहूँगा।

स्वास्थ्य जाना जाता है, कहा नही जा सकता। बीमारी मिटायी जा सकती है, बीमारी समझायी जा सकती है, बीमारी बतायी जा सकती है, बीमारी का इलाज हो सकता है — सही हो सकता है, गलत हो सकता है — बीमारी के साथ बहुत कुछ हो सकता है। स्वास्थ्य ? जब बीमारी नही होती तब जो शेष रह जाता है, वही। उस तरफ केवल इशारे हो सकते है, मौन। इंगित हो सकते हैं — वे भी प्रत्यक्ष नहीं, बड़े परोक्ष।

बुद्ध के धर्म का शून्यवादी कहा गया है। शून्यवादी उनका धर्म है। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि शून्य पर उनकी बात पूरी हो जाती है। नही, बस शुरू होती है।

बुद्ध एक ऐसे उत्तुग शिखर हैं, जिसका आखिरी शिखर हमें दिखायी नही पड़ता। बस थोड़ी दूर तक हमारी आँखें जाती हैं, हमारी आँखों की सीमा है। थोड़ी दूर तक हमारी गर्दन उठती है, हमारी गर्दन के झुकने की सामर्थ्य है। और बुद्ध खोते चले जाते हैं — दूर... हिमाच्छादित शिखर हैं। बादलों के पार ! उनका प्रारंभ तो दिखायी पड़ता है, उनका अंत दिखायी नही पड़ता। यही उनकी महिमा है। और प्रारंभ को जिन्होंने अंत समझ लिया, वे भूल में पड गये। प्रारंभ से शुरू करना; लेकिन जैसे-जैसे तुम शिखर पे उठने लगोगे, और आगे, और आगे दिखायी पड़ने लगा, और आगे दिखायी पडने लगेगा।

बहुत लोग बोले है। बहुत लोगों ने मनुष्य के रोग का विश्लेषण किया है, लेकिन ऐसा सचोट नही। बडे सुंदर ढंग से लोगों ने बातें कही हैं, बड़े गहरे प्रतीक उपाय मे लाए हैं। पर बुद्ध, बुद्ध के कहने का ढंग ही और है। 'अंदाज़े बयाँ और'! जिसने एक बार सुना, पकड़ा गया। जिसने एक बार आँख से आँख मिला ली, फिर भटक न पाया। जिसको बुद्ध की थोड़ी-सी भी झलक मिल गयी, उसका जीवन रूपांतरित हुआ।

आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, जिस दिन बुद्ध का जन्म हुआ, घर में उत्सव मनाया जाता था। सम्राट के घर बेटा पैदा हुआ था, पूरी राजधानी सजी थी। रात भर लोगों ने दीये जलाए, नाचे। उत्सव का क्षण था ! बूढे सम्राट के घर बेटा पैदा हुआ था। बड़े दिन की प्रतीक्षा पूरी हुई थी। बड़ी पुरानी अभिलाषा थी

पूरे राज्य की। मालिक बूढ़ा होता जाता था और नये मालिक की कोई खबर न थी। इसलिए बुद्ध को सिद्धार्थ नाम दिया। सिद्धार्थ का अर्थ होता है, अभिलाषा का पूरा हो जाना।

पहले ही दिन, जब द्वार पर बैंड-बाजे बजते थे, शहनाई बजती थी, फूल बरसाए जाते थे महल में, चारों तरफ प्रसाद बँटता था, हिमालय से भागा हुआ एक वृद्ध तपस्वी द्वार पर खड़ा हुआ आकर। उसका नाम था असिता। सम्राट भी उसे सम्मान करता था। और कभी असिता राजधानी नहीं आया था। जब कभी जाना था तो शुद्धोदन को, सम्राट को, स्वयं उसके दर्शन करने जाना होता था। ऐसे बचपन के साथी थे। फिर शुद्धोदन सम्राट हो गया, बाजार की दुनिया में उलझ गया। असिता महा तपस्वी हो गया। उसकी ख्याति दूर-दिगंत तक फैल गयी। असिता को द्वार पर आए देखकर शुद्धोदन ने कहा, आप, और यहाँ! क्या हुआ? कैसे आना हुआ? कोई मुसीबत है, कोई अड़चन है? कहें। असिता ने कहा, नहीं, कोई मुसीबत नहीं, कोई अडचन नहीं। तुम्हारे घर बेटा पैदा हुआ, उसके दर्शन को आया हूँ।

शुद्धोदन तो समझ न पाया। सौभाग्य की घड़ी थी यह कि असिता जैसा तपस्वी और बेटे के दर्शन को आया। भागा गया अंतःगृह में। नवजात शिशु को लेकर बाहर आ गया। असिता झुका, और उसने शिशु के चरणों में सिर रख दिया। और कहते हैं, शिशु ने अपने पैर उसकी जटाओं में उलझा दिये। फिर तब से आदमी की जटाओं में बुद्ध के पैर उलझे है। फिर आदमी छुटकारा नहीं पा सका। और असिता हँसने लगा, और रोने भी लगा। और शुद्धोदन ने पूछा कि इस शुभ घड़ी में आप रोते क्यो हैं?

असिता ने कहा, यह तुम्हारे घर जो बेटा पैदा हुआ है, यह कोई साधारण आत्मा नही है; असाधारण है। कई सदियाँ बीत जाती है। ये तुम्हारे लिए ही सिद्धार्थ नही है; ये अनंत-अनंत लोगो के लिए सिद्धार्थ है। अनेको की अभिलाषाएँ इससे पूरी होंगी। हँसता हूँ, कि इसके दर्शन मिल गये। हँसता हूँ, प्रसन्न हूँ, कि इसने मुझ बूढ़े को जटाओ मे अपने पैर उलझा दिये। यह सौभाग्य का क्षण है! रोता इसलिए हूँ कि जब यह कली खिलेगी, फूल बनेगी, जब दिग-दिगंत में इसकी सुवास उठेगी, और इसकी सुवास की छाया में करोड़ो लोग राहत लेंगे, तब मै न रहूँगा। यह मेरा शरीर छूटने के करीब आ गया।

और एक बड़ी अनूठी बात असिता ने कही है, वह यह कि अब तक आवागमन से छूटने की आकांक्षा थी, वह पूरी भी हो गयी; आज पछतावा होता है। एक जन्म अगर और मिलता तो इस बुद्धपुरुष के चरणों में बैठने को, इसकी वाणी सुनने को,

इसकी सुगंध को पीने की, इसके नशे में डूबने की सुविधा हो जाती। आज पछताता हूँ, लेकिन मैं मुक्त हो चुका हूँ। यह मेरा आखिरी अवतरण है; अब इसके बाद देह न धर सकूँगा। अब तक सदा ही चेष्टा की थी कि कब छुटकारा हो इस शरीर से, कब आवागमन से...आज पछताता हूँ कि अगर थोड़ी देर और रुक गया होता ...।

इसे तुम थोड़ा समझो।

बुद्ध के फूल के खिलने के समय, असिता चाहता है, कि अगर मोक्ष भी दाँव पे लगता हो तो कोई हर्जा नहीं। तब से पच्चीस सौ साल बीत गये। बहुत प्रज्ञा-पुरुष हुए। लेकिन बुद्ध अतुलनीय है। और उनकी अतुलनीयता इसमें है कि उन्होंने इस सदी के लिए धर्म दिया, और आने वाले भविष्य के लिए धर्म दिया। कृष्ण की बात कितनी ही समझाके कही जाए, इस सदी के लिए मौजूँ नही बैठती। फासला बड़ा हो गया है। बड़ा अंतराल पड़ गया है। कृष्ण ने जिनसे कहा था उनके मनों में, और जिनके मन आज उसे सुनेंगे, बडा अंतर है। बुद्ध की कुछ बात ऐसी है, कि ऐसा लगता है अभी-अभी उन्होंने कही। बुद्ध की बात को समसामयिक बनाने की जरूरत नहीं है; वह समसामयिक है, वह 'कटेम्प्रेरी' है। कृष्ण पर बोलो, तो कृष्ण को खींचके लाना पड़ता है बीसवीं सदी में; बुद्ध को नही लाना पड़ता। बुद्ध जैसे खड़े ही हैं, बीसवीं सदी में ही खड़े हैं। और ऐसा अनेक सदियों तक रहेगा। क्योंकि मनुष्य ने जो होने का ढग अंगीकार कर लिया है, बुद्धि का, वह अब ठहरने को है; वह अब जाने को नही है। और उसके साथ ही बुद्ध का मार्ग ठहरने को है।

धम्मपद उनका विश्लेषण है। उन्होंने जो जीवन की समस्याओं की गहरी छान-बीन की है, उसका विश्लेषण है। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करना; क्योंकि ये कोई सिद्धांत नहीं हैं जिनपे तुम श्रद्धा कर लो। ये तो निष्पत्तियाँ ह, प्रयोग की। अगर तुम भी इनके साथ विचार करोगे तो ही इन्हे पकड़ पाओगे। यह आँख बंद करके स्वीकार कर लेने का सवाल नही है; यह तो बड़े सोच-विचार, मनन का सवाल है।

साधारणत. आदमी की जिंदगी क्या है? कुछ सपने? कुछ टूटे-फूटे सपने! कुछ अभी भी साबित, भविष्य की आशा में अटके! आदमी की जिंदगी क्या है? अतीत के खंडहर, भविष्य की कल्पनाएँ! आदमी का पूरा होना क्या है? चले जाते हैं -- उठते हैं, बैठते है, काम करते है -- कुछ पक्का पता नहीं, क्यों? कुछ साफ जाहिर नही, कहाँ जा रहे हैं? बहुत जल्दी में भी जा रहे है। बड़ी पहुँचने की तीव्र उत्कंठा है, लेकिन कुछ पक्का नहीं कहाँ पहुँचना चाहते हैं? किस तरफ जाते हो?

कल मैं एक गीत पढ़ता था, साहिर का :

न कोई जादा न कोई मंजिल न रोशनी का सुराग
भटक रही है खलाओं में जिंदगी मेरी

न कोई रास्ता; न कोई मंज़िल; रोशनी का सुराग भी नहीं; कोई एक किरण भी नहीं। और पूरी जिंदगी अँधेरी घाटियों में, शून्य में भटक रही है। 'भटक रही है खलाओं में जिंदगी मेरी।'

ऐसी ही मनुष्य की दशा है सदा से। बहुत-सी झूठी मंजिलें भी तुम बना लेते हो। राहत के लिए कुछ तो चाहिए! सत्य बहुत कड़वा है। और अगर सत्य के साथ तुम खड़े हो जाओ, तो खड़े होना भी मुश्किल मालूम होगा।

सिगमंड फ्रॉयड ने कहा है, कि आदमी बिना झूठ के जी नहीं सकता। झूठ सहारा है। तो हम झूठी मंजिलें बना लेते हैं। असली मंजिल का तो कोई पता नहीं। बिना मंजिल के जीना असंभव। कैसे जियोगे बिना मंजिल के? अगर यह पक्का ही हो जाए कि पता नहीं कहाँ जा रहे है, तो पैर कैसे उठेंगे, यात्रा कैसे होगी? तो हम कल्पित मंजिल बना लेते हैं, एक झूठी मंजिल बना लेते है। उससे राहत मिल जाती है, लगता है कहीं जा रहे है। कोई रास्ता नहीं है; क्योंकि झूठी मंजिलों के कहीं कोई रास्ते होते है! जब मंजिल ही झूठी है, तो रास्ता कैसे हो सकता है? तो फिर हम रास्ता भी बना लेते हैं। रास्ता बना लेते हैं, मंजिल बना लेते है -- सब कल्पित, सब मन के जाल, सब सपने! और ऐसे अपने को भर लेते हैं, और लगता है शून्य भर गया, जिंदगी बड़ी भरी-पूरी है।

कोई कुछ दिन हुए चल बसा। एक मित्र ने आके कहा कि आपको पता चला, फलां-फलां व्यक्ति चल बसे? बड़ी भरी-पूरी जिंदगी थी! मैंने पूछा, रुको। चल बसे, ठीक; उसमें तो कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन भरी-पूरी जिंदगी थी, यह तुमसे किसने कहा? शायद उन्होंने सोचके कहा भी नहीं था। थोड़े झिझके; कहा, मैं तो ऐसे ही कह रहा था। कहने की बात थी। पर मैंने कहा, कहा तब तुम भी सोचते होओगे कि बड़ी भरी-पूरी जिंदगी थी। मैं उनको जानता हूँ। और अगर तुम मुझसे पूछो तो कुछ नहीं हुआ, क्योंकि वे मरे हुए ही थे। अब मरा हुआ मर जाए, इसमें कौन-सी बड़ी घटना हो गयी। जिंदा वे कभी थे नहीं। क्योंकि जिंदगी तो सत्य के साथ ही उपलब्ध होती है, और कोई जिंदगी नहीं है। लेकिन जो झूठ के साथ जी रहा है, वह भी सोचता है जिंदगी भरी-पूरी है।

कितने झूठ तुमने बना रखे है! लड़का बड़ा होगा, शादी होगी, बच्चे होंगे, धन कमाएगा, यश पाएगा, और तुम मर रहे हो! और तुम्हारे बाप भी ऐसे ही

मरे, कि तुम बड़े होओगे, कि शादी होगी, कि धन कमाओगे। और तुम्हारा लड़का भी ऐसे ही मरेगा। जिंदगी बड़ी भरी-पूरी जा रही है !

बाप बेटे के लिए मर जाता है। बेटा अपने बेटे के लिए मर जाता है। ऐसा एक-दूसरे पे मरते चले जाते हैं। कोई जीता नहीं। मरना इतना आसान, जीना इतना कठिन !

लोग सोचते हैं, मौत बड़ी दुस्तर है। गलत सोचते है। मौत में क्या दुस्तरता है ? क्षण में मर जाते हो। जिंदगी दुस्तर है। सत्तर साल जीना होता है। और बिना झूठ के तुम जीना नही जानते हो, तो तुम हजार तरह के झूठ खड़े कर लेते हो -- यश, पद, प्रतिष्ठा, सफलता, धन। जब इनसे चुक जाते हो तो धर्म, मोक्ष, स्वर्ग, परमात्मा, आत्मा, ध्यान, समाधि। पर तुम कुछ न कुछ...ताकि अपने को भरे रखो। और ध्यान रखना, बुद्ध का सारा जोर झूठ से खाली हो जाने पर है। सत्य से भरना थोड़े ही पड़ता है। झूठ से खाली हुए तो जो शेष रह जाता है, वही सत्य है। गयी बीमारी, जो बचा वही स्वास्थ्य है।

लेकिन, कितने ही लोगों ने जगाने की कोशिश की है, तुम जागते नही। आदमी का झूठ को पैदा करने का अभ्यास इतना गहरा है कि वह बुद्ध के आसपास भी -- बुद्ध भी मौजूद हों जगाने को तो उनके आसपास भी -- अपनी नींद की सुविधा जुटा लेता है। बुद्ध जगाते हैं; तुम उनके जगाने की चेष्टा को भी नशा बना लेते हो। तुम हर चीज मे से शराब निकाल लेते हो। ऐसी कोई चीज नही है जिसमें से तुम शराब न निकाल लो। इसलिए तो बुद्ध आते हैं, चले जाते हैं; बुद्धपुरुष पैदा होते है, विदा हो जाते हैं; तुम अपनी जगह अडिग खड़े रहते हो, तुम अपने झूठ से हटते नहीं। शायद, बुद्धपुरुषो ने जो कहा उसको भी तुम अपने झूठ मे सम्मिलित कर लेते हो।

क्या है तुम्हारे झूठ का राज ? अहकार। अहंकार सरासर झूठ है। ऐसी कोई चीज कही है नही। तुम हो नही, सिर्फ एक भ्राति हो, है तो पूर्ण। सारा अस्तित्व इकट्ठा है। यह भ्रांति है कि तुम अलग हो।

कल ही एक मित्र से मैंने कहा कि अब जागो। तो उन्होने कहा कि कोशिश बहुत करता हूँ, मन निंदा से भी भर जाता है अपने प्रति; अपराधी भी मालूम होता हूँ, बेईमान भी मालूम पड़ता हूँ -- क्योंकि जो करना चाहिए मालूम है, समझ में आता है, और नही कर रहा हूँ। तो मैंने उनसे कहा, तुम एक ही कृपा करो, यह करने का खयाल छोड़ दो। क्योंकि उसने पैदा किया, वही श्वाँस ले रहा है, तुम करना भी उसीपे छोड़ दो। उन्होंने कहा कि जन्म उसने दिया, इतना तक तो मै मान सकता हूँ; लेकिन बाकी और काम वही कर रहा है, यह

नहीं मान सकता। यह तो मैं मान ही नहीं सकता कि बेईमानी भी वही कर रहा है।

अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। हमे भी लगेगा कि बेचारा, धार्मिक बात तो कह रहा है यह व्यक्ति, कि बेईमानी कैसे परमात्मा पे छोड़ दूं ? लेकिन नहीं, सवाल यह नहीं है। अहंकार ... ! यह कोई परमात्मा को बचाने की चेष्टा नही है कि परमात्मा पे बेईमानी कैसे सौंप दूँ; यह भी अहंकार को बचाने की चेष्टा है। ध्यान रखना कि जब बेईमानी तुम करोगे, तो ईमानदारी भी तुम ही करोगे। लेकिन जब जन्म भी तुम्हारा अपना नहीं है और मौत भी तुम्हारी अपनी नहीं है, तो दोनों के बीच में तुम्हारा अपना कुछ कैसे हो सकता है ? जब दोनों छोर पराये हैं, जब जन्म के पहले कोई और के हाथ में तुम हो, मौत के बाद किसी और के हाथ में, तो यह बीच को थोड़ी-सी जो घड़ियाँ हैं, इनमें तुम अपने को सोच लेते हो अपने हाथ में, वही भ्रांति हो जाती है। वही अहंकार तुम्हें जगने नही देता। वही अहंकार सोने की नयी तरकीबें, व्यवस्थाएँ खोज लेता है।

इसलिए बुद्धपुरुष आते है। उनके तीर ठीक तरकस से तुम्हारे हृदय की तरफ निकलते हैं। पर तुम बचा जाते हो।

' हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की।' आदमी ने कितने बुद्धपुरुष पैदा किये ! हजारों खिज्र -- पैगंबर, तीर्थंकर !

हजारो खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की
ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है

यह सब तसलीम, यह सब स्वीकार कि हजारो बुद्धपुरुष हुए हैं। पर इससे क्या फर्क पड़ता है ? ' आदमी अब तक भटकता है।' आदमी भटकना चाहता है ? कहता तो आदमी यही है कि भटकना नहीं चाहता। कहते तो तुम मेरे पास यही हो, शांत होना चाहते हैं, सत्य होना चाहते हैं, सरल होना चाहते हैं। लेकिन सच में तुम होना चाहते हो ? याकि सरलता के नाम पर तुम नयी जटिलता खोज रहे हो ? या सत्य के नाम पर तुमने नये झूठों की तलाश शुरू की है ? या शांति के नाम पर अब तुमने एक नया रोग पाला ? अब तुम शांति के नाम पर अशांत होने को उत्सुक हुए हो। साधारण आदमी अशात होता है सिर्फ; शांति की तो कम से कम चिंता नही होती। अब तुम शाति के लिए भी चिंतित हुए, पुरानी अशांति तो बरकरार, अब तुम और धन करोगे उसमें, गुणनफल करोगे। अब तुम कहोगे कि शांति भी चाहिए। अब एक नयी अशांति जुड़ी, कि शांति नहीं है। झूठ तो तुम थे; अब तुम कहते हो सत्य खोजेंगे। अब तुम सत्य के नाम पर कुछ नये झूठ ईजाद करोगे -- स्वर्ग के, मोक्ष के, नर्क के. परमात्मा के, आकाश के।

मंदिरों में जाओ, स्वर्गों के नक्शे टँगे हैं — पहला स्वर्ग, दूसरा स्वर्ग; पहला खंड, दूसरा खंड, तीसरा खंड, सच खंड तक; नक्शे टँगे हुए हैं। आदमी की मूढ़ता की कोई सीमा है, कोई अंत है! अपने घर का नक्शा तुमसे बनेगा नहीं। अपना भी नक्शा तुम बना न सकोगे कि तुम क्या हो, कहाँ हो, कौन हो; तुमने स्वर्ग के नक्शे बना लिए।

एक दुकान पर, एक शिकारी कुछ सामान खरीद रहा था। अफ्रीका जा रहा था, शिकार करने। कहीं जंगल में भटक न जाए, इसलिए उसने एक यंत्र खरीदा — दिशासूचक यंत्र, 'कॅम्पास'। और तो सब ठीक था, उसने खोलके देखा, लेकिन 'कॅम्पास' में पीछे एक आइना भी लगा था। यह उसकी समझ में न आया। क्योंकि यह कोई 'कॅम्पास' है या किसी स्त्री का साज-श्रृंगार का सामान? इसमें आइना किसलिए लगा है? यह दिशासूचक यंत्र है, इसमें आइने की क्या जरूरत? उसने दुकानदार से पूछा कि और सब तो ठीक है, लेकिन यह मेरी समझ मे नही आया कि इसमें आइना क्यों लगा है? दुकानदार ने कहा, यह इसलिए कि जब तुम भटक जाओ, तो 'कॅम्पास' तो बताएगा स्थान; आइने में तुम देख लेना ताकि पता चल जाए — कौन भटक गया है? कहाँ भटक गये हो यह तो 'कॅम्पास' से पता चल जाएगा; लेकिन कौन भटक गया है ... !

अपना पता नही है, स्वर्ग के नक्शे बना दिये हैं। विवाद चल रहे है लोगों के — कितने नर्क होते है? हिंदू कहते है, तीन। जैन कहते है, सात। बुद्ध ने बड़ी मजाक की है, उन्होने कहा, सात सौ। यह मजाक की है, क्योंकि बुद्ध को जरा भी उत्सुकता नही है इस तरह की मूढ़ताओ में। लेकिन मजाक भी नही समझ पाते लोग। बुद्ध के माननेवाले है जो कहते है कि नही, सात सौ ही होते हैं, इसीलिए कहे। मै तुमसे कहता हूँ, सात हजार।

आदमी सत्य से भी झूठ खोज लेता है। इसलिए आदमी भटकता है।

बुद्ध बड़े शुद्ध खोजी हैं। उनकी खोज बड़ी निर्दोष। घर छोड़ा तो जितने गुरु उपलब्ध थे, सबके पास गये। गुरु उनसे थक गये; क्योंकि असली शिष्य आ जाए तभी पता चलता है कि गुरु गुरु है या नही। झूठे शिष्य हों साथ, तो पता ही नही चलता।

लोग मुझसे पूछते हैं आके कि असली गुरु का कैसे पता चले? मै उनको कहता हूँ, तुम फिक्र न करो। अगर तुम असली शिष्य हो, पता चल जाएगा। नकली गुरु तुमसे बचेगा, भागेगा, कि यह चला आ रहा है असली शिष्य, यह झंझट खड़ी करेगा। तुम गुरु की फिक्र ही छोड़ दो। असली शिष्य अगर तुम हो, तो नकली गुरु तुम्हारे पास टिकेगा ही नहीं। तुम टिके रहना, वही भाग जाएगा।

जिब्रान की कहानी है कि एक आदमी गाँव-गाँव कहता फिरता था कि मुझे स्वर्ग का पता है, जिनको आना हो मेरे साथ आ जाओ। कोई आता नहीं था, क्योंकि लोगों को हजार दूसरे काम हैं, कोई स्वर्ग जाने की इतनी जल्दी वैसे भी किसीको नहीं है। लोग स्वर्गीय तो मजबूरी में होते हैं। जब हाथ-पैर ही नहीं चलते और लोग मरघट पे पहुँचा आते हैं, तब स्वर्गीय होते हैं। कोई स्वर्गीय होने को राजी नहीं था। लोग कहते, आपकी बात सुनते हैं, जँचती है; अब जरूरत होगी तब उपयोग करेंगे, मगर अभी कृपा करें, अभी ... अभी हमें जाना नहीं।

एक गाँव में ऐसा हुआ। उस आदमी का खूब धंधा चलता था। क्योंकि जिनको स्वर्ग नहीं जाना, इनको बचने के लिए भी गुरु को कुछ गुरु-दक्षिणा देनी पड़ती थी। वह आ जाए गाँव मे और समझाए, तो उसकी कुछ सेवा भी करनी पड़ती, पैर भी पड़ने पड़ते। वे कहते, तुम बिलकुल ठीक हो, मगर अभी हम साधारणजन, अभी संसार में उलझे हैं; जब कभी सुलझेंगे, जरूर आपकी बात का खयाल करेंगे। रख लेते हैं सँभाल के हृदय में। तो गुरु का धंधा भी चलता था। न कभी कोई झंझट आयी थी, न कुछ!

एक गाँव में उपद्रव हो गया। एक असली शिष्य मिल गया। उसने कहा, अच्छा, तुम्हें पता है, पक्का पता है? बिलकुल पक्का पता है। क्योंकि अभी तक कोई झंझट आयी नही थी। उसने कहा, अच्छा, मैं चलता हूँ। कितने दिन लगेंगे पहुँचने में? तब जरा गुरु घबड़ाया कि यह जरा उपद्रवी मालूम पड़ता है। पैर छुओ, बात ठीक है। साथ चलने की बात! मगर अब सबके सामने मना भी नही कर सका। उसने कहा देखेंगे, भटकाएँगे साल दो साल, भाग जाएगा अपने-आप। छह साल बीत गये। वह उनके पीछे ही पड़ा है। वह कहता है कि कब आएगा, अभी तक आया नहीं। एक दिन उस गुरु ने कहा, तेरे हाथ जोड़ता हूँ, भैया! तू जब तक न मिला था हमको भी पता था; अब तेरे कारण हमारा भी ...! असली शिष्य मिल जाए, तो फिर गुरु अपने-आप ...।

दुनिया में नकली गुरु है, क्योंकि नकली शिष्यों की बड़ी संख्या है। नकली गुरु तो 'बाइप्रॉडक्ट' हैं। वे सीधे पैदा नही होते। नकली शिष्य उन्हें पैदा कर लेता है।

बुद्ध सभी गुरुओं के पास गये। गुरु घबड़ा गये। क्योंकि यह व्यक्ति निश्चित प्रामाणिक था। जो उन्होने कहा, वह इसने इतनी पूर्णता से किया कि उनको भी दया आने लगी, कि यह तो हमने भी नही किया है! कोई करता ही नहीं था, तब तक बात ठीक थी। इसपे दया आने लगी। इससे यह भी न कह सकते थे कि तुमने पूरा नही किया, इसलिए उपलब्ध नही हो रहा है। इसने पूरा-पूरा

किया। उसमें तो रत्ती भर कमी नहीं रखी। गुरुओं ने हाथ जोड़के कहा कि बस, हम यहाँ तक तुम्हें बता सकते थे, इसके आगे हमें खुद भी पता नहीं है।

सारे गुरुओं को बुद्ध ने चुका डाला। एक गुरु साबित न हुआ। तब सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि खुद खोजें। और इसीलिए बुद्ध की बातो में बड़ी ताजगी है, क्योंकि उन्होने खुद खोजा। किसी गुरु से नहीं पाया था। किसीसे सुन के नही दोहराया था। फिर खुद खोज पर निकले — नितांत अकेले, बिना किसी सहारे के। शास्त्र धोखा दे गये, गुरु धोखा दे गये, सब पीछे हट गये, अकेला रह गया खोजी।

ऐसा ही होता है। जब तुम्हारी खोज असली होगी, तुम पाओगे शास्त्र काम नहीं देते। शास्त्र तभी तक काम देते हैं जब तक तुम उनका भजन-पाठ करते हो। बस तभी तक। अगर तुमने यात्रा शुरू की, तुम तत्क्षण पाओगे शास्त्र में हजार गलतियाँ है। होनी ही चाहिए। क्योंकि हजारों साल तक हजारों लोग उसे दोहराते रहे हैं, बनाते रहे हैं। उसमें बहुत कुछ छूट गया है, बहुत कुछ जुड़ गया है। लेकिन यह तो पता तुम्हे तभी चलेगा जब तुम यात्रा करोगे।

एक तुम नक्शा लिए घर में बैठे हो, उसकी तुम पूजा करते हो — कैसे पता चलेगा? यात्रा पर निकलो तब तुम्हें पता चलेगा — अरे, इस नक्शे में नदी बतायी है, यहाँ कोई नदी नहीं है! इस नक्शे में पहाड़ बताया है, यहाँ कोई पहाड़ नही है! इस नक्शे में कहा है बाएँ मुड़ना, बाएँ मुड़ो तो गड्ढ है। यात्रा होती नहीं। दाएँ मुड़ो तो ही हो सकती है।

जब तुम यात्रा पर निकलोगे तभी परीक्षा होती है तुम्हारे नक्शों की। उसके बिना कोई परीक्षा नही। जो भी यात्रा पर गये, उन्होंने शास्त्र को सदा कम पाया। जो भी यात्रा पर गये, उन्होंने गुरुओं को कम पाया। जो भी यात्रा पर गये, उन्हें एक बात अनिवार्यरूपेण पता चली कि प्रत्येक को अपना मार्ग स्वयं ही खोजना पड़ता है। दूसरे से सहारा मिल जाए, बहुत। पर कोई दूसरा तुम्हें मार्ग नहीं दे सकता। क्योंकि दूसरा जिस मार्ग पर चला था, तुम उसपे कभी भी न चलोगे। वह उसके लिए था। वह उसका था। वह उसके स्वभाव में अनुकूल बैठता था।

और प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है।

बुद्ध ने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। इसलिए एक ही राजपथ पर सभी नहीं जा सकते, सबकी अपनी पगडंडी होगी। इसलिए सद्गुरु तुम्हें रास्ता नहीं देता, केवल रास्ते को समझने की परख देता है। सद्गुरु तुम्हें विस्तार के नक्शे नहीं देता, केवल रोशनी देता है, ताकि तुम खुद विस्तार देख सको, नक्शे तय कर सको। क्योंकि नक्शे रोज बदल रहे हैं।

जिंदगी कोई स्थिर बात नहीं है, जड़ नहीं है। जिंदगी प्रवाह है। जो कल था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल नहीं होगा।

सद्गुरु तुम्हें प्रकाश देता है, रोशनी देता है, दीया देता है हाथ में कि यह दीया ले लो, अब तुम खुद खोजो और निकल जाओ। और ध्यान रखना, खुद खोजने से जो मिलता है, वही मिलता है। जो दूसरा दे दे, वह मिला हुआ है ही नहीं। दूसरे का दिया छीना जा सकता है। खुद का खोजा भर नहीं छीना जा सकता। और जो छिन जाए वह कोई अध्यात्म है? जो छीना न जा सके, वही।

पहली गाथा :

' मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है; मन उनका प्रधान है, वे मनोमय हैं। यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है या कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी का चक्का खींचनेवाले बैलों के पैर का। '

छोटा सूत्र, पर बड़ा दूरगामी। ध्यान रखना, बुद्ध किसी शास्त्र को नहीं दोहरा रहे हैं। बुद्ध से शास्त्र पैदा हो रहा है।

' मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है। ' कोई भी वृत्ति उठती है ...

राह पर तुम खड़े हो, एक सुंदर कार निकली। क्या हुआ तुम्हारे मन में? एक छाप पड़ी। एक काली कार निकली, एक प्रतिबिंब गूँजा। कार के निकलने से वासना पैदा नहीं होती—अगर तुम देखते रहो और तुम्हारा देखना ऐसा ही तटस्थ हो जैसे कैमरे की आँख होती है। कैमरे के सामने से भी कार निकल जाए, वह फोटो भी उतार देगा, तो भी कार खरीदने नहीं जाएगा। और न सोचेगा कि कार खरीदनी है। अगर तुम वहाँ खड़े हो और कैमरे जैसी तुम्हारी आँख है — तुमने सिर्फ देखा, काली कार गुजर गयी। चित्र बना, गया। एक छाया आयी, गयी — कुछ भी कठिनाई नहीं है। लेकिन जब यह काली छाया कार की तुम्हारे भीतर से निकल रही है, तब तुम्हारे मन में एक कामना जगी — ऐसी कार मेरे पास हो! मन में एक विकार उठा। एक लहर उठी — जैसे पानी में किसीने कंकड़ फेंका और लहर उठी। कार तो जा चुकी, अब लहर तुम्हारे साथ है। अब यह लहर तुम्हें चलाएगी। तुम धन कमाने में लगोगे, या तुम चोरी करने में लगोगे, या किसी की जेब काटोगे। अब तुम कुछ करोगे। अब वृत्ति ने तुम्हें पकड़ा। अब वृत्ति तुम्हारी कभी क्रोध करवाएगी, अगर कोई बाधा डालेगा। अगर कोई मार्ग में आएगा तो तुम हिंसा करने को उतारू हो जाओगे, मरने-मारने को उतारू हो जाओगे। अगर कोई सहारा देगा तो तुम मित्र हो जाओगे, कोई बाधा देगा तो शत्रु हो जाओगे। अब तुम्हारी रातें इसी सपने से भर जाएँगी। बस यह कार तुम्हारे आसपास घूमने लगेगी। जब तक यह न हो जाए, तुम्हें चैन न मिलेगा। और मजा

यह है कि वर्षों की मेहनत के बाद जिस दिन यह तुम्हारी हो जाएगी, तुम अचानक पाओगे, कार तो अपनी हो गयी, लेकिन अब ? इन वर्षों की बेचैनी का अभ्यास हो गया। अब बेचैनी नहीं छोड़ती। कार तो अपनी हो गयी, लेकिन बेचैनी नही जाती, क्योंकि बेचैनी का अभ्यास हो गया।

अब तुम इस बेचैनी के लिए नया कोई यात्रा-पथ खोजोगे। बड़ा मकान बनाना है! हीरे-जवाहरात खरीदने है! अब तुम कुछ और करोगे, क्योंकि अब बेचैनी तुम्हारी आदत हो गयी। और अब इस बेचैनी का तुम क्या करोगे ? सालो तक बेचैनी को सम्हाला, कार तो मिल गयी; लेकिन अब कार का मिलना न मिलना बराबर है। अब यह बेचैनी पकड़ गयी।

इसलिए तो धनी बहुत लोग हो जाते हैं और धनी नही हो पाते। क्योंकि जब वे धनी होते है, तब तक बेचैनी का अभ्यास हो गया उनका। जब तक धनी हुए तब तक चैन से न रह सके, सोचा कि जब धनी हो जाएँगे तब चैन से रह लेंगे। लेकिन चैन कोई इतनी आसान बात है! अगर बेचैनी का अभ्यास घना हो गया, तो धनी तो तुम हो जाओगे, बेचैनी कहाँ जाएगी ? तब और धनी होने की दौड़ लगती है। और मन कहता है और धनी हो जाएँ, फिर ...। लेकिन सारा जाल मन का है।

बुद्ध ने अपनी एक-एक वृत्ति को जाँचा और पाया कि वृत्ति मन के सरोवर मे उठी लहर है। वृत्ति का मतलब ही लहर होता है। वह मन का कँप जाना है। अगर मन निष्कंप रह जाए तो कोई वृत्ति पैदा नहीं होती। अगर मन कँप गया, तो वृत्ति पैदा हो जाती है। फिर कोई फर्क नही पड़ता कि किस चीज से कँपता है।

आज से ढाई हजार साल पहले बुद्ध के समय में कार तो नहीं थी, तो कई नासमझ सोचते हैं कि तब बड़ी शांति थी; क्योंकि कार नहीं थी, तो कार की तो चिता पैदा नही हो सकती थी। हवाई जहाज नही था, तो हवाई जहाज खरीदना है इसकी चिता तो पैदा नहीं हो सकती थी। लेकिन तुम गलती में हो। चिताएँ इतनी ही थीं। क्योंकि किसीके पास शानदार बैलगाड़ी थी, बग्घी थी — वह चिता पैदा करवाती थी। किसीके पास शानदार घोड़ा था, वह चिता पैदा करवाता था।

चिता के लिए विषय से कोई फर्क नही पड़ता। तुम लहर सरोवर में उठाने के लिए एक कंकड़ फेंको या कोहनूर हीरा फेंको, इससे कोई फर्क नही पड़ता। कोहनूर हीरा भी वृत्ति उठाता है, साधारण कंकड़ भी उतनी ही वृत्ति उठाता है, उतनी ही लहर उठाता है। पानी फिकर नही करता कि तुमने कोहनूर फेंका कि कंकड़ फेंका। कुछ फेंका, बस इतना काफी है। मन ने कुछ भी फेंका और उपद्रव शुरू हुआ।

'मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है; मन उनका प्रधान है; वे मनोमय हैं। यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है या कर्म करता हैं, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी का चक्का खींचनेवाले बैलों के पैर का।'

बुद्ध ने एक सूत्र पाया : जीवन में दुख है। हम भी जीवन में दुखी हैं। और जब हमें दुख पकड़ता है तो हम पूछते हैं, किसने दुख पैदा किया? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है — पत्नी, पति, बेटा, बाप, मित्र, समाज? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है — आर्थिक-व्यवस्था, सामाजिक-ढांचा? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है?

मार्क्स से पूछो तो वह कहता है, दुख पैदा हो रहा है क्योंकि समाज का आर्थिक ढांचा गलत है। गरीबी है, अमीरी है, इसलिए दुख पैदा हो रहा है। फ्रॉयड से पूछो तो वह कहता है, दुख इसलिए पैदा हो रहा है कि मनुष्य को अगर उसकी वृत्तियों के प्रति पूरा खुला छोड़ दिया जाए, तो वह जंगली जानवर जैसा हो जाता है। दुख पैदा होगा उससे। सभ्यता नष्ट हो जाएगी। अगर उसे सम्हाला-बुझाया जाए, तैयार किया जाए, परिष्कृत किया जाए, तो दमन हो जाता है। दमन होने से दुख पैदा होता है।

इसलिए फ्रॉयड ने कहा, दुख कभी भी न मिटेगा। अगर आदमी को बिलकुल खुला छोड़ दो, तो मार-काट हो जाएगी; क्योंकि आदमी के भीतर हजार तरह की जानवरी वृत्तियाँ हैं। अगर दबाओ, ढंग का बनाओ, सज्जन बनाओ, तो दमन हो जाता है। दमन होता है, तो दुख होता रहता है, वृत्तियाँ पूरी नहीं हो पातीं। पूरी करो तो मुसीबत, न पूरी करो तो मुसीबत।

तो फ्रॉयड ने तो अंत मे कहा कि आदमी जैसा है कभी सुखी हो ही नहीं सकता। सुख असंभव है।

फ्रॉयड और मार्क्स, इनका विश्लेषण ही अगर अकेला विश्लेषण होता तो पक्का है कि आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। क्योंकि रूस में गरीब-अमीर मिट गये, लेकिन दुख नहीं मिटा। गरीब-अमीर मिट गये, तो दूसरे वर्ग खड़े हो गये। कोई पद पर है, कोई पद पर नहीं है। कोई कम्यूनिस्ट पार्टी में है, कोई कम्यूनिस्ट पार्टी में नहीं है। जो पद पर है, वह इतना शक्तिशाली हो गया है जितना धनी पुराने दिनों में कभी भी न था। और जो पद पर नहीं है, वह इतना निर्बल हो गया है जितना भूखा, भिखमंगा, गरीब कभी नहीं था। धनी के हाथ में इतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी रूस में पदाधिकारी के हाथ में है। संघर्ष वहीं का वहीं खड़ा है। भेद वहीं का वहीं खड़ा है। वर्ग नये बन गये, पुराने मिटे तो। कुछ ऐसा लगता है, आदमी बीमारी बदलता जाता है। क्रांतियों के नाम से केवल

बीमारी बदलती है, कुछ भी बदलता नहीं। ऊपर के ढंग बदलते हैं, भीतर का रोग जारी रहता है।

सब क्रांतियाँ व्यर्थ हो गयी है; सिर्फ बुद्ध की एक क्रांति अभी भी सार्थकता रखती है।

बुद्ध कहते है, तुम्हारे मन में ही कारण है। बाहर खोजने गये, पहला कदम ही गलत पड़ गया। अब तुम ठीक कभी न हो पाओगे। तुम्हारे मन में ही दुख का कारण है। जब भी तुम किसीको दुख देना चाहते हो, तुम दुख पाओगे। जब भी तुम दुख देने की आकांक्षा से भरे किसी विचार के पीछे जाते हो, तुम दुख के बीज बो रहे हो। दूसरे को दुख मिलेगा या नही मिलेगा, तुम्हें दुख जरूर मिलेगा। तुम अगर आज दुख पा रहे हो, तो बुद्ध कहते हैं, कल बोए बीजो का फल है। और अगर कल तुम चाहते हो दुख न पाओ, तो आज कृपा करना, आज बीज मत बोना।

'यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता हूं, सोचता है, व्यवहार करता है, या वैसे कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी जाती है तो बैलो के पीछे चाक चले आते है।'

तुम्हारे मन में अगर किसीको भी दुख देने का जरा-सा भी भाव है, तो तुम अपने लिए बीज बो रहे हो। क्योंकि तुम्हारे मन में जो दुख देने का बीज है, वह तुम्हारे ही मन की भूमि में गिरेगा, किसी दूसरे के मन की भूमि में नही गिर सकता। बीज तो तुम्हारे भीतर है, वृक्ष भी तुम्हारे भीतर ही होगा। फल भी तुम्हीं भोगोगे।

अगर बहुत गौर से देखा जाए, तो जब तुम दूसरे को दुख देना चाहते हो, तब तुमने अपने को दुख देना शुरू कर ही दिया। तुम दुखी होने शुरू हो ही गये। तुम क्रोधित हो, किसी पर क्रोध करके उसे नष्ट करना चाहते हो; उसे तुम करोगे या नहीं, यह दूसरी बात है, लेकिन तुमने अपने को नष्ट करना शुरू कर दिया।

बुद्ध कहते थे, क्रोध से बड़ी कोई मूढ़ता नही है। दूसरे के कसूर के लिए तुम अपने को दंड देते हो। एक आदमी ने तुम्हें गाली दी, कसूर उसका होगा, अब क्रोधित तुम हो रहे हो —— दंड तुम अपने को दे रहे हो, कसूर उसका था। इससे ज्यादा मूढ़ता और क्या हो सकती है? उसने गाली दी, उसकी समस्या है; तुम क्यों बीच में आते हो? तुम गाली मत लो। लेने पर निर्भर है। लेना आवश्यक नही है। आप मुझे गाली दे सकते हैं, लेकिन लेने पे थोड़े ही मजबूर कर सकते है? देना आपके बस में है, लेना मेरे बस में है। उस मालकियत को मुझसे कोई कभी नही छीन सकता। मै कह सकता हूँ कि नही लेता, फिर तुम क्या करोगे?

तुम्हारी गाली तुम्हीं पर लौट जाएगी। तुमने गाली देने के लिए जो तैयारी में दुख भोगा, वह भोगा; अब गाली लौटेगी तब तुम जो दुख भोगोगे, वह भोगोगे।

जब हम किसी चीज को अपने मन के भीतर ले लेते हैं, तभी वह सक्रिय हो जाती है। और दूसरे से लेने की कोई जरूरत नहीं है; तुम अपने भीतर ही इतने दुख के बीज पैदा करते रहते हो। अकारण !

मैं कलकत्ते में एक मित्र के घर मेहमान होता था। उनके पास सबसे बढ़िया कोठी है कलकत्ते में। थी कहना चाहिए, अब नहीं है। अब एक दूसरी कोठी खड़ी हो गयी, पड़ोस में ही खड़ी हो गयी। जब मैं उनके घर मेहमान होता था, तो वे हमेशा अपने मकान में मुझे ले जाते। कई बार दिखा चुके थे, मगर फिर-फिर दिखाते। उनका रस खतम नहीं होता था। स्विमिंग-पूल, बगीचा — सब दिखाते। उनकी आदत थी, यह मानके मैं जब भी वे दिखाते फिर इस तरह उत्सुकता लेता जैसे कभी नही देखा है। मगर आखिरी बार जब उनके घर गया, तो उन्होंने मकान न दिखाया। मैं थोड़ा हैरान हुआ, क्या यह आदमी बदल गया ! मैंने पूछा कि क्या मामला है, मकान नहीं दिखलाइयेगा ? कहने लगे क्या खाक दिखलाएँ !

क्या हुआ ?

देखते नहीं कि बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया ? जब तक इससे बड़ी कोठी न कर लूं तब तक अब चैन नही ! अब क्या दिखाना है !

इनका मकान वैसे का ही वैसा है, क्योकि बगल के मकान ने इनके मकान में कुछ फर्क नहीं किया है। इनका मकान ठीक उतना ही सुंदर है जैसा था। लेकिन बगल में एक मकान खड़ा हो गया ! बड़ी लकीर किसीने खींच दी, इनकी लकीर छोटी हो गयी, बिना छुए। किसीने छुआ नहीं, हाथ नहीं लगाया; मगर बगल में एक लकीर खड़ी हो गयी।

उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि कुछ समझाइये इनको; न सोते हैं, न चैन ! इनकी छाती पे बोझ हो गया है वह बगल का मकान। बगल के मकानवाले को शायद पता भी न हो कि कोई जला-भुंजा जा रहा है, कि कोई मरा जा रहा है। मगर इस आदमी ने अपने भीतर एक बीज बो लिया। यह उस मकान से नहीं आया है, क्योंकि इसकी पत्नी को कोई तकलीफ नहीं है। इसकी पत्नी भी वहीं है, उसे कोई तकलीफ नहीं है। मकान से नहीं आया है; इसके अपने भीतर के मन का रोग है। एक ईर्ष्या जगी है। अहंकार को चोट लगी है।

मैंने उनसे कहा कि मैं सदा जानता था, कभी न कभी यह झंझट होगी। आप अपने मन में अपने मकान का इतना रस लेते हैं कि कोई भी मकान अगर खड़ा हो

गया, तो आप जी न सकोगे। क्योंकि सदा आपको देखके मुझे ऐसा लगा, यह मकान आपके लिए नहीं है, आप मकान के लिए हो। आप मालिक नहीं हो, यह मकान मालिक है। आप वस्तु को अपना सर्व सँभाल दिये हैं, दे दिये हैं वस्तुओं को। आप गुलाम हो गये हैं। मुझे डर था कि कभी न कभी यह होगा, कोई मकान बड़ा बगल में खड़ा हो जाएगा, तो तुम न झेल पाओगे।

वे रुग्ण रहने लगे जब से वह मकान बन गया।

मन में सारा खेल है —

यही जिंदगी मुसीबत यही जिंदगी मसर्रत
यही जिंदगी हकीकत यही जिंदगी फसाना

कैसी मन की व्याख्या है, कैसे तुम देखते हो, कैसे तुम सोचते हो, कैसी तुम व्याख्या करते हो जीवन की — सब उसपे निर्भर है।

'मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है, मन उनका प्रधान है। यदि कोई प्रसन्न मन से बोलता है या कर्म करता है, तो सुख उसका अनुसरण करता है — वैसे ही जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया।'

अगर तुम दुखी हो तो अपने को कारण जानना, अगर सुखी हो तो अपने को कारण जानना। अपने से बाहर कारण को मत ले जाना। वही धोखा है। इसको ही मैं धार्मिक क्रांति कहता हूं। जिस व्यक्ति ने आपने जीवन के सारे कारणों को अपने भीतर देख लिया, वह व्यक्ति धार्मिक हो गया। क्योंकि अब उसके हाथ में है बात। अब दुखी होना हो, तो तुम जानते हो कौन से बीज बोने। सुखी होना हो, तो जानते हो कौन से बीज बोने। अब कोई मजबूरी न रही। फिर अगर दुख में ही मजा लेना हो, तो मजे से बीज बोओ; कोई बाधा नहीं डाल सकता। लेकिन एक बात फिर तुम न कर सकोगे कि दुख के तो बीज बोओ और रोना भी रोओ कि मैं दुखी क्यों हूं! अपने ही हाथ से जहर पीओ, और फिर रोओ कि मैं मर क्यों रहा हूं! मरना हो, मजे से जहर पीओ। जीना हो, मत पीओ। तुम्हारे हाथ हैं, तुम्हारी प्याली है, तुम्हारा जहर है — और तुम्हीं को जीना या मरना है।

'उसने मुझे डाँटा, मुझे मारा, मुझे जीत लिया, मेरा लूट लिया — जो ऐसी गाँठ मन में बनाए रखते हैं, उनका वैर शांत नहीं होता।'

उसने! दूसरे पर जिनका सारा जोर है... उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, मेरा लूट लिया — जो दूसरे पर नजर रखते हैं...।

बुद्ध का एक शिष्य हुआ — पूर्ण काश्यप। वह निश्चित ही पूर्ण हो गया था, इसलिए उसे बुद्ध पूर्ण कहते हैं। फिर एक दिन बुद्ध ने उससे कहा कि पूर्ण, अब तू पूर्ण सच में ही हो गया। अब मेरे साथ-साथ डोलने की कोई जरूरत न रही। अब

तू जा। अब तू गाँव-गाँव, नगर-नगर घूम और डोल। मेरी खबर ले जा। मेरे पास तूने जो पाया है उसे लुटा।

पूर्ण ने कहा : भगवान, किस दिशा में जाऊं? आप इशारा कर दें।

बुद्ध ने कहा : तू खुद ही चुन ले। अब तू खुद ही समर्थ है। अब मेरे इशारे की भी कोई जरूरत न रही

तो पूर्ण ने कहा कि जाऊंगा। 'सूखा' नाम का एक इलाका था बिहार में, वहाँ जाऊंगा। बुद्ध ने कहा तू खतरा मोल ले रहा है। वह जगह भली नहीं। लोग सज्जन नहीं। लोग बड़े दुष्ट हैं और लोग सताने में रस लेते हैं। लोग तुझे परेशान करेंगे। इन पीत-वस्त्रों में उन्होंने भिक्षु कभी देखा नहीं। वे बड़े जंगली हैं। तू वहाँ मत जा।

पर पूर्ण ने कहा इसीलिए तो उनको मेरी जरूरत है। किसीको तो जाना ही होगा। कब तक वे जंगली रहें? कब तक उनको पशुओं की तरह रहने दिया जाए? मुझे जाना होगा। आज्ञा दें।

बुद्ध ने कहा जा; मगर मेरे दो-तीन सवालों के जवाब दे दे। पहला : अगर वे तुझे गालियाँ दें, अपमान करें, तो तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा, यह भी आप मुझसे पूछते हैं, क्या होगा? आप भलीभाँति जानते हैं कि मैं प्रसन्न होऊँगा। क्योंकि मेरे मन में यह भाव उठेगा, कितने भले लोग हैं, सिर्फ गालियाँ देते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे।

बुद्ध ने कहा ठीक। मगर अगर मारें, मारने ही लगें, तो तेरे मन में क्या होगा? पूर्ण ने कहा आप पूछते है? आप भलीभाँति जानते हैं कि पूर्ण प्रसन्न होगा, कि धन्यभाग कि मारते हैं, मार ही नहीं डालते। मार भी डाल सकते थे।

बुद्ध ने कहा आखिरी सवाल, पूर्ण। अगर मार ही डालें, तो मरते वक्त तेरे मन में क्या होगा? पूर्ण ने कहा आप, और पूछते हैं? आपको भलीभाँति मालूम है कि जब मै मर रहा होऊँगा तो मेरे मन में होगा, धन्यभाग, उस जीवन से छुटकारा दिला दिया जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।

बुद्ध ने कहा, अब तू जा। अब तुझे जहाँ जाना है तू जा। अब तुझे कोई गाली नही दे सकता। अब तुझे कोई मार नहीं सकता। अब तुझे कोई मार डाल नहीं सकता। ऐसा नही कि वे तुझे गाली न देंगे; गाली तो वे देंगे, लेकिन तुझे अब कोई गाली नहीं दे सकता। ऐसा नहीं कि वे तुझे मारेंगे नहीं; मारेंगे, लेकिन तुझे अब कोई मार नहीं सकता। और कौन जाने, कोई तुझे मार भी डाले; लेकिन अब तू अमृत है। अब तेरी मृत्यु संभव नहीं।

सारा खेल मन का है, कैसे हम देखते हैं!

'उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, मुझे जीत लिया, मेरा लूट लिया — जो ऐसी गाँठें मन में नहीं बनाए रखते है, उनका वैर शांत हो जाता है।'

और वैर नर्क है। कहीं और कोई नर्क नहीं; शत्रुता में जीना नर्क है। तुम जितनी शत्रुता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना तुम्हारा नर्क बड़ा हो जाता है। तुम जितनी मित्रता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना स्वर्ग खड़ा हो जाता है। स्वर्ग मित्रों के बीच जीने का नाम है। नर्क शत्रुओं के बीच जीने का नाम है। और सब तुम पे निर्भर है। नर्क कोई भौगोलिक जगह नहीं है, और न कोई स्वर्ग कोई भौगोलिक जगह है। नक्शों में मत पड़ना। मनोदशाएँ हैं। 'स्टेट्स ऑफ माइंड।'

जब तुम सारे जगत को मित्र की तरह देखते हो, ऐसा नहीं कि सारा जगत मित्र हो जाएगा — इस भूल में मत पड़ना — लेकिन तुम जब सारे जगत को मित्र की भाँति देखते हो, तुम्हारे लिए जगत मित्र हो गया, तुम्हारे शत्रु समाप्त हो गये। और अगर कोई तुम्हारी शत्रुता करेगा, तो वह शत्रुता उसके मन में होगी, वह उसकी पीड़ा पाएगा। लेकिन तुम्हें कोई पीड़ा नहीं दे सकता।

'इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता। अवैर से ही वैर शात होता है। यही सनातन धर्म है, यही नियम है।'

'नहि वेरेन वेरामि सम्मन्तीध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो ॥'

यही सनातन धर्म है। शत्रुता से शत्रुता समाप्त नहीं होती। क्रोध से क्रोध समाप्त नहीं होता। वैर से वैर नहीं मिटता। और जितना वैर बढ़ता जाता है, उतना तुम अपने चारों तरफ अपने हाथों नर्क निर्मित करते चले जाते हो।

यह जगत तुम्हारी कृति है। तुम चारों तरफ अपना परिवेश बनाते हो। यह बात तुम्हें दिखायी पड़ जाए, यह इशारा तुम्हें समझ आ जाए, तो तुम्हें फिर कोई दुख नहीं दे सकता। तुम्हारा स्वभाव तब सुख हो जाएगा।

फैलाओ मैत्री!

महावीर ने कहा है: 'मित्ति मे सव्व भूए सू, वैरं न मज्झ केवई।' मेरी मित्रता सबसे है, सारे विश्व से है। सब भूतों से — सव्व भूए सू। और वैर मेरा किसीसे भी नहीं।

महावीर के कानों में भी खीले ठोंकनेवाले मिल गये, पत्थर मारनेवाले मिल गये। महावीर को गाँव-गाँव से खदेड़कर बाहर निकालनेवाले मिल गये। लेकिन महावीर यही कहते रहे, वैरं मज्झ न केवई — मेरी किसीसे कोई शत्रुता नहीं। उनकी होगी, उनका हिसाब वे जानें।

अभी कुछ दिन पहले मैं एक कहानी कह रहा था कि दो मनोवैज्ञानिक, एक ही मकान में उनका दफ्तर था, रोज सुबह आते, लिफ्ट में सवार होते, अक्सर साथ-साथ सवार होते। वह जो लिफ्ट को चलानेवाला सेवक था, वह बड़ा हैरान था। जब भी वे दोनों साथ-साथ जाते तो पहले एक मनोवैज्ञानिक उतरता, दसवीं-बारहवीं मंजिल पे कहीं। जब भी वह उतरता, दरवाजे से लौटके दूसरे मनोवैज्ञानिक के ऊपर थूकता, चला जाता अपनी तरफ; और दूसरा चुपचाप अपना रूमाल निकालके अपना मुंह पोंछ लेता, टाई पोंछ लेता, या कोट पे पड़ गया होता थूक, पोंछ लेता, रख लेता और अपना बस तैयारी करने लगता, क्योंकि पंद्रहवें या बीसवें मंजिल पे उसको उतरना था। आखिर उस लिफ्टमैन को और सम्हालना मुश्किल हो गया। एक दिन उसने कहा कि यह बात बहुत हुई जा रही है, यह मामला क्या है? यह आदमी क्यों आपके ऊपर थूकता है?

तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा यह उसकी समस्या है, उसीसे पूछो। मेरा इसमें कोई हाथ ही नहीं है। यह समस्या उसकी है, उसीसे पूछो। बेचारा! जरूर कोई न कोई पागलपन उसे सवार है। मेरा तो कुछ भी नहीं बिगड़ता। पोंछ लेता हूँ। उसकी सोचो! असली तकलीफ वही पा रहा है। थूकने के पहले तकलीफ पाता होगा, थूकते वक्त तकलीफ पाता है, पीछे तकलीफ पाता होगा। क्योंकि समस्या उसकी है, वही कुछ कर रहा है। हम तो केवल दर्शक हैं।

(अगर जीवन को ऐसे देखने की कला आ जाए तो फिर तुम्हें कोई दुख नहीं दे सकता। दूसरा देना भी चाहे तो यह उसकी समस्या है। और तुम इस भ्रांति में कभी मत पड़ना कि वैर से तुम दूसरों के वैर को मिटा दोगे। कभी कोई नहीं मिटा पाया। प्रेम से ही मिटता है वैर। करुणा से ही मिटता है क्रोध।)

'इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होते, अवैर से ही होते हैं। यही सनातन नियम है।'

यह बुद्ध के धर्म की आधारशिला है।

(और थोड़ा सोचो भी कि कौन तुम्हें सुख दे पाता है, कौन तुम्हें दुख दे पाता है! सब तुम्हारे मन का ही हिसाब है। अभी घड़ी भर पहले जो बात सुख देती थी, घड़ी भर बाद दुख देने लगती है। अभी जो बात दुख दे रही है, घड़ी भर बाद सुख दे सकती है। तुम्हारी व्याख्या! तुम कैसे उस बात को पकड़ते हो! क्या उस बात को रंग देते हो! क्या रूप देते हो ...! और अगर तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए कि दूसरा सुख नहीं दे सकता, तो दुख कैसे देगा? किसने तुम्हें कभी सुख दिया, याद है कुछ? किसने तुम्हें कभी कोई आनंद दिया, याद है कुछ? और जब किसीने कोई सुख नहीं दिया, तो दुख कोई क्या देगा?)

मैं एक गीत कल पढ़ता था। बात मूल्यवान लगी —

डरूँ मैं किसलिए गुस्से से प्यार में क्या था
मैं अब खिजा जो रोऊँ बहार में क्या था

'डरूँ मैं किसलिए गुस्से से, प्यार में क्या था ?' जब दूसरे के प्यार से कुछ न मिला, तब उसके गुस्से से क्या परेशान होना है ! जब प्यार ही कुछ न दे सका, तो गुस्सा क्या छीन लेगा ? 'मै अब खिजा जो रोऊँ, बहार में क्या था ?' और अब पतझड़ आ गयी, सब वीरान हुआ जाता है — इसको रोऊँ ? लेकिन बहार में क्या था ? जब बहार थी तब भी जब कुछ पास न था; जब बहार में भी कोई सुख न मिला, तो अब पतझार में दुख का क्या प्रयोजन है ?

लेकिन आदमी बड़ा अजीब है ! जिनसे तुम्हें सुख नहीं मिला, उनसे भी तुम दुख ले लेते हो। जिनके जीते-जी तुम्हें कभी कोई शांति नहीं मिली, उनके मरने पे तुम रोते हो।

मैं एक युगल को जानता हूँ। जब तक पति जिंदा रहा, पति और पत्नी निरंतर कलह करते रहे। कभी-कभी मेरे पास आते थे। लेकिन सुलझाव कोई आसान न था। सब उलझाव सुलझ जाएँ, पति-पत्नी के बड़े मुश्किल से सुलझते हैं, क्योंकि सुलझाना ही नहीं चाहते। शायद वही उनकी जिंदगी है, वही व्यस्तता है, वही कुल भराव है। वह भी चला जाए, तो फिर बड़ा खाली हो जाता है। कई बार तलाक देने की बात भी उठी, लेकिन उसवे भी राजी न हो पाते ४ थे/फिर पति शराब पीने लगा। और शराब पीते-पीते मरा। जवान ही था, अभी कोई छत्तीस साल उम्र थी, ज्यादा नहीं थी। जब मर गया तो पत्नी मेरे पास आयी, छाती पीट-पीटके रोने लगी।

मैंने उससे कहा, अब तू रोना बद कर। क्योंकि जिस आदमी के कारण तू कभी हँसी नहीं, उसके लिए रोना क्या ? और मैं जानता हूँ कि हजार बार तेरे मन में यह सवाल उठता रहा होगा कि यह आदमी मर ही जाए तो अच्छा ! बोल, झूठ कहता हूँ या सच ? वह थोडी चौंकी। उसने कहा, आपको कैसे पता चला ? पता चलने की क्या बात है ? कितनी बार तूने नहीं सोचा है कि यह आदमी मर ही जाए तो झंझट मिटे। अब मर गया। आकाक्षा पूरी हो गयी। अब क्यों रोती है ? जिससे तुझे सुख नहीं मिला, उससे दुखी होने का क्या प्रयोजन है ?

*लेकिन यही बड़े मजे की बात है। सुख लेने में तो तुम बड़े कंजूस हो, दुख लेने में तुम बड़े कुशल हो। सुख तो तुम बामुश्किल स्वीकार करते हो। दुख, तुम द्वार सजाकर खड़े हो सदा। स्वागतम्। हाथ फैलाए खड़े हो सदा। तुम दुखी होना चाहते हो ? दुखवादी हो ? अन्यथा कोई कारण नहीं तुम्हारे दुखी होने का।

जीवन को जो जानते हैं, वे पहचान लेते हैं कि न तो दूसरे से सुख मिलता है, न दुख मिलता है। न तो किसीके जीवन से तुम्हें जीवन मिलता है, न किसीकी मौत से तुम्हें मौत मिलती है।

डरूं मैं किसलिए गुस्से से प्यार में क्या था
मैं अब खिजा जो रोऊँ बहार में क्या था

और जब तुम्हें दोनों बातें साफ दिखायी पड़ जाती हैं, तब जैसे एक उद्घाटन हो जाता है भीतर, एक बिजली कौंध जाती है कि यह मैं ही हूँ, अपनी ही शक्ल देखता हूँ, दूसरे तो केवल दर्पण है। अपने ही प्रतिबिंब, अपनी ही प्रतिध्वनि, अपनी ही परछाईं पकड़ता हूँ, दूसरे तो केवल दर्पण हैं; घाटियाँ है, जिनमें अपनी ही आवाज गूंजके लौट आती है।

इसे बुद्ध 'एस धम्मो सनंतनो' कहते हैं — यही धर्म का सनातन सूत्र है। न परमात्मा, न मोक्ष, न वेद, न आत्मा — कोई भी धर्म के मूल आधार नहीं हैं। बुद्ध कहते हैं, 'एस धम्मो सनंतनो' (यह छोटा-सा सूत्र कि तुम्हारे दुख के कारण तुम हो, तुम्हारे सुख के कारण तुम हो; और दूसरे को दुख देने से तुम कभी सुख न पा सकोगे) दूसरे को सताने से कभी तुम उत्सव न मना सकोगे।

वैर से वैर शात नही होता, अवैर से शांत हो जाता है। अवैर बरस जाए, वैर की अग्नि शांत हो जाती है। फिर हो या न हो शांत, यह कोई सवाल नही है; तुम्हारे लिए समाप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति को यह सूत्र समझ में आ गया, उसके लिए नर्क नहीं है, वह यही, इसी क्षण स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाता है। उसका स्वर्ग कल नही है; उसका स्वर्ग अभी है।

'हम इस संसार में नही रहेंगे, सामान्यजन यह नहीं जानते। और जो इसे जानते है, उनके सारे कलह शात हो जाते है।'

बड़ी थोड़ी देर का बसेरा है, रैन बसेरा! सुबह हुई और चल पड़ेंगे यात्री। यह कारवाँ यहीं ठहरा न रहेगा। ये तंबू है, जिनको तुमने घर समझा है। ये अभी-अभी लगाए है, अभी-अभी उखाड़ने का वक्त आ जाएगा। और कितने कारवाँ तुमसे पहले निकल चुके हैं! उनके पदचिह्न भी नही रह गये। खो गये हैं बिलकुल। दूर उनके पैरों की, घुड़सवारों की उड़ती धूल भी दिखायी नहीं पड़ती। सिकंदर की फौजों की उड़ती धूल भी अब दिखायी नही पड़ती।

यहाँ क्षण भर हम हैं। हम जैसे बहुत लोग पहले थे। वैज्ञानिक कहते हैं कि एक-एक आदमी के नीचे कम से कम दस-दस आदमियों की लाशें गड़ी हैं। तुम जहाँ बैठे हो वहाँ दस आदमी मर चुके हैं। हर आदमी मरघट पे बैठा है, लाशों के ढेर पे बैठा है। कितनी देर तुम जिंदा रहोगे? थोड़ी देर, जल्दी तुम भी ग्यारहवीं

लाश बन जाओगे और बारहवाँ आदमी तुम्हारे ऊपर बैठा होगा। कारवाँ की उड़ती धूल भी दिखायी नहीं पड़ती, कारवाँ खुद ही धूल हो गये।

इस संसार में सदा नहीं रहेंगे ऐसा जिसको समझ में आ गया, उसीको इस संसार में रहने का ढंग आ गया। जिसको समझ में आ गया कि ओस की बूंद है, अब गिरी, तब गिरी; भोर की तरैया है, अब डूबी, तब डूबी। क्षण भर का खेल है। फिर क्या चिंता है? फिर किसको दुख देना है, किसको पीड़ा देनी है, किससे शत्रुता लेनी है? शत्रुता हम ले पाते हैं इसी आधार पर कि जैसे सदा रहना है।

तुम थोड़ा सोचो, अगर इसी वक्त खबर आ जाए कि आज साँझ तुम्हारी मौत हो जाएगी — पक्की खबर आ जाए — क्या तुम नहीं अपने दुश्मनों से क्षमा माँग आओगे? क्या नहीं तुम उनसे जिनको मिटाने को तत्पर थे, क्षमायाचना कर लोगे? क्या वैर समाप्त नहीं हो जाएगा? जाते आदमी का क्या, कौन-सा वैर! किसकी शत्रुता! कैसी शत्रुता! जब विदा होने का क्षण आ जाएगा, तुम सभी से क्षमा माँग लोगे। लेकिन पक्का नहीं कि वह क्षण कब आएगा। अभी आ सकता है। लेकिन एक बात पक्की है कि कभी न कभी आएगा। ज्यादा देर नहीं है। जो कली खिल गयी, अब फूल के कुम्हलाने में ज्यादा समय नहीं है। सुबह हो गयी, सूरज चढ़ आया — साँझ को कितनी देर है? प्रतिपल साँझ हुई जाती है। सुबह के साथ ही साँझ हो गयी।

जिसको ऐसा दिखायी पड जाता है, वह फिर इस जगत में वैर के बीज नहीं बोता। फिर वह कल्याणमित्र हो जाता है। फिर वह मैत्री बोता है। वह अपने चारों तरफ स्वर्ग की फसल काटता है।

'हम इस संसार में नहीं रहेंगे, सामान्यजन यह नहीं जानते हैं।' ऐसे जीते हैं जैसे सदा यहाँ रहना है। उसीसे सारी भूल हो जाती है। 'और जो इसे जानते है, उनके सारे कलह शांत हो जाते हैं।'

क्षणभंगुर है जीवन। आँख झपी, क्षण भर का सपना है जीवन। इस पर बहुत भरोसा मत कर लेना। इस पे तुमने जितना ज्यादा भरोसा किया, उतने ही भटक जाओगे। इसमें सो मत जाना। इसमें खो मत जाना। जागे रहना।

नींद स्वाभाविक लगती है, क्योंकि नींद सनातन की आदत हो गयी है। जागना कठिन मालूम पडता है, क्योंकि कभी जागे नहीं। लेकिन एक बार तुम जाग जाओगे, तो यह जीवन तो क्षणभंगुर हो जाएगा, महाजीवन के द्वार खुलेंगे। एक बार तुम जाग के देख लोगे तो तुम हँसोगे — क्या सपने देखते थे, जबकि सत्य के खजाने उपलब्ध थे! लेकिन बुद्ध उन खजानों के संबंध में कुछ भी नहीं

कहते। वे कहते हैं, डर है। खजाने की बात भी तुम सुन लेते हो सपने में, तो तुम उसका भी सपना बना लेते हो, और नींद तुम अपनी गहरी कर लेते हो। इसलिए बुद्ध कहते हैं, वे उस संबंध में कुछ भी न कहेंगे। इतना ही कहेंगे कि तुम जहाँ हो, गलत हो। इसलिए बुद्ध निषेधात्मक हैं, 'निगेटिव' हैं : उनका धर्म नकार का है। वे ब्रह्म की बात नही करते, क्योंकि वह तो उसकी बात हो जाएगी जो खुली आँख से दिखायी पड़ता है। वे मोक्ष की बात नहीं करते, क्योंकि तुमसे क्या मोक्ष की बात करनी ! तुम इतनी गहरी नीद में पड़े हो; तुमने संसार की ऐसी शराब पी ली है कि तुमसे क्या मोक्ष की बात करनी ! शराब के नशे में तुम मोक्ष को सुनोगे भी, तो भी कुछ और समझोगे। अनर्थ हो जाएगा। वे कहते हैं, इतना ही समझो कि तुम नाली में पड़े हो, बेहोश पड़े हो, जागो !

बुद्ध 'मेटाफिजिक्स', दर्शनशास्त्र की बात नही करते। बुद्ध चिकित्सक हैं। वे सिर्फ तुम्हारी बीमारी की बात करते हैं। और निदान उनका दुरुस्त है, शत-प्रतिशत सही है। इस निदान पर सोचना।

बुद्ध का धर्म भरोसे का नहीं है; गहन सोच-विचार, चिंतन-मनन, और उसी चिंतन-मनन और सोच-विचार से उठे हुए ध्यान का धर्म है। परमात्मा, आत्मा, मोक्ष — ये शब्द बुद्ध के लिए पराये है। बुद्ध तो तुम्हारे मन का खंड-खंड करेंगे। क्योंकि तुम्हारा मन ही एकमात्र सवाल है। अगर तुम उस मन से जाग गये, तो वह शेष सब तुम पा लोगे जो उपनिषदो ने कहा है, वेदों ने कहा है, कुरान ने कहा है, बाइबिल ने कहा है। लेकिन बुद्ध उसको कहते नही, इस बात को स्मरण रखना। जो पाना है, वह पाकर ही जाना जाएगा। उसकी चर्चा व्यर्थ है। और उसकी चर्चा खतरनाक है।

झेन फकीर है जापान मे, बुद्ध को प्रेम करते है, सुबह-साँझ पूजा करते हैं; लेकिन वे कहते हैं, अगर बुद्ध का भी बहुत ज्यादा विचार मन में आने लगे और बुद्ध के प्रति भी बहुत ज्यादा लगाव बनने लगे, तो सावधान ! कहीं नींद में नया सपना तो नहीं आ रहा है ! झेन फकीर कहते है, अगर बुद्ध रास्ते पे मिल जाएँ, उठाके तलवार काट देना।

बोकोजू अपने गुरु के पास था। उसके गुरु ने कहा कि देख, अब वह खतरा करीब आ रहा है जब बुद्ध तुझे रास्ते पे मिलेंगे। डरना मत। लगाव भी मत करना। राग मत लगाना। उठाके तलवार काट देना; दो टुकड़े, खंड-खंड कर देना बुद्ध के। चाहे तोड़के नमस्कार कर लेना, लेकिन पहले तोड़ देना।

बोकोजू ने कहा, लेकिन तलवार ? कहाँ से तलवार लाऊँगा वहाँ ? गुरु ने कहा घबड़ा मत, जहाँ से बुद्ध को लाया — कल्पना का सब जाल है — वहीं से

तलवार भी ले आना। उठाके एक तलवार काट ही देना। कहीं ऐसा न हो कि बुद्ध का सपना आने लगे।

बुद्ध ने सपने को कोई सहारा नहीं दिया।

बुद्ध से बड़ा मूर्तिभंजक जगत में नहीं हुआ है। और बड़े विडंबना की बात है, बुद्ध से ज्यादा मूर्तियाँ किसीकी नहीं हैं। और उससे बड़ा मूर्तिभंजक कोई नहीं है!

उर्दू में शब्द है बुद्ध के लिए बुत। बुत जो है, जिसका मतलब अब मूर्ति होता है, बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इतनी मूर्तियाँ बनी बुद्ध की कि बुद्ध शब्द बुत होके मूर्ति का ही पर्यायवाची हो गया। और इतना बड़ा मूर्तिभंजक कोई भी नहीं!

बुद्ध की तलवार तुम्हें काटेगी, तुम्हें खंड-खंड करेगी। तुम्हारी श्रद्धाओं, विश्वासों को, तुम्हारी मान्यताओं को तोड़ेगी, ताकि तुम ही बचो तुम्हारी शुद्धता में, तुम्हारी परिपूर्ण निर्दोषता में, तुम्हारे क्वाँरेपन मे। वही बच जाए जो काटा नहीं जा सकता; 'नैनं छिंदति शस्त्राणि'— जिसे छेदा नही जा सकता, जिसे जलाया नही जा सकता।

बुद्ध छेदेंगे और जलाएँगे, ताकि जो छेदा जा सकता है वह छिद जाए, जो जलाया जा सकता है वह जल जाए और फिर तुम बच जाओ तुम्हारी परिशुद्ध अवस्था में। वही वेदों का ब्रह्म है; महावीर का कैवल्य है; कपिल और कणाद का मोक्ष है; बुद्ध का वही निर्वाण है।

निर्वाण शब्द नकारात्मक है। निर्वाण का अर्थ होता है दीये को फूंककर बुझा देना। एक दीया जल रहा है, अँधेरी रात है; तुमने फूंक मारी और दीया बुझ गया; फिर तुम यह नही पूछते कि यह ज्योति कहाँ गयी? बुद्ध कहते हैं, ऐसा ही निर्वाण है। मैं चाहूँगा कि तुम फूंक मारो और अपने को बुझा दो। और फिर मत पूछो कि कहाँ गये। खो गयी अनंत में, हो गयी एक 'एक' के साथ! मगर पूछो मत कहाँ गयी! निराकार के साथ एक हो गयी! मगर पूछो मत! कहने में बात बिगड़ जाएगी। चुप्पी और चुप्पी में समझ लो।

ऐसे, बड़े गहन बुद्ध के विश्लेषण और निषेध में हम उतरेंगे। अगर तुम हिम्मतपूर्वक बुद्ध के विश्लेषण में उतर जाओ, तो बुद्ध तुम्हे परम स्वास्थ्य की दशा में ला सकते हैं।

आज इतना ही।

अस्तित्व की विरलतम घटना : सद्‌गुरु

२२ नवंबर १९७५

पहला प्रश्न : बुद्ध कहते हैं, वासना दुष्पूर है। उपनिषद कहते हैं, जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। आप कहते हैं, न भोगो न त्यागो वरन् जागो। कृपया इन तीनों का अंतर्संबंध स्पष्ट करें।

अन्तर्संबंध बिलकुल स्पष्ट है। बुद्ध कहते हैं, वासना दुष्पूर है। बुद्ध वासना का स्वभाव कह रहे हैं। कोई कितना ही भरना चाहे, भर न पाएगा। इसलिए नहीं कि भरने की सामर्थ्य कम थी। भरने की सामर्थ्य कितनी ही हो, तो भी न भर पाएगा। ऐसे ही जैसे पेंदी टूटे हुए बर्तन में कोई पानी भरता हो। इससे कोई सामर्थ्य का सवाल नहीं है, पेंदी ही नहीं है तो बर्तन दुष्पूर है। न सामर्थ्य का सवाल है, न सुविधा का, न संपन्नता का। गरीब की इच्छाएँ भी अधूरी रह जाती हैं, अमीर की भी। दरिद्र की इच्छाएँ भी अधूरी रह जाती हैं, सम्राटों की भी। सिकंदर भी उतना ही खाली हाथ मरता है जितना राह का भिखारी। दोनों के हाथ खाली होते हैं। क्योंकि, वासना दुष्पूर है। बुद्ध वासना का स्वभाव कह रहे हैं।

उपनिषद् कहते हैं, जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। अब जो भोगेंगे, वही वासना का स्वभाव समझ पाएँगे। दूसरे तो समझेंगे भी कैसे? वासना से दूर-दूर खड़े रहे, डरे रहे, भयभीत रहे, वासना में कभी उतरे ही नहीं, कभी वासना के उस पात्र को गौर से देखा नहीं, हाथ में न लिया जिसमें पेंदी नहीं है, तो वासना का स्वभाव

कैसे समझोगे? वासना के स्वभाव के लिए वासना में उतरने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। जो उतरेगा, वही जानेगा। जो दूर खड़ा रहेगा, वंचित रह जाएगा। जो दूर खड़ा रहेगा, ललचाएगा। उसे पात्र तो दिखायी पड़ेगा, वो जो पेंदी नहीं है वह दिखायी न पड़ेगी। और दूसरे के पात्रों में उसे यह भ्रांति रहेगी कि कौन जाने भर ही गये हों।

सिकंदर को बाहर से तुम देखोगे तो क्या तुम सोच पाओगे कि इसका पात्र भी खाली है। बड़े महल हैं। बड़ा साम्राज्य है। बड़ा धन-वैभव है। बड़ी शक्ति-संपदा है। कैसे तुम समझोगे? पात्र पर हीरे-जवाहरात जड़े हैं; पर पेंदी नहीं है। और हीरे-जवाहरातों से थोड़े ही पानी रुकेगा पात्र में। गरीब का पात्र टूटा-फूटा है, दो कौड़ी का है, एल्यूमिनियम का है। सिकंदर का पात्र स्वर्ण का है, हीरे-जवाहरात जड़े हैं, पर दोनों का स्वभाव एक-सा है। दोनों में पेंदी नहीं है। दूर से तो पात्र दिखायी पड़ेगा। पास से ही देखना पड़ेगा। निरीक्षण भर-आँख करना पड़ेगा। उतरना पड़ेगा। जीना पड़ेगा। इसलिए उपनिषद् कहते हैं : 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' — जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा।

बुद्ध कहते हैं वासना का स्वभाव। उपनिषद् कहते हैं वासना को भोगने का परिणाम — जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। मैं कहता हूँ, न भोगो न त्यागो, वरन् जागो। क्योंकि भोगा तो बहुत ने, लेकिन उपनिषद् का कोई इक्का-दुक्का ऋषि जान पाया — तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:। भोगा बहुत ने, लेकिन सोए-सोए भोगा। सोए-सोए भोगोगे तो भी नहीं जान पाओगे। आँख बंद हों, तो पात्र को भरते रहोगे पेंदी का पता ही न चलेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में बड़ी प्राचीन घटना है। एक युवक उसके पास आया और उस युवक ने कहा, बड़ी दूर से आया हूँ, सुनकर खबर। सुगंध की चर्चा सुनकर आया हूँ। बहुत गुरुओं के पास रहा, कुछ पा न सका। हताश होने के करीब था कि किसीने तुम्हारी खबर दी है। और पक्का भरोसा लेकर आया हूँ कि अब हाथ खाली न जाएँगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा उस संबंध में पीछे बात कर लेंगे, श्रद्धा है? क्योंकि श्रद्धा हो तब ही तुम सत्य को सम्हाल सकोगे। मेरे पास सत्य है, पर तुम्हारे पास श्रद्धा है? उस खोजी ने कहा, परिपूर्ण श्रद्धा लेकर आया हूँ। जो कहेंगे स्वीकार करूँगा। नसरुद्दीन ने कहा, अभी तो मैं कुएँ पर पानी भरने जाता हूँ, मेरे पीछे आओ। और एक ही बात की श्रद्धा रखना कि मैं जो भी करूँ शांति से निरीक्षण करना, प्रश्न मत उठाना। इतना होश रखना। उस युवा ने कहा, यह भी कोई परीक्षा हुई! गया पीछे-पीछे। यह कौन सी कठिनाई थी इसमें।

नसरुद्दीन ने एक पात्र रखा घाट पर कुएँ के। युवक थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि

उसमें पेंदी न थी । नसरुद्दीन ने दूसरा पात्र कुएँ में डाला, पानी भरा और पेंदीशून्य पात्र में उँडेला । युवक ने कहा यह आदमी पागल है । सारा पानी बह गया और नसरुद्दीन ने तो देखा ही नहीं । उसने तो फिर कुएँ में पात्र डाल दिया । फिर भरा । दो बार, तीन बार, चौथी बार युवक भूल गया कि यहाँ चुप रहना है । उसने कहा, रुकिए, यह तो ताजिंदगी न भरेगा । यह तो हम मर जाएँगे भर-भर के तो भी न भरेगा, क्योंकि इसमें पेंदी नहीं है । नसरुद्दीन ने कहा, बस खत्म हो गया संबंध । कहा था श्रद्धा रखना, चुप रहना । और पेंदी से हमें क्या लेना-देना ? मुझे पात्र में पानी भरना है, पेंदी से क्या प्रयोजन ? फिर मुझे जब पात्र में पानी भरना है तो मैं उसके ऊपर ध्यान रख रहा हूँ, कि जब सतह पर पानी आ जाएगा ...... । पेंदी से क्या प्रयोजन ? उस युवक ने कहा, या तो आप पागल हो, और या मैंने अपनी बुद्धि गँवा दी ।

नसरुद्दीन ने कहा, जाओ । दुबारा इस तरफ मत आना । क्योंकि असफल हो गये, चुप न रह सके । अभी तो और बड़े इम्तहान आने को थे । वो युवक लौट तो गया लेकिन बड़ा परेशान हुआ । रात भर सो न सका । क्योंकि उसने सोचा कि इतनी सी बात तो किसी मूढ़ को भी दिखायी पड़ जाएगी । जरूर इस आदमी का कोई दूसरा ही प्रयोजन होगा, कोई परीक्षा थी । मुझे चुप खड़े रहना चाहिए था । मैं चूक गया । ये गुरु मिला तो अपने हाथ से चूक गया । मेरा क्या बिगड़ता था । अगर पानी न भरता था, तो उसका पात्र था । अगर श्रम व्यर्थ जाता था, तो उसका जाता था । मैं तो चुपचाप खड़ा रहता । आखिर कितनी देर यह चलता ? मैंने जल्दी की । मैं चूक गया ।

वो दूसरे दिन वापिस आया । बहुत क्षमा माँगने लगा । नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं; जितनी समझदारी तूने मुझे बतायी अगर इतनी ही समझदारी तू अपनी जिंदगी के प्रति बताए तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं । जिस पात्र को तू भर रहा है उसमें पेंदी है ? उसने कहा, कौन सा पात्र ? नसरुद्दीन ने कहा फिर तू चूक गया, उतना ही इशारा था । तुझे दिखायी पड़ गया कि पात्र में पेंदी न हो तो भरा नहीं जा सकता । तूने इतने दिन से वासनाएँ भरी हैं, कामनाएँ भरी हैं — भरी ? अब तक नहीं भर पायीं । कहीं ऐसा तो नहीं कि उनमें पेंदी नहीं ।

लेकिन फुरसत कहाँ है हमें । कौन चिंता करता है पेंदी की ? जब भरना है तो हम भरने का विचार करते हैं । नहीं भर पाते तो सोचते हैं दूसरे बाधा डाल रहे हैं । नहीं भर पाते तो सोचते हैं श्रम जितना करना था उतना नहीं किया । भाग्य ने साथ न दिया । हजार कारण खोज लेते हैं । पर एक बात नहीं देखते, कहीं ऐसा तो नहीं कि वासना दुष्पूर है D

तो मैं कहता हूँ, न भोगो, न त्यागो, जागो। क्योंकि अगर भोगने में डूब गये, भूल गये, तो कौन जानेगा, कौन पहचानेगा वासना के स्वभाव को कि वासना दुष्पूर है? तुम भोगने में खो सकते हो बड़ी आसानी से। और फिर घबड़ा के भाग भी सकते हो। बहुत दिन भरा और न भर पाया — फिर तुम भाग भी सकते हो त्याग की तरफ। लेकिन मूर्छित भोग, मूर्छित त्याग समानधर्मा हैं। उनमें कुछ भी भेद नहीं। मंदिर में बैठो कि मकान में, दुकान में बैठो कि हिमालय पर, कुछ अंतर नहीं है। अगर तुम मूर्छित हो, तो तुम वही हो। अंतर तो केवल एक है, क्रांति तो केवल एक है — मूर्छा से जागरण की।

इसलिए बुद्ध कहते हैं वासना का स्वभाव। उपनिषद् कहते हैं वासना का अनुभव। और मैं तुम्हें दे रहा हूँ सूत्र वासना को अनुभव करने का। ये तीनों जुड़े हैं। इनमें से तुम एक भी चूके तो भूल हो जाएगी। अगर तुमने इन तीन में से एक भी सूत्र को विस्मरण किया तो भटक जाओगे। फिर अगर विस्मरण ही करना हो, तीन सूत्र अगर ज्यादा मालूम पड़ते हो, तो मेरे अंतिम सूत्र को ही याद रखना। क्योंकि अगर अतिम सूत्र याद रहा तो बाकी दो अपने से याद रह जाएँगे।

वासना दुष्पूर है, ऐसा बुद्ध कहते हैं। ऐसा तुमने अभी जाना नहीं। भोग अतत. त्याग मे ले जाता है, ऐसा उपनिषद् कहते हैं। तुम्हें अभी ले नही गया। वासना में तुम इतने दिन जिए हो, बुद्ध से थोड़े ज्यादा ही जिए हो — बुद्ध को तो पच्चीस सौ साल हो गये छुटकारा पाए — तुम पच्चीस सौ साल ज्यादा अनुभवी हो, फिर भी तुम्हें वासना दुष्पूर न दिखी। उपनिषद् को तो लिखे पाँच हजार साल हो गये। जिन्होने भोगा उन्होने त्याग दिया। और तुमने इतना भोगा और अभी तक न त्यागा। जरूर कोई चूक हो रही है। जागकर भोगो। भागने में मत पड़ना; अन्यथा मैं देखता हूँ, तुम्हारे त्यागी, तुम्हारे महात्मा तुमसे जरा भी भिन्न नहीं। तुम अगर पैर के बल खड़े हो, वे सिर के बल खड़े हैं। मगर बिलकुल तुम जैसे हैं। उल्टे खड़े होने से कहीं कुछ होता है!

जिंदगी एक परीक्षण है। और जिंदगी एक निरीक्षण है। और जिंदगी प्रतिपल एक जागरण है। परीक्षा घट रही है प्रतिपल। न जागोगे, चूकते चले जाओगे। और न जागने की आदत बन जाए, तो अनंत काल तक चूकते चले जाओगे। और बहुत से रास्ते में स्थान मिलेंगे, जहाँ लगेगा कि मिल गयी मंजिल, और बहुत बार विश्राम करने का मन हो जाएगा, लेकिन जब तक परमात्मा ही न मिल जाए, या जिसको बुद्ध निर्वाण कहते हैं वही न मिल जाए, तब तक रुकना मत। ठहर भले जाना, लेकिन ध्यान रखना कि कहीं घर मत बना लेना।

ताब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैकड़ों

हर कदम पर एक मंजिल थी मगर मंजिल न थी

('ताब मंजिल'। उस सत्य की यात्रा के मार्ग पर 'ताब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैकड़ों' — उस असली मंजिल के मार्ग पर बहुत सी मंजिलें मिलेंगी रास्ते में; कभी धन की, कभी पद की, कभी प्रतिष्ठा की, यश की; अहंकार बहुत से खेल रचेगा।

'हर कदम पर एक मंजिल थी मगर मंजिल न थी' — और हर कदम पर मंजिल मिलेगी। लेकिन मंजिल इतनी सस्ती नहीं है। अगर बहुत होश रखा तो ही तुम इन मंजिलों से बचकर मंजिल तक पहुँच पाओगे।) कठिन यात्रा है, दूभर मार्ग है। बड़ी चढ़ाई है। उत्तुग-शिखरों पर जाना है। घाटियों में रहने की आदत है। मूर्छित होना जीवन का स्वभाव हो गया है। होश कितना ही साधो, सधता नहीं। बेहोशी इतनी प्राचीन हो गयी है कि तुम होश का भी सधना देखने लगते हो बेहोशी मे, जैसे कोई रात नींद में सपना देखे कि जाग गया हूँ। सपना देखता है, कि जाग गया। मगर यह जानना भी सपने में ही देखता है। ऐसे ही बहुत बार तुम्हें लगेगा होश आ गया। लेकिन होश रखना —

ताब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैकड़ों

हर कदम पर एक मंजिल थी मगर मंजिल न थी

कैसे पहचानोगे कि मंजिल आ गयी? कैसे पहचानोगे कि ये मंजिल मंजिल नही है?

(एक कसौटी खयाल रखना। अगर ऐसा लगे कि जो सामने अनुभव में आ रहा है वो तुमसे अलग है, तो समझना कि अभी असली मंजिल नही आयी। प्रकाश दिखायी पड़े, अभी मजिल नहीं आयी। कुंडलिनी जाग जाए, अभी मंजिल नहीं आयी। यह भी अनुभव हैं। यह भी शरीर के ही अनुभव हैं, मन के अनुभव हैं। परमात्मा सामने दिखायी पड़ने लगे, याद रखना मजिल नहीं आयी। क्योंकि परमात्मा तो देखनेवाले में छिपा है, कभी दिखायी नहीं पड़ेगा। जो दिखायी पड़ेगा वो तुम्हारा सपना है।)

इसको तुम सूत्र समझो : जो दिखायी पड़े, अनुभव में आए, वो सपना। जिस दिन कुछ दिखायी न पडे, कुछ अनुभव मे न आए; केवल तुम्हारा चैतन्य रह जाए, देखनेवाला बचे; दृश्य खो जाएँ, द्रष्टा बचे; दृश्य खो जाएँ, कुछ दिखायी न पड़े, बस तुम रह जाओ; ना-कुछ तुम्हारे चारों तरफ हो — इसको बुद्ध ने निर्वाण कहा है—शुद्ध चैतन्य रह जाए; दर्पण रह जाए, प्रतिबिंब कोई न बने; तब तुम भोग के बाहर गये। अन्यथा सभी अनुभव भोग हैं। कोई किसी पत्नी को भोग रहा है, कोई कृष्ण बाँसुरी बजा रहे हैं उनके दृश्य को भोग रहा है। सब भोग है। जहाँ तक

दूसरा है, वहां तक भोग है। जब तुम बिलकुल ही अकेले बचो, शुद्धतम कैवल्य रह जाए, होश मात्र बचे — किसका होश, ऐसा नहीं; चैतन्य मात्र बचे — किसकी चेतना, ऐसा नहीं; कुछ जानने को न हो, कुछ देखने को न हो, कुछ अनुभव करने को न हो — उस घड़ी आ गयी मंजिल।

और यह तीन सूत्र बहुमूल्य हैं। बुद्ध कहते, वासना दुष्पूर है — स्वभाव की ओर इंगित करते। उपनिषद् कहते, जिन्होंने भोगा उन्होंने त्यागा — परिणाम की ओर इंगित करते। मैं कहता हूँ, न भोगो, न त्यागो, जागो — मैं विधि देता हूँ कि कैसे तुम जानोगे कि बुद्ध ने जो कहा सही है, कैसे तुम जानोगे कि उपनिषद् ने जो कहा सत्य है। तुम जानोगे तभी उपनिषद् सच होंगे। तुम जानोगे तभी बुद्ध सच होंगे। तुम्हारे जानने के अतिरिक्त न तो बुद्ध सच हैं, न उपनिषद् सच हैं।

तुम्हारा बोध ही प्रमाण होगा बुद्ध की सचाई का।

इसलिए बुद्ध ने कहा है — किसीने पूछा कि हम कैसे तुम्हारा सम्मान करें, हम कैसे कृतज्ञता-ज्ञापन करें; इतना दिया है — बुद्ध ने कहा है, मैंने जो कहा है तुम उसके प्रमाण हो जाओ; मैंने जो कहा है तुम उसके गवाह हो जाओ, बस मेरा सम्मान हो गया। और कुछ धन्यवाद की जरूरत नहीं है। तुम जिस दिन भी बुद्ध के गवाह हो जाओगे, जिस दिन तुम प्रमाण हो जाओगे कि उपनिषद् जो कहते है सही है, उसी दिन तुमने उपनिषद् को जाना, उसी दिन तुमने बुद्ध को पहचाना। फर्क बहुत ज्यादा नहीं है बुद्ध में और तुममें। उपनिषद् में और तुममें फर्क बहुत ज्यादा नहीं है। ऐसे बहुत ज्यादा मालूम होता है। ऐसे जरा भी ज्यादा नही है।

फर्क बड़ा थोड़ा है। तुम सोए हो, बुद्ध जागे हैं। तुम आँख बंद किये हो, बुद्ध ने आँखे खोल ली है।

एक गीत कल मै पढ़ रहा था—

> लो हम बताएँ गुचा और गुल में है फर्क क्या

कली और फूल मे फर्क क्या है—

> लो हम बताएँ गुंचा और गुल में है फर्क क्या
> एक बात है कही हुई एक बेकही हुई

बस इतना ही फर्क है। 'एक बात है कही हुई एक बेकही हुई।' बुद्ध फूल है, तुम कली हो। उपनिषद् खिल गये, तुम खिलने को हो। जरा सा फर्क है। ऐसे बहुत बड़ा फर्क भी है। क्योंकि उतने ही फर्क पर तो सारा जीवन रूपातरित हो जाता है। कली बस कली है। सिकुड़ी और बंद। मुरझा भी सकती है। जरूरी नही है कि फूल बने। बन भी सकती है, चूक भी सकती है। और कली में कोई गंध थोड़े ही है। गंध तो तभी आती है फूल में, जब खिलता है। जब गंध बिखरती

है, हवाएँ ले जाती हैं उसके संदेश को दूर-दूर। अभी तुम बंद कली हो। गंध को सम्हाले हो अभी।

और जब तक बँटेगी न गंध तब तक तुम आनंदित न हो सकोगे। जब तक तुम लुटा न दोगे दोनों हाथों से, उलीच न दोगे अपनी गंध को जिसे तुम लिए चल रहे हो—मेरे देखे मनुष्य की पीड़ा यही है। पीड़ा तुम जिसे कहते हो, वो पीड़ा नहीं है। कभी तुम कहते हो पैर में काँटा लग गया, सिर में दर्द है, नौकरी नहीं मिली, पत्नी मर गयी—ये असली पीड़ाएँ नहीं हैं। पत्नी न मरे, पैर में काँटा न लगे, सिर में दर्द न हो, तो भी पीड़ा रहेगी। पीड़ा एक है, और वो पीड़ा यह है कि जो तुम लेकर आए हो वो लुटा नहीं पाए अब तक। जो तुम सम्हाले चल रहे हो उसे बाँट नहीं पाए (तुम एक ऐसे मेघ हो जो बरसना चाहता है और बरस नहीं पाता है। तुम एक फूल हो जो खिलना चाहता है और खिल नहीं पाता) तुम एक ज्योति हो जो जलना चाहती है और जल नहीं पाती। यही पीड़ा है। काँटे का लग जाना, सिर का दर्द, पत्नी का मर जाना, पति का न होना बहाने हैं। इन बहानों की खूँटियों पर तुम असली पीड़ा को ढाँककर अपने को धोखा दे लेते हो।

थोड़ा सोचो, कोई पीड़ा न रहे जिसको तुम पीडा कहते हो, क्या तुम आनंदित हो जाओगे? इतना क्या काफी होगा कि सिर में दर्द न हो? आनंदित होने के लिए क्या इतना काफी होगा कि काँटा न लगे? क्या इतना काफी होगा कि कोई बीमारी न आए? क्या इतना काफी होगा कि भोजन, वस्त्र, रहने की सुविधा हो जाए? क्या इतना काफी होगा कि प्रियजन मरें न? विज्ञान इसी चेष्टा मे लगा है। क्योंकि विज्ञान ने सामान्य आदमी की पीड़ा को ही असली पीड़ा समझ लिया है। इससे कोई भेद न पड़ेगा। वस्तुतः स्थिति उल्टी है। जब तुम्हारी सामान्य पीड़ाएँ सब मिटा दी जाएँगी, तब ही तुम्हें पहली दफा पता चलेगा उस महत् पीड़ा का, असली पीड़ा का। क्योंकि तब बहाने भी न रह जाएँगे। तुम कहोगे सिर में दर्द भी नहीं, पैर में काँटा भी नहीं, पत्नी भी जिंदा है, मकान भी है, वस्त्र भी है, भोजन भी है, सब है। सब है और कुछ खोया है। सब है, और कहीं कुछ रिक्त और खाली है।

इसलिए अमीर आदमी पहली दफा पीड़ित होता है। गरीब की पीड़ा तो हजार बहानों में छिप जाती है। वो कहता है मकान होता तो सब ठीक हो जाता, मकान नहीं है। वर्षा में छप्पर में छेद हैं, पानी गिर रहा है, छप्पर ठीक होता तो सब ठीक हो जाता। उसे पता नहीं कि ठीक छप्पर बहुतों के है, कुछ भी ठीक नहीं हुआ है। उसके पास कम से कम एक बहाना तो है। अमीर के पास वो बहाना भी न रहा। उस हालत में अमीर और गरीब हो जाता है। उसके पास बहाना तक

करने का नहीं है, कि वो किसी चीज पर अपनी पीड़ा को टाँग दे और कह दे कि इसके कारण पीड़ा है। अकारण पीड़ा है।

उस अकारण पीड़ा से ही धर्म का जन्म है।

पीड़ा क्या है ? पीड़ा ऐसी ही है जैसे कोई स्त्री गर्भवती हो, नौ महीने पूरे हो गये हो और बच्चा पैदा न होता हो। बोझ हो गया। बच्चा पैदा होना चाहिए। कितने जन्मों से तुम परमात्मा को गर्भ में लिए चल रहे हो। वो पैदा नही हो रहा है। यही पीड़ा है। ठीक पीड़ा को पहचान लेना रास्ते पर अनिवार्य कदम है। जब तक तुम गलत चीजों को पीड़ा समझते रहोगे और उनको ठीक करने में लगे रहोगे, तभी तक तुम संसारी हो। जिस दिन तुम्हे ठीक पीड़ा समझ में आ जाएगी कि यह रही पीड़ा, हाथ पड़ जाएगा पीड़ा पर, तब तुम पाओगे कि पीड़ा यही है—

लो हम बताएँ गुंचा और गुल में है फर्क क्या

एक बात है कही हुई एक बेकही हुई

जब तक तुम जिस गीत को भीतर लिए चल रहे हो सदियों-सदियों से, जन्मो-जन्मो से, वो गीत गाया न जा सके; जिस नाच को तुम अपने पैरों में सम्हाले चल रहे हो, जब तक वह नाच घूँघर बांधकर नाच न उठे, तब तक तुम पीडित रहोगे। उस नाच को हमने परमात्मा कहा है। उस गीत के फूट जाने को हमने निर्वाण कहा है। उस फूल के खिल जाने को हमने कैवल्य कहा है।

तुम्हारी कली फूल बन जाए, मुक्ति, मोक्ष, मजिल आ गयी।

दूसरा प्रश्न : बुद्ध विचार, विश्लेषण और बुद्धि को अपने धर्म का प्रारंभ-बिंदु बनाते हैं, तथा श्रद्धा, आस्था और विश्वास की माँग नही करते। फिर दीक्षा क्यों देते है ? शिष्य क्यो बनाते है ? बुद्ध, धम्म और संघ के शरणत्रय से साधना की शुरुआत क्यों करवाते है ?

बुद्ध श्रद्धा के विरोधी नहीं है। बुद्ध से बडा श्रद्धा का कोई पक्षपाती नही हुआ। लेकिन बुद्ध श्रद्धा को थोपते नहीं। जन्माते हैं। दूसरों ने श्रद्धा थोपी है। दूसरे कहते है, श्रद्धा करो। अगर न किया तो पाप है। बुद्ध कहते है, विचार करो। अगर ठीक विचार किया, श्रद्धा आएगी। अपने से आएगी। बुद्ध तुम्हें चलाते हैं—श्रद्धा की तरफ —दूसरे तुम्हें धकाते हैं। चलाने और धकाने में बड़ा फर्क है। बुद्ध तुम्हें फुसलाते हैं--श्रद्धा की तरफ — दूसरे तुम्हें धमकाते हैं। वो कहते हैं श्रद्धा न की, तो नर्क में सड़ोगे। श्रद्धा की, तो स्वर्ग में फल पाओगे। दूसरे तुम्हें लुभाते हैं। या भयभीत करते हैं।

शब्द है हमारे पास ईश्वरभीरु, 'गॉड फियरिंग'। दूसरे धर्म डरवाते रहे हैं।

वो कहते हैं, डरो ईश्वर से। छोटे मोटे लोगों की बात छोड़ दें, महात्मा गाँधी जैसे व्यक्ति भी कहते हैं, मैं किसी और से नहीं डरता सिवाय ईश्वर को छोड़कर। पर डरते तो हो ही। इससे क्या फर्क पड़ता है कि ईश्वर से डरते हो? और बड़े मज़े की बात है, संसार से डरते तो ठीक भी था; ईश्वर से डरते हो? ईश्वर से डरने का तो अर्थ हुआ कि आचरण जबरदस्ती होगा। ईश्वर से डरने का तो कोई भी कारण नही है। संसार से भला डरो, क्योंकि यहाँ उपद्रवी हैं, सब तरह के दुष्ट हैं। शैतान से डरो, एक दफा समझ में आ जाए; परमात्मा से डरते हो? परमात्मा यानी प्रेम। प्रेम से कहीं डर का कोई संबंध बन सकता है? जहाँ प्रेम है वहाँ डर कैसा? और जहाँ डर है वहाँ प्रेम कैसा? भय के पास प्रेम की गंध नहीं उठ सकती। और प्रेम के पास भय की दुर्गंध नहीं आती।

लेकिन धर्मों ने लोगो को डरना सिखाया है कि डरो। लोगों को कँपा दिया है। बुद्ध ने लोगों को फुसलाया; धमकाया नहीं। बुद्ध ने कहा, सोचो। बुद्ध ने कहा, विचार करो। बुद्ध ने कहा, जीवन को अनुभव करो, विश्लेषण करो। बुद्ध ने विज्ञान दिया, अंध-विश्वास नही। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि बुद्ध ने श्रद्धा नही दी। बुद्ध ने ही श्रद्धा दी।

ऐसे सोच-विचार जब तुम करने लगोगे, अचानक एक दिन तुम पाओगे श्रद्धा का पड़ाव आ गया। सोच-विचार की यात्रा में ही कोई श्रद्धा तक पहुँचता है।

इसे थोड़ा समझो, यह विरोधाभासी लगेगा।

बिना सोचे- विचारे तो कोई कभी श्रद्धा तक नही पहुँचता; एक बात। दूसरी बात, सिर्फ सोच-विचार से भी कोई कभी श्रद्धा तक नही पहुँचता। और तीसरी बात, सोच-विचार करते-करते एक घडी आती है, आदमी सोच-विचार के आगे चला जाता है। सोच-विचार के पहले श्रद्धा नहीं है। सोच-विचार के मध्य श्रद्धा नहीं है। लेकिन सोच-विचार के आगे चला जाता है। कब तक सोचोगे? सोचने की सीमा है। तुम्हारी सीमा नही है। जल्दी ही तुम पाओगे, सोचने का तो अंत आ गया, तुम अब भी हो। सोचना तो पिछड़ने लगा, तुम्हारे पैर आगे बढे जाते हैं।

बुद्ध वहीं ले जा रहे है। बुद्ध कहते हैं, घबड़ाओ मत, बुद्धि की तो सीमा है। डरो मत, तुम असीम हो। अगर तुम चले, तो जल्दी ही बुद्धि का चुकतारा आ जाएगा। जगह आ जाएगी जहाँ तख्ती लगी है कि यहाँ बुद्धि समाप्त होती है।

तो बुद्ध कहते हैं, श्रद्धा दो तरह की हो सकती है। एक : बिना विचारे। विचार में गये बिना पहले ही स्वीकार कर ली। वो झूठी है। वो मिथ्या है। उसको ही हम अंध-श्रद्धा कहें। वो आँखवाले की नहीं है। और ऐसी श्रद्धा सदा कमजोर रहेगी। और ऐसी श्रद्धा कभी भी तोड़ी जा सकती है। कोई भी हिला देगा। कोई

भी जीवन का तथ्य मिटा देगा ऐसी श्रद्धा को। दो कौड़ी की है, इसको कोई मूल्य मत देना। और इस श्रद्धा से तुम मुक्त न होओगे। इस श्रद्धा से तुम बँध जाओगे। यह जंजीर की तरह तुम्हें घेर लेगी। जिसको तुमने अपने अनुभव से नहीं पाया, उसे तुम अपनी संपदा मत समझना। यह अविचार की श्रद्धा है।

फिर विचार में चलो। तो तुम डरते हो विचार में चलने से, क्योंकि अक्सर लोग विचार में अटक जाते हैं। काफी नही चलते, दूर तक नहीं चलते, दो कदम चलते हैं और रुक जाते हैं। राह के किनारे झोपडा बना लेते हैं, वहीं ठहर जाते हैं, मंजिल तक नहीं पहुँचते। ये सब नास्तिक हो जाते है। इन नास्तिकों के कारण कुछ डर कर चलते ही नही।

बुद्ध कहते है, जिनको तुम आस्तिक कहते हो वो झूठे आस्तिक, और जिनको तुम नास्तिक कहते हो वो झूठे नास्तिक। क्योकि नास्तिकता का निर्णय तभी लेना उचित है जब बुद्धि की सीमा तक पहुँच गये हो। उसके पहले निर्णय नही लिया जा सकता। जब तक पूरा जाना ही नही, पूरा सोचा ही नहीं, तो कैसे निर्णय लोगे? और जो भी बुद्धि की सीमा पर पहुँच जाता है, उसे एक अनुभव आता है — बुद्धि की तो सीमा आ गयी, अस्तित्व आगे भी फैला है। तब उसे पता चलता है कि बुद्धि के पार भी अस्तित्व है। बहुत है जो बुद्धि के पार भी है। और जो बुद्धि के पार है, उसे बुद्धि से कैसे पाओगे?

सुनो —

तेरी मंज़िल पे पहुँचना कोई आसान न था
सरहदे अक़्ल से गुजरे तो यहाँ तक पहुँचे

'सरहदे अक़्ल से गुज़रे तो यहाँ तक पहुँचे'। बुद्धि की सीमा के पार जब गये, तब तुझ तक पहुँचे, परमात्मा तक पहुँचे। 'तेरी मंज़िल पे पहुँचना कोई आसान न था'— जो चले ही नही और जिन्होने श्रद्धा कर ली, वो तो कभी नहीं पहुँचे। उनका ईश्वर तो बस मान्यता का खिलौना है। उनका ईश्वर तो बस धारणा की बात है। वो तो भटका रहे है, भरमा रहे है अपने को। तुम्हारे मंदिर-मस्जिद तुम्हारी भ्रांतियाँ है। असली मंजिलें नही। पहुँचे तो वही, जो 'सरहदे अक़्ल से गुज़रे'। तो बुद्ध ने कहा, आओ। डर के मत आस्तिक बनो। और नास्तिकता से भयभीत मत होओ। नास्तिकता आस्तिकता की तरफ पहुँचने की अनिवार्य प्रक्रिया है।

बुद्ध के पहले तक लोग सोचते थे, आस्तिक-नास्तिक विरोधी है। बुद्ध ने नास्तिकता को आस्तिकता की प्रक्रिया बना दिया। इससे बड़ी कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। बुद्ध ने कहा, नास्तिकता सीढ़ी है आस्तिकता की। हाँ, सीढ़ी पर बैठ जाओ

तो तुम्हारी भूल है। सीढ़ी का कोई कसूर नहीं। मैं तुमसे कहूँ कि चढ़ो ऊपर, छत पर जाने की यह रही सीढ़ी; तुम सीढी पर ही बैठ जाओ, तो तुम कहो यह सीढ़ी तो छत की दुश्मन है। लेकिन सीढ़ी ने तुम्हें नहीं पकड़ा है। सीढ़ी तो चढ़ाने को तैयार थी। सीढ़ी तो चढ़ाने को ही थी। सीढ़ी का और कोई प्रयोजन न था। लेकिन सीढ़ी को तुमने अवरोध बना लिया। तुम उसीको पकड़ के बैठ गये। नास्तिकता सीढ़ी है।

और जो ठीक से नास्तिक न हुआ वो कभी ठीक से आस्तिक न हो सकेगा, इसे तुम सम्हालकर मन में रख लेना। मेरे पास तो रोज लोग आते हैं। उनमें जो आदमी नास्तिकता से गुज़रा है, उसकी शान और! उनमें जो आदमी ने नास्तिकता की पीड़ा झेली है, संदेह को भोगा है, संदेह के काँटो में गुजरा है, इनकार जिसने किया है, उसके स्वीकार का मजा और! गरिमा और! जिसको 'ना' कहने में डर लगता है, उसके 'हाँ' की कितनी कीमत हो सकती है? उसकी 'हाँ' नपुसक है। जिसने कभी 'नही' नहीं कहा, उसकी 'हाँ' का भरोसा मत करना। वो 'हाँ' कमजोर की 'हाँ' है; बलशाली की नही।

बुद्ध ने लोगों को बलशाली की 'हाँ' सिखायी। बुद्ध ने कहा 'ना' कहो; डरो मत। क्योंकि 'ना' कहना न सीखोगे तो 'हाँ' कैसे कहोगे? 'हाँ' आगे की मंज़िल है। 'ना' के पहले नही, 'ना' के बाद है। कहो दिल खोलकर 'ना'।

बुद्ध ने मनुष्य को पहली दफा धर्म की सबलता दी। उसके पहले धर्म निर्बल का था। लोग कहते हैं — 'निर्बल के बल राम'। बुद्ध ने लोगो को सबलता दी। बल दिया; और कहा, डर है ही नही; क्योंकि राम तो है ही। इसलिए भयभीत मत करो। तुम्हारे 'न' कहने से राम 'नहीं' नहीं हो जाता। और तुम्हारे 'हाँ' कहने से राम हो नहीं जाता। लेकिन तुम्हारे 'न' कहने से तुम होना शुरू होते हो। और जब तुम हो, तभी तो तुम 'हाँ' कह सकोगे।

थोड़ा सोचो।

अगर तुम 'न' कहना जानते ही नही; या इतने डर गये हो, इतने पंगु हो गये हो कि तुमसे इनकार निकलता ही नही, तो तुमसे स्वीकार क्या निकलेगा? स्वीकार तो इनकार से बड़ी घटना है। इनकार तक नहीं निकलता। तुम रेगिस्तान भी नही हो अभी नास्तिकता के, तो तुम आस्तिकता के मरुद्यान कैसे हो सकोगे? तुम अभी रूखी-सूखी नास्तिकता भी नही अपने में ला पाए, तो हरी-भरी, फूलों से सजी आस्तिकता कैसे ला पाओगे? आस्तिकता नास्तिकता के विपरीत नहीं है। आस्तिकता नास्तिकता के आगे है।

आस्तिकता मंज़िल है। नास्तिकता साधन है।

इसलिए बुद्ध ने एक नई कीमिया दी है मनुष्यजाति को, जिसमें नास्तिकता का भी उपयोग हो सकता है। और इसे मैं कहता हूँ, बहुत अनूठी घटना। जब तुम नहीं का भी उपयोग कर पाओ, जब तुम अपने अंधकार का भी उपयोग कर पाओ, अपने अस्वीकार का भी उपयोग कर पाओ, तभी तुम पूरे विकसित हो सकोगे। जब तुम्हारा अधकार भी प्रकाश की तरफ जाने का साधन हो जाए; जब तुम अपने अंधकार को भी रूपातंरित कर लो — वह भी प्रकाश का ईंधन बन जाए; जब तुम अपने इनकार को भी अपनी स्वीकार की सेवा में रत कर दो — वो दास हो जाए; तुम्हारी नास्तिकता आस्तिकता के पैर दबाए, तभी।

बुद्ध ने विचार दिया, विश्लेषण दिया, बुद्धि को अपने धर्म का प्रारंभ-बिंदु कहा, अंत नही। इसलिए तुम घबडाओ मत, कि बुद्ध दीक्षा क्यों देते हैं? घबड़ाओ मत, कि बुद्ध शिष्य क्यो बनाते है? घबड़ाओ मत, कि बुद्ध धर्म, संघ और बुद्ध की शरण आने का निमंत्रण क्यो देते हैं? लेकिन यह निमंत्रण वह उन्हींको देते हैं जो नास्तिकता से पार हो गये है। यह हर किसीको नहीं देते। हर किसीको तो वो विचार देते है, विश्लेषण देते हैं। फिर जो विचार और विश्लेषण करते है, और जो अपने अनुभव से भी बुद्ध के गवाह हो जाते हैं और कहते हैं, ठीक कहते हो तुम। सोचकर भी हमने यही पाया कि सोचना व्यर्थ है। शास्त्रों में झाँककर देखा कि शास्त्र बेकार है। ठीक कहते हो तुम कि धर्म परंपरा नहीं विद्रोह है। हमने भी सोचकर देख लिया। लेकिन अब सोचना भी समाप्त होता है। अब आगे ...? अब तुम हमे आगे भी ले चलो। तब बुद्ध शिष्यत्व देते हैं। तब दीक्षा देते है। जो विचार से गुजर आया, जो विचार से निकल आया, जो विचार के जाल के बाहर उठ आया, उसे बुद्ध दीक्षा देते हैं।

मुझसे लोग पूछते हैं कि अगर श्रद्धा से ही पाना है, तो आप लोगो को इतना समझाते क्यो हैं? समझाता हूँ इसलिए कि पहले श्रद्धा को पाना है।

श्रद्धा से उसको पाना है। जरूर। स्वीकार। लेकिन पहले श्रद्धा को पाना है। और श्रद्धा को तुम कैसे पाओगे? दो उपाय हैं। एक तो, तुम्हें भयभीत कर दूँ कि नर्क मे, अग्नि मे जलोगे, जलते कड़ाहों में — आग के उबलते कड़ाहो में डाले जाओगे। या तो तुम्हें भयभीत कर दूँ। या प्रलोभित कर दूँ कि स्वर्ग में अप्सराएँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं। अगर श्रद्धा की तो स्वर्ग, अश्रद्धा की तो नर्क। या तो तुम्हे इस तरह से जबरदस्ती धकाऊँ, जो कि गलत है। क्योंकि जिसने भय के कारण राम को जपा उसने जपा ही नहीं, भय को ही जपा। जो डर के कारण नैतिक बना, तो नैतिक बना ही नहीं। पुलिसवाले के डर से तुमने चोरी न की, यह भी कोई अचोर होना हुआ। नर्क के भय से तुमने बेईमानी न

की, यह भी कोई ईमानदारी हुई। नर्क के कड़ाहों में जलाए जाओगे, इस भय से तुमने ब्रह्मचर्य धारण कर लिया, यह भी कोई कामवासना से मुक्ति हुई। ये तो 'कंडीशनिंग' है, ये तो संस्कारित करने की तरकीबें हैं।

रूस में एक बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ, पावलफ। उसने तो, अब रूस तो नास्तिक मुल्क है, लेकिन पावलफ की बातें रूस के लोगों को भी जमीं। किसीने यह बात खोजबीन नही की कि पावलफ जो कह रहा है वो तथाकथित धार्मिकों से भिन्न बात नही है। पावलफ ने कहा कि किसीको भी बदलना हो, तो समझाने-बुझाने की जरूरत नहीं है। समझो कि एक आदमी सिगरेट पीता है। तो इसको समझाने की जरूरत नहीं है; और न सिगरेट के पैकिट पर लिखने की जरूरत है कि सिगरेट पीना हानिकारक है। इससे कुछ भी न होगा। इससे सिगरेट न छूटेगी, सिर्फ हानि के प्रति वो अंधा हो जाएगा। रोज-रोज पैकिट पर पढ़ता रहेगा, तो हानि शब्द का जो परिणाम होना था वो भी न होगा। अगर इसको बदलना है, तो पावलफ ने कहा कि जब यह सिगरेट पिये, इसको बिजली का शॉक दो। शॉक इतना तेजी से लगे कि सिगरेट के पीने में जो रस आता है, उससे ज्यादा पीड़ा शॉक की हो। रस कुछ आता भी नहीं। सिर्फ धुआँ बाहर-भीतर लाने-ले जाने में रस आ भी कैसे सकता है! भ्रांति है। असली बिजली का शॉक भ्रांति को तोड़ देगा। और ऐसा रोज करते रहो; एक-दो सप्ताह तक। और तब यह आदमी हाथ में सिगरेट उठाएगा और हाथ कँपने लगेगा। क्योंकि जैसे ही सिगरेट की याद आएगी, भीतर याद शॉक की भी आएगी। 'कंडीशनिंग' हो गयी। अब इसकी सिगरेट हाथ से छूट जाएगी। समझाने की जरूरत नहीं है कि सिगरेट बुरी है। कितने दिन से समझा रहे है लोग! कोई नही सुनता।

लेकिन पावलफ ने जो कहा यह बहुत भिन्न नहीं है। यही तो पुराने धर्मगुरु करते रहे। बचपन से ही समझाया जाए कि नर्क में कड़ाह जल रहा है—मंदिरों में चित्र लटकाए जाएँ, लपटों का विवरण किया जाए—कड़ाहों में फेंक कर जलाए जाओगे, सड़ाए जाओगे, कीड़े-मकोड़े छेद करेंगे तुम्हारे शरीर में और भागेंगे, दौड़ लगाएँगे, और मरोगे भी नहीं। सामने पानी होगा, कंठ प्यास से भरा होगा, पी न सकोगे। और अनंतकालीन यातना झेलनी पड़ेगी। और पाप क्या हैं तुम्हारे? छोटे-मोटे, कि सिगरेट अगर पी। सिगरेट पीने के लिए इतना भारी उपाय! घबड़ा जाए आदमी!

छोटे बचपन से अगर यह बात मन पर डाली जाए तो स्वभावत: भय पकड़ लेगा। ये सिगरेट न पीएगा। लेकिन यह कोई चरित्र हुआ? तुमने चरित्र तो इसका नष्ट कर दिया सदा के लिए। चरित्र तो बल पर खड़ा होता है। चरित्र

तो समझ पर खड़ा होता है। तुमने भय का जहर भर दिया। तुमने तो इसको मार डाला। अब यह जिएगा कभी भी नहीं। और इसी तरह स्वर्ग का प्रलोभन दिया हुआ है। वहां बड़े सुख। तुम कर रहे हो दो कौड़ी के काम, लेकिन बड़े सुख की आशा कर रहे हो। एक भिखमंगे को एक पैसा दे आए, अब तुम हिसाब लगा रहे हो कि स्वर्ग जाओगे। कि कहीं धर्मशाला बनवा दी, कि कहीं मंदिर बनवा दिया, अब तुम सोच रहे हो कि बस भगवान पर तुमने बहुत एहसान किया; अब तुम स्वर्ग जाने वाले हो।

मैंने सुना है कि एक धर्मगुरु स्वर्ग जाने की टिकटें बेचता था -- सभी धर्मगुरु बेचते हैं। स्वभावत, कुछ अमीर खरीदते तो प्रथम श्रेणी की देता। गरीब खरीदते, द्वितीय श्रेणी। तृतीय श्रेणी भी थी, और जनता -- चौथी श्रेणी भी थी। सभी लोगों के लिए इंतजाम स्वर्ग में होना भी चाहिए। तरह-तरह के लोग हैं, तरह-तरह की सुविधाएँ होनी चाहिए। काफी धन उसने इकट्ठा कर लिया था लोगों को डरा-डराके नर्क के भय से। लोग खाना न खाते, पैसा इकट्ठा करते कि टिकट खरीदनी है। यही कर रहे हैं लोग। खाना नहीं खाते, मै देखता हूँ, तीर्थयात्रा को जाते है। कपड़ा नहीं पहनते, मदिर मे दान दे आते है। खुद भूखों मरते हैं, ब्राह्मण को भोजन कराते हैं। सदियों से डरवाया है ब्राह्मण ने कि हम ब्रह्म के सगे-रिश्तेदार हैं। भाई-भतीजावाद! अपना नाता करीब का है, करवा देंगे तुम्हारा इंतजाम भी। खुद खाओगे, कोई पुण्य न होगा। ब्राह्मण को खिलाओगे, पुण्य होगा। लोग भूखों मरते हैं -- पंडे-पुरोहितों को देते हैं।

उस धर्मगुरु ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया। एक रात एक आदमी उसकी छाती पर चढ़ गया जाकर, छुरा लेकर। और उसने कहा, निकाल, सब रख दे! उसने गौर से देखा, वो उसकी ही जाति का आदमी था। उसने कहा अरे! तुझे पता है, नर्क में सड़ेगा। उसने कहा, छोड़ फिकर, पहली श्रेणी का टिकट पहले ही खरीद लिया है, सब निकाल पैसा। तुमसे ही खरीदा है टिकट। वो हम पहले ही खरीद लिए हैं, उसकी तो फिकर ही छोड़ो। अब नरक से तुम हमें न डरवा सकोगे। वो कोई और होंगे जिनको तुम डरवाओगे। हम टिकट पहले ही ले लिए हैं; अब तुम सब पैसा जो तुम्हारे पास इकट्ठा किया है तिजोड़ी में, दे दो। लोग यही कर रहे हैं। इसको तुम चरित्र कहते हो। भय पर खड़े, लोभ पर खड़े व्यक्तित्व को तुम चरित्र कहते हो।

यह चरित्र का धोखा है।

बुद्ध ने यह धोखा नही दिया। बुद्ध ने कहा समझ, सोच-विचार, चिंतन, मनन। और धीरे-धीरे तुम्हें उस जगह ले आना है, जहाँ से पार दिखायी पड़ना शुरू होता

है। जहाँ अतिक्रमण होता है। जहाँ तुम आ जाते हो किनारे अपने सोचने के और देखते हो उसे जो सोचा नहीं जा सकता। जहाँ रहस्य तुम्हें आच्छादित कर लेता है और विचार अपने से गिर जाते हैं। जहाँ विराट तुम्हारे करीब आता है और तुम्हारी छोटी खोपड़ी चक्कर खाके ठहर जाती है। अवाक्।

बुद्ध ने कहा श्रद्धा थोपेंगे नहीं। श्रद्धा तक तुम्हारी यात्रा की बात भी नहीं की। यही तो उनकी कला है। और जितनी दीक्षा उन्होंने दी, किसने दी ? जितने लोगों को उन्होंने संन्यास के अमृत का स्वाद चखाया, किसने चखाया ? जितनी श्रद्धा बुद्ध इस पृथ्वी पर उतार कर लाए, कभी कोई नहीं ला सका था। और आदमी ने बात भी न की श्रद्धा की। यही उनकी कला है। यही उनकी खूबी है। यही उनकी विशिष्टता है। दूसरे सिर पीट-पीटकर मर गये—श्रद्धा करो, विश्वास करो, और कूड़ा-करकट दे गये लोगों को। बुद्ध ने व्यर्थ की बातें न कीं। बुद्ध ने, जीवन में जो भी था सभी का सीढ़ी की तरह उपयोग कर लिया। तर्क है, तो उपयोग करना है। छोड़कर कहाँ जाओगे ? सीढ़ी बना लो। संदेह है, घबड़ाओ मत। इसकी भी सीढ़ी बना लेंगे, डर क्या है ? इस पर भी चढ़ जाएँगे। तर्क के कंधे पर खड़े होंगे, संदेह के सिर पर खड़े होंगे, और पार देखेंगे।

और जब पार का दिखायी पड़ता है, तो श्रद्धा उतरती है।

श्रद्धा उस पार के अनुभव का अनुसंग है। उसकी छाया है। जैसे गाड़ी के बैलों के पीछे चाक चले आते हैं। जैसे तुम भागते हो, तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया भागती चली आती है। जिसको दिखायी पड़ गया विराट, एक झलक भी मिल गयी उसकी -- जरा सी देर को हटे बादल और सूरज दिखायी पड़ गया — एक झलक ही सही : अँधेरी रात में चमकी बिजली, एक झलक दिखायी पड़ गयी कि राह है, और दूर खड़े मंजिल के कलश झलक गये : बस श्रद्धा उत्पन्न हुई। इस श्रद्धा की महिमा और ! इस श्रद्धा को तुम अपनी श्रद्धा मत समझना। इस श्रद्धा को तुम अपनी कमजोर नपुसक धारणाएँ मत समझना। यह श्रद्धा अर्जित करनी होती है। बुद्ध ने कहा, कोई व्यक्ति पैदा होते से श्रद्धा लेकर नहीं आता। संदेह ही लेकर आता है। हर बच्चा संदेह लेकर आता है। इसलिए तो बच्चे इतने प्रश्न पूछते हैं। जितने बूढ़े भी नहीं पूछते। बच्चा हर चीज से प्रश्न बना लेता है। स्वाभाविक है। पूछना ही पड़ेगा। क्योंकि पूछ-पूछकर ही तो वहाँ पहुँचेंगे जहाँ अनुभव होगा ? और सब पूछना गिर जाता है, सब जिज्ञासा गिर जाती है।

मुझसे लोग कहते हैं, आप क्यों इतना समझाते हैं जब श्रद्धा से पहुँचना है ? समझाता हूँ ताकि श्रद्धा तक पहुँचना हो जाए। फिर तो तुम खुद ही चल लोगे ? श्रद्धा काफी है। फिर मेरी जरूरत न होगी। श्रद्धा तक तुम्हें फुसलाके ले आऊँ,

फिर तो मार्ग सुगम है। फिर तो तुम खुद ही चल लोगे, फिर तो तुम्हारी श्रद्धा ही खींच लेगी। फिर तो श्रद्धा का चुंबक काफी है।

तीसरा प्रश्न : बुद्ध सब गुरुओं से हताश ही हुए। क्या उन्हें कोई सिद्ध सद्गुरु न मिला?

सिद्ध सद्गुरु इतने आसान नहीं। रोज-रोज नहीं होते। जगह-जगह नहीं मिलते। हजारों वर्ष बीत जाते है, तब कभी कोई एक सिद्ध सद्गुरु होता है।

तो यह सवाल इसलिए तुम्हारे मन में उठता है कि तुम सोचते हो, सिद्ध सद्गुरु तो गाँव-गाँव बैठे हुए है। सद्गुरु बनके बैठ जाना एक बात है। बाजार में दुकान खोलकर बैठ जाना एक बात है। और यह मामला कुछ ऐसा है परमात्मा का, अदृश्य का मामला है! इसलिए पकड़ना भी बहुत मुश्किल है।

मैंने सुना है कि अमरीका मे एक दुकान पर अदृश्य 'हेअर पिन' बिकते थे। अदृश्य! तो स्त्रियाँ तो ऐसी चीजों में बड़ी उत्सुक होती हैं। अदृश्य 'हेअर पिन' — दिखायी भी न पड़े, और बालों में लगा भी रहे। बड़ी भीड़ लगती थी, 'क्यू' लगता था। एक दिन एक औरत पहुँची। उसने डब्बा खोलकर देखा, उसमें कुछ था तो है नही। क्योंकि अदृश्य तो कुछ दिखायी पड़ता ही नहीं। उसने कहा इसमें है भी? उसने कहा, यह तो अदृश्य 'हेअर पिन' हैं। यह दिखायी थोड़े ही पडते हैं। थोड़ा संदेह उसे उठा। उसने कहा कि अदृश्य! माना कि अदृश्य हैं, उनको ही लेने आयी हूँ, लेकिन पक्का इसमे हैं? और ये किसीको दिखायी भी नहीं पड़ते। उस दुकानदार ने कहा कि तू मान न मान, आज महीने भर से तो स्टॉक में ही नहीं हैं, फिर भी बिक रहे हैं। अब ये अदृश्य 'हेअर पिन' की कोई स्टॉक में होने की जरूरत थोड़े ही है। और महीने के पहले भी बिकते रहे, स्टॉक में होने की जरूरत कहाँ?

यह धंधा कुछ अदृश्य का है। इसमें जरा कठिनाई है। क्योंकि तुम पकड़ नहीं सकते कि कौन बेच रहा है, कौन नहीं बेच रहा है। किसके पास है, किसके पास नहीं है। बड़ा कठिन है। यह खेल बहुत उलझा हुआ है। और इसलिए इसमें आसानी से गुरु बनकर बैठ जाना जरा भी अड़चन नही है। कोई और तरह की दुकान खोलो तो सामान बेचना पड़ता है। कोई और तरह का धंधा करो तो पकडे जाने की कोई न कोई सुविधा है। कहीं न कही से कोई न कोई झंझट आ जाएगी। कितना ही धोखा दो, कितना ही कुशलता से दो, पकड़ जाओगे। लेकिन परमात्मा बेचो, कौन पकड़ेगा? कैसे पकड़ेगा? सदियाँ बीत जाती हैं बिना स्टॉक के बिकता है।

तो तुम इससे परेशान मत होओ, कि बुद्ध इतने गुरुओं के पास गये और सद्गुरु न मिले। यह स्वामी योग चिन्मय का प्रश्न है। चिन्मय को यही ख्याल है कि ऐसे सद्गुरु हर कहीं बैठे हैं। जहाँ गये वहीं सद्गुरु मिल जाएँगे। बहुत कठिन है। सौभाग्य है कि कभी कोई सद्गुरु के पास पहुँच जाए। कैसे पहचानोगे? एक ही उपाय है पहचानने का, और वो यह है कि जो गुरु कहता हो — वो सद्गुरु है या नहीं, इसकी फिक्र छोड़ो — जो वो कहता हो उसे करना। अगर सद्गुरु है, तो जो उसने कहा है उसे करने से तुम्हारे भीतर कुछ होना शुरू हो जाएगा। अगर सद्गुरु नहीं है, तो उसके भीतर ही नहीं हुआ है, तुम्हारे भीतर कैसे हो जाएगा? लेकिन सद्गुरु तो कभी-कभी होते हैं। पर सद्गुरु की तलाश तो सदा होती है। इसलिए झूठों को बैठने का अवसर मिल जाता है। और चूँकि तुम कभी करते ही नहीं कुछ, तुम सिर्फ सुनते हो, इसलिए तुम्हें धोखा दिया जा सकता है। तुम कुछ करोगे, तो ही तुम्हें धोखा नहीं दिया जा सकता। मेरी ऐसी समझ है कि चूँकि तुम धोखा देना चाहते हो, इसलिए तुम्हें धोखा दिया जा सकता है। तुम कुछ करना तो चाहते नहीं। तुम चाहते हो कि कोई कृपा से हो जाए किसीकी।

मेरे पास लोग आते हैं, वो कहते हैं कि जब आपके पास आ गये तो अब क्या ध्यान करना? आपकी कृपा से! वो मुझी को धोखा दे रहे हैं। वो मुझी को तरकीब बता रहे हैं, कि अब आपके पास आ गये तो अब क्या ध्यान करना? यह और करें, हम तो श्रद्धा करते हैं। इतनी भी श्रद्धा नहीं है कि मैं जो कहूँ वो करें, और श्रद्धा करते हैं! क्योंकि मुझपे तुम्हारी श्रद्धा और कैसे प्रकट होगी? जो मैं कहता हूँ, वो करो।

तो तुम करते नहीं हो, इसलिए झूठे गुरु भी चलते जाते हैं। तुम करो, तो तुम्हारा करना ही प्रमाण हो जाएगा। उस आदमी को बार-बार दिखायी पड़ने लगेगा कि कुछ भी नहीं हो रहा है, किसीको कुछ भी नहीं हो रहा है। और लोग जाने लगे हैं। अपने आप बाजार उजड़ जाएगा।

बुद्ध ने यही किया। वो गये तो, लेकिन जिसके पास भी गये, जो भी उसने कहा, वही किया। कुछ ने तो ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें कहीं उनसे — वो भी उन्होंने कीं — कि कहनेवालों को भी दया आने लगी कि यह हम क्या करवा रहे हैं? किसीने कहा कि बस एक चावल का दाना रोज। इतना ही भोजन लेना। अब मूढ़तापूर्ण बातें हैं। लेकिन बुद्ध ने वह भी किया। कहते हैं उनकी हड्डियाँ-हड्डियाँ निकल आयीं। उनका पेट पीठ से लग गया। चमड़ी ऐसी हो गयी कि छुओ तो उखड़ जाए शरीर से। तब उस गुरु को भी दया आने लगी। कितना ही धोखेबाज रहा हो, अब यह जरा अतिशय हो गयी। उसने हाथ जोड़, उसने कहा कि तुम

कहीं और जाओ। जो मैं जानता था मैंने बता दिया। इससे ज्यादा मुझे कुछ पता नहीं है।

ऐसे बुद्ध की निष्ठा ने ही -- उनकी अपनी निष्ठा ने ही -- कसौटी का काम किया। भटकते रहे, सबको जाँच लिया, कहीं कुछ पाया नहीं। तब अकेले की यात्रा पर गये। और यह भी सोच लेने जैसा है कि तुम अक्सर चूँकि करना नहीं चाहते, इसलिए जल्दी मानना चाहते हो। तुम्हारी मानने की जल्दी भी करने से बचने की तरकीब है।

जीवन में प्रत्येक चीज अर्जित करनी होती है। श्रद्धा भी इतनी आसान नहीं है, कि तुमने कर ली और हो गयी। संघर्ष करना होगा। तपाना पड़ेगा। स्वयं को जलाना पड़ेगा। धीरे-धीरे निखरेगा तुम्हारा कुंदन। गुजरेगा आग से स्वर्ण, शुद्ध होगा। तभी तुम्हारे भीतर श्रद्धा का आविर्भाव होगा। और सद्गुरु गली-कूँचे नहीं बैठे हुए हैं। कभी हजारों वर्ष में एक सिद्ध सद्गुरु होता है। सदियाँ बीत जाती है खोजियों को, खोजते-खोजते।

इसलिए अगर कभी तुम्हें किसी सद्गुरु की झलक पड़ जाए, तो सौभाग्य समझना! अहोभाग्य समझना!

चौथा प्रश्न : भगवान बुद्ध ने अवैर के स्थान पर प्रेम शब्द का व्यवहार क्यों नहीं किया?

जानकर। अवैर नकारात्मक है। अहिंसा जैसा। बुद्ध कहते हैं वैर छोड़ दो, तो जो शेष रह जाता है वही प्रेम है। बुद्ध प्रेम करने को नहीं कहते। क्योंकि जो प्रेम किया जाता है, वह प्रेम नहीं।

तुम चिकित्सक के पास जाते हो। वह निदान करता है बीमारी के, वह औषधि देता है बीमारी मिटा देने को। जब बीमारी हट जाती है, तो जो शेष रह जाता है वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की अलग से चर्चा करनी फिजूल है। और खतरा भी है। क्योंकि तुमसे अगर यह कहा जाए कि प्रेम करो, तो तुम वैर तो न छोड़ोगे, प्रेम करना शुरू करोगे। क्योंकि करना तुम्हें सदा आसान मालूम पड़ता है, क्योंकि करना अहंकार को तृप्ति देता है। तुम प्रेम करना शुरू करोगे। वैर तो न छोड़ोगे, प्रेम करोगे। तो ऐसा हो सकता है कि तुम वैर को प्रेम में ढाँक दो। वैर तो बना रहे और प्रेम के आवरण में ढाँक दो। तब तुम्हारा प्रेम भी झूठा होगा। क्योंकि वैर के ऊपर प्रेम कैसे खड़ा हो सकता है?

तुमने बहुत बार प्रेम किया है। तुम जानते हो भलीभाँति, तुम्हारे प्रेम से घृणा मिटती नहीं। दब जाती हो भला। राख में दब जाता हो अंगारा, मिटता नहीं।

तुम प्रेम भी करते हो उसीको, घृणा भी करते हो उसीको। सांझ उसके गीत गाते हो, सुबह गालियाँ देते हो उसीको। अभी उसके लिए मरने को तैयार थे, क्षणभर बाद उसीको मारने को तैयार हो जाते हो। ये तुम्हारा प्रेम बुद्ध भलीभाँति जानते हैं। ये प्रेम घृणा को मिटाता नहीं, घृणा को सजा भला देता हो। आभूषण पहना देता हो, घृणा को सुंदर बना देता हो, जहर पर अमृत का लेबल लगा देता हो, लेकिन मिटाता नहीं।

इसलिए बुद्ध ने प्रेम की बात ही नहीं की। बुद्ध ने कहा अवैर। तुम वैर छोड़ दो। तुम घृणा छोड़ दो। फिर जो शेष रह जाएगा, वही प्रेम है। और इस प्रेम का गुण-धर्म अलग है। तुम जो प्रेम करते हो, वह भी कृत्य है। बुद्ध जिस प्रेम की बात कर रहे हैं वह कृत्य नहीं है। ना ही कोई संबंध है। वह तुम्हारा स्वभाव है।

अभी तुम कहते हो, मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। तुम्हारे हाथ में है। चाहो तो करो, चाहो तो अलग कर लो। कल कह दो कि नहीं करता। लेकिन जिसके जीवन से वैर चला गया, वो ऐसा नहीं कह सकता कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, और अलग कर लेता हूँ। वह तो ऐसे ही कहेगा, मैं प्रेम हूँ। तुम चाहे भला करो, चाहे बुरा करो, मैं प्रेम हूँ। यह प्रेम मेरा स्वभाव है। तुम मुझे मारो तो, तुम मेरी सेवा करो तो। तुम आदर करो, अनादर करो। तुम्हारा कृत्य अब अर्थ नहीं रखता। मेरे प्रेम में कोई अंतर न पड़ेगा।

एक आदमी ने बुद्ध के मुँह पर थूक दिया। उन्होंने अपनी चादर से थूक पोंछ लिया। और उस आदमी से कहा, कुछ और कहना है? क्योंकि बुद्ध ने कहा यह भी तेरा कुछ कहना है, वो मैं समझ गया; कुछ और कहना है? आनंद तो बहुत क्रोधित हो गया, उनका शिष्य। वो कहने लगा यह सीमा के बाहर बात हो गयी। आप पर, और कोई थूक दे, और हम बैठे देखते रहें? जान लेने-देने का सवाल हो गया। आप आज्ञा दें, मैं इस आदमी को ठीक करूँ। क्षत्रिय था आनंद। बुद्ध का चचेरा भाई था। योद्धा रह चुका था। उसकी भुजाएँ फड़क उठीं। उसने कहा कि हो गया बहुत। वो भूल ही गया की हम भिक्षु हैं, संन्यासी हैं।

बुद्ध ने कहा कि उसने जो किया वो क्षम्य है। तू जो कर रहा है वो और भी खतरनाक है। उसने कुछ किया नहीं है, सिर्फ कहा है। तुझे समझ नहीं आता है आनंद, कभी ऐसी घड़ियाँ होती हैं जब तुम कुछ कहना चाहते हो, लेकिन कह नहीं सकते, शब्द छोटे पड़ जाते हैं। किसीको हम गले लगा लेते हैं। कहना चाहते थे, लेकिन इतना ही कहने से कुछ काम न चलता कि बहुत प्रेम है—बहुत साधारण मालूम होता है। गले लगा लेते हैं। गले लगाकर कहते हैं। इस आदमी को क्रोध था, ये गाली देना चाहता था, लेकिन गाली इसको कोई मजबूत न मिली। इसने

थूककर कहा। बात समझ मे आ गयी। हम समझ गये इसने क्या कहा। अब इसमें झगड़े की क्या बात है? इससे हम पूछते हैं, आगे और क्या कहना है?

वो आदमी शर्मिंदा हुआ। वो बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे क्षमा कर दें। मैं बड़ा अपराधी हूँ। और आज तक तो आपका प्रेम मुझ पर था, अब मैंने अपने हाथ से प्रेम गँवा दिया। बुद्ध ने कहा, तू उसकी फिकर मत कर, क्योंकि मैं तुझे इसलिए थोड़े ही प्रेम करता था कि तू मेरे ऊपर थूकता नहीं था।

बुद्ध का वचन सुनने जैसा है : मैं इसलिए थोड़े ही तुझे प्रेम करता था कि तू मेरे ऊपर थूकता नही था। अगर इसलिए प्रेम करता था, तो थूकने से टूट जाएगा। मैं तुझे प्रेम करता था क्योंकि और कुछ मैं कर हो नहीं सकता हूँ। वो मेरा स्वभाव है। तू थूकता है कि नहीं थूकता है, यह तेरी तू जान। तू मेरे प्रेम को लेता है या नहीं लेता है, यह भी तेरी तू जान। लेकिन मुझसे प्रेम वैसा ही है जैसे कि फूल खिलता है और गंध बिखर जाती है। अब दुश्मन पास से गुजरता है, तो उसके नासापुटों को भी भर देती है। वो खुद ही रूमाल लगा ले, बात अलग। मित्र निकलता है, उसके नासापुटो को भी भर देती है। मित्र थोड़ी देर ठहर जाए फूल के पास और उसके आनंद मे भागीदार हो जाए, बात अलग। कोई न निकले रास्ते से तो भी गंध गिरती रहती है, सूने एकांत में। तो बुद्ध ने कहा, मेरा प्रेम स्वभाव है।

इसको समझ लो।

जिसको तुम प्रेम कहते हो, वो स्वभाव नही है। वो तुम्हारा कृत्य है। वो तुम्हारी एक चित्तदशा है। स्वभाव नहीं है। तो इसलिए जिसे तुम सुबह प्रेम करते हो, शाम को उसे घृणा कर सकते हो। कोई अंतर नही पड़ता। क्योंकि चित्त बदल जाता है। 'मूड' बदल जाता है। भाव बदल जाता है। बुद्ध ने नही कहा कि प्रेम करो। क्योंकि तुम प्रेम शब्द से गलत समझते। तुम जिसे प्रेम कहते हो वही समझते। बुद्ध ने कहा, अवैर। कृपा करो इतना ही, वैर मत करो। फिर जो रहेगा, वो प्रेम है। और उस प्रेम की गंध और! उस प्रेम का गीत और!

और जो भी बुद्ध ने कहा है, स्मरण रखना, वो एक गहन अनुभव से कह रहे है। ऐसे प्रेम को जानकर कह रहे है। वो कोई प्रेम के कवि नही हैं, न प्रेम के दार्शनिक हैं। उन्होंने प्रेम का अनुभव किया है। इस नये ढंग के प्रेम को जाना है, जो स्वभाव बन जाता है। तुमने जो भी प्रेम के संबंध में जाना है, उसमें से जानना तो बहुत कम है। या तो कवियों ने तुमसे कुछ कह दिया है, उसे तुम दोहरा रहे हो। क्योंकि फ्रॉयड ने अपने एक पत्र में एक मित्र को लिखा है कि अगर दुनिया में कवि न होते, तो शायद प्रेम को कोई जानता ही नहीं। बात समझ

में आती है। कवि गाते रहे प्रेम की बात। हालाँकि कवियों को भी कोई प्रेम बहुत पता होता है, ऐसा नहीं। अक्सर तो बात उल्टी है। जिनके जीवन में प्रेम नहीं होता, वो प्रेम की कविता करके अपने मन को बहलाते हैं। जिसके जीवन में प्रेम है, वो कविता किसलिए करे? उसका जीवन ही कविता होता है। लेकिन जिनके जीवन में प्रेम नहीं होता, वो बैठकर प्रेम की कविता कर-करके अपने मन को बहलाते हैं। जो प्रेम वो प्रगट नहीं कर पाए किसी और तरह से, उसे कविता में उँडेलते हैं। अक्सर प्रेम में सौ में से निन्यानबे कविताएँ उन लोगों ने लिखी हैं जिन्हें प्रेम का कोई अनुभव नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। अक्सर बहादुरी की बातें वे ही लोग करते हैं जो कायर हैं। वो अक्सर बहादुरी के किस्से गढ़कर बताते रहते हैं। बहादुर को क्या बहादुरी की बात करनी! बहादुरी काफी है।

बुद्ध ने जो कहा है वो किसी कवि की बात नहीं है। न किसी शास्त्रकार की बात है। उन्होंने प्रेम जाना। और उन्होंने प्रेम एक ही तरह से जाना। और एक ही तरह से जाना है किसीने जब भी जाना। उन्होंने वैर छोड़कर जाना है। तुम जिसे प्रेम कहते हो, उसे वे भी जानते थे। उनकी पत्नी थी, बच्चा था, माँ थी, पिता थे — सब थे। उनको उन्होंने खूब प्रेम किया था। और एक दिन पाया कि उस प्रेम में कुछ भी नहीं है। वो केवल मन का सपना है। उस प्रेम की व्यर्थता को देखकर वो हट आए। उन्होंने फिर नये ढंग का प्रेम खोजना चाहा। उस प्रेम में तो घृणा दबी थी, मिटी न थी। उन्होंने एक ऐसा प्रेम जानना चाहा जो इतना शुद्ध हो कि घृणा उसे विकृत न करे। जिसमें घृणा की एक बूंद भी न हो। और मजा ऐसा है कि दूध की भरी प्याली में जहर की एक बूँद काफी है उसे नष्ट करने को। यद्यपि जहर की भरी प्याली में दूध की एक बूँद उसे शुद्ध न करेगी। विकृत बड़ा समर्थ है। अशुद्ध बड़ा समर्थ है। शुद्ध बड़ा कोमल है। नाजुक है। फूल की तरफ एक पत्थर मार दो तो फूल बिखर जाता है। और हजार फूल पत्थर को मारो तो भी कुछ नहीं होता।

बुद्ध खोज में निकले उस प्रेम की जो अविकृत है — 'अनकरप्टेड', कुँवारा है। और उस प्रेम को उन्होंने इस ढंग से पाया कि उन्होंने वैर छोड़ा। वैर रहते तुम प्रेम को साधोगे, तुम्हारा वैर उस प्रेम को विकृत कर देगा, जहरीला कर देगा। पहले वैर को हटा दो। और मजा यह है कि वैर के हटाते ही प्रेम साधना नहीं पड़ता; तुम अचानक पाते हो कि अरे! यह वैर के कारण ही प्रेम दिखायी नहीं पड़ता था, यह तो सतत बह रहा है भीतर। यह तो स्वभाव है। प्रेम आत्मा है।
लेकिन किताबों से सावधान होना जरूरी है। किताबों से पढ़-पढ़ के मत प्रेम को समझने की कोशिश करना।

मैंने सुना है, एक पियक्कड़ को एक धर्मगुरु समझा रहा था कि देख, बंद कर यह पीना, नहीं तो परमात्मा से चूक जाएगा। तो उस पियक्कड़ ने कहा कि हमने तो पी-पीके और बेहोश हो-होके ही उसे पहचाना है। तो परीक्षा हो जाए। उसने कहा —

किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज
मैं अपना जाम उठाता हूँ तू किताब उठा

और बिजली किस तरफ चमकती है देखेंगे। तू अपनी किताब उठा — 'मैं अपना जाम उठाता हूँ तू किताब उठा'। 'किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज' — और फिर देखेंगे कि कहाँ से बिजली चमकती है? तेरी किताब से, या मेरे जाम से?

एक किताबों की दुनिया है। और एक जाम की दुनिया है। एक पीनेवालों की दुनिया है, जिन्होंने जाना स्वाद। और एक केवल शब्दों के गुणतारा बिठाने वालों की दुनिया है। इसमें थोड़ा खयाल रखना। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा अवैर। और जिन्होंने नहीं जाना, उन्होंने कहा प्रेम। और जो प्रेम की कहते हैं, उनके कहने से कभी प्रेम नहीं आया। और जिन्होंने अवैर समझाया, उनके कहने से प्रेम आया। यह विरोधाभास है। 'मैं अपना जाम उठाता हूँ तू अपनी किताब उठा'। किताबें मुर्दा हैं। वेद, कुरान, पुरान, सब मुर्दा हैं। जब तक जीवन का जाम खुद न पिया जाए तब तक तुम जो कहते हो, कितनी ही कुशलता से कहो, झूठ झूठ ही रहेगा, सच नहीं हो पाता है।

हमने दो शब्द इस देश में उपयोग किये हैं — एक कवि और एक ऋषि। ऋषि हम उसको कहते हैं जिसका काव्य अनुभव से आया। और कवि हम उसे कहते हैं जिसका काव्य कल्पना से आया। दोनों कवि हैं। लेकिन ऋषि वो है, जिसने जिया। जिसने अपने काव्य में अपने कलेजे को रखा। जिसने पिया। और जिसके ओंठों पर स्वाद है। वो भी शब्दों का उपयोग करता है। लेकिन फर्क हो जाता है। महावीर ने कहा, अहिंसा। प्रेम नहीं। बुद्ध ने कहा, अवैर। प्रेम नहीं। क्योंकि दोनों ने यह बात समझ ली कि असली सवाल प्रेम को लाने का नहीं है, असली सवाल हिंसा को हटाने का है। घृणा है रोग, हटते ही प्रेम का स्वास्थ्य अपने आप उपलब्ध हो जाता है। बदलियाँ घिर गयी हैं, आकाश थोड़े ही लाना है। सिर्फ बदलियाँ हटा देनी हैं। आकाश तो मौजूद ही है। आकाश तो तुम हो। इसलिए अब और प्रेम क्या लाना है, तुम प्रेम हो! थोड़े घृणा के बादल हट जाएँ, बस।

थोड़े से छोटे-छोटे प्रश्न :

बुद्ध ने कहा कि अकेले ही है सत्य की यात्रा। फिर विराटतम संघ क्यों बनाया?

ताकि बहुत से लोग एक साथ अकेले-अकेले की यात्रा पर जा सकें। साथ जाने के लिए संघ नहीं बनाया। साथ तो कोई जा ही नहीं सकता समाधि में। अकेले-अकेले ही जाना होता है। यात्रा का अंत तो सदा अकेले पे होता है। लेकिन प्रारंभ में अगर साथ हो, तो बड़ा ढाढ़स, बड़ा साहस मिल जाता है।

तुम अकेले ध्यान करो, तो भरोसा नहीं आता कि कुछ होगा। तुम्हें अपने पे भरोसा खो गया है। तुम दस हजार आदमियों के साथ ध्यान करो, तुम्हें अपने पे तो भरोसा नहीं है, यह नौ हजार नौ सौ निन्यानबे लोगों की भीड़ पर तुम्हें भरोसा आ जाता है। इनमें से भी प्रत्येक की यही हालत है। इनको अपने पे भरोसा नहीं है। हो भी क्या अपने पर भरोसा ! जिंदगी भर की कुल कमाई कूड़ा-करकट है। कुछ अनुभव तो आया नहीं। इनकी आस्था ही खो गयी है कि हमें, और शांति मिल सकती है। असंभव ! इन्हें अगर आनंद मिल भी जाए, तो ये सोचेंगे कि ये कोई कल्पना हुई, या किसीने कोई जादू कर दिया। मुझे, और आनंद !, नहीं, यह हो नहीं सकता। सभी की यही हालत है। लेकिन दस हजार लोग जब साथ खड़े होते हैं, तो नौ हजार नौ सौ निन्यानबे तुम्हें बल देते हैं कि जिस तरफ इतने लोग जा रहे हैं, वहां कुछ होगा। यह बल प्राथमिक-धक्का बन जाता है। इससे गति शुरू हो जाती है। एक बार गति शुरू हो गयी, फिर तो तुम्हें अपने ही अनुभव से भरोसा आने लगता है। धीरे-धीरे साथ की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम अकेले हो जाते हो। अकेले होने के लिए भी साथ की जरूरत है। तुम इतने कमजोर हो गये हो, तुमने इतना अपने स्वभाव को भुला दिया है कि तुम्हें अपने पर ही भरोसा लाने के लिए भीड की जरूरत हो जाती है।

बुद्ध ने संघ बनाया ताकि लोग अकेले की अंतर्यात्रा पर एक-दूसरे के सहारे प्राथमिक-चरण उठा सकें। अंतिम चरण तो सदा अकेला है। फिर तो वहाँ कोई भी नहीं रह जाता है। और बुद्ध के हिसाब में तो आखिरी चरण पर तुम भी नहीं रह जाते -- 'अनत्ता' : अनात्मा। आत्मा तक खो जाती है। दूसरे की तो फिक्र छोड़ें, बुद्ध कहते हैं, तुम भी नहीं बचते। कुछ बचता है जिसको शब्द देने का उपाय नहीं। अनिर्वचनीय है। शून्य जैसा कुछ। लेकिन न तुम होते, न कोई दूसरा होता। पर प्राथमिक चरण पर इसका उपयोग है। मेरा भी अनुभव यही है कि मैंने लोगों को अकेले-अकेले भी ध्यान करवा के देखा, गति नहीं होती। लेकिन साथ अगर वो ध्यान करते हैं, एक दफा गति हो जाती है, फिर तो वो खुद ही कहने हैं कि अब हम अकेले करना चाहते हैं। साथ से शुरुआत सुगमता से हो जाती है। तुम साहस भी जुटा पाते हो। तुम थोड़े पागल होने की हिम्मत भी जुटा पाते हो। तुम थोड़े आनंदित होने की हिम्मत भी जुटा पाते हो। जब हजार

लोग नाचते हैं, तो तुम्हारे पैर में भी कोई नाचने लगता है । तब रोके नहीं रुकता। और जब हजार लोग आल्हादित होते हैं, तो उनका आल्हाद संक्रामक हो जाता है। बीमारी ही संक्रामक नहीं होती, स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। और जब दस लोग उदास बैठे हों, तो उनके बीच तुम भी उदास हो जाते हो । और जब दस लोग हँसते हैं, तो उनके बीच तुम भी हँसने लगते हो ।

बुद्ध को यह समझ में आ गया। बुद्ध ने यह पहला संघ बनाया, क्योंकि उन्हें यह बात समझ में आ गयी कि आदमी इतना कमजोर हो गया है कि अकेला जा न सकेगा । यात्रा अकेले की है; पर अकेला जा न सकेगा । संघ-साथ हिम्मत बढ़ जाएगी ।

आखिरी प्रश्न : हमें आपके शब्दों में कोई श्रद्धा नहीं बैठती और आपके सारे शब्द झूठ प्रतीत होते हैं । फिर भी यहाँ से चले जाने का मन क्यों नहीं होता है ?

यह पूछा है आनंद सरस्वती ने ।

शब्द ही मेरे ऐसे हैं कि श्रद्धा बैठ न सकेगी । क्योंकि मैं उस दुनिया की बात नहीं कर रहा हूँ जिस पर तुम्हें श्रद्धा है, और जिस पर श्रद्धा तुम्हें आसानी से बैठ जाए। मैं जो कह रहा हूँ वो तुम्हारे सिर के ऊपर से निकल जाता है । तुम्हें जरा अपने सिर को ऊँचा करना पड़ेगा ।

दो ही उपाय है । या तो मैं जो कह रहा हूँ उसे नीचा करूँ; तब मैं व्यर्थ हो जाऊँगा, उसका कोई सार न रहेगा । दूसरा उपाय है कि तुम जरा अपना सिर ऊपर करो। तुम जरा ऊपर उठो। हर आदमी ऐसा सोचता है मन में कि जैसे श्रद्धा तो उसके पास है ही। बिठाना भर है। श्रद्धा तुम्हारे पास है नहीं अभी। होती तो बैठ जाती । जिनके पास है, बैठ गयी है । जिनके पास श्रद्धा ही नहीं है, बैठेगी कैसे?

तुम्हारी हालत ऐसी है कि मैंने सुना कि मुल्ला नसरुद्दीन आँख के डॉक्टर के पास गया । और उसने कहा कि आँख बड़ी कमजोर है । तो डॉक्टर ने कहा कि कोई फिकर न करो । पढ़ो सामने तख्ती पर यह बारहखड़ी लिखी है । उसने कहा कुछ दिखायी नहीं पड़ता । कुछ नहीं ? उसने कहा कुछ दिखायी नहीं पड़ता । तो उसने कहा कि आँख बहुत कमजोर है, चश्मा लग जाएगा, सब ठीक हो जाएगा । नसरुद्दीन ने कहा, फिर मैं पढ़ सकूँगा ? उसने कहा बिलकुल पढ़ सकोगे । नसरुद्दीन ने कहा धन्यभाग ! क्योंकि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ ।

अब चश्मा लगाने से थोड़े ही तुम पढ़े-लिखे हो जाओगे । मुझे सुन-सुनकर थोड़े ही श्रद्धा बैठ जाएगी । श्रद्धा होनी भी तो चाहिए ! तो पहले तो तुममें मैं श्रद्धा पैदा करने की कोशिश कर रहा हूँ ।

श्रद्धा पैदा नहीं होती, घबड़ाओ मत। जल्दी भी कोई नहीं है। झूठी श्रद्धा मत करना, पहली बात। जब तक न हो, करना मत। प्रतीक्षा करना। जल्दबाजी मत करना। क्योंकि जिसने झूठी कर ली, वो सच्ची श्रद्धा से सदा के लिए वंचित रह जाएगा। संदेह करो, हर्ज क्या है? अभी संदेह है तो संदेह ही करो। कुछ तो करो। श्रद्धा नहीं सही, संदेह सही। संदेह से ही धीरे-धीरे श्रद्धा की तरफ उठोगे—संदेह करते-करते जब तुम पाओगे कि संदेह थकता है और गिरता है। मैं जो कह रहा हूँ तुम उसे संदेह से काट न सकोगे। मैं जो कह रहा हूँ वो तुम्हारे संदेह को काट देगा। होने दो संघर्ष, जल्दी कुछ नहीं है।

और तुम कहते हो कि आपके सारे शब्द झूठ प्रतीत होते हैं। ठीक ही है बात। होंगे ही। क्योंकि तुम जहाँ खड़े हो वहाँ तुमने झूठ को सच मान रखा है। इसलिए जब तुम सच को पहली बार सुनोगे, वो झूठ मालूम होगा। और थोड़ा सोचो। अंधी-श्रद्धा मत करना। सच्ची अश्रद्धा भी बेहतर है झूठी श्रद्धा से। ईमानदार रहना। प्रामाणिक रहना।

और तुम पूछते हो कि फिर यहाँ से चले जाने का मन क्यों नहीं होता? शायद तुम्हें पता न हो, तुम्हारे भीतर कहीं श्रद्धा का अंकुरण शुरू हो गया होगा। खुद भी खबर लगने में देर लगती है। जो हृदय में शुरू होता है, बुद्धि तक खबर पहुँचने में कई दफे वर्षों लग जाते है। इसलिए भाग भी नहीं सकते। फँस गये। अब जाने का उपाय भी नहीं है। और अभी श्रद्धा भी नहीं हुई है और भागना मुश्किल हो गया है। तो थोड़ा सोचो, जब श्रद्धा हो जाएगी तब कैसी गति होगी?

सौभाग्यशाली हो कि श्रद्धा भी नहीं हुई है, शब्द झूठ भी लगते हैं, फिर भी हृदय जाने नहीं देता। हृदय तुम्हारे पास कीमती है। तुम्हारी बुद्धि और खोपड़ी से ज्यादा मूल्यवान है। तुमसे ज्यादा बड़ी चीज तुम्हारे भीतर छिपी है, वो तुम्हें नहीं ले जाने देती, जागने नहीं देती। तुमसे बड़ा कोई तुम्हारे भीतर बैठा है, उसे मेरे शब्द समझ में आ रहे हैं, उसकी मुझपर श्रद्धा हो गयी है।

आज इतना ही।

ध्यानाच्छादित अंतर्लोक में राग को राह नहीं

२३ नवंबर १९७५

सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं व दुब्बलं ॥ ७॥
असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं व पब्बतं ॥ ८॥
असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥ ९॥
सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥ १०॥
यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥ ११॥
यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥ १२॥

गौतम बुद्ध दार्शनिक नहीं हैं। 'मेटाफिजिक्स' और परलोक के प्रश्नों मे उनकी जरा भी—जरा भी—रुचि नही है। उनकी रुचि है मनुष्य के मनोविज्ञान में। उनकी रुचि है मनुष्य के रोग में और मनुष्य के उपचार में। बुद्ध ने जगत को एक उपचार का शास्त्र दिया है। वे मनुष्य जाति के पहले मनोवैज्ञानिक हैं।

इसलिए बुद्ध को समझने में ध्यान रखना, सिद्धांत या सिद्धांतों के आसपास तर्कों का जाल उन्होंने जरा भी खड़ा नहीं किया है। उन्हें कुछ सिद्ध नहीं करना है। न तो परमात्मा को सिद्ध करना है, न परलोक को सिद्ध करना है। उन्हें तो आविष्कृत करना है, निदान करना है। मनुष्य का रोग कहाँ है, मनुष्य का रोग क्या है, मनुष्य दुखी क्यों है? यही बुद्ध का मौलिक प्रश्न है। परमात्मा है या नहीं; संसार किसने बनाया, नहीं बनाया; आत्मा मरने के बाद बचती है या नहीं; निर्गुण है परमात्मा या सगुण; इस तरह की बातों को उन्होंने व्यर्थ कहा है। और इस तरह की बातों को उन्होंने आदमी की चालाकी कहा है। ये जीवन के असली सवाल से बचने के उपाय हैं। ये कोई सवाल नहीं हैं। इनके हल होने से कुछ हल नहीं होगा।

नास्तिक मानता है ईश्वर नहीं है, तो भी वैसे ही जीता है। आस्तिक मानता है ईश्वर है, तो भी उसके जीवन में कोई भेद नहीं। अगर नास्तिक और आस्तिक के जीवन को देखो तो तुम एक-सा पाओगे। तो फिर उनके विचारों का क्या परिणाम है?

परलोक है या नहीं, इससे तुम नहीं बदलते। और बुद्ध कहते हैं जबतक तुम न बदल जाओ, तब तक समय व्यर्थ ही गँवाया। बुद्ध की उत्सुकता तुम्हारी आंतरिक क्रांति में है। बुद्ध बार-बार कहते थे, मनुष्य की दशा उस आदमी जैसी है जो एक अनजानी राह से गुजरता था और एक तीर आकर उसकी छाती में लग गया। तो गिर पड़ा है। लोग आ गये है। लोग उसका तीर निकालना चाहते है। लेकिन वो कहता है ठहरो, पहले मुझे यह पता चल जाए कि तीर किसने मारा। ठहरो, मुझे यह पता चल जाए कि तीर उसने क्यो मारा। ठहरो, मुझे यह पता चल जाए कि तीर आकस्मिक रूप से लगा है या सकारण। ठहरो, मुझे यह पता चल जाए कि तीर विषबुझा है, या बिन-विषबुझा।

बुद्ध ने कहा, वह आदमी दार्शनिक रहा होगा। बड़े ऊँचे सवाल उठा रहा है। लेकिन जो लोग इकट्ठे थे उन्होंने कहा, यह सवाल तुम पीछे पूछ लेना। पहले तीर निकाल लेने दो, अन्यथा पूछनेवाला मरने के करीब है। उत्तर भी मिल जाएँगे तो हम किसे देंगे? और अभी इन प्रश्नों की कोई आत्यंतिकता नहीं है। अभी तीर खींच लेने दो। तीर छाती में लगा है, खतरा है। तुम ज्यादा देर न बच सकोगे।

बुद्ध कहते, ऐसी ही दशा में मैं तुम्हें पाता हूँ। और तुम पूछते हो कि संसार किसने बनाया? पहले इसका पता चल जाए, तब करेंगे ध्यान। क्यों बनाया? पहले इसका पता चल जाए, तब बदलेंगे जीवन को। क्या कारण है परमात्मा का संसार बनाने में? क्यों यह लीला उसने रची? जब तक इसका पता न चल जाए, तबतक हम मंदिर में प्रवेश न करेंगे। बुद्ध कहते हैं, जीवन का तीर छाती में चुभा है। पल-पल मर रहे हो। किसी भी क्षण डूब जाओगे। यह उत्तर, यह प्रश्न, सब व्यर्थ हैं। अभी तो एक ही बात पूछो कि कैसे यह तीर निकल आए।

इसलिए बुद्ध की बातें शायद उतनी गहरी न मालूम पड़ें जितनी कपिल और कणाद की; कांट और हीगल की; प्लेटो और अरस्तू की। लेकिन ज्यादा यथार्थ हैं। ज्यादा वास्तविक हैं। और गहराई का करोगे क्या, अगर गहराई झूठी हो और शब्दों की हो? असली सवाल यथार्थ को समझना है।

बुद्ध पहले मनुष्य हैं जिन्होंने परमात्मा के बिना ध्यान करने की विधि दी। जिन्होंने परमात्मा की मान्यता को ध्यान के लिए आवश्यक न माना। और न केवल परमात्मा की बल्कि आत्मा की धारणा को भी ध्यान के लिए आवश्यक न माना।

उन्होंने कहा, ध्यान तो स्वास्थ्य है। तुम स्वस्थ हो सकते हो। फिर शेष तुम खोज लेना। मैं तुम्हें रोग से मुक्त करने आया हूँ।

इसलिए बुद्ध को तुम एक मनस्-चिकित्सक की भाँति देखना। वे धर्मगुरु नहीं हैं। धर्मगुरु मान लेने से बड़ी भ्रांति हो गयी। तो लोग उन्हें दूसरे धर्मगुरुओं के साथ गिन देते हैं। वे धर्मगुरु जरा भी नहीं हैं। कहीं परमात्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो सकता है? कहीं आत्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो सकता है? तत्त्व की तो कोई बुद्ध ने बात ही नहीं की। तथ्य की बात की। उन जैसा यथार्थ-वादी खोजना मुश्किल है। और उन्होंने मनुष्य की असली तकलीफ को पकड़ा। और कहा यह तकलीफ सुलझ सकती है।

उन्होंने चार आर्य-सत्यों की घोषणा की : कि मनुष्य दुखी है। इसमें किसको संदेह होगा? इसका कौन विरोध करेगा? मनुष्य दुखी है। मनुष्य के दुख का कारण है। ठीक बुद्ध वैसा ही बोलते हैं जैसे वैज्ञानिक बोलता है। दुख का कारण है। क्योंकि अकारण कैसे दुख होगा? पैर में पीड़ा हो, तो काँटा लगा होगा। सिर दुखता हो, तो कारण होगा। पीड़ा है तो अकारण कैसे होगी? पीड़ा का कारण है।

तो बुद्ध ने कहा, पहला आर्य-सत्य कि मनुष्य दुख में है। दूसरा आर्य-सत्य कि दुख का कारण है। और तीसरा आर्य-सत्य कि दुख के कारण को मिटाया जा सकता है। और चौथा आर्य-सत्य, कि एक ऐसी भी दशा है जब दुख नहीं रह जाता।

बुद्ध ने यह भी नहीं कहा कि वहाँ आनंद होगा। क्योंकि, वो कहते हैं, व्यर्थ की बातों को क्यों करना? इतना ही कहा, वहाँ दुख नहीं होगा। आनंद को तुम समझोगे कैसे? आनंद तुमने जाना नहीं। वो शब्द थोथा है, अर्थहीन है। तुम उसमें जो अर्थ भी डालोगे, वह वही होगा जो तुमने जाना है। तुम अपने सुख को ही आनंद समझोगे। उसको थोड़ा बड़ा कर लोगे—करोड़ गुना कर लोगे—लेकिन वो मात्रा का भेद होगा, गुण का न होगा। और आनंद गुणात्मक रूप से भिन्न है। वो तुम्हारा सुख बिलकुल नहीं है। वह तुम्हारा दुख भी नहीं है, सुख भी नहीं है। तो बुद्ध ने कहा, उसकी बात कैसे करें? उसकी बात ही करनी उचित नहीं। इतना ही कहा कि दुख-निरोध हो जाएगा। तुमने जिसे दुख की तरह जाना है, वह वहाँ नहीं होगा। बीमारी नहीं होगी। स्वास्थ्य क्या होगा, वो तुम स्वयं स्वाद ले लेना और जान लेना। और जिन्होंने भी स्वाद लिया, उन्होंने कहा नहीं। गूँगे का गुड़ है।

यह जो बुद्ध के वचन हैं, उनके मनोविज्ञान की आधारशिलाएँ हैं—

'विषय-रस में शुभ देखते हुए विहार करनेवाले, इंद्रियों में असंयत, भोजन में

मात्रा न जाननेवाले, आलसी और अनुद्यमी पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है जैसे आँधी दुर्बल वृक्ष को।'

विषय-रस में शुभ देखते हुए जो जीता है, वह निरंतर दुख में गिरता है। इस बात को विस्तार से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि समस्त योग और समस्त आध्यात्म इसी बात की समझ पर खड़ा होता है। विषय में रस मालूम होता है। रस विषय में है, या मनुष्य की अपनी धारणा में। कभी कुत्ते को देखा, सूखी हड्डी को चूसता है और रस पाता है। सोचता है सूखी हड्डी से लहू निकल रहा है। लहू निकलता नहीं। सूखी हड्डी मे कहाँ लहू? लेकिन सूखी हड्डी मुँह में चबाता है तो उसके मुँह से ही लहू बहने लगता है। सूखी हड्डी गड़ती है, चोट करती है मुँह में, लहू निकल आता है। उस लहू को वो पीता है, और सोचता है, हड्डी से रस मिल रहा है। लेकिन कुत्ते को समझाओ, समझेगा न। उसने कभी भीतर प्रवेश करके देखा नहीं, कि सूखी हड्डी से कैसा रस निकलेगा! सूखी हड्डी रसहीन है। और अगर रस निकल रहा है तो कहीं मुझसे ही निकलता होगा।

मैंने सुना है, कि एक सर्दी की सुबह एक कुत्ता एक वृक्ष के नीचे धूप ले रहा है और विश्राम कर रहा है। उसी वृक्ष के ऊपर जगह बनाए बैठी है एक बिल्ली, वह भी सुबह की झपकी ले रही है। उसको नींद में बडे प्रसन्न होते देखकर कुत्ते ने पूछा कि मामला क्या है? तू बड़ी आनंदित मालूम होती है। उस बिल्ली ने कहा कि मैंने एक सपना देखा--बड़ा अनूठा सपना, कि वर्षा हो रही है, पानी नहीं गिर रहा चूहे गिर रहे हैं। कुत्ते ने कहा, नासमझ बिल्ली! नासमझ कहीं की, मूढ़! न शास्त्र का ज्ञान, न पुराण पढ़े, न इतिहास का पता! शास्त्रों में कभी भी ऐसा उल्लेख नहीं है। हाँ, कई दफा वर्षा हुई है, सूखी हड्डियाँ जरूर बरसी हैं, चूहे कभी नहीं।

लेकिन वो कुत्तों का शास्त्र है। बिल्ली के शास्त्रों में चूहों के बरसने का ही उल्लेख है। कुत्ते को सूखी हड्डी में रस है। इसलिए उसके पुराण सूखी हड्डियों के पास निर्मित होंगे। बिल्ली को चूहे में रस है। तो निश्चित ही चूहे में कुछ ऐसा नहीं है जिसके कारण बिल्ली को रस है। बिल्ली में ही कुछ ऐसा है, जो चूहे में रस है। कुत्ते में ही कुछ ऐसा है, जो हड्डी मे रस है।

हमारी वृत्ति में कहीं रस का कारण है, विषय-वस्तु में नहीं। यह पहला विश्लेषण है।

मैं पढ़ रहा था, दूसरे महायुद्ध में एक घटना घटी। बर्मा के जंगलों में सिपाहियों का एक जत्था--सैनिकों का एक जत्था जूझ रहा है युद्ध में। महीनों हो गये। उन युवकों ने स्त्री की शकल नहीं देखी। और एक दिन दोपहर को एक तोता

उड़ा जोर से कहता हुआ कि बड़ी सुदर युवती है, अत्यंत सुंदर युवती है। सैनिकों ने अपनी बंदूके रख दीं। बहुत दिन हुए स्त्री नहीं देखी। और तोता कह रहा है। तो वे सब तोते का पीछा करते हुए भागे कि कहां जा रहा है। और वे जब पहुँचे, परेशान, झाड़ियों को पार करते हुए, तो वहाँ कोई स्त्री न थी। एक मादा तोता, जिसकी वो तोता खबर कर रह था। उन्होंने अपना सिर पीट लिया कि कहाँ इस नासमझ की बातों में पड़े!

लेकिन तोते का रस मादा तोते में है। तुम्हें कोई रस नहीं मालूम होता मादा तोते में। मादा तोते में कोई रस है भी नही। वह तो नर तोते की धारणा में है। पुरुष को स्त्री मे रस मालूम होता है। स्त्री को पुरुष में रस मालूम होता है। वो रस बाहर नहीं है, वो तुम्हारी भावदशा में है। वो तुममें है। बुखार के बाद स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन में स्वाद नहीं मालूम होता। तुम्हारी जीभ ही बदल गयी है। तुम्हारी जीभ में स्वाद लेने की जो क्षमता है वही नहीं रही है। भोजन में थोड़े ही स्वाद होता है। स्वाद तुम्हारी जीभ की क्षमता है। जब तुम स्वस्थ होते हो, स्वाद होता है। जब अस्वस्थ होते हो, स्वाद खो जाता है। जीवन का जो रस है वो वस्तु में और विषय में नही है, वो स्वयं तुममें है। और जब तक तुम उसे विषयों में देखोगे, तबतक तुम गलत मार्ग पर भटकते रहोगे, क्योंकि तुम विषय का पीछा करोगे। जब तुम देखोगे कि वो रस मुझमें ही है, वो मैंने ही डाला है वस्तु मे, वो मैंने ही प्रक्षेपित किया है, वो रस मैंने ही आरोपित किया है, उसी दिन तुम्हारे जीवन में क्रांति शुरू हो जाएगी। तब रस को खोजना हो तो अपने भीतर गहरे जाओ। अब बाहर जाने की कोई जरूरत न रही।

दुनिया में दो ही तरह की यात्राएँ हैं। एक बाहर की यात्रा है, अधिक लोग उसी यात्रा पर जाते हैं, क्योंकि उनको दिखता है कि रस बाहर है। हड्डियों मे रस मालूम होता है। फिर कुछ लोग जाग जाते हैं। और उन्हें दिखायी पड़ता है, बाहर तो रस नही है, रस मैं ही डालता हूं। मैं ही डालता हूँ और मैं ही अपने को भरमा लेता हूँ। रस मुझमें है। तो फिर वे अंतर्यात्रा पर जाते हैं। उस अंतर्यात्रा को ही बुद्ध ने योग कहा है।

'विषय-रस में शुभ देखते हुए विहार करनेवाले, इंद्रियों में असंयत।' और जब तुम विषय-रस में देखोगे रस, विषय में देखोगे रस, तब तुम्हारी इंद्रियाँ अपने आप असंयत हो जाएँगी। क्योंकि मन चाहता है, भोग लो जितना ज्यादा भोग सको। कुछ चूक न जाए। समय भागा जाता है। जीवन चुका जाता है। मौत करीब आती चली आती है। कुछ छूट न जाए। कुछ ऐसा न रह जाए कि मन में पछतावा रहे कि भोग न पाए। तो भोग लो, ज्यादा से ज्यादा भोग लो। उस

ज्यादा की दौड से असयम पैदा होता है। आँख थक जाती है, तो भी तुम रूप को देखे चले जाते हो। जीभ थक जाती है, तो भी तुम भोजन किये चले जाते हो। पेट और लेने को तैयार नही है, फिर भी तुम भरे चले जाते हो। तब रस तो दूर रहा, विरस पैदा होता है। ज्यादा खाने से कोई आनदित नही होता, पीडित होता है। ज्यादा देखने से आँखे सौंदर्य से नही भरती, सिर्फ थक जाती हैं, धूमिल हो जाती है। ज्यादा दौडने से, धन-वस्तुएँ इकट्ठी करने से भीतर एक तरह की रिक्तता बढती जाती है, कुछ भराव नही आता। लेकिन मरते दम तक, आखिरी क्षण तक आदमी भोग लेना चाहता है। मैंने सुना है--

गो हाथ को जुबिश नही आँखो मे तो दम है

रहने दे अभी सागर और मीना मेरे आगे

मर रहे हो, हाथ नही हिल सकता-- 'हाथ को जुबिश नही'। 'आँखो मे तो दम है' --अभी देख तो सकता हूँ। इसलिए शराब की प्याली तुम मेरे सामने से मत हटाओ। हाथ बढाके पी भी नही सकता-- 'रहने दे अभी सागर और मीना मेरे आगे'-- पर देख तो सकता हूँ।

मरते दम तक, जब तक आखिरी श्वास चलती है, तब तक भोग का रस बना रहता है। वो छूटता नही। जवानी चली जाती है, बुढापा घेर लेता है, लेकिन मन जवान ही बना रहता है। मन उन्ही तरगो से भरा रहता है, जो जवानी मे तो सगत भी हो सकती थी -- तूफान था। अब तो तूफान भी जा चुका, तूफान के चिह्न रह गये है रेत के तट पर बने, याददाश्त रह गयी है। लेकिन याददाश्त भी भरमाती है, सपने बनाती है। मन मे तो व्यक्ति जवान ही बना रहता है। मौत आ जाती है, लेकिन भीतर आदमी जीवन के रस मे ही डूबा रहता है। तब दुख न हो तो क्या हो ?

दुख का अर्थ है, जहाँ नही था वहाँ खोजा। दुख का और क्या अर्थ है ? रेत से तेल निकालने की चेष्टा की। आकाश-कुसुम तोडने चाहे, जो थे ही नही। खरगोश के सीग खोजे जो थे ही नही। दुख का इतना ही अर्थ है, जो नही हो सकता था उसकी कामना की। फिर हाथ खाली रह जाते हैं, मन बुझा-बुझा। सब तरफ विफलता का ढेर लग जाता है। और वही ढेर तुम्हारी कब्र बन जाता है। जबतक विषय में रस है और ऐसा दिखायी पडता है कि वहाँ सुख है, जब तक आँख भीतर नही मुडी और यह नहीं दिखायी पडा कि सुख मैंने डाला है, वो मेरी दृष्टि है, मैं जहाँ डालूँ वहाँ सुख होगा, और जब मुझे यह समझ मे आ जाए कि सुख मुझमें ही है --तो फिर डालने का सवाल क्या --मै अपने मे डूब जाऊँ तो महा-सुख होगा, आनद होगा। जबतक वैसी घडी नही घटती तबतक इद्रियां असयत

होगी। जब दृष्टि ही भ्रात है तो सयम नहीं हो सकता। संयम तो सतुलित दृष्टि का परिणाम है। सयम तो सम्यक् दृष्टि का परिणाम है। सम्यक् का अर्थ है, जहाँ है वहाँ दिखायी पड़े, जहाँ नही है वहाँ दिखायी न पड़े। तो फिर खोज सार्थक हो जाती है। तो उपलब्धि होती है, तो सिद्धि होती है, तो जीवन में सुख के फूल लगते हैं, तो आनंद का अहोभाव पैदा होता है।

'विषय-रस मे शुभ देखते हुए विहार करनेवाले, इन्द्रियो में असयत, भोजन में मात्रा न जाननेवाले, आलसी और अनुद्यमी पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है जैसे आँधी दुर्बल वृक्ष को।'

मार बुद्ध का शब्द है, कामवासना के देवता के लिए। यह शब्द बहुत अच्छा है। ये राम का बिलकुल उलटा है। अगर राम को उलटा करके लिखें तो म, फिर बड़े अ की मात्रा, और फिर र। ठीक उलटा हो जाए तो मार हो जाता है। मार बुद्ध का शब्द है, कामवासना के देवता के लिए। और दो ही चित्तदशाएँ हैं। या तो मार से प्रभावित, या राम से आंदोलित। या तो तुम भीतर की तरफ चलो, तब तुम राम की तरफ चले, या तुम बाहर की तरफ चलो, तब तुम मार की तरफ चले।

'मार उस व्यक्ति को वैसे ही गिरा देता है जैसे आँधी दुर्बल वृक्ष को।' कामवासना का देवता शक्तिशाली नही है, तुम दुर्बल हो। इस बात को ठीक से स्मरण रखो। कामवासना का देवता शक्तिशाली नही है। और अगर तुम गिर गये हो ता उसकी शक्ति के कारण नही गिरे हो। तुम गिरे हो अपनी दुर्बलता के कारण। जैसे कि कोई सूखा जड़ से टूटा वृक्ष दुर्बल हुआ, दीन-जर्जर हुआ, वृद्ध हुआ, आँधी मे गिर जाता है। आँधी न भी आती तो भी गिरता। आँधी तो बहाना है। आँधी तो मन समझाने की बात है। क्योंकि ऐसे ही गिर गये बिना किसीके गिराए, तो चित्त को और भी पीड़ा होगी। न भी आँधी आती तो वृक्ष गिरता ही। अपनी ही दुर्बलता गिराती है। दूसरे की सबलता का सवाल नही है। क्योंकि वस्तुत वहाँ कोई वासना का देवता खड़ा नहीं है, जो तुम्हें गिरा रहा है। तुम ही गिरते हो। अपनी दुर्बलता से गिरते हो। और आदमी दुर्बल कैसे हो जाता है? जो जहाँ नही है वहाँ खोजने से धीरे-धीरे अपने पे आस्था खो जाती है। व्यर्थ में सार्थक को खोजने से और न पाने से आत्मविश्वास डिग जाता है। पैर लड़खड़ा जाते हैं। और जीवन भर असफलता हाथ लगती हो तो स्वाभाविक है कि भरोसा नष्ट हो जाए। और आदमी डरने लगे, कँपने लगे। पैर उठाए उसके पहले ही जानने लगेगा कि मंजिल तो मिलनी नहीं है, यात्रा व्यर्थ है, क्योंकि हजारों बार यात्रा की है और कभी कुछ हाथ लेकर लौटा नहीं। हाथ खाली के खाली रहे।

'आलसी और अनुद्यमी।' आलस्य असंयत जीवन का परिणाम है। जितना ही इंद्रियाँ असंयत होंगी और जितना ही वस्तुओं में, विषयों में रस होगा, उतना ही स्वभावतः आलस्य पैदा होगा। आलस्य इस बात की खबर है कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा एक संगीत में बँधी हुई नहीं है। आलस्य इस बात की खबर है कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा अपने भीतर ही संघर्षरत है। तुम एक गहरे युद्ध में हो। तुम अपने से ही लड़ रहे हो। अपना ही घात कर रहे हो। उद्यम बुद्ध उसीको कहते हैं जब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा एक संगीत में प्रवाहित होती है। तुम्हारे सब स्वर एक लय में बद्ध हो जाते है। तुम एक पुंजीभूत शक्ति हो जाते हो। तब तुम्हारे भीतर बड़ी ताजगी है, बड़े जीवन का उद्दाम वेग है। तब तुम्हारे भीतर जीवन की चुनौती लेने का सामर्थ्य है। तब तुम जीवंत हो। अन्यथा मरने के पहले ही लोग मर जाते हैं। मौत तो बहुत बाद में मारती है, तुम्हारी नासमझी बहुत पहले ही मार डालती है।

'विषय-रस में अशुभ देखते हुए विहार करनेवाले, इंद्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जाननेवाले, श्रद्धावान और उद्यमी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आँधी शैल पर्वत को।'

आँधी आती है, जाती है। कोई हिमालय उससे डिगता नहीं। पर तुम्हारे भीतर हिमालय की शांत, संयत दशा होनी चाहिए। हिमालय एक प्रतीक है। बहुमूल्य शैल-शिखर। अर्थ केवल इतना है कि तुम जब भीतर अडिग हो, जब तुम्हें कुछ भी डिगाता नहीं, जब तुम ऐसे स्थिर हो जैसे शैल-शिखर — आँधी आती है, चली जाती है; तुम वैसे ही खड़े रहते हो जैसे पहले थे — तब तो ऐसा होगा कि आँधी तुम्हें और स्वच्छ कर जाएगी। गिराना तो दूर, तुम्हारी धूल-झंखाड़ झाड़ जाएगी। तुम्हें और नया कर जाएगी, ताजा कर जाएगी।

इसे ऐसा समझो कि तुम राह से गुजरते हो। एक सुंदर युवती पास से गुजर गयी। इस सुंदर युवती में जीवन की एक धारा, एक तरंग तुम्हारे पास से गुजरी। अगर तुम्हारी ऐसी भ्रांति, चित्त की दशा है कि रस विषय में है, तो तुम कँप जाओगे। तो यह स्त्री का गुजर जाना या पुरुष का गुजर जाना, तुम्हें ऐसे कँपा जाएगा जैसे कि कोई सूखे, मरते हुए वृक्ष को आँधी कँपा जाए। गिरने-गिरने को हो जाए, या गिर ही जाए। तब तुम पाओगे कि यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण हो गयी। लेकिन अगर तुम संयत हो, अगर तुम शांत हो, अगर तुम मौन हो और अडिग हो, अगर ध्यान की तुम्हारे जीवन में थोड़ी सी भी किरण उतरी है, अगर तुमने थोड़ा-सा भी जाना है कि चैतन्य का शांत हो जाना क्या है, तुमने अगर अपने भीतर बैठने और खड़े होने की कला थोड़ी सी भी सीखी है और उस घड़ी

में — जब एक सुंदर युवती पास से निकली या एक सुंदर युवक पास से निकला — अगर तुम अपने भीतर ध्यान में खड़े रहे, तो तुम पाओगे उस स्त्री का सौंदर्य, जो जीवन की धारा तुम्हें निखार गयी, तुम्हें ताजा कर गयी, तुम्हें प्रफुल्लित कर गयी। जैसे आँधी निकल गयी हो और वृक्ष पर जमी हुई धूल वर्षों की झड़ गयी हो। वृक्ष और ताजा हो गया।

जीवन को देखने के ढंग पर सब कुछ निर्भर है। अगर तुम्हारे देखने का ढंग गलत है, तो जीवन तुम्हारे साथ जो भी करेगा वो गलत होगा। तुम्हारा देखने का ढंग सही है, तो जीवन तो यही है, कोई और दूसरा जीवन नहीं है, लेकिन तब तुम्हारे साथ जो भी होगा वही ठीक होगा। बुद्ध भी इसी पृथ्वी से गुजरते हैं, तुम भी इसी पृथ्वी से गुजरते हो। यही चाँद-तारे हैं। यही आकाश है। यही फूल हैं। लेकिन एक के जीवन में रोज पवित्रता बढ़ती चली जाती है। एक रोज-रोज निर्दोष होता चला जाता है। निखरता चला जाता है। और दूसरा रोज-रोज दबता चला जाता है, बोझिल होता जाता है, धूल से भरता जाता है, अपवित्र होता जाता है, गंदा होता जाता है। मृत्यु जब बुद्ध को लेने आएगी तो वहाँ तो पाएगी मंदिर की पवित्रता, वहाँ तो पाएगी मंदिर की धूप, मंदिर के फूल। वहाँ तो पाएगी एक कुँवारापन, जिसको कुछ भी विकृत न कर पाया। जैसा कबीर ने कहा है — 'ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया।' तो बुद्ध तो चादर को वैसा का वैसा रख देंगे। मुझे तो लगता है कबीर ने जो कहा, वो थोड़ा अंडर-स्टेटमेंट है। वो अतिशयोक्ति तो है ही नहीं, सत्य को भी बहुत धीमे स्वर में कहा है। क्योंकि मेरी दृष्टि ऐसी है, कि जब बुद्ध चादर को लौटाएँगे तो वो और भी पवित्र होगी। उससे भी ज्यादा पवित्र होगी जैसी उन्होंने पायी थी। होनी ही चाहिए। क्योंकि जैसे अपवित्रता बढ़ती है और विकासमान है, वैसे ही पवित्रता बढती है और विकासमान है। जो पवित्रता बुद्ध को बीज की तरह मिली थी, बुद्ध उसे एक बड़े वृक्ष की तरह लौटाएँगे।

जीसस एक कहानी कहते थे, कि एक बाप चिंतित था। तीन उसके बेटे थे और बड़ा उसके पास धन, बड़ी समृद्धि थी। कुछ तय न कर पाता था, किस बेटे को मालिक बनाए। तो उसने एक तरकीब की। उसने तीनों बेटों को बुलाया और तीनों बेटों को समान मात्रा में फूलों के बीज दिये और कहा कि मैं तीर्थयात्रा को जा रहा हूँ, इनको तुम सम्हालकर रखना। जब मैं वापिस आऊँ, तो मुझे वापिस लौटा देना। और ध्यान रहे इस पर बहुत कुछ निर्भर है। इसलिए लापरवाही मत करना। यह बीज ही नहीं है, तुम्हारा भविष्य! बाप तीन वर्ष बाद वापिस लौटा।

बड़े बेटे ने सोचा, 'इन बीज को कहाँ सम्हाल के रखेंगे? सड़ जाएँगे। और

कुछ कम-बढ़ हो गया, झंझट होगी; और बाप कह गया है, भविष्य! तो उसने सोचा यही उचित होगा कि इनको बाजार में बेच दिया जाए। पैसे को सम्हालकर रखना आसान होगा। फिर जब बाप लौटेगा, फिर बाजार से खरीदकर बीज उसको लौटा देंगे। यह बात ठीक गणित की थी।

दूसरे बेटे ने सोचा कि कैसे सम्हाला जाए? बीज कहीं खो न जाएँ, कुछ कमी न हो जाए, सड़ न जाएँ, कुछ गड़बड़ न हो जाए। और फिर जो बीज दिये हैं, कहीं बाप उन्हींकी जिद् न करे, तो बेचना तो उचित नहीं है। और जब उसने कहा भविष्य इनपर निर्भर है; तो उसने एक तिजोड़ी में सब बीजों को बंद करके, ताला लगाकर चाबी सम्हालकर रख ली।

तीसरे बेटे ने बीजों को जाकर बो दिया बगीचे में। क्योंकि बीज कहीं तिजोड़ी में सम्हाले जाते हैं? और बाप ने जो अमानत दी है, वो कोई बाजार में बेचने की बात है? फिर खरीदके भी लौटा देंगे, तो वे वही बीज तो न होंगे। और बीज तो विकासमान हैं। उसको सम्हालके रखने में तो या तो सड़ेगा, खराब होगा। और एक बीज तो करोड़ बीज हो सकता है। जब पिता लौटेंगे, तब तक और बहुत बीज लग जाएँगे।

तीन वर्ष बाद जब पिता लौटा तो उसने बड़े को कहा। वो भागा बाजार की तरफ। उसने कहा रुकिए, अभी लाता हूँ। वो बाजार से बीज खरीद लाया, ठीक उसी मात्रा में थे। लेकिन बाप ने कहा यह मेरे बीज नहीं हैं। जो मैंने दिये थे वो तुमने कहीं गवाँ दिये। ये कोई और बीज होंगे। लेकिन जो मैंने तुम्हे सम्हालने को दिये थे वे कहाँ हैं? दूसरे बेटे को कहा। उसने तिजोड़ी सामने लाके खोल दी। वहाँ से सिर्फ दुर्गंध उठी। क्योंकि सब बीज सड़ गये थे। राख थी वहाँ अब। बाप ने कहा, मैंने तुम्हें बीज दिये थे और तुम राख लौटाते हो। तो बेटे ने कहा ये वही बीज हैं। बाप ने कहा यह वही नहीं हैं। दूसरे ने तो कम से कम बीज लौटाए हैं — दूसरे बीज हैं, तुम्हारे तो बीज भी नहीं हैं। यह तो राख है। मैंने तुम्हें बीज दिये थे। बीज का मतलब होता है जो अंकुरित हो सके। क्या यह राख अंकुरित हो सकेगी? क्या इसमें फूल लग सकेंगे? तीसरे बेटे को पूछा। बेटे ने कहा आप मकान के पीछे आएँ, क्योंकि बीज वहाँ हैं जहाँ उन्हें होने चाहिए। पीछे करोड़ों फूल खिले थे। और बेटे ने कहा अभी जल्दी फसल आने के करीब है, हम बीज आपको लौटा देंगे। लेकिन हम उतने ही लौटाने में असमर्थ हैं जितने आपने दिये थे। करोड़ गुना हो गये। और उतने ही क्या लौटाना! क्योंकि बीज का अर्थ ही होता है जो बढ़ रहा है, जो प्रतिपल विकासमान है। उसको उतना ही कैसे लौटाया जा सकता है? उसको उतना ही लौटाने का तो पहला उपाय है

जो बड़े भाई ने किया। बेच दिया बाजार में, दूसरे खरीद लाया। और वही बीज भी मैं आपको नहीं लौटा सकता हूँ। उनकी संतान लौटा सकता हूँ। चूंकि वही बीज तो सड़ जाते। उनके लौटाने का तो ढंग वही है जो मेरे दूसरे भाई ने किया; जिसने आपको राख दी। लेकिन जिन बीजों से सुगंध उठ सकती है उनको दुर्गंध की शक्ल में लौटाना मुझे न भाया। यह आपके बीज हैं, आप सम्हाल लें। यह सारे फूल आपके हैं। थोड़े से बीज करोड़ गुना हो गये थे।

नहीं। कबीर ने जो कहा है वह अतिशयोक्ति नहीं। उन्होंने सत्य को बड़े धीमे स्वर में कहा है —— 'ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया'। बुद्धों ने चदरिया को और भी निखारके लौटाया है। जो बीज थे उसको फूल की तरह लौटाया है। पवित्रता बढ़ती है। तुम जिसे सम्हालोगे वही बढ़ने लगता है। जीवन में कोई चीज रुकी हुई नहीं है। सभी चीजें गतिमान हैं। जीवन एक प्रवाह है। या तो पीछे की तरफ जाओ, या आगे की तरफ जाओ, रुकने का कोई उपाय नहीं है। जो जरा भी रुका, वो भटका। ये पंक्तियाँ ध्यान से सुनो ——

जुस्तजुए मंजिल में इक जरा सी दम लेने
काफिले ठहरते हैं राह भूल जाते हैं

जरा दम लेने। 'जुस्तजुए मंजिल में एक जरा जो दम लेने' —— इस जिंदगी की राह पर, यात्रा पर जरा दम लेने को भी जो ठहरते हैं ——

'काफिले ठहरते हैं राह भूल जाते हैं'

—— जो रुका, वो भूला। जो जरा ठहरा, वो भटका। क्योंकि जो आगे न गया, वो पीछे गया। जो बढ़ा नहीं, वो गिरा। जो चला नहीं, वो पीछे सरका। क्योंकि जीवन गति है, यहाँ ठहराव नहीं है। एडिंग्टन का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि मनुष्य की भाषा मे 'रेस्ट' शब्द —— ठहराव —— सबसे झूठा शब्द है। क्योंकि ऐसी कोई घटना कहीं नहीं। कोई चीज ठहरी हुई नही है। तुम यहाँ बैठे हो, ठहरे हुए नहीं हो। तुम लगते हो बैठो हो। चल रहे हो। प्रतिपल बढ़ रहे हो। रात सो रहे हो, तब भी ठहरे हुए नही हो। बिस्तर पर भी हजारों प्रक्रियाएँ चल रही हैं। तुम्हारा जीवन गतिमान है। रात भी नदी बह रही है, सुबह भी नदी बह रही है, दिन भी नदी बह रही है। अँधेरा हो या उजाला, आकाश में बादल घिरे हों कि आकाश खुला हो, नदी बह रही है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि रात सोते समय भी तुम्हारा मस्तिष्क पूरा काम कर रहा है। सीना पूरा काम कर रहा है। श्वांस चल रही है। शरीर मे खून शुद्ध किया जा रहा है। भोजन पचाया जा रहा है। तुम बूढ़े हो रहे हो, जवान हो रहे हो। कुछ घट रहा है। रुकाव जैसी कोई चीज नहीं। पत्थर भी ठहरा हुआ नहीं है।

क्योंकि पत्थर भी रेत होने के रास्ते पर बढ़ा जा रहा है। आज पत्थर है, कल रेत हो जाएगा। कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। ठहराव झूठ है। ठहराव भ्रांति है। गति सत्य है। बुद्ध ने तो गति को इतने आत्यंतिक ऊँचाई पर उठाया कि बुद्ध ने कहा, कि जहाँ भी तुम्हें कोई चीज ठहरी हुई मालूम पड़े वहीं समझ लेना झूठ है।

इसलिए बुद्ध ने परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया। क्योंकि परमात्मा शब्द में ही ठहराव मालूम होता है। परमात्मा का मतलब है, जो हो चुका और अब नहीं हो सकता। जिसमें कोई गति नहीं। परमात्मा में गति कैसे होगी? क्योंकि गति तो अपूर्ण में होती है। पूर्ण में कैसी गति? वो तो है ही वही जो होना चाहिए। अब उसमें कुछ और हो नहीं सकता। परमात्मा बूढ़ा नहीं हो रहा, ज्यादा ज्ञानी नहीं हो रहा, अज्ञानी नहीं हो रहा, पवित्र नहीं हो रहा, अपवित्र नहीं हो रहा। बुद्ध ने कहा, ऐसी कोई चीज है ही नहीं। बुद्ध ने कहा, 'है' शब्द झूठ है; 'होना' शब्द सत्य है। जब तुम कहते हो, पहाड़ है, तो बुद्ध कहते हैं ऐसा मत कहो, पहाड़ है। ऐसा कहो, पहाड़ हो रहा है। बुद्ध के प्रभाव में जो भाषाएँ विकसित हुईं, जैसे बर्मी, जोकि बुद्ध-धर्म के पहुँचने के बाद भाषा बनी, तो वहाँ 'है' जैसा कोई शब्द नहीं है बर्मी भाषा में। जब पहली दफा बाइबिल का अनुवाद किया बर्मी भाषा में तो बड़ी कठिनाई आयी। 'गॉड इज़', इसको कैसे अनुवाद करो? 'ईश्वर है'— इसके लिए कोई ठीक-ठीक रूपांतर बर्मी भाषा में नहीं होता। और जब रूपांतर करो तो उसका मतलब होता है— 'गॉड इज़ बिकमिंग'— ईश्वर हो रहा है। क्योंकि वो बुद्ध के प्रभाव में भाषा बनी है। बुद्ध ने कहा, हर चीज हो रही है। तुम जवान हो, ऐसा कहना ठीक नहीं है। जवान हो रहे हो। बूढ़े हो, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। बूढ़े हो रहे हो। जीवन है, ऐसा कहना ठीक नहीं। जीवन हो रहा है। मृत्यु है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं। मृत्यु हो रही है।

जगत में क्रियाएँ हैं, घटनाएँ नहीं।

इसलिए बुद्ध ने कहा, कोई परमात्मा नहीं है। और बुद्ध ने कहा, कोई आत्मा भी नहीं है। क्योंकि यह तो थिर चीजें मालूम पड़ती हैं। आत्मा, जैसे कोई ठहरा हुआ पत्थर भीतर रखा है। बुद्ध ने कहा, ऐसा कुछ भी नहीं है। चीजें हो रही हैं। बुद्ध ने जो प्रतीक लिया है जीवन को समझाने के लिए, वो है दीये की ज्योति। साँझ को तुम दीया जलाते हो। रात भर दीया जलता है, अँधेरे से लड़ता है। सुबह तुम दीया बुझाते हो। क्या तुम वही ज्योति बुझाते हो जो तुमने रात जलायी थी? वही ज्योति तो तुम कैसे बुझाओगे? वो ज्योति तो करोड़ बार बुझ चुकी। ज्योति तो प्रतिपल बुझ रही है, धुआँ होती जा रही है। नई ज्योति उसकी जगह

आती जा रही है। रात तुमने जो ज्योति जलायी थी वो सुबह तुम उसे थोड़े ही बुझाओगे। उसकी शृंखला को बुझाओगे, उसीको नहीं। वह तो जा रही है, भागी जा रही है, तिरोहित हुई जा रही है आकाश में। नई ज्योति प्रतिपल उसकी जगह आ रही है। तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारे भीतर कोई आत्मा है ऐसा नहीं, चित्त का प्रवाह है। एक चित्र जा रहा है, दूसरा आ रहा है। जैसे दीये की ज्योति आ रही है। तुम वही न मरोगे जो तुम पैदा हुए थे। जो पैदा हुआ था, वह तो कभी मर चुका। जो मरेगा वो उसी संतति में होगा, उसी शृंखला में होगा, लेकिन वही नहीं।

यह बुद्ध की धारणा बड़ी अनूठी है। लेकिन बुद्ध ने जीवन को पहली दफा जीवंत करके देखा। और जीवन को क्रिया में देखा, गति में देखा। और जो भी आलस्य में पड़ा है, जो रुक गया है, ठहर गया है, जो नदी न रहा और सरोवर बन गया, वो सड़ेगा।

'विषय-रस में अशुभ देखते हुए विहार करनेवाले, इंद्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जाननेवाले, श्रद्धावान और उद्यमी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आँधी शैल-पर्वत को।'

तुम्हारी निर्बलता और दुर्बलता का सवाल है। जब तुम हारते हो, अपनी दुर्बलता से हारते हो। जब तुम जीतते हो, अपनी सबलता से जीतते हो। वहाँ कोई तुम्हें हराने को बैठा नही है। इस बात को ख्याल में ले लो। शैतान है नहीं, मार है नही। तुम्हारी दुर्बलता का ही नाम है। जब तुम दुर्बल हो, तब शैतान है। जब तुम सबल हो, शैतान नहीं है। तुम्हारा भय ही भूत है। तुम्हारी कमजोरी ही तुम्हारी हार है। इसलिए यह जो बहाने खेल लेते हैं अपना उत्तरदायित्व किसीके कंधे पर डाल देने का, कि शैतान ने भटका दिया, कि क्या करें मजबूरी है, पाप ने पकड़ लिया। कोई पाप है नही जो तुम्हें पकड़ रहा है। तुमने भले पाप को पकड़ा हो, पाप तुम्हें कैसे पकड़ेगा?

तो मार तो केवल एक काल्पनिक शब्द है। इस बात की खबर देने के लिए कि तुम जितने कमजोर होते हो उतना ही तुम्हारी कमजोरी के कारण, तुम्हारी कमजोरी से ही आविर्भूत होता है तुम्हारा शत्रु। तुम जितने सबल होते हो, उतना ही शत्रु विसर्जित हो जाता है।

सबल होने की कला योग है। कैसे तुम अपने भीतर संयत हो जाओ। तो हर चीज सम्यक् होनी चाहिए। इंद्रियों का उपयोग संयम से भरा होना चाहिए। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, जब तुम राह पर चलो, चार कदम आगे से ज्यादा मत देखो। कोई जरूरत नहीं है। चार कदम आगे देखना पर्याप्त है। उतना संयम है।

लेकिन तुम भी चलते हो रास्ते पर। जिस दीवाल पर लिखे हुए इश्तहार को

तुम हजार बार पढ़ चुके हो, उसको आज फिर पढ़कर आए हो। वो चाहे हिम-कल्याण तेल हो, या बदर छाप काला दंतमंजन हो, उसको तुम कितनी बार पढ़ चुके हो। उसे तुम क्यों बार-बार पढ़ रहे हो? तुम उसे पढ़ो न --- बुद्ध की तरह अगर तुम चार कदम नीचे चलो तो दीवालें अपने आप साफ हो जाएँ। लोग लिखना बंद कर दें। तुम पढते हो, इसलिए वो लिखते हैं। तुम जब तक पढते रहोगे तब तक वो लिखते रहेंगे। क्योंकि बार-बार पढ़कर तुम्हारे मन में एक सम्मोहन पैदा होता है। बंदर छाप काला दंतमंजन, बंदर छाप काला दंतमंजन ...। जब तुम दुकान पर दतमजन खरीदने जाओगे, तुम्हे याद ही न पडेगा तुम्हारे मुंह से कब निकल गया -- बंदर छाप काला दंतमंजन।

तुम सोचते हो सोच-विचारके खरीद रहे हो। वो बार-बार की पुनरुक्ति ने तुम्हें सम्मोहित किया। बार-बार की पुनरुक्ति ने तुम्हारे मन पर संस्कार छोड दिये। तुम उन्हीको दोहराए चले जा रहे हो। इसलिए तो विज्ञापन का इतना भारी उपयोग है। लोग चीजें बाद में बनाते हैं, विज्ञापन पहले चला देते है।

अमरीका मे तो दो-तीन साल बाद प्रोडॅक्शन शुरू होगा उसी चीज का, उत्पत्ति शुरू होगी, तीन साल पहले विज्ञापन शुरू हो जाता है। क्योंकि बाजार पहले बनाना पडता है। माँग पहले पैदा करनी पडती है। और जब माँग पैदा हो जाती है, तो ही बाजार में सामान लाने की कोई जरूरत है। और आदमी ऐसा पागल है कि किसी भी चीज के लिए उसको तुम खरीदने के लिए राजी कर सकते हो, सिर्फ दीवालो पर, अखबारो में, रेडियो पर, टेलीविजन पर दोहराने की जरूरत है। कुछ भी दोहराओ, आदमी तैयार हो जाएगा खरीदने को। क्योंकि उसे लगेगा कि पता नही कौनसा सुख मैं चूका जा रहा हूँ, जो इस चीज से मिलनेवाला है।

सुख की भ्रांति दो, सुख की आशा बँधाओ और कोई भी चीज बेची जा सकती है। आदमी से ज्यादा मूढ कोई और दूसरा जानवर पृथ्वी पर नहीं है। तुम किसी भैंस को भी राजी नहीं कर सकते। वो अपनी प्रकृति से जीती है। जो घास खाना है, वही खाती है। तुम कितना ही विज्ञापन करो, तुम कितना ही बैंडबाजा बजाओ, वो बिलकुल फिकर न करेगी। लेकिन आदमी, तत्क्षण! क्योंकि आदमी अपनी प्रकृति भूल गया है। तो ऐसी चीजें खा रहा है जिनमें कुछ, कोई भी पौष्टिकता नहीं है। लेकिन विज्ञापन चला रहा है उन चीजों को, तो वो खाएगा। धीरे-धीरे सभी चीजें अपनी पौष्टिकता खोती जा रही हैं। क्योकि यह सवाल ही नहीं है कि उनमें जीवनदायी-तत्त्व होने चाहिए। रंग अच्छा होना चाहिए, गंध अच्छी होनी चाहिए। अब रग और गंध से कोई पौष्टिकता का सबंध नहीं है। रंग और गंध तो ऊपर से डाली जा सकती हैं। डाली जा रही हैं। भोजन रंगीन दिखना चाहिए,

सुगंध अच्छी आनी चाहिए; फिर उससे खून बनता है या नहीं, यह सवाल नहीं है। फिर उससे हड्डी बनती है या नहीं, यह सवाल नहीं है। तुम किसी जानवर को धोखा नहीं दे सकते। वो जानता है कि क्या उसके जीवन में उपयोगी है। लेकिन आदमी को धोखा दिया जा सकता है। दिया जा रहा है। हर चीज के लिए तुम उसे राजी कर सकते हो, ठीक विज्ञापन की जरूरत है।

बुद्ध कहते थे चार कदम से आगे देखना ही मत। क्योंकि उतना चलने के लिए पर्याप्त है। इसको वो संयम कहते हैं। बुद्ध कहते, जो सुनने योग्य नहीं है, उसे सुनना मत। जो छूने योग्य नहीं है, उसे छूना मत। जितना जीवन में जरूरी है, आवश्यक है, उससे पार मत जाना। और तुम अचानक पाओगे, तुम्हारे जीवन में शांति की वर्षा होने लगी। अशांत तुम इसलिए हो कि जो गैर-जरूरी है उसके पीछे पड़े हो। जो मिल जाए तो कुछ न होगा, और न मिले तो प्राण खाए जा रहा है। गैर-जरूरी वही है जिसके मिलने से कुछ भी न मिलेगा, लेकिन जबतक नहीं मिला है तबतक रात की नींद हराम हो गयी है। तबतक सो नहीं सकते, शांति से बैठ नहीं सकते, क्योंकि मन में एक ही उथल-पुथल चल रही है कि घर में दो कार होनी चाहिए। एक कार गरीब आदमी के घर में होती है। दो कार होनी चाहिए।

पहले अमरीका में वो विज्ञापन करते थे कि कम से कम घर में एक कार होनी ही चाहिए। अब इतनी कारें तो घरों-घरों में हो गयी हैं--एक-एक कार तो हर घर में है। तब उन्होंने दूसरा विज्ञापन शुरू किया कि एक कार तो गरीब घर में होती है। अगर तुम सफल हो, तो कम से कम दो कार घर में होनी चाहिए। अब दो कार घर में होनी चाहिए! चाहे एक में भी बैठनेवाले पर्याप्त न हों। लेकिन दो कार घर में होनी ही चाहिए। नहीं तो वो प्रतिष्ठा का सवाल है। अब कार कोई बैठने के लिए नहीं खरीदता अमरीका में, वो प्रतिष्ठा की बात है, वो 'प्रेस्टिज', 'पॉवर'। उससे शक्ति का पता चलता है कि तुम कितने शक्तिशाली हो। अब उन्होंने वहाँ प्रचार करना शुरू किया है कि अगर तुम सफल हो गये हो, तो एक घर पहाड़ पर, एक घर समुद्र के तट पर और एक घर शहर में, कम से कम तीन घर तो होने ही चाहिए। आदमी एक ही घर में रह सकता है! तुम्हारे पास कितने कपड़े हैं? तुमने इकट्ठे कर रखे हैं? कितने कपड़े तुम एक बार में पहन सकते हो? कितने जूते के अंबार लगा रखे हैं तुमने? मैं घरों में ठहरता रहा हूँ। कभी-कभी दंग होता हूँ। भगवान की मूर्ति के लिए जगह नहीं है, जूतों के लिए आल्मारियाँ लगा रखी हैं। एक जूता तुम पहनते हो। इतने जूते अनिवार्य नहीं हैं। जरा भी आवश्यक नहीं हैं। व्यर्थ इनको झाड़ना-पोंछना पड़ता है। तुम

नाहक चमार बन गये हो। सुबह से इनको नाहक पोंछो, झाड़ो, तैयार करके रखो, एक तुम पहनोगे। लेकिन कोई तुम्हें समझा रहा है कहीं से, कि ऐसा होना चाहिए।

तुम अगर अपने जीवन की फेहरिश्त बनाओ कि तुमने कितना गैर-जरूरी इकट्ठा कर लिया है, तो तुम नब्बे प्रतिशत गैर-जरूरी पाओगे। और उस नब्बे प्रतिशत के लिए तुमने कितना श्रम उठाया! कितनी चिंता ली! कितने व्याकुल हुए! कितना व्यर्थ जीवन गवाँया! और अगर तुमसे कोई कहे ध्यान, इबादत, प्रार्थना, तुम कहते हो समय कहाँ है? समय है नहीं। समय होगा भी कैसे! क्योंकि व्यर्थ के लिए इतना समय दिया जा रहा है?

बुद्ध ने कहा है, जिस व्यक्ति को भी यह समझ में आ गया कि विषयों में रस नहीं है, वो संयत होने लगता है, अपने आप संयत होने लगता है। तब उसका जीवन वासनाग्रस्त नहीं होता। आवश्यकता से निश्चित ही मर्यादित होता है, लेकिन वासना से ग्रस्त नहीं होता। आवश्यकता की सीमा है। वासना की कोई सीमा नहीं। वासना है एक तरह की विक्षिप्तता। आवश्यकता जीवन की जरूरत है। भोजन चाहिए, कपड़ा चाहिए, छप्पर चाहिए। एक आवश्यकता है, उतनी पूरी होनी चाहिए। और हर आदमी उसे पूरी कर लेता है। उसके कारण कोई चिंता नहीं है तुम्हारे भीतर। चिंता तुम्हारे भीतर उन चीजों के कारण है जो आवश्यक नहीं है। उन्हीं का तुम्हें रोग खाए जा रहा है।

'विषय-रस में अशुभ देखते हुए विहार करनेवाले, इंद्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जाननेवाले, श्रद्धावान और उद्यमी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आँधी शैल-पर्वत को।' बुद्ध के संघ में बुद्ध ने बहुत समय तक स्त्रियों को दीक्षा न दी। बहुत आग्रह करने पर, और एक बड़ी अनूठी महिला कृशा गौतमी के अत्यंत निवेदन करने पर बुद्ध ने स्वीकार किया। लेकिन तब उन्होंने कुछ नियम बनाए। जब वो नियम बनाते थे, तो उन्होंने भिक्षुओं से कई सवाल पूछे, नियम बनाने के निमित्त। और आनंद ने बहुत से प्रश्न उठाए नियमों के संबंध में, ताकि सब नियम विस्तारपूर्ण हो जाएँ। तो आनंद ने पूछा कि कोई भिक्षु अगर किसी स्त्री को मार्ग पर मिले, या भिक्षुणी को मार्ग पर मिले, तो क्या व्यवहार होना चाहिए? तो बुद्ध ने कहा भिक्षुणी, चाहे भिक्षु उम्र में उससे छोटा भी हो, तो भी उसे प्रणाम करे। यह बात जरा बुद्ध के मुँह में जमती नहीं। महावीर ने भी यही नियम बनाया—कि भिक्षुणी, चाहे साध्वी, चाहे सत्तर साल की हो, चाहे दीक्षा लिए हुए उसे पचास साल हो गये हों, और अभी कल के दीक्षित साधु के सामने भी आ जाए तो झुकके नमस्कार करे। साधु को ऊपर बिठाए, स्वयं नीचे बैठे। यह बात

महावीर के मुँह में भी जमती नहीं। क्योंकि दोनों स्वतन्त्रता के बड़े समानता के बड़े परिपोषक थे।

जैन और बौद्ध दोनों परेशान रहे हैं कि कैसे इन बातों को छिपाया जाए। वे उनकी चर्चा नहीं उठाते। लेकिन मैं इसमें बड़ा गहरा कारण देखता हूँ, क्योंकि बुद्ध और महावीर जब ऐसी बात कहते हैं तो बड़े अर्थ हैं उनके। एक मनुष्य के मन की बड़ी गहरी बात बुद्ध ने पकड़ी। अगर कोई स्त्री पुरुष को सम्मान दे, तो फिर पुरुष की वासना उसके प्रति बहनी मुश्किल हो जाती है, कठिन हो जाती है। अगर कोई स्त्री तुम्हारे पैर छू ले तो फिर वासना असभव हो जाती है—उसने द्वार बद कर दिया। क्योंकि पुरुष वासना में उसी स्त्री के प्रति झुक सकता है जिसने उसे सम्मान न दिया हो जिसने उसे आदर न दिया हो। क्योंकि वासना में झुकने का मतलब है पुरुष खुद अपनी ही आँखों में अपने से नीचे गिरता है। इसलिए वेश्या के साथ तुम जितने वासना का सबध बना सकते हो किसी और के साथ नहीं बना सकते। क्योंकि उसके सामने नीचे गिरने में कोई डर नहीं है। उसने कभी तुम्हें कोई आदर दिया नहीं।

बुद्ध और महावीर ने दोनों ने पुरुष के अहकार को पकड़ लिया ठीक जगह कि उसका अहकार ही अगर रुक जाए तो ही रुक सकेगा अन्यथा वासना का प्रवाह हो जाएगा। अगर कोई स्त्री तुम्हे बहुत सम्मान से चरण छू ले, तो उसने तुम्हे इतना सम्मान दिया कि अब तुम्हें इस सम्मान की रक्षा करनी पड़ेगी। अब तुम्हें ऐसा व्यवहार करना पड़गा जिसमें उसका दिया गया सम्मान खडित न हो। अब तुम वासना के तल पर नीचे न उतर सकोगे। उसन रास्ता रोक दिया।

आनद ने पूछा कि अगर कोई ऐसी घड़ी आ जाए कि स्त्री और पुरुष साथ साथ हो भिक्षु-भिक्षुणी साथ साथ हो, तो एक-दूसरे का स्पर्श? तो बुद्ध ने कहा नहीं। पुरुष स्त्री को न छुए। स्त्री पुरुष को न छुए। आनद ने कहा और अगर कोई ऐसी मजबूरी आ जाए कि भिक्षुणी बीमार हो, या भिक्षु बीमार हो और सेवा करनी पड़े? तो बुद्ध ने कहा वैसी दशा में छुए लेकिन होश रखे। पहले तो देखे न। अगर देखना पड़े, तो छुए न। अगर छूना पड़े तो मूर्छा में न रहे, होश रखे। भीतर जागा रहे। क्योंकि मनुष्य के मन की जो वासनाएँ हैं उनकी आदत तो बड़ी प्राचीन है, और होश बडा नया है। ध्यान तो अभी साधा है, साधना शुरू किया है, और वासना बड़ी प्राचीन है। जन्मो-जन्मो की है। उसके संस्कार बड़े गहरे हैं। और जरा-सी भी भूल-चूक हुई, जरा-सा भी मन मूर्छित हुआ कि वासना के मार्ग से जीवन बहना शुरू हो जाता है, एक क्षण में। इधर तुम भूले, उधर वासना का प्रवाह शुरू हुआ। अगर जागे ही रहो अगर भीतर होश को रखो, तो ही समव है।

कि धीरे-धीरे पुरानी परिपाटी टूटे, पुरानी लीक मिटे, नया रास्ता बने । मार के साथ संबंध पुराने हैं । राम के साथ संबंध बनाने हैं।

'जो असार को सार समझते हैं और सार को असार, वे मिथ्या संकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त नही होते । '

अगर तुमने सार को असार समझा है, असार को सार समझा है; अगर ऐसी विपरीत तुम्हारी बुद्धि है, तो फिर तुम कैसे सार को प्राप्त हो सकोगे ? तुम तो फिर असार को सार समझके खोजते रहोगे। इसलिए तो एक मजे की घटना जीवन में घटती है । वो घटना यह है कि जब तक तुम्हें धन नहीं मिलता तब तक पता नहीं चलता कि धन असार है । जब मिलता है तब पता चलता है । ठीक भी है । क्योंकि जबतक मिला नही तबतक पता कैसे चले ? तबतक तो तुम्हें सार दिखायी पड़ता है । जब मिल जाता है, तब बडी मुश्किल खड़ी होती है । क्योंकि जिसको सार मान के इतने दिन खोजा, इतना श्रम उठाया, इतनी स्पर्धा की, इतने जूझे, इतना जीवन गवाँया, वो जब मिलता है, तब अचानक तुम हैरान हो जाते हो कि सार तो कही भी नही है। फिर भले तुम दूसरो से न कहो । क्योंकि अब दूसरों से कहकर और फजीहत क्या करवानी है ! और दूसरे हँसेंगे । लेकिन तुम्हें समझ में आ जाता है।

इस ससार में जिनको तुम सफल कहते हो, उनको जितनी अपनी असफलता दिखायी पड़ती है उतनी किसीको भी दिखायी नहीं पड़ती । जिनको तुम अमीर कहते हो, उनको जितनी अपनी गरीबी का पता चलता है उतना किसीको भी नही चलता । जिनको तुम पडित कहते हो, उनको जितने अपने अज्ञान का बोध होता है, किसीको भी नही होता। कहें भले न । कहने के लिए हिम्मत चाहिए। कहने के लिए बड़ा दुस्साहस चाहिए । क्योंकि कहने का यह मतलब होगा कि मैं अपने पूरे जीवन को व्यर्थ घोषित करता हूं, कि अबतक मैंने जो खोजा, जो मैंने श्रम उठाया, वो दो कौडी का साबित हुआ । मै गलती में था । बड़ा मुश्किल होता है यह मानना कि मै गलती में था । और सफलता के शिखर पर मानना तो अहंकार के बिलकुल प्रतिकूल हो जाता है।

लेकिन यही कथा है ।

असफल ही सोचता है कि सार होगा धन में, सार होगा पद में । जो पद पर हैं, जो धन पर हैं, वो नहीं सोचते । सोच ही नहीं सकते । भले दिखावा करते हों, लेकिन भीतर से भवन गिर गया है । ऊपर से साज-सजावट बनाए रखते हों, नींव खिसक गयी है । अगर तुममें थोड़ी भी समझ हो और गहरे देखने की क्षमता हो, तो हर सफल आदमी में तुम असफलता को पाओगे । और हर आदमी की यश, कीर्ति में

तुम बड़ा संतप्त हृदय पाओगे। रोता हुआ हृदय पाओगे। मुस्कराहटों में अगर झांकने की क्षमता आ जाए, तो तुम छिपे हुए आँसू देख पाओगे।

'जो असार को सार समझते हैं और सार को असार, वे मिथ्या संकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त नहीं होते।'

सार क्या है, इसे जान लेना आधा पा लेना है। क्या है सार ? अबतक जिंदगी में तुमने जो खोजा है, उसमें से तुम्हें क्या ऐसा लगता है जिसे सार कहा जा सके ? धन खोज लिया; कल तुम मरोगे, वो पड़ा रह जाएगा। जो साथ न जा सके वो सार कैसे होगा ? प्रशंसा पा ली, लोगों ने तालियाँ बजायीं और गजरे पहना दिये। गजरे क्षणभर बाद कुम्हला जाएंगे, तालियों की आवाज हो भी न पाएगी और खो जाएगी। और सारी दुनिया भी ताली बजाए, तो भी सार क्या होगा ? मिलेगा क्या ? उससे तुम्हें कौनसी जीवन-सपदा उपलब्ध होगी ? और फिर भरोसा कहाँ है ? जो आज ताली बजाते हैं, वो कल गाली देने लगते हैं।

असल में जिसने भी ताली बजायी, वो गाली देगा ही। वो बदला लेगा। जब ताली बजायी थी तो वो कोई प्रसन्नता में नहीं बजा रहा था। लोग दूसरों से अपने लिए ताली बजवाना चाहते हैं, तब प्रसन्न होते हैं। तुम भी जब कोई ताली तुम्हारे लिए बजाता है तब तुम प्रसन्न होते हो। जब तुम्हें बजानी पड़ती है, तुम मजबूरी में बजाते हो। शायद इस आशा में बजाते हो कि हम दूसरों के लिए बजाएँगे, तो दूसरे हमारे लिए बजाएँगे। चलो अभी हम तुम्हारे लिए बजाए देते हैं, कल तुम हमारे लिए बजा देना। ऐसा पारस्परिक लेन-देन चलता है। हम तुम्हारी प्रशंसा कर देते हैं, तुम हमारी कर देना। लेकिन कौन किसी दूसरे के सुख के लिए चेष्टा कर रहा है? लोग अपने सुख की चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए जो आदमी भी तुम्हारी प्रशंसा करेगा, वो कभी न कभी बदला लेगा। उसके भीतर कांटा गड़ता ही रहेगा कि प्रशंसा करनी पड़ी। देखेंगे किसी उचित समय पर, जब हमारा हाथ ऊपर होगा और तुम्हारा नीचे होगा। यहाँ कौन अपना है? इस जिंदगी का कुल हिसाब इतना है—

कुछ हसीं ख्वाब और कुछ आंसू
उम्र भर की यही कमाई है

कुछ सुंदर सपने और कुछ आँसू, उम्र भर की यही कमाई है। सपने देखते रहो, सपनों को सँजोते रहो और टूटे सपनों के लिए रोते रहो। इधर टूटे सपने इकट्ठे होते जाते हैं, तुम नये सपने देखते रहो। अतीत तुम्हारा आँसू बनता जाता है, भविष्य हसीन ख्वाब। बस इन दोनों के बीच में तुम जीते हो। कल जो बीत गया कुछ भी पाया नहीं, रेगिस्तान हो गया। आनेवाले कल में तुम मरुद्यान बसाए हो, वो भी कल बीता जाता है। वो भी आज हो गया, वो भी कल हो जाएगा—वो

भी जा रहा है। मरते वक्त तुम पाओगे, पूरा जीवन एक रेगिस्तान की यात्रा थी—लंबी, थकान भरी, धूल-धमास भरी। हार, संताप, चिंता सब था, लेकिन और कुछ हाथ न लगा। धूल हाथ लगी।

कुछ अपना नहीं हो पाता। और जो अपना नहीं है, वो सार नहीं हो सकता। सार तो वही है जो तुम्हारा हो जाए, तुम्हारे भीतर हो जाए, और कभी तुमसे अलग न हो। जो तुम्हारी सत्ता बन जाए, तुम्हारा अस्तित्व बन जाए। सार की हमारी परिभाषा यही है। असार वही है, जो तुमसे बाहर रहे। आज तुम्हारा है, कल पराया हो जाए। हो ही जाएगा। कल किसी और का था। कोई घर यहाँ मकान नहीं है। सभी सराये हैं। कल कोई और ठहरा था, आज तुम ठहरे हो, कल कोई और ठहर जाएगा।

दुनिया का एतबार करें तो भी क्या करें
आँसू तो अपनी आँख का अपना हुआ नहीं

अपनी आँख का आँसू भी यहाँ अपना नहीं होता और अपना क्या हो सकता है? जिनको हम अपना कहते हैं वो भी अपने नहीं हैं। अपने अतिरिक्त अपना यहाँ कुछ भी नहीं। स्वयं के अतिरिक्त और कोई संपत्ति नहीं है। इसलिए जिसने जीवन को स्वयं की खोज में लगाया है, उसने ही सार की खोज में लगाया है। और जो और कुछ भी खोज रहा हो स्वयं को छोड़कर वो चाहे सारी पृथ्वी की संपदा पा ले सारा साम्राज्य पा ले आखिर में पाएगा हाथ खाली हैं। हृदय एक रोता हुआ भिखारी का पात्र है जिसमें कुछ भी न पड़ा। और जीवन ऐसे ही गया। (जो जितनी जल्दी जाग जाए उतना समझदार है। बुद्धि की और प्रतिभा की यही कसौटी है कि कितनी जल्दी तुम जागे) और थोड़े ही कोई बुद्धिमान है। पश्चिम में बुद्धिमान को नापने का ढंग है। वो बहुत सस्ता है। हमने पूरब में एक ढंग निकाला था। हम आदमी की प्रतिभा इस बात से मापते थे कि कितनी जल्दी उसने पहचाना कि असार असार है और सार सार है। कितनी जल्दी? जो जितनी जल्दी पहचान लिया, उतना ही प्रतिभाशाली है। जो मरते दम तक नहीं पहचान पाता, जो आखिरी घड़ी आ जाती है और कहे चला जाता है—

गो हाथ को जुंबिश नहीं आँखों में तो दम है
रहने दे अभी सागर ओ-मीना मेरे आगे—

वो प्रतिभाहीन है। वो मूढ़ है। उसमें कोई समझ नहीं है। वो कितना ही समझदार हो दुनिया की नजरों में, वो अपने ही भीतर अनुभव करेगा कि उस समझदारी से उसने दूसरों को धोखा भले दिया हो, अस्तित्व को धोखा नहीं दे पाया। अस्तित्व के सामने तो वो नंगा भिखारी ही रहेगा।

'जो सार को सार जानते हैं, असार को असार, वे ही सम्यक् सकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त होते हैं।'

पहचान पाने का पहला कदम, हीरा हीरा समझ में आ जाए तो खोज शुरू होती है। पत्थर पत्थर समझ में आ जाए, तो छोडना शुरू हो गया, छूट ही गया। ठीक को पहचान लेना महावीर ने सम्यक् ज्ञान कहा है। शकर ने विवेक कहा है। सम्यक् दृष्टि। ठीक से देख लेना, क्या अपना हो सकता है। अपने अतिरिक्त और कुछ अपना नही हो सकता है। इसलिए वही खोजने योग्य है।

जीसस ने कहा है, तुम सारे ससार को पा लो और खुद को गवाँ दो, तो तुमने कुछ भी नही पाया। और तुम खुद को पा लो और सारा ससार गवाँ दो, तो तुमने कुछ भी नही गवाँया। जो अपना नहीं था, वह अपना था ही नही। जो अपना था, वही अपना है।

'जिस तरह ठीक प्रकार से न छाए हुए घर में वर्षा का पानी घुस जाता है, उसी प्रकार ध्यान-भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है। जिस प्रकार ठीक से छाए हुए घर में वर्षा का पानी नही घुस पाता है, उसी प्रकार ध्यान-भावना से युक्त चित्त में राग नही घुस पाता है।'

राग को तुम छोड न पाओगे। ध्यान को जगाना पडेगा। इतनी पहचान पहले तुम्हें आ जाए कि क्या व्यर्थ है और क्या सार्थक है, फिर तुम ध्यान को जगाओ। फिर राग को छोडने मे मत लग जाना। क्योकि वह भूल बहुतो ने की है। राग को पकडो तो भी राग से उलझे रहोगे, राग को छोडो, तो भी राग से उलझे रहोगे। असली सवाल राग का नही है।

तो बुद्ध बडा ठीक उदाहरण दे रहे है। सीधा, सरल, कि ठीक से घर के छप्पर पर इतजाम न किया गया हो, खपडेल ठीक से न छायी हो, तो वर्षा का पानी घुस जाता है। फिर ठीक से आच्छादित हो घर, खपडेल ठीक से साज-सँवार के रखी गयी हो, वर्षा का पानी नही घुस पाता। ध्यान से छायी हुई आत्मा में राग प्रवेश नही करता। राग घुस रहा है तो इसका इतना ही सकेत समझना कि आत्मा पर ठीक से छावन नही की गयी है, ध्यान का छप्पर छेदवाला है।

इसलिए राग को छोडने की फिक्र मत करना। वो तो ऐसा ही होगा कि ठीक से घर छाया हुआ नही है, वर्षा आ गयी, आषाढ के मेघ घिर गये, पानी बरसने लगा और तुम घर का पानी उलीचने में लगे हो। तुम उलीचते रहो पानी, इससे कोई फर्क न पडेगा। क्योकि घर का छप्पर नये पानी को लिए आ रहा है। राग को उलीचने से कुछ भी न होगा। छप्पर को ठीक से छा लेना जरूरी है।

इसलिए समस्त प्रज्ञावान पुरुषो का जोर ध्यान पर है। और जो महात्मा तुम्हें

साधारणतया समझाते हैं कि राग छोड़ो, गलत समझाते हैं। वो तुमसे कह रहे हैं पानी उलीचो। नाव में छेद है, वो कहते हैं पानी उलीचो। पर तुम पानी उलीचते रहो, नाव का छेद नया पानी भीतर ला रहा है। पानी तो उलीचो जरूर, पहले छेद को बंद करो। फिर पानी उलीचने में कोई कठिनाई न होगी। छप्पर को छा दो, फिर जो थोड़ा बहुत पानी बचा रह गया है उसे बाहर कर देने में क्या अड़चन होनेवाली है? ध्यान जो साध लेता है, उसका राग अपने आप मिट जाता है। राग से जो लड़ता है, उसका राग तो मिटता ही नहीं ध्यान भी सधना मुश्किल हो जाता है।

मेरे पास लोग रोज आते हैं। वे कहते हैं किसी तरह क्रोध चला जाए। मैं उनसे कहता हूँ तुम क्रोध की फिकिर मत करो, तुम ध्यान करो। वो कहते हैं ध्यान से क्या होगा? आप तो हमें क्रोध छोड़ने की तरकीब बता दें। ऐसे लोग भी आ जाते हैं, वो कहते हैं, हमें ध्यान-व्यान से कुछ लेना-देना नहीं; हमारा तो मन अशांत है, यह भर शांत हो जाए। अब वो क्या कह रहे हैं, उन्हें पता नहीं!

अभी चार दिन पहले एक वृद्ध सज्जन ने कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस मेरे मन में चिंता सवार रहती है, सो नहीं सकता ठीक से, कँपता रहता हूँ, डरता रहता हूँ, बस यह मेरा मिट जाए। न मुझे मोक्ष चाहिए, न मुझे आत्मा के ज्ञान का लेना-देना है, न मुझे भगवान का कोई प्रयोजन है, बस मेरी चिंता मिट जाए। अब ये आदमी यह कह रहा है कि यह जो वर्षा का पानी घर में भर गया है, यह भर न भरे; मुझे खप्पर छाने नहीं। मुझे मोक्ष, परमात्मा, आत्मा से कुछ लेना-देना नहीं। अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि ये समझ ही नहीं रहा है कि बीमारी कहाँ है।

धन छोड़ने में मत लगना, ध्यान को पाने में लगना। क्योंकि छोड़ने में जो शक्ति लगाओगे उतनी ही शक्ति से ध्यान पाया जा सकता है। मुफ्त तो छोड़ना भी नहीं होता, उसमें भी ताकत लगानी पड़ती है। वो ताकत व्यर्थ गवाँ रहे हो तुम। पहला काम है, घर के छप्पर को ठीक से छा लो।

जीवन का एक आधारभूत नियम, एक सारभूत नियम कि गलत को छोड़ने में मत लगना, ठीक को पाने में लगना। अँधेरे को हटाने में मत लगना, दीये को जलाने में लगना। एस धम्मो सनंतनो। यही सनातन धर्म है।

आज इतना ही।

अकंप चैतन्य ही ध्यान

२४ नवंबर १९७५
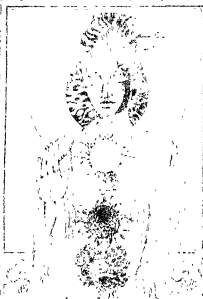
पहला प्रश्न : बुद्ध ने मन को जानने-समझने पर ही सारा जोर दिया लगता है। क्या मन से मनुष्य का निर्माण होता है? आत्मा-परमात्मा की सारी बातें क्या व्यर्थ हैं?

बातें व्यर्थ हैं। अनुभव व्यर्थ नहीं। आत्मा, परमात्मा, मोक्ष शब्द की भाँति, विचार की भाँति दो कौड़ी के हैं। अनुभव की भाँति उनके अतिरिक्त और कोई जीवन नहीं। बुद्ध ने मोक्ष को व्यर्थ नहीं कहा है, मोक्ष की बातचीत को व्यर्थ कहा है। परमात्मा को व्यर्थ नहीं कहा है। लेकिन परमात्मा के संबंध में सिद्धांतों का जाल, शास्त्रों का जाल, उसको व्यर्थ कहा है।

मनुष्य इतना धोखेबाज है कि वो अपनी ही बातों से स्वयं को धोखा देने में समर्थ हो जाता है। ईश्वर की बहुत चर्चा करते-करते तुम्हें लगता है ईश्वर को जान लिया। इतना जान लिया ईश्वर के संबंध में, लगता है ईश्वर को जान लिया। लेकिन ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई प्यासा पानी के संबंध में सुनते-सुनते सोच ले कि पानी को जान लिया। और प्यास तो बुझेगी नहीं। पानी की चर्चा से कहीं प्यास बुझी है! परमात्मा की चर्चा से भी प्यास न बुझेगी। और जिनकी बुझ जाए, समझना कि प्यास लगी ही न थी।

तो बुद्ध कहते हैं कि अगर जानना ही हो तो परमात्मा के सबध मे मत सोचो, अपने सबध में सोचो । क्योकि मूलत तुम बदल जाओ, तुम्हारी आँख बदल जाए, तुम्हारे देखने का ढग बदले, तुम्हारे बद झरोखे खुलें, अतर्तम अँधेरे से भरा है रोशन हो, तो तुम परमात्मा को जान लोगे । फिर बात थोडे ही करनी पडेगी ।

ज्ञान मौन है ।

वह गहन चुप्पी है । फिर तुमसे कोई पूछेगा तो तुम मुस्कराओगे । फिर तुमसे कोई पूछेगा तो तुम चुप रह जाओगे । ऐसा नही कि तुम्हें मालूम नही है, वरन् अब तुम्हें मालूम है, कहो कैसे ? 'गूंगे केरी सरकरा'। कहना भी चाहोगे, जबान न हिलेगी । बोलना चाहोगे चुप्पी पकड लेगी । इतना बडा जाना है कि शब्दो में समाता नही। पहले शब्दो की बात बडी आसान थी । जाना ही नही था कुछ, तो पता ही नही था कि तुम क्या कह रहे हो । जब तुम ईश्वर शब्द का उपयोग करते हो तो तुम कितने महत्तम शब्द का प्रयोग कर रहे हो, इसका कुछ पता न था । ईश्वर शब्द कोरा था, खाली था । अब अनुभव हुआ । महाकाश समा गया उस छोटे से शब्द मे । अब उस छोटे से शब्द को मुंह से निकालना झूठा करना है । अब कहना नही है । अब तुम्हारा पूरा जीवन कहेगा, तुम न कहोगे ।

इसलिए बुद्ध ने कहा, बात मत करो । चर्चा की बात नही है। पीना पडेगा । जीना पडेगा । अनुभव करना होगा । जो जानते नही उनकी बात व्यर्थ है । जो जानते हैं, वो उनकी बात नही करते । ऐसा नही कि वो बात नही करते । बुद्ध ने बहुत बात की है । लेकिन परमात्मा के सबध में न की । मनुष्य के सबध में की। मनुष्य बीमारी है । परमात्मा स्वास्थ्य है । बीमारी का ठीक पहचान लो, कारण खोज लो, निदान करो, चिकित्सा हो जाने दो, जो शेष बचेगा बीमारी के चले जाने पर — मनुष्य के तिरोहित हो जाने पर तुम्हारे भीतर जो शेष रह जाएगा — वही परमात्मा है । तुम जब तक हो तबतक परमात्मा नही है, तुम लाख सिर पटको, तुम लाख शब्दो का सयोजन जमाओ, तुम लाख भरोसा करो । तुम्हारा भरोसा तुम्हारा ही होगा । इसे थोडा समझना ।

तुम कहते हो, मैं श्रद्धा करता हूँ । लेकिन मै की कही कोई श्रद्धा होती है ! मै तो मूलत अश्रद्धालु है । मैं सदेह है । उचित होगा कहना कि जबतक तुम हो तब तक श्रद्धा नही है । जब तुम न रहोगे, एक गहन सन्नाटा छा जाएगा तुम्हारी कोई सीमा पता न लगेगी, तुम ऐसे चुप हो जाओगे जैसे कि कभी बोले ही नही, जैसे पत्ता भी नही खडका ऐसा गहन सन्नाटा तुम्हारे भीतर छा जाएगा, तुम नही रहोगे, तब तुम अचानक पाओगे, श्रद्धा के कमल खिले । श्रद्धा के साज पर गीत उठा । श्रद्धा नाची तुम्हारे भीतर । तुम्हारी मौजूदगी बाधा है ।

तो बुद्ध कहते हैं, तुम्हारी चर्चा का सवाल नहीं है, तुम्हारे चुप हो जाने का सवाल है। इसलिए बुद्ध मन की बात करते हैं। मन बीमारी है, ध्यान औषधि है, परमात्मा उपलब्धि है। उपलब्धि की क्या बात करनी। मन की बीमारी को ध्यान की औषधि से मिटा देना, परमात्मा मिला ही हुआ है। बात की तो, न की तो, कोई अंतर नहीं पड़ता। जो नहीं जानते, वो बात करें तो भी क्या बात करेंगे? और जो जानते हैं, वे बात करना भी चाहें तो कैसे करेंगे? ऐसा नहीं कि बुद्ध को बात करना नहीं आता। उन जैसा कुशल बात करनेवाला कभी हुआ है? शब्दों से वे खेल सकते हैं। कुशल हैं। लेकिन उनका अंतरबोध उन्हें रोकता है।

पंडित बोले चले जाते हैं। उन्हें पता नहीं, क्या कह रहे हैं। बुद्धपुरुष चुप हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता है। इतने पवित्रतम को कहा कैसे जा सकता है? ओठों पर लाकर झूठा हो जाएगा। शब्द बड़े छोटे हैं। विराट को समाएँगे, समाएगा नहीं। ऐसे ही जैसे कोई मुट्ठी में आकाश को बाँधने चला हो। मुट्ठी तो बँध जाएगी, आकाश बाहर हो जाएगा। ऐसे ही शब्द तो बँध जाते हैं, परमात्मा बाहर छूट जाता है। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है। और तुम जो परमात्मा को रटन लगाए रखते हो उससे परमात्मा का कुछ लेना-देना नही है। वह तुम्हारे मन की ही बीमारी है।

हमको मालूम है जन्नत की हकीक़त लेकिन
दिल को बहलाने को गालिब ये ख़याल अच्छा है

तुम्हें अच्छी तरह पता है। तुम्हारा स्वर्ग, तुम्हारा मोक्ष, तुम्हारा परमात्मा, इसकी हकीकत तुम्हें अच्छी तरह मालूम है। ये तुम्हारा परमात्मा कुछ भी नहीं हैं। सुनी हुई बातचीत है। उड़ी हुई अफवाह है। दूसरों से सुन लिया, गुन लिया, शास्त्रो से पढ़ लिया है। शब्द घुस गया है, मन में, संस्कार बन गया है।

'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन'। और तुम भी जानते हो कि तुम्हारे स्वर्ग का क्या अर्थ है। तुम्हारे ही सपने का विस्तार है। तुम्हें पता है कि तुम्हारा परमात्मा क्या है। वह तुम्हारी ही आकांक्षाओं का पहरेदार है। तुम्हें पता है कि तुमने यह शब्द, यह सिद्धांत क्यों पकड़ रखे हैं। क्योंकि तुम भयभीत हो, अकेले हो, डरते हो, सहारा चाहिए। झूठा ही सही। 'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन, दिल को बहलाने को गालिब ये ख़याल अच्छा है'। लेकिन इस अकेले में दिल को बहला लेते हैं। किसीसे भर लेते हैं। तुम्हारा परमात्मा सच नहीं है। क्योंकि तुम अभी बहुत सच हो। तुम अभी जरूरत से ज्यादा यथार्थ हो। तुम उसे जगह न दोगे। तुम ही तो बाधा बने हो। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे और परमात्मा के बीच और कोई भी नहीं खड़ा है।

इसलिए बुद्ध कहते है मन को समझो। मन यानी तुम। मन यानी मनुष्य। और जहाँ मन चला गया, वहाँ ध्यान। और जहाँ ध्यान, वहाँ परमात्मा।

तुम्हारे होने के दो ढंग हैं। एक मन और एक ध्यान। तुमने कभी ख्याल किया, जब तुम बीमार होते हो तब भी तुम ही होते हो। और जब तुम स्वस्थ होते हो, तब भी तुम ही होते हो। तो बीमारी और स्वास्थ्य तुम्हारे दो होने के ढंग हैं। बीमारी बेचैनी है। बीमारी एक पीड़ा है। बीमारी एक दुख है, दर्द है। स्वास्थ्य एक शांति है। जैसे भटका-भूला घर लौट आया। जैसे थके-मांदे को वृक्ष की छाया मिली। स्वास्थ्य सुख है। वो भी तुम्हारे होने का ढंग है। तो एक तो तुम्हारे होने का ढंग मनुष्य है। वो यानी बीमारी, मन। और एक तुम्हारे होने का ढंग ध्यान है, स्वास्थ्य है, परमात्मा है। तुम ही जब स्वस्थ होते हो, परमात्मा हो जाते हो। तुम्ही जब बीमार होते हो, आदमी हो जाते हो।

लहर शांत है। पूरा चाँद आकाश में है। झील पर कोई लहरें नहीं उठती। दर्पण बन गयी है झील, चांद पूरा का पूरा दिखायी पड़ता है। फिर हवा का एक झोंका। लहर उठ गयी। झील कँप गयी, दर्पण खंडित हो गया। चाँद हजार-हजार टुकड़ों में टूट गया। झील वही है। चाँद वही है। लेकिन कँपती हुई झील बीमार झील है। तुम वही हो। परमात्मा वही है। सत्य वही है। सिर्फ तुम कँप रहे हो। ये कँपते हुए चैतन्य का नाम मन है। और अकंप चैतन्य का नाम ध्यान है। जब झील चुप हो जाती है, लहर नहीं उठती, तुम शांत होते हो।

ऐसा थोड़े ही है कि शांत अवस्था में परमात्मा से मिलन होता है। यह तो मन की ही बातचीत है। यह तुम साथ मत ले जाना। इसलिए बुद्ध कहते हैं इस चर्चा को मत चलाओ। इससे कुछ लाभ तो होता नहीं, हानि बहुत हो जाती है। इससे किसीकी कुछ समझ में तो आता नहीं, नासमझी बहुत बढ़ जाती है। यह बात ही मत चलाओ। बस इतना ही कहो संक्षिप्त में, कि कैसे यह मन शांत हो जाए। कैसे ये लहरें सो जाएँ। कैसे झील स्वस्थ हो जाए। कैसे प्रतिबिंब बन सके परमात्मा का उसमें।

प्रतिबिंब, यह भी सब बातचीत है। लेकिन कठिनाई यह है कि किसी भी तरह से उस तरफ इशारा करो, शब्द को लाना पड़े। मगर असलियत यह है कि जब झील पूर्ण शात होती है तो चाँद ही हो जाती है। अब इसे कैसे कहो? जब तुम पूरे शात होते हो तो परमात्मा से मिलना नहीं होता, तुम परमात्मा हो जाते हो। अशांति में तुम मनुष्य समझते हो अपने को, परमात्मा नही समझ पाते। कैसे समझोगे? इतनी पीड़ा में, और तुम परमात्मा! इतनी दीनता में, और तुम परमात्मा! मनुष्य दीन है। अपने को ईश्वर कैसे मानेगा। ईश्वर तो तभी मान

सकता है जब जीवन में परम ऐश्वर्य प्रगट हो। जब भीतर वैभव उठे। और जब भीतर ऐसी घड़ी आए कि लगे कि सब कुछ तुम्हारा है। सब तुम हो। चाँद-तारे तुम्हारे भीतर घूमते हैं। और तुम्हारे ही हाथ के इशारे से जगत चलता है। तुम इस जगत की प्राण-प्रतिष्ठा हो। तुम इसके केंद्र पर हो। तुम ऐसे ही अजनबी नही हो। तुम कोई बिन बुलाए मेहमान नहीं हो। तुम घर के मालिक हो। तुम मेहमान नहीं हो, मेज़बान हो।

झेन फकीर कहते है कि मनुष्य की दो अवस्थाएँ हैं। एक, कि वो अपने को अतिथि समझे, 'गेस्ट'। और एक, कि अपने को 'होस्ट' समझे, मेज़बान, और इतना ही फर्क है। अभी दुनिया में तुम ऐसे हो जैसे जबरदस्ती हो। अभी तुम ऐसे हो जैसे बुलाए न गये थे और आ गये हो। अभी तुम ऐसे हो जैसे एक दुश्मन हो। लड़ रहे हो। फिर एक होने का ढंग है शांत। तुम लड़ नहीं रहे हो। तुम मेहमान भी नही हो, तुम स्वय मेज़बान हो। तुम्हे किसीने बुलाया नही, तुम मालिक हो। तब तुम्हारे भीतर ऐश्वर्य प्रगट हुआ। परमात्मा प्रगट हुआ।

बुद्ध कहते है, तुम्हारा ईश्वर तो ऐसा है जैसे अफवाहें सुनी हो।

हस्ती का शोर तो है मगर एतबार क्या
झूठी खबर किसीकी उडायी हुई सी है

सुनने तो बहुत है परमात्मा की बात। 'हस्ती का शोर तो है मगर एतबार क्या'। भरोसा कैसे आए? श्रद्धा कैसे हो? 'झूठी खबर किसीकी उड़ायी हुई सी है'। यह परमात्मा एक झूठी खबर मालूम पडता है, जो किसीने उड़ा दी और चल पड़ी। और एक से दूसरे के हाथ में चली जाती है। एक पीढी दूसरी पीढी को दे जाती है। इस पर भरोसा कैसे आए, एतबार कैसे हो?

तो बुद्ध कहते है, इस बात मे ही मत पडो। परमात्मा पर एतबार नही लाना है। परमात्मा पर भरोसा नही लाना है। लाओगे भी कैसे? जिसे कभी जाना नही, जिसे कभी देखा नही, जिसे कभी सुना नही, जिसे कभी पहचाना नही, जिसका कोई संस्पर्श न हुआ, जो हृदय में कभी विराजा नही, जिसकी छाया कभी तुम्हारे जीवन पर न पडी, उसका भरोसा कैसे करोगे?

'झूठी खबर किसीकी उडायी हुई सी है'

लाख चेष्टा करके भी तो श्रद्धा जमेगी न। जमा भी लो किसी तरह, उखड़ी-उखड़ी रहेगी। और नीचे आधार तो नही होगा। बेबुनियाद होगी। इस बेबुनियाद श्रद्धा पर जीकर क्या तुम धार्मिक हो जाओगे, आस्तिक हो जाओगे? अगर ऐसा ही होता होता तो सारी पृथ्वी आस्तिक है। हर आदमी आस्तिक है। कोई ईसाई है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है। पृथ्वी पर नास्तिक तो

बड़े थोड़े हैं। और जो नास्तिक हैं अगर उनको भी तुम गौर से देखो, तुम उनको भी आस्तिक ही पाओगे। बाइबिल को न मानते हों, कुरान को न मानते हों, गीता को न मानते हों, तो दास कैपिटल—मार्क्स की किताब—को मानते हैं। कृष्ण को न पूजते हों, महावीर को न पूजते हों, तो लेनिन को पूजते हैं। अगर बाइबिल की किताब दबाकर न चलते हों, तो चेयरमैन माओ की लाल किताब को दबाकर चलते हैं। फर्क क्या पड़ेगा? महावीर हों कि माओ, और मुहम्मद हों कि मार्क्स, क्या फर्क पड़ता है?

नास्तिक भी जिनको तुम कहते हो, वो भी आस्था ही रखते हैं, झूठी। वो भी आस्तिक ही हैं। विपरीत खड़े होंगे, पीठ किये होंगे। लेकिन उनकी भी श्रद्धा कहीं है। पर वो श्रद्धा भी बस थोथी है। अनुभव के अतिरिक्त आधार कहीं और है नही। तो बुद्ध ने कहा, अनुभव पर रखो आधार। तत्त्व-चर्चा मत छेड़ो। जबकि तत्त्व को जानने का उपाय है तो व्यर्थ की बकवास क्यों? जब हम जान सकते हैं, आँख हमारे पास है, आँख खुलते ही सूरज के दर्शन हो जाएँगे, तो आँख बंद किये सूरज के संबंध में चर्चा क्यो? और आँख बंद रहे तो सूरज के संबंध में लाख चर्चा चले, सदा लगता ही रहेगा—'झूठी खबर किसीकी उड़ायी हुई सी है।' आँख खुले तो सूरज सत्य है। फिर सारी दुनिया भी कहती हो कि सूरज नही है, तो भी अंतर नही पडता।

सत्य अनुभव में आ जाए तो स्वयंसिद्ध है। फिर सारी दुनिया इनकार कर दे, तो भी कोई अंतर नही पड़ता। फिर तुम्हें कोई डगमगा नही सकता। जो अपने भीतर स्वयं थिर हो गया, उसे कभी कोई नहीं डगमगा पाया है। और तुम अपने भीतर थिर नहीं हो। तुम्हारी थिरता झूठी है। सम्हाली हुई है।

बुद्ध ने अनुभव दिया, सिद्धांत नहीं। बुद्ध ने सत्य देना चाहा, शास्त्र नहीं। बुद्ध ने निःशब्द प्रतीति दी है, सिद्धांतों का जाल नहीं। और उसका एक ही मार्ग है कि तुम्हारे मन को तुम्हारे सामने पूरा का पूरा विशलिष्ट करके रख दिया जाए। अपने मन को तुम पहचान लो, अपनी बीमारी को जान लो, औषधि है। ठीक निदान हो जाए, ठीक औषधि मिल जाए, तुम वही हो जाते हो जिसकी सदियों से चर्चा करते रहे हो।

बुद्ध दार्शनिक नहीं हैं। बुद्ध वैज्ञानिक हैं।

दूसरा प्रश्न: बुद्ध ने अपने संन्यासियों को आहार-विहार, चर्या और आचरण के सूक्ष्म एवम् सविस्तार नियम दिये। जैसे चार हाथ तक ही आगे देखना, भिक्षु-भिक्षुणी का आपस में व्यवहार किस ढंग का हो, क्या खाना, क्या पहनना, कहाँ

जाना, कहाँ न जाना आदि। आप अपने संन्यासियों के लिए ऐसा कुछ क्यों निश्चित नहीं करते?

बुद्ध ने नियम दिये। नियम देने पड़ते हैं, क्योंकि तुम्हारे पास होश नहीं है। अगर होश हो तो नियम व्यर्थ हो जाते हैं। और बुद्ध ने भी सारे नियमों के पीछे होश पर ही आग्रह किया।

आनंद पूछता है, कोई स्त्री दिखायी पड़ जाए तो क्या करें? तो बुद्ध ने कहा, नीचे देखना। देखना ही मत। और आनंद पूछता है, और अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि देखना ही पड़े, तो क्या करना? तो बुद्ध ने कहा, देखना, मगर छूना मत। और आनंद ने कहा, अगर ऐसी घड़ी आ जाए कि छूना ही पड़े, तो क्या करें? तो बुद्ध ने कहा, होश रखना।

आखिर में तो होश ही है। देखना मत, छूना मत ऊपर-ऊपर हैं। अंतिम घड़ी में तो होश ही है। आनंद ने ठीक किया कि वो पूछता ही गया। बुद्ध का असली अनुशासन क्या है फिर? 'देखना नही'! तब तो अंधे देखते नहीं, अंधे परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएँगे? 'छूना मत'! हाथ कटवा डालो। तो क्या लूले-लँगड़े परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएँगे?

नही, अंतिम सूत्र तो बुद्ध ने होश का ही दिया। और अगर होश न हो और तुम आँख भी झुका लो तो क्या फर्क पडेगा? आँख बंद में भी तो स्त्री दिखायी पड़ती चली जाती है। रात सपने में दिखायी पडती है, तब क्या करोगे? आँख तो बद ही है। अब सपने में तो कुछ उपाय नहीं और आँख बंद करने का। आँख के भीतर ही चल रही है। फिर क्या करोगे? आनंद की जगह अगर मै होता तो मैं पूछता, सपने की फिर? सपने में स्त्री दिख जाए, फिर क्या करना? और ऐसे यह भी बड़ा सपना है। बुद्ध समझते हैं। सपने मे स्त्री दिख जाए, फिर क्या करना? फिर कैसे आँख झुकाओगे? आँख झुकी ही हुई है। आँख तो बंद ही है, अब और तो कोई बंद करने का उपाय नही।

लेकिन बुद्ध की बात साफ है। बुद्ध ने जो बात कही उसे सब कोटियों के लिए कह दी। जो अत्यंत जड़बुद्धि है, उनसे कहा आँख झुका लेना। ये जड़बुद्धियों के लिए हुआ। जो इतने जड़बुद्धि नही हैं, उनसे कहा देख भी लेना, मगर छूना मत। मगर हैं यह भी जड़बुद्धि।

अंतिम सूत्र असली सूत्र है। क्योंकि उसके पार फिर कुछ नही। वो आखिरी अनुशासन है: स्मरण रखना, होश रखना।

मैंने दो सूत्र छोड़ दिये। क्योंकि दो हजार, ढाई हजार साल का अनुभव कहता है, उनसे कुछ फल न हुआ। मैं बुद्ध से ढाई हजार साल बाद हूँ, तो ढाई हजार

साल का कुछ अनुभव भी साथ है। ढाई हजार साल में जो घटा वो साफ है। क्या हुआ ? जो ऊपर के नियम थे, वो तो टूट गये। और जो ऊपर के नियमों में उलझे, वो व्यर्थ ही परेशान हुए और नष्ट हो गये। जिन्होंने आखिरी सूत्र पकड़ा, वही बचे।

अब मैं तुम्हें उदाहरण दूँ कि कैसे घटना घटती है।

एक गाँव मे बुद्ध ठहरे। एक भिक्षु भिक्षा का पात्र लेकर लौट रहा था वापिस। एक चील के मुँह से माँस का टुकड़ा छूट गया। वो भिक्षापात्र में गिर गया टुकड़ा माँस का। अब बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि माँस खाना नहीं। और बुद्ध ने यह भी कहा है कि भिक्षापात्र में जो भी डाल दिया जाए, उसे अस्वीकार नहीं करना। अब क्या करना ? बड़ी दुविधा खड़ी हो गयी।

भिक्षु आया। उसने बुद्ध से पूछा, अब क्या करें ? दो नियमों में विरोध हो गया। आप कहते हैं, जो भी भिक्षापात्र में कोई डाल दे उसे इनकार नहीं करना। यह इसलिए कहना पड़ा कि भिक्षु बड़े कुशल हो जाते हैं। जैन मुनियों को देखो, वो इशारा कर देते हैं कि क्या डालो। इशारा कर दिया कि यह मत डालो। मुँह से न बोलेंगे, हाथ से इशारा कर देंगे। क्योंकि बोलने के लिए महावीर ने मना किया है : माँगना मत, तो वो इशारा कर देते हैं कि यह डाल दो, थोड़ा और ज्यादा डाल दो। मगर मुँह से नहीं बोलते। आखिर बेईमान आदमी के लिए नियम क्या करेंगे ? कितने कानून हैं दुनिया में। लेकिन चोर हमेशा कानून में से रास्ता निकाल लेता है। आखिर वकील किसलिए हैं ? वो रास्ता निकालने के लिए हैं। वो चोर को बताने के लिए कि बनाने दो नियम उनको। हम बैठे है। तुम घबड़ाते क्यों हो ? आदमी के मन में तर्क है(वो वकील है। वो रास्ता खोज लेता है) वो भिक्षु आया, उसने कहा कि यह क्या मामला, अब क्या करना ? आपने कहा भिक्षापात्र में जो भी डाल दिया जाए।

यह बुद्ध ने इसलिए कहा कि नहीं तो लोग माँगते हैं। और बुद्ध का भिक्षु भिखारी हो जाए, भद्दा है। भिक्षु भिखारी नहीं है। वो कोई माँग नहीं रहा है। दे दो तो भला न दे तो भला। वो आशीर्वाद ही देगा। और अगर वो माँगने लगे, तो फिर बोझ हो जाता है। किसी गरीब के घर के सामने खड़ा हो जाए, और खीर माँगने लगे, और गरीब न दे सके तो पीड़ा होती है। और दे तो कठिनाई हो जाती है। रूखा-सूखा जो गरीब दे दे, वही ले लेना। न दे, तो मन में कुछ बुराई मत लाना, विरोध मत लाना। इसलिए कहा था। बुद्ध को पता भी न था कि जिंदगी ऐसी है कि अब चील कहीं माँस का टुकड़ा गिरा दे। अपवाद है। कोई रोज चील माँस का टुकड़ा गिराएगी भी नहीं।

लेकिन अब उस बौद्ध भिक्षु ने पूछा, अब क्या करें ? और आप कहते हैं माँस खाना नहीं। अब इन दोनों में विरोध हो गया। नियमों में हमेशा विरोध हो जाएगा। क्योंकि जिंदगी जटिल है। जिंदगी तुम्हारे नियम मानकर थोड़े ही चलती है। भिक्षु मानता होगा नियम, चील थोड़े ही मानती है। चील थोड़े ही कोई बौद्ध भिक्षु है कि बुद्ध के वचन सुनती है! चील अपनी मौज में होगी, छोड़ गयी। और चील को कोई पता भी नहीं है कि भिक्षु के पात्र में गिर जाएगा। भिक्षु के पात्र मे गिराया भी नही है।

जीवन में संयोग होते है। सिद्धांत नही चलते, टूट जाते हैं। संयोग रोज बदल जाते हैं। सिद्धात अधूरे पड़ जाते हैं। सिद्धांत तो ऐसे ही है जैसे छोटे बच्चे के लिए पेंट-कमीज बनाया। वो बच्चा बड़ा हो गया, अब पेंट-कमीज छोटा पड़ गया। अब दो ही उपाय है। या तो पेंट-कमीज बड़ा करो, और या फिर बच्चे को दबा-दबाकर छोटा रखो। तो पेंट-कमीज बड़ा करने में कठिनाई मालूम होती है। कौन करे बड़ा? बुद्ध तो जा चुके। तो जो वो नियम दे गये हैं उसको रहने दो, चाहे आदमी को ही छोटा रहना पड़े तो हर्जा नही। लेकिन नियम तो नहीं बदला जा सकता। कौन बदलेगा नियम? और एक बार बदलने की सुविधा दो तो फिर कहाँ रोकोगे?

बुद्ध ने सोचा। बुद्ध अक्सर सोचते नहीं। ऐसा उन्होंने आँख बद कर ली। उन्होंने बहुत सोचा कि यह मामला तो जटिल है। फिर उन्होंने सोचा, अगर मे कहूँ कि तुम चुनाव कर सकते हो पात्र में से, जो योग्य न हो तो छोड़ दिये, तो वो जानते हैं कि यह तो खतरा हो जाएगा। तो लोग जो नही खाना-पीना है वो फेंक देंगे और जो खाना-पीना है वो खा-पी लेगे। और चुनाव भिक्षु को नहीं करना चाहिए। जो मिल गया भाग्य में, वही ठीक है। फिर अगर यह कहूँ कि जो मिल जाए वो खा लेना, तो अब ये माँस के टुकड़े का क्या करना? फिर बुद्ध को खयाल आया कि चीलें कोई रोज तो गिराएँगी नही। अब शायद कभी भी न गिरे। हो गया एक दफे, यह संयोग था। इस एक संयोग के लिए नियम बनाना ठीक नही। तो बुद्ध ने कहा कि कोई फिकर न करो, जो पात्र में गिर जाए वो खा लेना। अगर माँस गिर गया तो वो तुम्हारा भाग्य का हिस्सा है।

बुद्ध ने सोचा था, चीलें रोज माँस न गिराएँगी। लेकिन अब बौद्ध भिक्षुओं के पात्र में रोज माँस गिरता है। जापान, चीन, वर्मा, रोज। अब श्रावक गिराते हैं। और चूंकि एक दफा बुद्ध ने आज्ञा दे दी थी कि जो पात्र में गिर जाए वो खा लेना, अब श्रावक माँस डालते हैं, मछली डालते हैं, और भिक्षु खाता है। क्योंकि नियम है। इसलिए दुनिया के बड़े से बड़े अहिंसक विचारक बुद्ध की परंपरा मे मांसाहार प्रचलित हो गया। चील ने शुरू करवा दिया।

अंततः तो होश ही काम आएगा। बाकी कोई नियम काम न आएगा। इसलिए मैंने सारी विस्तार की बातें छोड़ दी हैं। क्योंकि मैं जानता हूँ, अगर तुम्हें तोड़ना ही है तो तुम तरकीब निकाल लोगे। तो तोड़ने का भी तुमको कष्ट क्यों देना। और तोड़ने से जो अपराध का भाव पैदा होता है, वो क्यों पैदा करना। मैं तुम्हें कोई नियम ही नहीं देता। ताकि तुम तोड़ ही न सको। मैं तुम्हें सिर्फ होश देता हूँ। सम्हाल सको तो ठीक, न सम्हाल सको तो भी ठीक। लेकिन बेईमानी पैदा न होगी, पाखंड पैदा न होगा।

मुझे रोकेगा तू ए नाखुदा क्या गर्क होने से
कि जिनको डूबना है डूब जाते हैं सफ़ीनों में

माझी से कह रहा है कवि कि तू मुझे बचा न सकेगा डूबने से। क्योंकि, 'जिनको डूबना है डूब जाते है सफ़ीनों में' — नाव में डूब जाते है। तू बचाएगा कैसे? अगर नदी में डूबने का सवाल होता तो तू बचा लेता। लेकिन जिनको डूबना ही है, वो नाव में ही डूब जाते हैं। फिर तू क्या करेगा?

मुझे रोकेगा तू ए नाखुदा क्या गर्क होने से
कि जिनको डूबना है डूब जाते हैं सफ़ीनों में

सारे धर्म सफीनों में डूब गये। नाव में डूबे। नियम बनाया, उसीमें डूबे। अब यह बहुत हो चुका। मैं तुम्हें नाव ही नहीं देता। अगर डूबना ही हो तो नदी में ही डूबना। नाव मे क्या डूबना! कहने को तो रहेगा कि नदी में डूबे। यह भी क्या बात हुई कि नाव में डूबे। नाव तो बचाने को होती है। जो नाव में डूबते हैं उन्ही को हम पाखंडी कहते हैं।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, कम से कम एक बात साफ रखना। या तो होश सम्हालना, तो तुम धार्मिक। होश न सम्हाल सको, तो तुम अधार्मिक। मैं दोनो के बीच में कोई जगह नहीं छोड़ रहा हूँ। पाखंडी के लिए जगह नहीं छोड़ रहा हूँ। पाखंडी कौन है? वो आदमी पाखंडी है, जो है तो अधार्मिक, लेकिन धार्मिक नियमों को पालकर चलता है। रोज मंदिर जाता है। अधार्मिक कैसे कहोगे? यद्यपि मंदिर में कभी उसने प्रार्थना नहीं की। क्योंकि जिसे प्रार्थना करनी आती हो वह घर ही मंदिर हो जाता है उसका। उसे मंदिर जाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वो नियम से भोजन करता है। रात भोजन नहीं करता, दिन भोजन करता है। लेकिन इससे उसकी हिंसा नहीं जाती। शायद हिंसा और बढ़ जाती है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मांसाहारी व्यक्ति कम क्रोधी होते हैं। शिकारी को अक्सर तुम कम क्रोधी पाओगे। क्योंकि उसकी हिंसा निकल जाती है। मार लेता है जाके जंगल में सिंह को। अब जिसने सिंह को मार लिया, वो तुम्हें मारने को

उत्सुक भी नहीं होता। तुम्हें मारना भी क्या! अब कोई बैठे हैं दूकान पर ही माला जप रहे हैं, वो कभी कहीं गये नहीं, किसीको मारा नहीं, कोई झगड़ा-झाँसा लिया नहीं, वो तैयार बैठे हैं। वो चींटों पर भी टूट पड़ें, सिंह की बात दूर! बहाना भर चाहिए उनको। उनकी हिंसा का निकास नहीं हो पाया।

नियम देने का एक ही परिणाम हुआ है संसार में, औरवो यह है कि लोग नियम को पूरा कर लेते हैं और होश को गवाँ देते हैं।

जीसस के जीवन में उल्लेख है, एक आदमी आया — निकोडैमस। वह बहुत धनी आदमी था। उसने जीसस से कहा कि मुझे भी बताएँ कि मेरे जीवन में क्रांति कैसे हो और मैं परमात्मा को कैसे पाऊँ। तो जीसस ने कहा कि जो नियम मूसा ने दिये हैं — दस नियम, दस आज्ञाएं — उनका पालन करो। तुम पढ़े-लिखे हो, तुम्हें पता है। उसने कहा कि मैं उनका अक्षरशः पालन करता हूँ, फिर भी जीवन में कोई क्रांति नहीं हुई। न मैं चोरी करता। न मैं किसी स्त्री की तरफ बुरे भाव से देखता। दान देता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, पूजा करता हूँ। जैसा धार्मिक जीवन होना चाहिए, निभाता हूँ। लेकिन कोई क्रांति नहीं होती।

तो जीसस ने कहा, ठीक है। तब तुम एक काम करो। तुम्हारे पास जो भी है, तुम जाओ घर, उसे बाँट आओ और मेरे पीछे चलो। उस आदमी ने कहा यह जरा मुश्किल है। तुम्हारे पीछे चलना, और सब बाँटके? वो आदमी उदास हो गया। वो बड़ा धनी था। उसने कहा कि नहीं; कोई ऐसी बात बताओ जो मैं कर सकूं। जीसस ने कहा, जो तुम कर सकते हो उससे तुम बदलोगे न। क्योंकि वो तो तुम कर ही रहे हो। अब मैं तुमसे वह कहता हूँ, जो तुम कर नहीं सकते। अगर किया, तो बदल जाओगे। अगर नहीं किया, तो तुम जैसे हो वैसे हो। जाओ सब बाँट दो। उसने कहा, मेरे पास बहुत धन है। इतने कठोर मत हो। और अभी बहुत काम उलझे हैं, मैं एकदम आपके पीछे आ नहीं सकता। जीसस ने अपने शिष्यों की तरफ देखा और वो प्रसिद्ध वचन कहा, जो तुमने बहुत बार सुना होगा, कि सुई के छेद से ऊँट निकल जाए लेकिन धनी आदमी स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर सकेगा।

धनी नियम तो पाल लेता है, लेकिन धार्मिक नहीं हो पाता। धनी को सुविधा है नियम पालने की। वो रोज दिन में तीन दफे मंदिर जा सकता है, या पाँच दफे नमाज पढ़ सकता है। गरीब तो पाँच दफे नमाज भी नहीं पढ सकता। फुर्सत कहाँ है? समय कहाँ? मंदिर कैसे जाए? दफ्तर जाए, फैक्ट्री जाए, खेत पर जाए कि मंदिर जाए। रोज गीता नहीं पढ़ सकता। समय कहाँ? भजन नहीं कर सकता, क्योंकि पेट में भूख है। धनी तो भजन कर सकता है, पूजा कर सकता है।

खुद न भी करने की इच्छा हो तो नौकर रख सकता है। मजदूर रख सकता है पूजा करने को। नौकर-चाकर रखे हैं लोगों ने, उनको पुजारी कहते हैं। उनसे कहते हैं, तुम पूजा कर दो। उनको तनखवाह मिलती है, पूजा का फल मालिक को मिलता है। नौकर रख ले सकते हो। कितनी बेहूदगी की बात है। प्रेम और पूजा के लिए भी नौकर। उसे भी तुम दूसरे से करवा लेते हो पैसे के बल पर। तो अगर तुमने एक पुजारी को सौ रुपया महीना दिया, और उसने रोज आकर तीन दफा भगवान की पूजा की, तो अगर ठीक से समझो तो हिसाब ऐसा है कि तुमने भगवान को सौ रुपये दिये। और क्या दिया ? तुम्हारे पास थे, तुम दे सकते थे। और शायद यह सौ रुपये देकर तुम करोड़ों पाने की आकांक्षा कर रहे हो। यह भी शायद रिश्वत है। नियम तो पूरे किये जा सकते हैं। नियम के पूरे करने से कोई धार्मिक नहीं होता। पाखंडी हो जाता है, 'हिपोक्रेट' हो जाता है।

इसलिए मैंने कोई नियम तुम्हें नहीं दिये। या तो तुम धार्मिक होओ, या अधार्मिक। बीच की मैंने तुम्हें सुविधा नहीं दी है। इसलिए मैं तुम्हें वही आखिरी बात कहता हूँ जो बुद्ध ने आनंद को कही: होश साधना। आँख बंद करना, न करना; क्या फर्क पड़ता है। मेरी दृष्टि में ऐसा है कि अगर तुमने होश साधा, आँख खुली रखो — स्त्री को छुओ, धन कमाओ, मकान में रहो, बाजार में बैठो, कोई अंतर नहीं पड़ता। होश न सधा, आँख बंद रखो—जंगल में भाग गये, धन न छुआ, नंगे खड़े हो गये, सब त्याग दिया, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। होश से ही क्रांति होती है। इसलिए होश अकेला नियम है। एकमात्र नियम। एस धम्मो सनंतनो। यही एकमात्र सनातन नियम है। यही एकमात्र सनातन धर्म है कि तुम जागकर जीना, और तुमसे कुछ भी नहीं माँगता। विस्तार की बातों में तो तुम बहुत बार धोखा दे गये हो। मैं तुम्हें विस्तार का मौका ही नहीं देता। बस एक छोटा सा शब्द देता हूँ — 'अवेयरनेस', होश। ताकि तुम साफ रहो। सधे तो साफ रहो, न सधे तो साफ रहो। दोनों के बीच में धोखा देने की सुविधा नहीं देता।

इसलिए मैंने कोई नियम नहीं दिये। तुम यह मत समझना कि मैंने नियम नहीं दिये। नियम दिया है। नियम नहीं दिये हैं। और नियम काफी है। कहावत है— 'सौ सुनार की एक लुहार की'। मेरा नियम लुहार वाला है। 'डिटेल्स' और विस्तार की बातों में मैं नहीं पड़ा हूँ। क्योंकि तुम उनमें काफी कुशल हो गये हो। मेरे पास लोग आते है, वो कहते हैं, ध्यान तो ठीक, लेकिन कुछ और बताएँ कि हम क्या करें, क्या खाएँ, क्या पीएँ, क्या पहनें, कब सोएँ, कब जागें ? ये व्यर्थ की बातें तुम्हीं सोच लेना। तुम सिर्फ ध्यान करो। अगर तुम्हारा मन शांत और जागरूक होता जाए, तो तुम खुद ही पाओगे कि और नियम अपने आप उसके पीछे आने लगे।

होशपूर्ण व्यक्ति अपने-आप शराब न पीएगा, क्योंकि शराब तो होश के विपरीत है। वह तो होश को नष्ट कर देगी। उसे नियम देने की जरूरत नहीं कि शराब मत पियो। होशपूर्ण व्यक्ति अपने-आप मांसाहार छोड़ देगा। क्योंकि जिसको जरा सा भी होश आया उसे इतना न दिखायी पड़ेगा कि दूसरे का जीवन लेके सिर्फ पेट भरने के लिए। अगर इतना भी न दिखायी पड़े होश में तो वो होश दो कौड़ी का है। उसका क्या मूल्य है? होशपूर्ण व्यक्ति क्या चोरी करेगा? किसीकी जेब काटेगा? होशपूर्ण व्यक्ति को अणुव्रत देने की जरूरत नहीं है कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो —— ये विस्तार की बातें तो इसीलिए देनी पड़ती हैं कि होश नहीं है, होश खो गया है। और यह सब तुम पूरी कर सकते हो। इनमें कुछ अड़चन नहीं है। तुम दान कर सकते हो, ईमानदारी कर सकते हो, सेवा कर सकते हो, बस एक चीज में अड़चन आती है —— तुम होश नहीं साध सकते। और अगर मैं तुम्हें एक हजार एक विस्तार की बातें दे दूँ, तो तुम कहोगे एक हजार एक में से एक हजार को तो हम पालन कर रहे हैं, अगर एक ध्यान का नहीं भी कर रहे, तो क्या हर्जा है? मैं तुम्हें एक ही देता हूँ, ताकि जीवन-स्थिति साफ रहे। पाखंड के पैदा होने का उपाय न हो। मैं तुम्हें नियम नहीं देता, ताकि तुम नियम तोड़ न सको। मैं तुम्हें नियम नहीं देता, ताकि तुम नियम पालकर धोखा न दे सको। मैं तुम्हें नियम नहीं देता, सिर्फ एक सूत्र देता हूँ। शास्त्र नहीं देता, सिर्फ सूत्र देता हूँ —— होश।

महावीर से किसीने पूछा है साधु कौन, असाधु कौन? तो महावीर ने वो नहीं कहा जो जैन-मुनि कह रहे हैं —— कि जो दिन को भोजन करे वो साधु, जो रात को भोजन करे वो असाधु; जो पानी छानकर पिए वह साधु, जो पानी छानकर न पिए वह असाधु। नहीं, महावीर ने विस्तार की बातें न कहीं। महावीर ने एक लुहार की बात कही। महावीर ने कहा —— 'असुप्ता मुनिः सुप्ता अमुनिः'। जो सोया-सोया जी रहा है, वो असाधु; जो जागा-जागा जी रहा है —— असुप्ता —— वो साधु, वो मुनि।

यही मैं तुमसे कहता हूँ। यही बुद्ध ने भी कहा है। लेकिन पच्चीस सौ वर्ष का अनुभव मेरे पास है जो उनके पास नहीं था। अगर आज बुद्ध हों तो वे यह नहीं कहेंगे कि पहले देखना मत, छूना मत। आज वो पहले ही कह देंगे : आनंद, अब व्यर्थ की बकवास में न जा —— तू इतने प्रश्न पूछे, फिर मैं असली बात कहूँ —— पहले ही कहे देता हूँ : होश रखना।

तीसरा प्रश्न : बुद्ध कहते हैं अल्पतम पर, अत्यंत जरूरी पर ही जियो। आप

कहते हैं, कंजूसी से, कुनकुने मत जियो, अतिरेक में जियो। हम दोनों के बीच कैसा तालमेल बिठाएँ?

तालमेल बिठाने को कहा किसने? बुद्ध ठीक लगें, बुद्ध की बात मान लो। मैं ठीक लगूं, मेरी बात मान लो। तालमेल बिठाने को कहा किसने एलोपैथी, होमियोपैथी में तालमेल बिठालना भी मत। तालमेल की चिंता बड़ी गहरी है तुम्हारे मन में, कि किसी तरह तालमेल बिठा लें। तुम्हें लेना-देना क्या है तालमेल से? जो दवा तुम्हारे काम पड़ जाए, उसे स्वीकार कर लेना। तुम्हें कोई सारी दुनिया की पैथीज़ में तालमेल थोड़े ही बिठालना है।

बुद्ध ने कहा है जियो न्यूनतम पर, यह एक छोर। क्योंकि छोर से ही छलांग लगती है। किसी चीज के मध्य से न कूद सकोगे, छोर पर आना पड़ेगा। अगर इस छत से कूदना है, तो कहीं भी छोर पर आना पड़ेगा, वहाँ से छलांग लगेगी। हर चीज के दो छोर हैं। बुद्ध ने कहा अल्पतम, न्यूनतम, कम से कम पर आ जाओ, वहाँ से छलांग लग जाएगी। मैं कहता हूँ अतिरेक, अंतिम पर आ जाओ, वहाँ से छलांग लग जाएगी। बुद्ध कहते हैं, दीन, दरिद्र, भिक्षु हो जाओ। मैं कहता हूँ सम्राट बन जाओ। मगर दोनों छोर हैं। बुद्ध कहते हैं, इधर हट जाओ। मैं कहता हूँ, उधर बढ़ जाओ।

तालमेल मत बिठालना। नहीं तो तुम बीच में खड़े हो जाओगे। तुम कहोगे, अब यह भी कहते हैं कि बिलकुल छोड़ दो। मैं कहता हूँ कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं। तुम कहोगे आधा पकड़ो, आधा छोड़ो। इधर बीच में खड़े हो जाओ। यह समन्वय, यह तालमेल तुम्हें मार डालेगा। कोई जरूरत नहीं है तालमेल बिठालने की। बुद्ध परिपूर्ण हैं। मेरी बात जोड़ने से कुछ फायदा न होगा, नुकसान होगा।

प्रत्येक व्यवस्था पूरी है। बुद्ध ने जो दिया है, वो पूरी व्यवस्था है। उसमें रत्ती भर कमी नहीं है। वो यंत्र अपने-आप में परिपूर्ण है। मेरी बातों को उसमे मत जोड़ देना। मैं तुम्हें जो दे रहा हूँ, वो परिपूर्ण है। उसमें बुद्ध को कुछ जोड़ने की जरूरत नहीं है। दुनिया के सारे धर्म अपने-आप में पूरी इकाई हैं। और झंझट कब खड़ी होती है, जब तुम्हें कोई समझानेवाला मिल जाता है और कहने लगता है— 'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सनमति दे भगवान।' तब तालमेल शुरू हुआ। उपद्रव शुरू हुआ। अल्लाह पर्याप्त है। उसमें राम को जोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। राम पर्याप्त है। उसमें अल्लाह को जोड़ने की कोई जरूरत नहीं। और महात्मा गाँधी भी जोड़ न पाए, कहते रहे। जुड़ सकता नहीं। मरते वक्त जब गोली लगी, तो अल्लाह न निकला, राम निकला। उस वक्त दोनों निकल जाते— अल्लाहराम! वो नहीं हुआ। वो जुड़ते नहीं। वो इकाइयाँ अलग-अलग हैं।

मरते वक्त जब गोली लगी, तब वो भूल गये ' अल्लाह ईश्वर तेरे नाम '। तब राम ही निकला। वही निकट था। अल्लाह तो राजनीति थी। राम हृदय था। अल्लाह तो जिन्ना को समझाने को कहे जाते थे। भीतर तो राम की ही गूंज थी। और जिन्ना को यह चालबाजी दिखायी पड़ती थी, इसलिए उसको कुछ असर न पड़ा।

मेरे पास तुम तालमेल विठालने की बात ही छोड़ दो। मैं कोई समन्वयवादी नहीं हूँ। मैं कोई सारे धर्मों की खिचड़ी नही बनाना चाहता हूँ। प्रत्येक धर्म का भोजन अपने आप में परिपूर्ण है। वो तुम्हें पूरी तृप्ति देगा। जब मैं बुद्ध पर बोल रहा हूँ, या जब मै ईसा पर बोलता हूँ, या महावीर पर बोलता हूँ, तो मेरा प्रयोजन यह नहीं कि तुम इन सबको जोड़ लो। इन पर मैं अलग-अलग बोल रहा हूँ, इसलिए ताकि हो सकता है किसीको बुद्ध की बात ठीक पड़ जाए, किसीको महावीर की ठीक पड़ जाए, किसीको कृष्ण की ठीक पड़ जाए। जिसको जहाँ से ठीक पड़ जाए। रास्ते थोड़े ही गिनने है। गुठलियों का थोड़े ही हिसाब रखना है। आम खाने हैं। तो तुम तालमेल बिठाओगे किसलिए ?

तुम्हें बुद्ध की बात जमती है, फिक्र छोड़ो मेरी। कुछ लेना-देना नहीं मुझसे फिर। फिर तुम उसी मार्ग पर चले जाओ। वहीं से तुम्हें परमात्मा मिल जाएगा। वो रास्ता परिपूर्ण है। उसमें रत्ती भर जोड़ना नहीं है। अगर तुम्हें बुद्ध की बात नहीं जमती, मेरी बात जमती है, तो भूल जाओ सब बुद्धों को। क्योंकि उनकी याददाश्त भी बाधा बनेगी।

और मन का एक बडे से बड़ा उपद्रव यही है कि वो कभी किसी एक दिशा के प्रति पूरा समर्पित नहीं होता। एक कदम बाएँ जाते हो, एक कदम दाएँ जाते हो, कभी आगे जाते, कभी पीछे जाते; जिंदगी के आखिर में पाओगे, वहीं खड़े-खड़े घिसटते रहे हो जहाँ पैदा हुए थे। गति ऐसे नहीं होती। गति तो एक दिशा में होती है। चुन लिया पश्चिम, तो पश्चिम सही। फिर भूल जाओ बाकी तीन दिशाएँ हैं भी। माना कि हैं। और कुछ लोग उन दिशाओं में भी चल रहे हैं, वो भी माना। लेकिन वो दिशाएँ तुमने छोड़ दीं। तुम अब पश्चिम जा रहे हो, तो तुम पश्चिम ही जाओ। ऐसा न हो कि एक हाथ पूरब जा रहा है, एक पश्चिम जा रहा है। एक टाँग दक्षिण जा रही है।

तालमेल तो न बैठेगा, उस तालमेल की चेष्टा में तुम बुरी तरह खंडित हो जाओगे। और यही गति मनुष्य की हो गयी है। आज से पहले, जब दुनिया इतनी एक-दूसरे के करीब न थी, और जमीन एक छोटा सा गाँव नहीं हो गयी थी, और जब एक धर्म से दूसरा धर्म परिचित नहीं था, तब बहुत लोगों ने परमज्ञान को

पाया। जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ी और छोटी हुई, और एक-दूसरे के धर्म से लोग परिचित हुए, वैसे ही धार्मिकता कम हो गयी। उसका कारण यह है कि सभी के मन में सभी दिशाएँ समा गयी। कुरान भी पढ़ते हो तुम, गीता भी पढ़ते हो। न तो गीता मे डूब पाते, न कुरान मे डूब पाते। तुम जब कुरान पढ़ते हो तब गीता की याद आती है, जब गीता पढते हो तब कुरान की याद आती है। और तालमेल बिठालने में लगे रहते हो।

नही, दुनिया का प्रत्येक धर्म अपने-आप मे समग्र है। न उससे कुछ घटाना है, न उसमें कुछ जोडना है। वो पूरी व्यवस्था है। तुम्हें जँच जाए, उसमें उतर जाना है। और बाकी सबको भूल जाना है। यही तो अर्थ है गुरु चुनने का कि तुमने देख लिया, पहचान लिया, खोजा, सोचा, चिंतन किया, मनन किया, पाया कि किसीसे मेरा तालमेल बैठता है।

दो व्यवस्थाओ में तालमेल नही बिठालना है। तुममे और किसी व्यवस्था मे तालमेल बैठ जाए इसकी समझ पैदा करनी है कि हाँ, इस आदमी से मन भाता है, रस लगता है। और हर आदमी को अलग-अलग रस लगेगा। अब मीरा को तुम बुद्ध मे लगाना चाहो तो न लगा सकोगे। और अगर तुम सफल हो जाओ, तो मीरा का दुर्भाग्य होगा, वो भटक जाएगी। उसे तो कृष्ण से ही लग सकता था। नाच उसके रोएँ-रोएँ मे समाया था। बुद्ध उस नाच को मुक्त नही कर सकते थे। बुद्ध की व्यवस्था मे नाच की सुविधा नही है। वो उनके लिए है, जो नाच छोडने मे रस रखते है। वो उनके लिए है, जो गति छोडने मे रस रखते हैं। मीरा को न जमती बात। बुद्ध की कोई बाँसुरी ही नही है। बुद्ध के पास नाचने में बात बे-मौजूँ होती। बुद्ध की मूर्ति के पास नाचोगे तो तुम्हे भी अजीब सा लगेगा, असगत सा लगेगा। यह मूर्ति नाचने के लिए नही है। इस मूर्ति के पास तो चुप होके बैठ जाना है। इसके पास तो पत्थर हो जाना है। इसके पास तो ऐसे अकंप हो जाना है कि पता ही न चले कि तुम आदमी हो कि सगमरमर हो। तो ही तुम बुद्ध के रास्ते पर जा सकोगे।

अगर नाचने की थोडी भी भावदशा हो तो कृष्ण को देखना। फिर वहाँ मोर-मुकुट वाले कृष्ण से कुछ बात बन सकती है। वो आदमी इसीलिए हैं। उनकी बाँसुरी फिर तुम्हारे भीतर छिपे नाच को मुक्त कर देगी। और मुक्ति का कोई अर्थ नही होता। मुक्ति का यही अर्थ होता है, तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो जाए, खिल जाए। अगर तुम एक कमल अपने भीतर छिपाए हो, तो वह खिल जाए हजार-हजार पखडियो मे, उसकी सुगध लुट जाए हवाओ में। अगर तुम नाच छिपाए हो तो नाच प्रकट हो जाए। अगर कोई गीत अनगाया पड़ा है

तो गा दिया जाए। अगर कोई मौन सधने को बैठा है, तो सध जाए। तुम्हारी जो नियति है वह पूरी-पूरी उपलब्ध हो जाए।

हर आदमी की अलग-अलग नियति है। हर आदमी का अलग-अलग ढंग है। हर आदमी अनूठा है। बेजोड़ है, इसलिए तुम्हें अपना तालमेल किससे बैठ सकता है -- किस गुरु से, किस शास्ता से, किसका अनुशासन तुम्हें मौजूं आता है। और अगर तुम इसमें जरा भी भूल-चूक किये तो बड़ी उलझन में पड़ जाओगे। तुम एक खिचड़ी बन जाओगे। तुम्हारे भीतर बहुत सी चीजें होंगी, लेकिन सब खंड-खंड होंगी। और तुम्हारे भीतर एक प्रतिमा निर्मित न हो पाएगी। तुम थोड़ा सोचो, बुद्ध की गर्दन हो, कृष्ण के पैर हों, महावीर का हृदय हो, जीसस के हाथ हों, मुहम्मद की वाणी हो, सब गड़बड़ हो जाएगा, तुम पागल हो जाओगे। एकदम पागल हो जाओगे। तुम मुक्त तो न हो पाओगे, विक्षिप्त हो जाओगे। इसलिए, दुनिया के सारे धर्मों ने एक बात पर जोर दिया है कि अगर यह बात ठीक लगती है, तो बस पूरा समर्पण चाहिए। ठीक नहीं लगती है, कहीं और खोज लो। असली सवाल पूरा समर्पण है। जहां भी जाओ, पूरा समर्पण कर दो।

मेरे पास लोग आते हैं, वो कहते हैं, हम तो सभी गुरुओं के पास जाते हैं। सभी गुरु समान हैं। बड़ी ज्ञान की बातें कर रहे हैं वो, कि जो आप कहते हैं वही तो वो भी कहते है। न वो मुझे समझते हैं, न वो किसी और को समझते हैं कुछ। उन्होंने अभी समझा ही नहीं। ये तो अंतिम बात है।

मंजिल पर सभी गुरु एक हैं, मार्गों पर एक नहीं हैं। और जिसको चलना है, उसको मंजिल का सवाल नहीं है, मार्ग का सवाल है। अंत में पहुँच कर एक है। कृष्ण की बाँसुरी का गीत भी वहीं पहुँचा देगा, जहाँ बुद्ध का मौन पहुँचाता है। लेकिन यह मंजिल की बात है। तुम वहाँ नहीं हो। भूल के वहाँ अपने को समझ मत लेना। जहाँ नहीं हो, वहाँ समझने से कुछ लाभ नहीं। जहाँ हो, तुम जहाँ खड़े हो, वहां से रास्ता चाहिए, मंजिल नहीं। वहाँ तो अल्लाह अलग है, राम अलग है। हाँ, मंजिल पर जो पहुँच गये हैं वहाँ सब एक हैं। लेकिन वहाँ कोई भजन थोड़े ही कर रहा है -- 'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम'। मंजिल पर तो सब खो गया। वहाँ अल्लाह भी खो गये हैं, राम भी खो गये। जब अल्लाह ही मिल गया, राम ही मिल गया, तो फिर न राम बचे न अल्लाह बचे। वहाँ तो सब शास्त्र खो जाते हैं। लेकिन वो उपलब्धि की बात है।

तालमेल तुम बिठालना मत। मेरी तो दृष्टि यही है कि तुम भरपूर जीओ। तुम ऐसे जीओ जैसे बाढ़ आयी नदी होती है। तुम जीवन को उसकी त्वरा में जोओ। तुम ऐसे जीओ जैसे किसीने मसाल को दोनों तरफ से जलाया हो। तुम

जीने में कंजूसी मत करो। मैं तुमसे त्याग को नही कहता। मैं तुमसे कहता हूँ तुम भोग में इतने गहरे उतरो कि भोग का अनुभव ही त्याग बन जाए। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा :'। तुम ऐसा भोगो कि तुम जान लो कि भोग व्यर्थ हैं। और भोग छोड़ना न पड़े। तुम्हारा ज्ञान ही भोग का छूटना हो जाए। तुम जीवन से भागो मत, भगोड़े मत बनो। तुम जीवन में जमके खड़े हो जाओ, ताकि जीवन से आँखें मिल जाएँ और तुम जीवन को पूरी तरह देख ही लो कि यह सपना है। फिर सपने को छोड़ना थोड़े ही पड़ता है, सपना तो छूट ही गया। जो व्यर्थ हैं, दिखायी पड़ते ही कि व्यर्थ है, गया। छोड़ने का अगर फिर भी सवाल रहे, तो समझना अभी व्यर्थता दिखायी नहीं पड़ी। अभी थोड़ी सार्थकता दिखायी पड़ती है। इसलिए छोड़ने का सवाल है। सार्थक को छोड़ना पड़ता है। व्यर्थ छूट जाता है।

तो मै तुमसे कहता हूँ, जीवन को उसकी परिपूर्णता में जानो। तुम बहुत बार अनेक लोगों के प्रभाव मे आ गये हो, और कच्चे ही जीवन को छोड़के भाग गये हो। यह कोई पहला मौका नहीं है। क्योंकि जमीन पर तुम नये नहीं हो। बड़े प्राचीन हो। बहुत बार बहुत बुद्धों के प्रभाव मे तुम आ गये हो। जो बुद्ध को घटा था वह तो परिपूर्ण जीवन से घटा था।

बुद्ध तो सम्राट थे। सुंदरतम स्त्रियाँ उनके पास थी। और अगर उतनी सुदर स्त्रियों के बीच उन्हें दिखायी पड़ गया कि सौंदर्य सब सपना है, तो कुछ आश्चर्य नही। अब एक भिखारी है, जिसने स्त्रियों को केवल दूर से देखा है। जिसे कोई स्त्री उपलब्ध नहीं हुई। या उपलब्ध भी हुई हो तो एक साधारण सी स्त्री उपलब्ध हुई है, जिसमें स्त्री होना नाममात्र को है, जिससे उसके सपने नहीं भरे; न हृदय भरा, न प्राण तृप्त हुए, न भोग गहरा गया। आकांक्षा घूमती रही, भटकती रही सब तरफ। हजार-हजार चेहरे आकांक्षा में उभरते रहे, सपनों में जगते रहे। अब यह बुद्ध की बातें सुन ले यह आदमी। तो बुद्ध प्रभावी हैं, इसमें कोई शकसुबा नही है। उस ज्ञान की अवस्था में आदमी में एक जादू हो जाता है। वो जिसकी तरफ देख ले, वही खिचा चला आता है। वो जिसको छू दे, उसीके भीतर एक नया आयाम खुल जाता है।

तुमने बुद्ध को सुन लिया, और बुद्ध ने कहा कि सब व्यर्थ है। बुद्ध यह जानके कह रहे है, धन उन्होंने जाना है कि व्यर्थ है। तुमने केवल धन की कामना की है, जाना-वाना नहीं कि व्यर्थ है। जानने के लिए तो होना पहले चाहिए। वो है ही नहीं तुम्हारे पास। भिक्षापात्र लिए खड़े हो। सम्राट थे बुद्ध। वो छोड़के रास्ते पे आ गये। तुम रास्ते पर ही हो, और तुमने बुद्ध की वाणी सुन ली, और तुम प्रभावित हो गये, तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हारा त्याग बुद्ध का त्याग नही हो

सकता। तुम्हारे त्याग में भोग छिपा ही रहेगा। तब क्या होगा? तब यह होगा कि तुम त्याग भी करोगे और सोचोगे, त्याग के बाद स्वर्ग मिलनेवाला है। स्वर्ग में भोगेंगे अप्सराएँ, महल। तुम्हारे ऋषि-मुनि यही कर रहे हैं। इंद्र अगर उनसे डर जाता है तो अकारण नहीं। क्योंकि वो मुक्त होने की इच्छा नहीं रखे हुए हैं, वो इंद्र के सिंहासन पर बैठने की इच्छा लिए बैठे हैं। इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है, पुराणों में, वह तो प्रतीक है। वह यह बता रहा है कि ऋषि-मुनि वस्तुतः ऋषि-मुनि नहीं हैं। वो भी आकांक्षा कर रहे हैं स्वर्ग में सिंहासन की। और जहाँ आकांक्षा है, वहाँ प्रतिस्पर्धा है। और जो पहले से सिंहासन पर बैठा है वो जरूर घबड़ाएगा। अब तुम अगर राष्ट्रपति होना चाहो तो राष्ट्रपति घबड़ाएगा, कि ये आने लगे सज्जन, डरो! अब तुम अगर अप्सराओं की कामना करने लगे, कि उर्वशी को भोगना है, तो इंद्र घबड़ाएगा। उसकी उर्वशी छीनने की चिंता में तुम लगे हो। वो तुम्हें डँवाएगा, डिगाएगा, आएगा।

पुराण की कथाएँ अर्थपूर्ण हैं। वे इतना ही कह रही हैं कि ऋषि अभी ऋषि नहीं। अन्यथा इंद्र को क्या प्रतिस्पर्धा उससे होती? ये मुक्त होना ही नहीं चाहता था। यह तो त्याग का सौदा कर रहा है। यह जो संसार में नहीं पा सका, संसार छोड़के पाने की कोशिश कर रहा है। पर इसकी आकांक्षा तो वही की वही है।

वासना बिना पके नहीं मरती। और जब पकके मरती है तभी मरती है। फिर पीछे दाग भी नहीं छोड़ जाती। तब तुम ऐसे निर्दोष निकलते हो, ऐसे ताजे, जैसे सुबह-सुबह अभी-अभी खिला हुआ फूल हो।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, भागना मत। जीवन को जानना है, जीना है। मैं कोई चार्वाकवादी नहीं हूँ। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि जीवन के पार कुछ भी नहीं है। मैं कह रहा हूँ, जीवन के पार कुछ है, लेकिन जीवन तो पार करो पहले। जीवन के पार जो है वह तभी दिखायी पड़ेगा जब जीवन से पार हो जाओ। आधे से भाग गये, सीमा तक न पहुँचे और भाग गये, तो तुम जीवन में ही भटकते रहोगे। सीमा के पार ही अतिक्रमण संभव है।

तो मेरी दृष्टि भोग के माध्यम से त्याग तक जाने की है। और दूसरा कोई माध्यम इतना कारगर नहीं है। इसलिए बुद्ध तो होते हैं, लेकिन कितने लोग उनके पीछे बुद्धत्व को उपलब्ध हो पाते हैं। ना के बराबर। क्योंकि दिशाएँ बड़ी भिन्न-भिन्न हैं। बुद्ध तो महल छोड़कर भिखारी होते हैं। और दूसरा आदमी भिखारी ही था और बुद्ध के पीछे हो लेता है। उन दोनों के अनुभव अलग हैं। बुद्ध के त्याग में तो भोग का अनुभव छिपा है। भिखारी के त्याग में कुछ भी नहीं, भिक्षापात्र छोड़ रहा है। उसके पास कुछ त्याग को था भी नहीं। उसका त्याग धोखा है।

तो मैं तुमसे अतिरेक में जीने को कहता हूँ। जीवन है जबतक उसे पूरा-पूरा जी लो। जीते ही तुम उससे मुक्त हो जाओगे।

तर्क-मय ही इसे समझना शेख
इतनी पी है कि पी नहीं जाती

'तर्क-मय ही इसे समझना शेख' -- ऐ धर्मगुरु, इसको तू शराब का त्याग ही समझ। 'इतनी पी है कि पी नहीं जाती' -- अब इतनी पी ली है कि अब पीने का कोई उपाय न रहा। जीवन को इतना पी डालो कि पीने का फिर कोई उपाय ही न रह जाए। पीकर ही तुम मुक्त होओ। लेकिन अगर तुम्हें बुद्ध की बात ठीक जमती हो, तो मजे से उस मार्ग पर चले जाओ। लेकिन ध्यान रखना अपना, कि क्या तुम्हारे पास बुद्ध जैसा जीवन का अनुभव है? भोग का ऐसा गहन अनुभव है?

तुम्हें पता है बुद्ध के जीवन की कहानी?

ज्योतिषियों ने कहा कि यह छोड़कर संन्यासी हो जाएगा। तो बाप चिंतित हुआ। शुद्धोदन ने बड़े-बड़े ज्ञानियों से सलाह ली कि क्या करें? निश्चित ही वो ज्ञानी भगोड़े होंगे। शास्त्रों में यह कहा नहीं है, यह मेरी दृष्टि है। वो ज्ञानी भगोड़े होंगे, क्योंकि अक्सर ज्ञानी भगोड़े होते है। त्यागी महात्माओं को बुला लिया होगा। उनसे पूछा। वो कोई सम्राट न थे, जिन्होने संसार जानकर छोड़ा था। उन्होंने जीवन को बेबसी मे छोड़ा होगा, असहाय अवस्था मे छोड़ा होगा। अंगूर खट्टे थे, पहुँच नहीं सके, इसलिए। पहुँच जाते तो उन्होंने भी बडी चेष्टा की थी!

उन्होंने सलाह दी कि आप ऐसा करो, सब भोगों का इंतजाम कर दो। भोग मे डूब जाएगा, संन्यासी अपने आप न होगा। इससे मैं कहता हूँ कि वो त्यागी रहे होंगे। अगर बुद्ध के बाप ने मुझसे पूछा होता तो मैं कहता कि भोग से इसको दूर रखो। स्त्रियों को पास मत आने दो। हाँ, फिल्म दिखानी हो दिखा दो। पर्दे पर दिखायी पड़े, छू न सके स्त्री को। क्योंकि पर्दे से सपना नहीं मिटता, बनता है। स्त्री को पास मत आने देना। इसको सुख-सुविधा में मत डालो। गिट्टियाँ तुड़वाओ, सड़क पिटवाओ, मेहनत-मजदूरी करवाओ, इसको महल में मत टिकने दो। इसकी महल की आकांक्षा कभी न मरेगी। क्योंकि जिसको जाना नहीं, उसकी आकांक्षा होती है, मरती नही। यह कभी संन्यासी न होगा।

लेकिन त्यागी महात्माओं ने कहा, उन्होंने बेचारों ने अपने अनुभव से कहा। जो उन्हें नहीं मिला था वो उन्होंने सोचा अगर हमको मिलता -- सुदर स्त्रियाँ मिलतीं, महल मिलते, तो हम संन्यासी होते? उनका तर्क साफ है। सन्यासी वो इसलिए हुए कि न सुदर स्त्रियाँ मिली, न महल मिले। वही इसके लिए भी जमा दो, यह भटक जाएगा उसीमें। ये अपना अनुभव वो बता रहे हैं, कि हम भी भटक जाएँ

अगर इंतजाम अभी कोई कर दे। भीतर तो वही चाह रही होगी। मुझे पता नहीं कौन लोग थे वो? उनके नाम का भी कोई उल्लेख नहीं, लेकिन बात जाहिर है कि वो आदमी बीच से भाग गये होंगे, जीवन का अनुभव न रहा होगा।

बुद्ध के बाप ने उनकी मान ली, लड़का खोया। बना दिये महल चार। हर मौसम के लिए अलग। जितनी राज्य में सुंदर युवतियाँ थीं सब इकट्ठी कर दीं। बुद्ध लड़कियों के बीच ही बड़े हुए। लेकिन ऊब गये। सुंदरतम स्त्रियाँ उनके पास थीं। उनने सारे सपने तोड़ दिये।

सुंदरतम स्त्री भी तुम्हारे पास हो, दो दिन से ज्यादा थोड़े ही सुंदर मालूम पड़ती है। दो दिन के बाद सब स्त्रियाँ साधारण हो जाती हैं। स्त्री का सौंदर्य बच सकता है, अगर तुम्हें दूर रखा जाए। वो कामना में है, अनुभव में नहीं। कितनी ही सुंदर स्त्री हो, क्या करोगे, दो दिन के बाद साधारण हो जाती है। कोई पति अपनी पत्नी को देखता है? कितनी ही सुंदर हो, और कभी-कभी हैरान भी होता है कि दूसरे क्यों रास्ते पे रुक-रुकके मेरी स्त्री को देखने लगते हैं। क्योंकि उसे तो कुछ नहीं दिखायी पड़ता। दूसरों को दिखायी पड़ता है। दूसरे की पत्नी सदा ही सुंदर मालूम पड़ती है। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम्हारी सुंदर पत्नी तुम्हें सुंदर नहीं मालूम पड़ती, घर की नौकरानी साधारण तुम्हें सुंदर मालूम पड़ने लगती है। क्योंकि उसमें फासला है।

दूर रखो, चीजें सुंदर रहती हैं। 'दूर के ढोल सुहावने'। पास आते ही सपने टूट जाते हैं। यथार्थ खुल जाता है। बुद्ध उन सारी सुंदर स्त्रियों को देखके ऊब गये। परेशान हो गये। भागने का मन होने लगा। एक रात उठे, तो देखा सारी सुंदर स्त्रियाँ उनके आसपास पड़ी हैं। किसीके मुँह से लार बह रही है, किसीकी आँख में कीचड़ जमा है, किसीका मुँह खुला है और घर्राटा निकल रहा है, वो एकदम भागे वहाँ से, उन्होंने कहा कि इनके पीछे मैं दीवाना हुआ हूँ। कोई भी ऋषि-मुनि हो जाए ऐसी अवस्था में!

धन था, स्त्रियाँ थीं, वैभव था, ऊब गये। दिखायी पड़ गया, इसमें कुछ भी नहीं है। एक बात साफ हो गयी कि रोज मौत करीब आ रही है। और यह सब व्यर्थ है। सत्य को खोजना जरूरी है। अमृत को खोजना जरूरी है।

तो बुद्ध तो इस कारण संन्यासी हुए। वो तो मेरे ही सन्यासी हैं। लेकिन बुद्ध से प्रभावित होकर जो संन्यासी हुए, वो मेरे संन्यासी नहीं हैं। उन्होंने बुद्ध की रौनक देखी, चमक देखी, प्रतिभा देखी, बुद्ध की शांति देखी, ईर्ष्या जगी, लोभ जगा, मन में उनके भी हुआ — ऐसे ही शांत हम भी हो जाएँ। लेकिन उन्हें पता नहीं, इस शांति के पीछे बड़ा गहरा अनुभव है भोग का। एक बड़ा रेगिस्तान पार कर

के आए हैं वो। एक बड़ा अनुभव का विस्तार है पीछे। और तुम जल्दबाजी नहीं कर सकते। तुम, अगर तुम ठीक समझो तो जो मैं तुमसे कह रहा हूँ वह वही है जो बुद्ध के जीवन का सार है। मै तुमसे वह नहीं कह रहा हूँ जो बुद्ध कहते हैं। मैं तुमसे वह कह रहा हूँ जो बुद्ध हैं। इसलिए मैं कहता, भागो मत। जहाँ हो, जो क्षण मिला है, उसे इतनी त्वरा से भोग लो कि तुम उसके आरपार देखने में समर्थ हो जाओ। जीवन पारदर्शी हो जाए। बस वहीं से संन्यास की सुवास उठनी शुरू होती है। और तब भागने की भी कोई जरूरत नहीं है।

रवींद्रनाथ का एक गीत है, जिसमें बुद्ध वापिस लौटते हैं, और यशोधरा उनसे पूछती है कि मै सिर्फ एक ही सवाल तुमसे पूछने को रुकी हूँ। बारह वर्ष तुम्हारी प्रतीक्षा की है, बस एक सवाल के लिए, कि तुमने जो जंगल में भागके पाया, क्या तुम अब कह सकते हो कि यहीं रहते तो नहीं मिल सकता था? अब तो तुम्हें मिल गया। अब मुझे एक ही सवाल तुमसे पूछना है कि जो तुमने वहाँ पाया, क्या वह यहीं नहीं मिल सकता था? और रवींद्रनाथ ने कविता में बुद्ध को मौन रखा है। कुछ कहलवाया नहीं। कहें भी क्या? बात तो ठीक ही यशोधरा कह रही है, वो यहाँ भी मिल सकता था।

सत्य सब जगह है। समझ चाहिए। और समझ अनुभव का सार है। इसलिए मैं तुम्हें अनुभव से तोड़ना नहीं चाहता। चाहता हूँ कि तुम जितनी जल्दी अनुभव में उतर जाओ, जितने गहरे उतर जाओ, उतनी ही जल्दी अतिक्रमण का क्षण करीब आ जाए। संन्यास बहुत पास है। संसार का अनुभव तुम्हारा पूरा होना चाहिए। संन्यास संसार के विपरीत नहीं है। संन्यास संसार के पार है। विपरीत नही, आगे। जहाँ संसार समाप्त होती है, जहाँ संसार का मील का पत्थर आता है, जहाँ लिखा है -- यहाँ समाप्त होती है सीमा -- वहीं संन्यास शुरू होता है। लेकिन संसार पूरा करना ही होगा। अगर अभी पूरा न करोगे, फिर लौटके आओगे।

बुद्ध को भी शायद तुमने सुना हो। पच्चीस सौ साल हो गये। तुम पच्चीस बार लौट चुके। तुम मुझे भी सुन रहे हो। अगर मेरी बात तुमने न गुनी, तुम फिर-फिर लौटके आओगे। परमात्मा तुम्हें वापिस इस स्कूल में भेजता ही रहेगा। जब तक तुम उत्तीर्ण ही न हो जाओ। इसलिए मैं कहता हूँ जल्दी करो। भागने की नहीं, भोगने की। जागने की। अनुभव को निरीक्षण करने की। अगर ठीक से अनुभव किया जाए तो किसी अनुभव को दोहराने की जरूरत नही। एक ही बार अगर पूरे मन से जागके कोई अनुभव कर लिया जाए, तुम उससे मुक्त हो जाओगे। क्योंकि फिर पुनरुक्ति तो वही-वही है।

आखिरी प्रश्न : बुद्ध ने स्त्रियों को संन्यास देने से टालना चाहा। शंकर भी स्त्रियों को संन्यास देने के पक्ष में नहीं थे। संन्यास जीवन की स्त्रियों से ऐसी क्या विपरीतता है? क्या स्त्रियों से उसका कोई तालमेल नहीं है, या कम है? क्या उन्हें संन्यास लेने की जरूरत पुरुषों की अपेक्षा कम है?

पुरुष और स्त्री का मार्ग मूलत. अलग-अलग है। पुरुष का मार्ग ध्यान का है; स्त्री का मार्ग प्रेम का। पुरुष का मार्ग ज्ञान का है; स्त्री का मार्ग भक्ति का। उन दोनों की जीवन-चित्तदशा बड़ी भिन्न है, बड़ी विपरीत है। पुरुष को प्रेम लगता है बंधन; स्त्री को प्रेम लगता है मुक्ति। इसलिए पुरुष प्रेम भी करता है तो भी भागा-भागा, डरा-डरा कि कहीं बँध न जाएँ। और स्त्री जब प्रेम करती है तो पूरा का पूरा बँध जाना चाहती है, क्योंकि बंधन में ही उसने मुक्ति जानी है। तो पुरुष की भाषा जो है वह — कैसे छुटकारा हो, कैसे संसार से मुक्ति मिले? और स्त्री की जो खोज है वह है — कैसे वह डूब जाए पूरी-पूरी, कुछ भी पीछे न बचे?

तो संन्यास मूलतः पुरुषगत है। इसलिए बुद्ध भी झिझके। स्त्रियाँ प्रभाव में आ गयी — स्त्रियाँ जल्दी प्रभाव में आती हैं, क्योंकि उनके पास ज्यादा संवेदनशील हृदय है — वो माँगने लगीं कि हमें भी सन्यास दो। बुद्ध डरे। महावीर ने तो उनसे साफ कहा कि दे भी दूँ, तो भी तुम्हारी मुक्ति इस जन्म में नही होगी, जबतक तुम पुरुष न हो जाओ। पुरुष-पर्याय से ही मुक्ति होगी।

कारण साफ है। महावीर का मार्ग भक्ति का नहीं है, और बुद्ध का मार्ग भी भक्ति का नही है। इसलिए अड़चन है। स्त्री के लिए उनके मार्ग पर कोई सुविधा नहीं है। और स्त्री जब भी मुक्ति को उपलब्ध हुई है तो वह मीरा की तरह नाच के, प्रेम में परिपूर्ण डूबके मुक्त हुई है। संसार से भागके नहीं, संबंध से छूटके नही, संबंध में पूरी तरह डूबके। वह इतनी डूब गयी कि मिट गयी।

मिटने के दो उपाय हैं। या तो तुम भीतर की तरफ जाओ — अपने केंद्र की तरफ जाओ, और उस जगह पहुँच जाओ जहाँ तुम ही बचे। जहाँ तुम ही बचे और कोई न बचा, वहाँ तुम भी मिट जाओगे, क्योंकि 'मैं' के बचने के लिए 'तू' की जरूरत है। 'तू' के बिना 'मैं' नहीं बच सकता। अगर 'तू' बिलकुल छूट गया — यही संन्यास है, बुद्ध का, महावीर का; मेरा नहीं। बुद्ध-महावीर का यही संन्यास है कि अगर 'तू' बिलकुल मिट जाए तुम्हारे चित्त से तो 'मैं' अपने-आप मिट जाएगा; क्योंकि वो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। 'तू' के बिना 'मैं' का कोई अर्थ नहीं रह जाता; 'मैं' गिर जाएगा, तुम शून्य को उपलब्ध हो जाओगे।

स्त्री का मार्ग दूसरा है। वो कहती है, 'मैं' को इतना गिराओ कि 'तू' ही बचे, प्रेमी ही बचे, प्रीतम ही बचे। और जब 'मैं' बिलकुल गिर जाएगा और 'तू'

ही बचेगा, तो 'तू' भी मिट जाएगा; क्योंकि 'तू' भी अकेला नहीं बच सकता। मंजिल पे तो दोनों पहुँच जाते हैं — शून्य की, या पूर्ण की — मगर राह अलग है। स्त्री 'मैं' को खोके पहुँचती है। पुरुष 'तू' को खोके पहुँचता है। पहुँचते दोनो वहाँ है जहाँ न 'मैं' बचता है, न 'तू' बचता है।

जिसने दिल को खोया उसीको कुछ मिला
फायदा देखा इसी नुकसान में

यह स्त्री की बात है —

जिसने दिल को खोया उसीको कुछ मिला
फायदा देखा इसी नुकसान में

इसलिए बुद्ध-महावीर शंकित थे। संदिग्ध थे — स्त्री को लाना? और उनका डर स्वाभाविक था। क्योंकि स्त्री आयी कि प्रेम आया। और प्रेम आया कि उनके पुरुष भिक्षु मुश्किल में पड़े। वो डर उनका स्वाभाविक था। वो डर यह था कि अगर स्त्री को मार्ग मिला और स्त्री संघ में सम्मिलित हुई, तो वो जो पुरुष भिक्षु है, वो आज नहीं कल स्त्री के प्रेम के जाल में गिरने शुरू हो जाएँगे। और वही हुआ भी। बुद्ध ने कहा था कि अगर स्त्रियों को मैं दीक्षा न देता तो पाँच हजार साल मेरा धर्म चलता, अब पाँच सौ साल चलेगा। पाँच सौ साल भी मुश्किल से चला। चलना कहना ठीक नहीं है, लँगड़ाया, घिसटा। और जल्दी ही पुरुष अपने ध्यान को भूल गये।

पुरुष को उसके ध्यान से डिगाना आसान है। स्त्री को उसके प्रेम से डिगाना मुश्किल है।

अगर तुम मुझसे पूछते हो, तो मैं यह कहता हूँ कि बुद्ध और महावीर ने यह स्वीकार कर लिया कि स्त्री बलशाली है, पुरुष कमजोर है। अगर स्त्री को दिया मार्ग अंदर आने का, तो उन्हें अपने पुरुष सन्यासियों पर भरोसा नहीं — वो खो जाएँगे। स्त्री का प्रेम प्रगाढ़ है। वो डुबा लेगी उनको। उनका ध्यान-व्यान ज्यादा देर न चलेगा। जल्दी ही उनके ध्यान में प्रेम की तरंगें उठने लगेगी।

स्त्री बलशाली है। होना भी चाहिए। वो प्रकृति के ज्यादा अनुकूल है। पुरुष जरा दूर निकल गया है प्रकृति से — अपने अहंकार में। स्त्री अपने प्रेम में अभी भी पास है। इसलिए स्त्री को हम प्रकृति कहते हैं। पुरुष को पुरुष, स्त्री को प्रकृति। प्रकृति का डर था महावीर और बुद्ध दोनों को। उनके संन्यासियों का डाँवाडोल हो जाना निश्चित था।

लेकिन मैं भयभीत नहीं हूँ; क्योंकि मैं कहता हूँ, स्त्रियाँ प्रेम के मार्ग से जाएँ। और जिनका ध्यान डगमगा जाए, अच्छा ही है कि डगमगा जाए; क्योंकि ऐसा

ध्यान भी दो कौड़ी का जो डगमगा जाता हो। वो डगमगा ही जाए वही अच्छा। जब डूबना ही है तो नौका में क्या डूबना, नदी में ही डूब जाना। मैं मानता हूँ कि प्रेम स्त्री का तुम्हें घेरे और तुम्हारा ध्यान न डगमगाए, तो कसौटी पर उतरा सही। और जो प्रेम से न डगमगाए ध्यान, ध्यान वही समाधि तक ले जाएगा। जो प्रेम से डगमगा जाए, उसे अभी समाधि वगैरह तक जाने का उपाय नहीं। वो भाग आया होगा प्रेम से बचके, प्रेम की पीड़ा से बचके -- प्रेम से डरके भाग आया होगा।

इसलिए मेरे लिए कोई अड़चन नहीं है। मैंने पहला संन्यास स्त्री को ही दिया। ये महावीर और बुद्ध को कहने को कि सुनो, तुम घबड़ाते थे, हम पुरुष को पीछे देंगे।

पुरुष ध्यान करे, स्त्री प्रेम करे -- क्या अड़चन है? स्त्री तुम्हारे पास प्रेम का पूरा माहौल बना दे, वातावरण बना दे, तो भी तुम्हारे ध्यान की लौ अडिग रह सकती है; कोई प्रयोजन नहीं है कँपने का। सच तो यह है कि जब प्रेम की हवा तुम्हारे चारों तरफ हो, तो ध्यान और गहरा हो जाना चाहिए। लेकिन अगर तुम अधकचरे भाग आए संसार से, तो डगमगाओगे। तो उनके लिए मेरे पास कोई जगह नही। उनको मैं कहता हूँ, तुम वापिस जाओ।

प्रेम को मैं कसौटी बनाता हूँ ध्यान की, और ध्यान को मैं कसौटी बनाता हूँ प्रेम की। पुरुष अगर ध्यान में हो, तो स्त्री कितना ही प्रेम करे, पुरुष डगमगाएगा नहीं। उसके निष्कंप ध्यान से ही करुणा उतरेगी स्त्री की तरफ, वासना नहीं। और वही करुणा तृप्त करती है। वासना किसी स्त्री को कभी तृप्त नहीं करती। इसलिए तो कितनी ही वासना मिल जाए, स्त्री बेचैन बनी रहती है। कुछ खोया-खोया लगता है। मेरा जानना है कि स्त्री को जबतक परमात्मा ही प्रेमी की तरह न मिले, तब तक तृप्ति नहीं होती। और जब तुम किसी ध्यानी व्यक्ति के प्रेम में पड़ जाओ तो परमात्मा मिल गया।

तो ध्यान प्रेम को बढ़ाएगा। क्योंकि ध्यान तुम्हारे प्रेमी को दिव्य बना देता है। और प्रेम ध्यान को बढाएगा, क्योंकि प्रेम तुम्हारे चारों तरफ एक परिवेश निर्मित करता है। उस परिवेश में ही ध्यान का अंकुरण हो सकता है। इसलिए मैं ध्यान और प्रेम में कोई विरोध नही देखता। ध्यान और प्रेम में एक गहरा समन्वय देखता हूं। होना ही चाहिए। जब स्त्री और पुरुष में इतना गहरा संबंध है, तो ध्यान और प्रेम में भी इतना ही गहरा संबंध होना चाहिए। और जब स्त्री और पुरुष से मिलकर एक जीवन पैदा होता है, एक बच्चा पैदा होता है, तो मेरी समझ है कि ध्यान और प्रेम के मिलने से ही पुनर्जीवन उपलब्ध होता है, तुम्हारा नव-जन्म होता है।

आज इतना ही।

बुद्धपुरुष स्वयं प्रमाण है ईश्वर का

२५ नवंबर १९७५

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति ।
सो सोचति सो विहञ्ञति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥ १५ ॥

इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति ।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥ १६ ॥

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति ।
पापं मे कतन्ति तप्पति भिय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो ॥ १७ ॥

बहुम्पि चे संहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
गोपो' व गावो गणयं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥ १८ ॥

अप्पम्पि चे संहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो ।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामञ्ञस्स होति ॥ १९ ॥

जिन्दगी क्या किसी मुफलिस की कबा है जिसम
हर घडी दर्द के पेबद लगे जाते हैं

जिंदगी क्या किसी भिखारी का लबादा है, जिसमें हर घडी दर्द के नय-नये थेगडे लगे जाते हैं? जिंदगी ने तो चाहा था कि तुम सम्राट बनो। जिंदगी भिखारी का लबादा नहीं है। लेकिन जिंदगी भिखारी का लबादा हो गयी है। तुमने उसे भिखारी का लबादा बना दिया है। जिंदगी सम्राट पैदा करती है और आदमी भिखारी हो जाता है। सभी सम्राट की तरह पैदा होते हैं और मरते भिखारी की तरह हैं। हर बच्चा ससार में एक नया साम्राज्य लाता है। और हर बूढा एक दुख की गाथा अपने साथ लिए विदा हो जाता है। जिंदगी का कुल जोड दुख हो जाता है।

❨ जिंदगी की भूल नही है। जीने के ढग में भूल है। जीने का ढग न आया। गलत ढग से जिए। तो जहाँ स्वर्ण बरस सकता था, वहाँ हाथ में केवल राख लगी। जहाँ फूल खिल सकते थे, वहाँ केवल काँटे मिले। और जहाँ परमात्मा के मदिर के द्वार खुल जाते वहाँ केवल नर्क निर्मित हुआ।❩

तुम्हारी जिंदगी तुम्हारे हाथ में है। जिंदगी निर्मित घटना नहीं है, अर्जित करनी होती है। जिंदगी मिलती नहीं, बनानी होती है। मिलती तो है कोरी स्लेट, कोरा कागज। क्या तुम उस पर लिखते हो, वह तुम्हारे हाथ में है। तुम दुख की गाथा लिख सकते हो। तुम आनंद का गीत लिख सकते हो।

नहीं, यह बात गलत है —

जिंदगी क्या किसी मुफ़लिस की कबा है जिसमें
हर घडी दर्द के पेबंद लगे जाते हैं

यह बात गलत है।

लेकिन यह बात अगर आदमी को देखें तो बिल्कुल सही मालूम होती है। कभी कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कबीर और ढंग से जीता है और सारी जिंदगी आनंद का एक उत्सव हो जाती है। कबीर ने कहा है — 'खूब जतन से ओढ़ी कबीरा, ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया'। जतन। खूब जतन से। कितने होश से तुम जीवन को जीते हो, कितने जतन से, उस पर ही निर्भर करेगा। अगर दुखी हो, तो ध्यान रखना, जतन से नहीं जी रहे हो। दुख बढ़ता जाता है, तो ध्यान रखना, गलत दिशा पकड़ ली है। किसी और को दोष मत देना। क्योंकि किसी और को दोष देके कोई कभी बदल न पाया। किसी और को दोष मत देना, क्योंकि किसी और को दोष देने का अर्थ, जीवन का रूपांतरण फिर कभी भी न हो पाएगा। अगर आंख में आंसू हों तो कारण अपने हृदय में खोजना।

कौन रोता है किसी और की खातिर ऐ दोस्त
सबको अपनी ही किसी बात पे रोना आया

अगर ओंठो पे मुस्कुराहट हो, तो भी कारण भीतर है। आंखों में आंसू हों, तो भी कारण भीतर है। जिसने देखा कि कारण बाहर हैं, वही अधार्मिक है। जिसने यह बात समझ ली कि मेरी जिंदगी में जो भी घट रहा है वह मेरा ही कृत्य है, वह मेरे ही होश और जतन या बेहोशी और गैर-जतन का परिणाम है, वह व्यक्ति धार्मिक हो गया। फिर दुख ज्यादा देर तुम्हारे पास न रह सकेगा। फिर तुम अचानक पाओगे एक क्रांति शुरू हुई। कल तक जो एक मुफ़लिस की कबा थी, एक भिखारी का वस्त्र थी, वही एक सम्राट का स्वर्णिम वस्त्र बनने लगी। कल तक जहां सिवाय कंकड़-पत्थर के कुछ भी न मिला था, वहीं हीरे-जवाहरात उपलब्ध होने लगे।

जहां से तुम गुजरे हो वहीं से बुद्ध भी गुजरते है। पर देखने की आंख अलग-अलग है। होश का ढंग अलग-अलग है।

दो तरह से आदमी जी सकता है। एक ढंग है ऐसे जीने का कि जैसे कोई नींद में जीता हो, मूर्छित जीता हो, चला जाता हो भीड़ में धक्के खाते; न तो पता हो

कहाँ जा रहा है, न पता हो क्यों जा रहा है, न पता हो कि मैं कौन हूँ; भीड़ में धक्के खा रहा हो और चला जा रहा हो। रुकना मुश्किल हो, इसलिए चला जा रहा हो। रुककर भी क्या करेंगे, रुककर भी क्या होगा, इसलिए चला जा रहा हो। कुछ करने को नहीं है, इसलिए कुछ किये जा रहा हो। एक तो जिंदगी ऐसी है बेहोश।

और एक जिंदगी होश की है कि प्रत्येक कृत्य सुनियोजित है, और प्रत्येक कृत्य सुविचारित है, और प्रत्येक कृत्य के पीछे एक जागरण है — जानते हुए किया गया है, अनजाने नहीं किया गया; अचेतन से नहीं निकला है, अँधेरे से नहीं आया है, भीतर के होश से पैदा हुआ है।

मूर्छा से हुआ कृत्य पाप है। बेहोशी से पैदा हुआ कृत्य पाप है। फिर चाहे संसार उसे पुण्य ही क्यों न कहे! क्योंकि कृत्य कहाँ से पैदा होता है इससे उसका स्वभाव निर्मित होता है। लोग क्या कहते हैं, यह बात अर्थपूर्ण नहीं है। राह पर तुमने एक भिखारी को दान दे दिया। लोग तो कहेंगे पुण्य किया। लेकिन अगर दान मूर्छा से निकला है, होश से नहीं निकला, तो पुण्य नहीं है, पाप है। तुमने दान अगर इसलिए दे दिया है कि चार लोग वहाँ देखते थे और प्रशंसा होगी, दान किसी करुणा से नहीं आया है बल्कि अहंकार से आया है, तो पाप हो गया। तुमने अगर इसलिए दे दिया है कि देने की आदत हो गयी है, इनकार करते नहीं बनता; देने में प्रतिष्ठा जुड़ गयी है, इनकार करते नहीं बनता, लोग जानते हैं कि तुम दाता हो; मूर्छा से हाथ खीसे में चला गया और तुमने दे दिया; न तो देखी उस आदमी की पीड़ा, न देखा उस आदमी के माँगने का प्रयोजन; जैसे शराब में मस्त कोई जाता हो बेहोश और दान दे दिया हो — सुबह याद भी न रही — तो पुण्य नहीं हुआ।

कृत्य का गुण तय होता है तुम्हारे भीतर कहाँ से कृत्य आया। अगर होश में आया हो, तो उठना-बैठना भी पुण्य हो जाता है। और अगर बेहोशी में आया हो, तो प्रार्थना और पूजा भी पाप हो जाती है। मूल उद्‌गम असली सवाल है। कहाँ से आ रहा है कृत्य। जो कृत्य मूर्छित, वही पाप। जो कृत्य जाग्रत, वही पुण्य।

बुद्ध कहते हैं, 'इस लोक में शोक करता है, और परलोक में भी; पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है, वह अपने मैले कर्मों को देखकर पीड़ित होता है।'

इस लोक में भी, परलोक में भी।

पापी के जीवन को हम थोड़ा समझें, क्योंकि वही अधिकांश में हमारा जीवन है।

पाप का अर्थ है मूर्छा। तो जब मूर्छा में तुम कुछ करते हो, उस घड़ी मूर्छा के कारण कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। मूर्छित को कैसे कुछ उपलब्ध होगा? जैसे एक आदमी बेहोशी में बगीचे से गुजर जाए। फूल सुगंध बाँटते रहेंगे, पर उसे न

मिलेगी। सूरज की किरणें नाचती रहेंगी, पर वह नाच उसके लिए हुआ न हुआ बराबर है। बगीचे की सुगंध, बगीचे की ठंढी हवा उसे घेरेगी, उसे छुएगी, लेकिन वह होश में नहीं है। वर्तमान में जो नहीं है, वह उत्सव से वंचित रह जाएगा। और जो होश में नहीं है, वह वर्तमान में नहीं हो सकता। वर्तमान में होना और होश में होना एक ही बात को कहने के दो ढंग है। तो पापी कभी जी ही नहीं पाता। केवल जीने की योजना बनाता है। या जो जीवन उसने कभी नहीं जिया उसकी स्मृति को सँजोता है, या, जो जीवन वह कभी नही जिएगा, उसकी कल्पना करता है, सपने निर्मित करता है। लेकिन जीता कभी नहीं। क्योंकि जीना तो अभी और यहीं है। तो पापी जीवन से ही वंचित रह जाता है।

ध्यान रखना, बुद्ध यह नहीं कह रहे है जैसाकि साधारण धर्मगुरु कहते हैं कि पापी दुख पाता है; क्योंकि उसने पाप किया, परमात्मा उसे पाप का फल देगा। बुद्ध की परमात्मा को बीच में लाने की प्रवृत्ति नही है। बुद्ध तो यह कह रहे हैं कि पापी इस लोक में भी और उस लोक में भी सुख से वंचित रह जाता है। और सुख से वंचित रह जाना दुख है। आनंद से वंचित रह जाना पीड़ा है। महोत्सव से वंचित रह जाना महानर्क में पड़ जाना है। कोई नर्क में डालता नही, न ही कोई दंड दे रहा है, न ही कोई तुम्हारे कृत्यों का लेखा-जोखा रख रहा है, लेकिन पापी के जीने का ढंग ऐसा है कि वह चूक जाता है, वह परलोक में भी चूकेगा। क्योंकि चूकने की आदत मजबूत हो जाती है।

(तुम थोड़ा ख्याल करो। तुम कभी वर्तमान में होते हो। भोजन कर रहे होते हो, लेकिन मन कही और। प्रार्थना कर रहे होते हो, लेकिन मन कहीं और। सिर झुक रहा होता है मंदिर में, लेकिन तुम वहाँ नही। अगर कभी परमात्मा आए भी तुम्हें खोजते हुए, तो तुम घर पर न मिलोगे) तुम घर पर कभी हो ही नहीं। अगर वह तुम्हारी प्रार्थना सुन ले — और मैं जानता हूँ बहुत बार उसने तुम्हारी प्रार्थना सुनी है, हर बार सुनी है — लेकिन जब भी वह आता है तुम्हें घर नहीं पाता। तुम कहीं और हो। तुम्हें खुद ही पता नही कि तुम कहाँ हो। तुम्हारा कोई पता-ठिकाना नही है, तुम्हें खोजे भी तो कहाँ खोजे? तुम ऐसे ही हो जैसे किसी मेहमान को निमंत्रण दे आए हो, और जब मेहमान घर आता है तो तुम्हें घर पाता ही नही। मेजबान कभी घर मिलता ही नही। जीवन को तुम खोजते हो, जीवन तुम्हें खोज रहा है।)

इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लो।

तुम जीवन को खोज रहे हो, जीवन तुम्हें खोज रहा है। और तुम जीवन को खोजने में ही गवाँ रहे हो। खोजने की जरूरत नहीं है, जीवन मिला हुआ है। उसने

ही सब तरफ से तुम्हें घेरा है। वही सब तरफ से बरस रहा है। रोएँ-रोएँ में, श्वांस-श्वांस में जीवन की ही पुलक है, जीवन का ही नृत्य है। कहाँ तुम खोजने जा रहे हो? जहाँ भी जाओगे, गलत जाओगे। जाना गलत है। होना सही है। जाने में ही तो तुम वर्तमान से चूक जाते हो। तुम कहते हो कल, कल सुख पाएँगे। न तो बीते कल मिला, न आनेवाले कल मिलने वाला है, क्योंकि कल कभी आता नहीं। आता हुआ लगता है। सदा आता है — लगता है आया, आया, आता कभी नहीं। जो आता है, वो आज है। जो आता है, वो अभी है। इस क्षण को तुम कल के लिए मत स्थगित कर देना। जिसने आज को जीने के लिए कल पे छोड़ा, वही पापी है। तब फिर ऐसा मन अतीत की स्मृतियाँ करता है।

और बड़े मजे की बात यह है कि तुम जिन बातों की स्मृतियाँ करते हो, उन बातों मे भी तुम मौजूद न थे। वह भी तुम्हारा ख्याल है। क्योंकि जब वे बातें घट रही थी, तब तुम कहीं और थे।

मेरे एक मित्र के साथ मैं ताजमहल गया था। तीन-चार घंटे हम वहाँ थे। पूरे चाँद की रात थी। लेकिन वे ताजमहल को न देख पाए, क्योंकि उनको फोटो लेने थे। मैंने उनको कहा भी कि फोटो तो तुम्हारे घर-गाँव में ही मिलते थे, बिकते थे। इतनी दूर आने की जरूरत न थी। और जो फोटो बाजार में मिलते हैं वो ज्यादा बेहतर फोटोग्राफरो ने लिए हैं। तुम सिक्खड़ हो। तुम्हारे फोटोग्राफ का मतलब भी क्या! पर वो बोले कि नही, घर चलके शांति से देखेंगे। ताजमहल सामने है। वे चित्र ले रहे हैं, वे घर चलके शांति मे देखेंगे! और तब वे सोचेंगे, कैसा प्यारा ताजमहल! और वो कभी उन्होंने देखा नहीं। वो कैमरे ने देखा होगा। वो तो वहाँ थे ही नही। वो एल्बम बना रहे हैं।

तुम कभी ख्याल किये कि तुम पीछे लौट-लौटके देखते हो, बचपन कितना प्यारा था! पर बचपन में तुम वहाँ थे? कि ताजमहल के फोटो लिए! कोई भी बच्चा वहाँ नहीं है। वह जवानी के सपने देख रहा है। वह बड़े होने की कामना कर रहा है। वह जल्दी-जल्दी बड़ा हो जाना चाहता है। क्योंकि उसे लगता है, बड़े बड़ा आनंद लूट रहे हैं। बड़ों के पास शक्ति है, सामर्थ्य है। मेरे पास कुछ भी नही। वो जल्दी में है। वो जल्दी बड़ा होना चाह रहा है। छोटे बच्चे खड़े हो जाते हैं कुर्सियों पर, अपने बाप से कहते है, हम तुमसे बड़े हैं। वे बड़े होने की कामना उनमें गहरी हो गयी है। छोटे बच्चे सिगरेट पीने लगते हैं, सिर्फ इसलिए कि सिगरेट बड़े का प्रतीक है। बड़े पी रहे हैं उसको। ताकतवर आदमी का 'सिम्बॉल' है, उसका प्रतीक है। बच्चे सिगरेट पीने लगते हैं, क्योंकि उससे अकड़ मालूम होती है कि वे भी बड़े हो गये।

मैं एक गाँव में ठहरा हुआ था। सुबह-सुबह घूमने गया था। एक छोटे बच्चे को मैंने आते देखा। इतनी सुबह, और बच्चा इतना छोटा—छः-सात साल से ज्यादा का न रहा होगा—और उसका ढंग ऐसा कि मैं भी देखता रह गया। हाथ में एक छड़ी लिए था, बड़े-बूढ़े की तरह चल रहा था, और उसने छोटी सी मूँछ भी लगा रखी थी। जब मैंने उसे गौर से देखा तो वह भागके एक वृक्ष के पीछे छिप गया। मैं उसके पीछे गया। तो वह अपने घर में चला गया। मैं उसके पीछे उसके घर पहुँचा। उसने जल्दी से अपनी मूँछ निकालके खीसे में रख ली।

मैंने पूछा कि मामला क्या है? तू कर क्या रहा है? उसके पास कोई उत्तर नहीं है। शायद उसे भी पता नहीं है। बड़े होने का ढोंग कर रहा है। बड़ा होने की आकांक्षा जग गयी है। छोटे होने में पीड़ा है। सभी बड़े होना चाहते हैं।

यही बच्चा कल बड़ा होके बचपन की बातें करेगा, कि बचपन स्वर्ग था। उस स्वर्ग के केवल चित्र लिए हैं, वह स्वर्ग कभी जिया नहीं। बूढ़े हो जाओगे तब तुम जवानी के चित्रों का एलबम देखोगे। वह जवानी भी तुमने कभी जियी नहीं। जब वहाँ थे, तब वहाँ थे नहीं। यही रोग पाप है।

तुमसे बहुत और व्याख्याएँ लोगों ने कही है पाप की। शायद किसीने तुमसे यह व्याख्या न कही हो। लोगों ने कहा है, बुरा करना पाप है। मैं नहीं कहता। क्योंकि मैं मानता हूँ, बुरा करना तुम्हारे गलत होने से पैदा होता है। इसलिए वह गौण है। गलत होना पाप है, गलत करना नहीं। और जो ठीक हो गया, उसके जीवन से पाप विदा हो जाते है।

इसलिए असली सवाल ठीक करने का नहीं है, असली सवाल ठीक होने का है। इस भेद को ध्यान मे रख लेना। क्योंकि यह भेद बुनियादी है। अगर तुम गलत को ठीक करने में लग गये तो तुम जन्मो-जन्मों तक गलत को ठीक करते रहोगे, गलत ठीक न होगा; क्योंकि तुम गलत हो, वहाँ से और गल्तियाँ पैदा होती रहेंगी। यह तो ऐसा ही है जैसे एक शराबी आदमी है, वह शराब पीना तो बंद नहीं करता, सम्हलके चलने की कोशिश करता है। सभी शराबी करते हैं। तुमने अगर कभी शराब पी है तो तुम्हें पता होगा, जितने शराबी सम्हलके चलते हैं कोई नहीं चलता। हालाँकि वो गिरते है। मगर सम्हलके वे बहुत चलने की कोशिश करते है। जिसने शराब नहीं पी है, वह सम्हलके चलने की कोशिश ही क्यो करेगा? वह सम्हलके चलता ही है। इसकी कोशिश थोड़ी' करनी है। जो होश में है उससे पुण्य होता ही है, पुण्य करना थोड़ी' होता है। किया पुण्य भी दो कौड़ी का हो जाता है। करने में ही तो अहंकार समा जाता है।

जो होश में है उससे पुण्य ऐसे ही होता है जैसे, बुद्ध कहते है, गाड़ी के पीछे चाक

चले आते हैं, आदमी के पीछे छाया चली आती है । जो गलत है, बेहोश है, उससे पाप भी ऐसे ही होता है जैसे गाड़ी के पीछे चाक चले आते हैं । गाडी गुजरती है तो चाक के निशान रास्ते पर बन जाते हैं । वह अपने आप हो जाते हैं । तुम निशानों को पोंछने में मत लग जाना, क्योंकि गाड़ी चलती ही जा रही है । तुम निशान पोंछते जाओगे, गाड़ी नये रास्ते पर नये निशान बनाती चली जाएगी । तुम छाया से मत लड़ने लगना, क्योंकि जबतक तुम्हीं नहीं खो गये हो, छाया कैसे खो जाएगी ? जब तुम्हीं खो जाओगे, तभी छाया खो जाएगी ।

बड़ी पुरानी कथाएँ हैं, जिनमें ये कहा है कि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति की छाया नहीं बनती । उसका यह मतलब नही है कि वह धूप में चलता है तो उसकी छाया नही बनती । इसका मतलब यही है कि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति का कोई कृत्य नही रह जाता । सिर्फ अस्तित्व रह जाता है । वह होता है । और उसका होना इतना महिमावान हो जाता है कि उसकी कोई रेखा नही छूटती । पुण्य की रेखा भी नही छूटती । क्योंकि जिसकी भी रेखा छूट जाए वही पाप हो गया । कृत्य बनता ही नही । कर्म होता ही नही । इसीको कृष्ण ने गीता में कहा है कि जब तुम फलाकांक्षा छोड दोगे, तो तुम्हारा कर्म अकर्म हो जाता है । जैसे हुआ ही नही । जैसे पानी पर किसीने लकीर खीची, खीच भी न पायी और मिट गयी ।

पाप का अर्थ है, इस ढंग से जीना कि जहाँ तुम हो वहाँ तुम नहीं हो । कहीं और...कहीं और...सदा कही और...। बूढ़े हो जाओगे तब जवानी की सोचोगे । जवान हो गये तब बचपन की सोचोगे । जब तुम मरने की घडी मे घिरोगे, मृत्यु की शय्या पर, तब तुम्हे जीवन की याद आएगी । यह बात विरोधाभासी लगती है, मगर बडी सच है । बहुत लोग मरके ही पाते हैं, कि जिंदा थे । जिंदगी में उनको कभी इसका पता न चला । मरे तभी उनको अनुभव हुआ—अरे ! जिंदा थे । बहुत लोग जब चीजें हाथ से छूट जाती हैं तभी होश से भरते हैं कि अरे ! हाथ में थी और चली गयी । यह बड़ी आश्चर्य की बात है ! और जब तक हाथ में नहीं आती है कोई चीज तब तक भी वो काम न करते; और जब हाथ से छूट जाती है तब भी याद करते हैं और जब हाथ में होती है तब उनके जैसे जीवन के द्वार बद हो जाते हैं । यही पाप है ।

बुद्ध कहते हैं, 'इस लोक मे भी शोक करता है और परलोक में भी । पापी दोनों जगह शोक करता है ।'

वह यहाँ भी चूक रहा है, वहाँ भी चूकेगा । क्योंकि चूकने का अभ्यास निरंतर गहन होता जा रहा है । तुम यह मत सोचना कि तुम्हें स्वर्ग मिल सकता है । मिल सकता होता तो अभी मिल सकता था । तुम यह मत सोचना कि स्वर्ग कल मिलेगा,

और मरने के बाद मिलेगा। क्योंकि स्वर्ग तो चारों तरफ मौजूद है — अभी और यहीं। इसी क्षण स्वर्ग बरसा है तुम्हारे चारों तरफ। तुम्हें चारों तरफ से घेरा है स्वर्ग ने, पर तुम मौजूद नहीं हो। और तुम अगर आज मौजूद नहीं हो, तो कल मरने के बाद तुम कैसे मौजूद हो सकोगे ? मौजूद होने का कोई अभ्यास ही नहीं है। मरने के बाद भी तुम वही होओगे जो तुम हो। इसीको तो हम कहते हैं, बार-बार जन्म लोगे। बार-बार जन्म लेने का अर्थ है, तुम फिर-फिर वही हो जाओगे जो तुम थे। तुम दोहराओगे। तुम पुनरुक्ति करोगे। तुम्हारे जीवन में क्रांति न होगी, पुनरुक्ति होगी। तुम्हारा जीवन रोज-रोज नये का आविर्भाव न होगा, केवल पुरानी राख का जमता जाना। तुम्हारा जीवन अंगार की तरह न होगा, तुम्हारा जीवन राख के ढेर की तरह होगा। तुम वही-वही करते रहोगे जो तुमने पहले भी किया है, और भी पहले किया है।

तुम अगर आज अचानक तुम्हारी आँख पे पट्टी बाँध दी जाए और तुम्हें स्वर्ग में ले जाके छोड़ दिया जाए, क्या तुम सोचते हो तुम सुखी हो जाओगे ? इसे थोडा विचारना। तुम स्वर्ग में भी सुखी न हो सकोगे। तुम वहाँ भी नर्क खोज लोगे। क्योंकि तुम्हें आता नहीं उस बात को देखना जो मौजूद हो। अन्यथा तुम स्वर्ग में छोडे ही गये हो। यह मैं कोई कल्पना नहीं कर रहा हूँ, तुम स्वर्ग में छोड़े ही गये हो। और आँख पर पट्टी भी नही बाँधी हुई है।

फिर से एक बार सूरज को देखो। फिर से एक बार फूलों को देखो। फिर से एक बार पक्षियों के गीत सुनो, जैसे कभी न सुने हों। फिर एक बार नये और ताजे होके जिंदगी से संपर्क साधो। फिर से एक बार अभी और यहीं उत्सव में डूब जाओ। अचानक तुम पाओगे, स्वर्ग था। चूकते हम इसलिए न थे कि स्वर्ग दूर था। चूकते हम इसीलिए थे कि स्वर्ग मे थे, लेकिन वर्तमान में होने की कला न आती थी।

'इस लोक में भी शोक करता है और परलोक में भी; पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।'

अतीत को याद करता है। तो सिवाय मैले कर्मों के कुछ दिखायी नहीं पड़ता है। सोया हुआ आदमी मैले कर्म ही कर सकता है। उसकी पूरी कथा, उसका पूरा इतिहास मैले कर्मों का होता है। जैसे किसीने नींद में चित्र बनाया हो। देखता है, कुछ समझ में नही आता। एक बेबूझ पहेली मालूम पडती है, स्याही के धब्बे मालूम पड़ते हैं। रंग बेतरतीब हैं। कुछ समझ में नही आता। जैसे किसी पागल ने बनाया हो (यद्यपि पागल मिल जाएँगे उसकी प्रशंसा करने को भी। क्योंकि दूसरे भी इतने सोए हुए है। तुम्हारे जीवन की प्रशंसा करनेवाले लोग मिल जाएँगे, क्योंकि वे भी तुम जैसे हैं।)

मैंने सुना है कि पिकासो के चित्रों की एक प्रदर्शनी पेरिस में हुई। एक चित्र के पास बड़ी भीड़ थी। और लोग बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। और तब पिकासो आया और उसने आके चित्र को सीधा टाँगा, वह गलती से उलटा टँगा था। लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे! उनमें से किसीको यह भी पता न चला कि वह उलटा टँगा है। पिकासो के चित्र उलटे या सीधे, फर्क करना मुश्किल है। पिकासो भी कैसे करता था, यह भी मुश्किल है। जैसे किसी पागल ने रंग डाले हों।

कहा जाता है, एक दफे एक अमरीकी करोड़पति ने पिकासो से दो चित्र माँगे। कितना ही मूल्य देने को वह तैयार था। उसने नया भवन बनाया था, दो चित्रों की जरूरत थी। पिकासो के पास एक ही चित्र तैयार था। वह भीतर गया, उसने कैंची से उसके दो टुकड़े कर दिये। उसने लाके दोनों चित्र दे दिये, और दो चित्र के दाम ले लिए। पक्का करना मुश्किल है। पिकासो चार भी कर देता तो भी पता नहीं चलता।

पिकासो के चित्रों में मनुष्य की पूरी विक्षिप्तता प्रगट हुई है। और अगर उसके चित्रों का इतना समादर हुआ, तो उसका कुल कारण इतना था कि मनुष्य के मन की जैसी दशा है, उसका ठीक-ठीक चित्रण उसके चित्रों में हो गया है। पिकासो के चित्रों को अगर थोड़ी देर गौर से देखते रहो तो तुम परेशान होने लगोगे। और थोड़ी देर गौर से देखो, तो तुम घबड़ाने लगोगे। अगर तुम देखते ही रहो रात भर टकटकी लगाके, सुबह तक पागल हो जाओगे। जैसे किसीने बेहोशी में, विक्षिप्तता में रंग फेंक दिये हैं। लेकिन यही तुम्हारी जिंदगी है।

बुद्ध कहते हैं, पापी अपने मैले कर्मों को देखके शोक करता है। देखता है पीछे तो सिवाय अँधेरे के कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। अँधेरे में अपनी ही विक्षिप्त आवाजें और चीत्कार सुनायी पड़ते हैं। अँधेरे में अपने ही पैरों के पदचिह्न बने दिखायी पड़ते हैं। उनसे ऐसा नहीं लगता कि कोई नाचा हो, उनसे ऐसा लगता है जैसे जंजीरों में बँधा हुआ कोई कैदी गुजरा हो। उन कृत्यों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि किसी जीवन में फूल खिले हों। उन्हें देखकर ऐसे ही लगता है कि कोई जीवन अनखिला ही डूब गया है। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि सुबह हुई ही नहीं और साँझ हो गयी है। सूरज निकला ही नहीं और डूब गया; कली खिली ही नहीं और मुरझा गयी। शोक होता है पीछे देखकर। और आगे की आशा बाँधे रखता है पापी।

परलोक पापी की आशा है। कोई परलोक नहीं है। जो है, अभी है, यहाँ है। सब अभी है, यहाँ है। कोई परलोक नहीं है। परलोक पापी की आशा है; भविष्य पापी की कल्पना है। वर्तमान पुण्यात्मा का जीवन है। भविष्य पापी की आकांक्षा

है। भविष्य की आकांक्षा तभी पैदा होती है जब वर्तमान बाँझ होता है। जब वर्तमान में कुछ भी नहीं होता, तो आदमी आगे की अपेक्षा करता है। क्योंकि बिना आशा के फिर जिएगा कैसे! अभी तो कुछ भी नहीं है।

अगर तुम आज ही अपने को देखो, तो आत्महत्या करने का मन होगा, कुछ भी तो नहीं है। तुम कहते हो कोई फिकर नहीं। आज तक कुछ भी नहीं हुआ, कल होगा। हिम्मत बढ़ती है। सिर फिर खड़ा हो जाता है, पैर फिर मजबूत हो जाते है। आज तक सब व्यर्थ हुआ, कोई चिंता की बात नहीं, कल आ रहा है। कल के साथ सारी आशाएँ फलीभूत होंगी, सब बीज अंकुरित होंगे; सब कलियाँ खिलेंगी। कल आ रहा है। और कल कभी आता नहीं। रोज कल को तुम आगे सरकाए चले जाते हो। ऐसे ही एक दिन तुम मर जाते हो।

परलोक पापी की आशा है। यह सुनके तुम्हें हैरानी होगी। पुण्यात्मा परलोक की बात ही नहीं करता। पुण्यात्मा कहता है, यहीं है, अभी है। पुण्यात्मा यह नहीं कहता कि परमात्मा आकाश में बैठा है। पुण्यात्मा कहता है, परमात्मा ने सब तरफ से घेरा है, श्वाँस-श्वाँस में वही भीतर जा रहा है, वही बाहर जा रहा है। पापी कहता है, परमात्मा आकाश में बैठा है। पुण्यात्मा तुममें झाँकता है और परमात्मा को पाता है। पापी चारों तरफ देखता है, कहीं कोई परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता। सब तरफ दुश्मन दिखायी पड़ते हैं। वह कल्पना करता है परमात्मा की, वह आकाश में बैठा है। क्योंकि इतने दुश्मनों के बीच जीना मुश्किल है। कोई सहारा चाहिए। कल्पना में सहारे खोजता है पापी। सत्य में उसके लिए कोई सहारा नहीं है, क्योंकि सत्य में होने का उसे ढंग ही न आया। उतना जतन न आया।

> बस इसी धुन में रहा मर के मिलेगी जन्नत
> तुझको ऐ शेख न जीने का करीना आया

उसे जीने का करीना न आया; ढंग न आया; जीने की शैली न आयी। वह इसी आशा में रहा कि मरेंगे, तब जन्नत, तब स्वर्ग होगा। जिसने स्वर्ग को यहाँ न पाया, वह कहीं भी न पा सकेगा। जिसने यहाँ खोया, वह सब जगह खो देगा। 'इस लोक में और परलोक में भी पापी शोक करता है।'

'इस लोक में मुदित होता है, और परलोक में भी; पुण्यात्मा दोनों लोक में मुदित होता है।'

ये बुद्ध के वचन बड़े प्यारे है। इस लोक में मुदित होता है, खिलता है, नाचता है, आनंदित होता है। 'इस लोक में मुदित होता है, और परलोक में भी।' क्योंकि परलोक इसी लोक का विस्तार है। परलोक इसी लोक की संतान है। परलोक

इसी लोक से आता है, निकलता है, पैदा होता है। फिर बीज से अंकुर निकलता है। जैसे माँ के गर्भ से बेटा पैदा होता है, ऐसे ही वर्तमान से भविष्य पैदा होता है। इसी लोक से, इसी क्षण से आनेवाला क्षण आ रहा है। इसी क्षण में छिपा है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा है, ऐसा वर्तमान में भविष्य छिपा है। इस लोक में परलोक छिपा है। पदार्थ में परमात्मा छिपा है।

'इस लोक में मुदित होता है, परलोक में मुदित होता है; पुण्यात्मा दोनों लोक में मुदित होता है।' क्यों? जिसे यहाँ मुदित होना आ गया, उसे सब जगह मुदित होना आ गया। असली सवाल लोक का नहीं है, असली सवाल प्रमुदित होने की कला का है। जिसे हँसना आ गया; जिसे नाचना आ गया; जिसने जीवन की धुन को पकड़ लिया; और जो जीवन के गीत में तालबद्ध होना सीख गया; जो जीवन के साथ छंद का अनुभव करने लगा; जिसके पैर जीवन के नाच के साथ पड़ने लगे; जीवन की बाँसुरी ने जिसके हृदय को छू लिया; वह सभी जगह प्रमुदित होता है। तुम उसे नर्क में न डाल सकोगे।

शास्त्र कहते हैं, पुण्यात्मा स्वर्ग जाता है, पापी नर्क जाता है। बात बिलकुल भिन्न है। पापी कहीं और जा नहीं सकता। ऐसा नहीं कि नर्क भेजा जाता है। कहीं भी भेजो, पापी नर्क पाता है। ऐसा नहीं कि पुण्यात्मा को स्वर्ग भेजा जाता है। कौन बैठा है सब हिसाब करने को! कौन इस सब व्यवस्था को बिठाता रहेगा! किसको पड़ी है! पुण्यात्मा को कहीं भी भेजो, वह स्वर्ग पहुँच जाता है।

मैं एक कहानी पढ़ता था। यूरोप का एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, एडमंड बर्क। वह रोज सुनने जाता था एक पादरी को। पादरी ने एक दिन चर्च में कहा कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। एडमंड बर्क खड़ा हो गया, उसने कहा मुझे एक बात पूछनी है। आपने दो बातें कहीं, कि जो लोग पुण्यात्मा हैं, और परमात्मा में भरोसा करते हैं, वह स्वर्ग जाते हैं। मैं पूछता हूँ कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा नहीं करते, वो कहाँ जाते हैं? और मैं यह भी पूछना चाहता हूँ कि जो परमात्मा में भरोसा करते हैं और पुण्यात्मा नहीं हैं, वो कहाँ जाते हैं?

एडमंड बर्क की जिज्ञासा एकदम प्रामाणिक है। पादरी भी ठगा सा रह गया। क्या कहे? उसे बड़ी उलझन हो गयी। अगर वह कहे कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा नहीं करते, वे भी स्वर्ग जाते हैं; तो स्वभावतः बर्क कहेगा, फिर परमात्मा में भरोसे की जरूरत क्या है? पुण्य ही काफी है। और अगर मैं कहूँ कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा नहीं करते, वे स्वर्ग नहीं जाते; तो बर्क कहेगा, तो फिर पुण्य की झंझट में पड़ने की क्या जरूरत? परमात्मा

में भरोसा काफी है। पादरी ने कहा मुझे तुमने उलझन में डाल दिया। थोड़ा मुझे सोचने का समय दो; कल।

रात भर पादरी सो न सका। आदमी निष्ठावान रहा होगा। चालाक नहीं, बुद्धिमान रहा होगा। बहुत सोचा, लेकिन उलझन न हल हुई। सुबह-सुबह, भोर होते-होते, रात भर का जागा सोचता-सोचता नींद लग गयी। नींद में उसने एक सपना देखा कि वह एक ट्रेन में बैठा है। उसने लोगों से पूछा ये ट्रेन कहाँ जा रही है? उन्होंने कहा यह स्वर्ग जा रही है। उसने कहा, चलो अच्छा हुआ! यही तो मुझे पूछना था। यह अच्छा ही हुआ, आँख से ही देख लूँगा। तो उसने सोच रखे नाम मन में — जैसे सुकरात; परमात्मा में भरोसा नहीं करता था, आदमी पुण्यात्मा था। जैसे बुद्ध; इससे और पुण्य की साकार प्रतिमा कहाँ पाओगे? लेकिन आदमी परमात्मा में भरोसा नहीं करता था। तो उसने कहा ठीक है, अगर ये बुद्ध और ये सुकरात स्वर्ग में मिल गये तो उत्तर साफ हो जाता है, कि परमात्मा में भरोसे की जरूरत नही। अगर ये स्वर्ग में न मिले, तो भी उत्तर साफ हो जाता है कि पुण्य से कुछ भी न होगा, असली चीज परमात्मा में भरोसा है।

स्वर्ग के स्टेशन पर उतरा, बड़ी हैरानी हुई। स्टेशन बड़ा उदास था। जैसे कई जमानों की धूल जमी हो, किसीने साफ न की हो। थोड़ा हैरान हुआ। जाके गौर से देखा तख्ती पर, तो स्वर्ग ही लिखा है। गाँव में प्रविष्ट हुआ, बड़ी बेरौनक थी बस्ती। कहीं फूल खिलते न मालूम पडते थे। और किसी घर से वीणा के स्वर न उठते थे। कहीं कोई नाचता न मिला। मिले ही ऐसे — धर्मगुरु, पादरी, मुनि; मगर कोई रौनक न मिली। ऐसे जैसे मुर्दे चल रहे हों। कहीं कोई महोत्सव न मिला। जिंदगी ऐसी लगी जैसे एक बोझ हो वहाँ। उसने पूछा कई से कि सुकरात, गौतम बुद्ध? लोगों ने कहा, नाम सुने नहीं। यहाँ नहीं हैं। दूसरी जगह, नर्क में खोजो।

भागा स्टेशन आया। पूछा कि नर्क की गाड़ी? भाग्य से खड़ी थी, जा ही रही थी। बैठ गया। नर्क पहुँचा तो बड़ा हैरान होने लगा। जैसे किसी महोत्सव में प्रवेश हो रहा हो। बड़ा स्वच्छ था स्टेशन। जीवन मालूम पड़ता था। फूल खिले थे, गीत बजते थे, लोग चलते थे तो उनके पैरों में गति थी, रौनक थी, रगबिरंगापन था, जीवन का इंद्रधनुष जैसे खिला था। वो बड़ा हैरान हुआ कि ये तो कुछ गड़बड़ है। नाम में, तख्ती में कुछ भूल-चूक हो गयी। इसको स्वर्ग होना चाहिए। उसने पूछा कि सुकरात और बुद्ध? उन्होंने कहा कि हाँ, वे यहाँ हैं। और नाम में कोई गलती नहीं हुई है। उनके आने से ही यह नर्क स्वर्ग हो गया।

नींद खुल गयी उसकी। घबड़ाहट में नींद खुल गयी कि ये क्या मामला है?

सपना तो खो गया। जब वह सुबह चर्च गया, उसने कहा कि भई, मैं कुछ और न कह सकूंगा, लेकिन रात एक सपना आया है वह मैं दोहरा देता हूं उत्तर में। सपने में मुझे ऐसा दिखायी पड़ा; कहां तक सही है, कहां तक झूठ है, कुछ कह नहीं सकता। मेरी कोई सामर्थ्य भी नहीं इसका निर्णय लेने की। इतना मुझे दिखायी पड़ा और वह यह कि जहां भी पुण्यात्मा पुरुष पहुंच जाते हैं, वहीं स्वर्ग है। जहां पापी पहुंच जाते हैं, वहीं नर्क है।

पापी नर्क जाते हैं, ऐसा नहीं। पापी अपना नर्क अपने साथ लेके चलते हैं। और पुण्यात्मा स्वर्ग जाते हैं, ऐसा नहीं। पुण्यात्मा अपना स्वर्ग अपने साथ लेके चलते हैं। तुम उन्हें कहीं भी फेंक दो। और मुझे भी बात जंचती है। सपना नहीं सच मालूम होती है। बुद्ध को तुम नर्क में भी डाल दो तो तुम नर्क में न डाल सकोगे। यह असंभावना है। बुद्ध वहां स्वर्ग खड़ा कर लेंगे। बुद्ध अपना स्वर्ग अपने साथ लेके चलते हैं, वह बुद्ध के जीवन की हवा है। वो उनके आसपास चलता हुआ मौसम है। उसको तुम उनसे छीन न सकोगे। नर्क बदल जाएगा, बुद्ध न बदलेंगे। तुम बुद्ध को दुखी नहीं कर सकते, तो तुम नर्क में कैसे डाल सकते हो? तुम तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं को सुखी नहीं कर सकते, तुम स्वर्ग कैसे भेज सकते हो?

बस इसी धुन में रहा मर के मिलेगी जन्नत
तुझको ऐ शेख न जीने का करीना आया

हे धर्मगुरु, तुझे जीने का करीना न आया। तू इसी आशा में रहा कि मरके मिलेगा स्वर्ग। जिसने जीते जी स्वर्ग न पाया, वह मरके कैसे पा लेगा? जब जीते जी चूक गये तो मुर्दा होके कैसे पा लोगे? स्वर्ग तो होता है तो जीवन से जुड़ता है, मौत से नहीं। स्वर्ग होता है तो जीवन से निकलता है। मौत से कैसे निकलेगा? स्वर्ग मरघटों में नहीं है। स्वर्ग वहां है जहां जीवन नाचता है हजार-हजार रंगों में। स्वर्ग वहां है जहां जीवन की धुन बज रही है हजार-हजार स्वरों में। स्वर्ग वहां है जहां तुम जितने गहरे जीवंत हो जाते हो।

स्वर्ग सिकुड़ना नहीं है, फैलाव है। इसलिए हिंदुओं ने अपने परम सत्य को ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ होता है, विस्तीर्ण। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही गया है। जिसकी कोई सीमा नहीं आती। तुमने कभी खयाल किया, दुख सिकुड़ता है, आनंद फैलता है। दुख का स्वभाव है सिकुड़ना। जब तुम दुखी होते हो, तब तुम चाहते हो द्वार-दरवाजे बंद करके बैठ जाओ। कोई मिलने न आए, किसीसे बात न करनी पड़े, बाजार न जाना पड़े। तब तुम अपने को बंद कर लेना चाहते हो। सिकुड़के पड़ जाना चाहते हो बिस्तर में। अगर बहुत ही दुखी हो जाता है आदमी, तो मरने की चेष्टा करने लगता है। कब्र में समा जाना चाहता है, ताकि फिर कभी कोई

दुबारा न मिले। अकेला हो जाऊँ। इसलिए दुखी आदमी आत्मघात कर लेता है। लेकिन जब सुख भरता है, जब महासुख उतरता है, जब तुम नाचते होते हो, तब तुमसे कोई कहे घर मे बैठो; तुम कहोगे, नहीं, अभी तो जाना है, अभी तो बाँटना है, अभी तो फैलना है।

तुमने देखा, महावीर और बुद्ध जब दुखी थे, जगल भाग गये। लेकिन जब आनंदित हुए, जब उतरा अमृत उनके जीवन में, लौट आए वापिस बस्ती में। इस पर किसीने कभी कोई सोचा नहीं, कि जब वे दुखी थे तब जंगल भाग गये थे अकेले में। उसकी बड़ी कथाएँ शास्त्रों में हैं, कि उन्होने सब छोड़ दिया और जंगल चले गये। लेकिन इस संबंध में शास्त्र कुछ भी नहीं कहते कि एक दिन उन्होंने जंगल छोड़ दिया और बस्ती मे वापिस आ गये।

वह दूसरी घटना और भी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जब आनंद उनके जीवन में उतरा तो बाँटने का भाव भी आया। आनंद के साथ आती है करुणा। आनंद के साथ आती है एक अभीप्सा कि बाँटो, लुटो। जो मिला है, उसे दूसरों को दे दो। क्योंकि आनंद का एक स्वभाव है : बाँटो, बढता है; न बाँटो, घटता है। लुटाओ, बढता है; छिपाओ, मरता है।

ब्रह्म हमने नाम दिया है परम सत्य को। सच्चिदानद कहा है, और ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ है, जो विस्तीर्ण होता चला गया। जो कहीं सिकुड़ता ही नहीं, जो फैलता ही चला जाता है। विस्तार जिसका स्वभाव है। जीवन जब तुम्हारा खिलता है, तो फूल की तरह फैलता है, सुगंध लुटती है। जब तुम मुरझाते हो दुख में, तो बंद हो जाते हो, सिकुड़ जाते हो, जड़ हो जाते हो। प्रवाह रुक जाता है।

इसे ध्यान रखना —

'इस लोक में मुदित होता है'। मुदित शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। ये फूल की दुनिया से आया हुआ शब्द है — प्रमुदित। मुदित का अर्थ होता है — खिलना, फूलना, फैलना। 'इस लोक में मुदित होता है'। मुदित शब्द की ध्वनि भी खिलाने वाली है। 'और परलोक मे भी'। क्योंकि परलोक कहीं और थोड़ी' है। इसी लोक से निकलता है। इसी लोक की शृंखला है। इसी लोक का अगला कदम है। तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन तुम्हारे सांसारिक जीवन का ही अगला कदम है। तुम्हारा मंदिर तुम्हारे घर का ही अगला कदम है। घर के खिलाफ जो मंदिर है, वो मंदिर मंदिर नहीं है। संसार के खिलाफ जो अध्यात्म है, वो अध्यात्म नहीं। आज के खिलाफ जो कल है, वो झूठ है। इस लोक के खिलाफ जो परलोक है, वह परलोक सिर्फ तुम्हारी आकांक्षाओं में, सपनों में होगा, सत्य में नहीं है। क्योंकि सत्य में तो सब जुड़ा है। तुम्हारा घर और मंदिर एक ही जीवनयात्रा के दो पड़ाव

है। संसार और परमात्मा एक ही यात्रा के दो कदम हैं।

'इस लोक में मुदित होता है, और परलोक में भी; पुण्यात्मा दोनों लोक में मुदित होता है। वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।'

और जब तुम लौटकर पीछे देखते हो —— अगर तुम्हारे जीवन के ढंग में रोशनी रही हो, अगर जतनपूर्वक तुम जिए हो, अगर होशपूर्वक तुमने कदम उठाए हैं —— तो तुम जब लौटकर देखते हो, तो एक प्रकाश से भरी यात्रा, हर कदम पर हीरे जड़े! और तुम्हारे कदमों में शराबी की डगमगाहट नहीं दिखायी पड़ती, होश की थिरता मालूम होती; और यात्रा सिर्फ यात्रा नहीं मालूम होती, तीर्थयात्रा मालूम होती है।

लौटके भी पुण्यात्मा प्रमुदित होता है। पीछे भी स्वर्ग था, आगे भी स्वर्ग है, क्योंकि अभी स्वर्ग है। जिसका स्वर्ग अभी है, उसके दोनों तरफ स्वर्ग फैल जाता है। और जिसका स्वर्ग अभी नहीं है, उसके दोनों तरफ नर्क फैल जाता है। इस क्षण में सब कुछ निर्भर है। यह क्षण निर्णायक है।

'इस लोक में संतप्त होता है, और परलोक में भी; पापी दोनों लोक में संतप्त होता है। मैंने पाप किया, कह-कहके संतप्त होता है। दुर्गति को प्राप्त कर वह फिर संतप्त होता है।'

'भले ही कोई बहुत सी संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन प्रमादवश उसका आचरण न करे तो वह दूसरों की गौएँ गिननेवाले ग्वाले के समान है, और वह श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता।'

'भले ही कोई पूरा वेद कंठस्थ कर ले, संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन उसका आचरण न करे; कितना ही ज्ञानी हो जाए, लेकिन ज्ञान उसका जीवन न बने, तो वह पाप में ही जिएगा। जानने से पुण्य का कोई संबंध नहीं है। जीने से संबंध है।

खुश्क बातों मे कहाँ ऐ शेख कैफे-जिंदगी
वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है

पीने के संबंध में कितनी बातें याद कर लो, शराब के सब फार्मूले कंठस्थ कर लो, परमात्मा के संबंध में जो कहा गया है याद कर लो, कितनी ही संहिता कंठस्थ कर लो —— 'वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है।' 'खुश्क बातों में कहाँ?' —— 'वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है।'

तो बुद्ध कहते हैं कि जब तक जो तुमने जाना वह तुम्हारा जीवन न हो, जब तक तुम्हारे जीने और तुम्हारे जानने में अंतर होगा, तब तक तुम भटकोगे। जब तुम्हारा जानना ही जीवन होगा, और तुम्हारा जीना ही जानना होगा; जब तुम्हारे

होने में और तुम्हारे बोध में कोई अंतर न रह जाएगा; जब संहिता कंठ में न होगी, हृदय में होगी; जब वेद केवल मस्तिष्क की खुजलाहट न होगी, हृदय का भाव बनेगा; तब चाहे शब्द भूल जाएँ, सिद्धांत विस्मृत हो जाएँ, लेकिन तुम जीते-जागते प्रमाण होओगे, तुम सिद्धात होओगे। तुम्हारे पास चाहे ईश्वर को प्रमाणित करने का कोई तर्क न हो, लेकिन तुम्हीं तर्क हो गये होओगे। तुम्हारी मौजूदगी प्रमाण बनेगी।

इसीलिए तो बुद्ध ईश्वर की बात नहीं करते। वे स्वयं ईश्वर के प्रमाण हैं। उन्हें देखकर जिसको भरोसा न आया, उसे तर्क देकर भी भरोसा कैसे दिलाया जा सकेगा?

एक युवक ने बुद्ध से पूछा है एक दिन कि मुझे आनंद, निर्वाण, मोक्ष, इन पर कोई भरोसा नहीं आता। आप कृपा करें और मुझे समझाएँ। बुद्ध ने कहा, मुझे देखो; और अगर मुझे देखकर भरोसा न आया, तो मेरे कहने से कैसे भरोसा आ जाएगा? मैं यहाँ मौजूद हूँ प्रमाण की तरह। और अगर तुम मुझे नहीं देख पाते, तो तुम मुझे सुन कैसे पाओगे? जिसने मुझे देखा, उसे सुनने की जरूरत न रही। और जिसने सुनने का ही ध्यान रखा, वह मुझे देख न पाएगा।

'भले ही कोई बहुत सी संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन प्रमादवश उसका आचरण न करे।'

जानना तो बड़ा सरल है। क्योंकि जानने से अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। मैं जाननेवाला हो गया; मुझे चारों वेद याद हैं; दूसरे अज्ञानी है, मैं ज्ञाता हूँ — जानने में एक अकड़ है, एक अहकार है, प्रमाद है। इसलिए तुम पंडित को बड़ा अकड़ा हुआ पाओगे। अकड़ कोढ़ी है, नपुंसक है। भीतर कुछ भी नहीं है, लेकिन पंडित को तुम बड़ा अकड़ा पाओगे। वह सब तरफ को, बिना कहे घोषणा करता है कि मैं जानता हूँ। जानने से तो अहंकार कटता नहीं, बढ़ता है। जीने से गिर जाता है।

(जो परमात्मा के रास्ते पर या सत्य के रास्ते पर एक कदम भी चलेगा, वह झुकने लगेगा। जो शास्त्र के रास्ते पर लाख कदम भी चले, झुकना तो दूर रहा और भी अकड़ जाएगा।) शास्त्र खोपड़ी को और भी भर देते हैं, मिटाते नहीं। शास्त्र हृदय से और दूर कर देते हैं, पास नहीं लाते (शास्त्रों में सत्य नहीं मिलता किसीको। शास्त्रों से तो और अहंकार मजबूत हो जाता है।)

'भले ही कोई बहुत सी संहिता कंठस्थ करले, लेकिन प्रमादवश उसका आचरण न करे तो वह दूसरों की गौएँ गिननेवाले ग्वाले के समान है।'

बड़ा प्यारा प्रतीक है। जैसे ग्वाला तुम्हारे गाँव भर की गउओं को इकट्ठा करके

जंगल ले जाता है, दिन भर चराता है, गिनती रखता है, लौटा लाता है; कहता है, पाँच सौ गौएँ चरा कर लौटा। एक गऊ तुम्हारी नहीं है उसमें! सब दूसरों की हैं। वेद कितने ही सुंदर हों, दूसरे की गौएँ हैं। उपनिषद् कितने ही सुंदर हों, दूसरे की गौएँ हैं। तुम्हारा क्या है? ग्वाले ही बने रहोगे। मालिक कब बनोगे?

शब्द सीख लेने से आदमी ग्वाला ही रह जाता है। और गौएँ कितनी ही हों, अपनी एक भी नहीं। सब उधार, सब दूसरों की, लेकिन ग्वालों में भी अकड़ होती है। अगर एक ग्वाला सौ गौएँ रखता है, और दूसरा ग्वाला पाँच सौ, तो पाँच सौ वाला ज्यादा अकड़ा रहता है। वह कहता है, तू है क्या मेरे सामने? सौ गौएँ चराता है, मैं पाँच सौ चराता हूँ। मगर गौएँ सब दूसरों की हैं, सौ हों कि पाँच सौ हों। तुम चतुर्वेदी हो, कि त्रिवेदी, कि द्विवेदी, इससे क्या फर्क पड़ता है? गौएँ सब दूसरों की हैं। अपनी कोई एक भी गाय हो तो ही जीवन को पुष्ट करती है; तो ही उसका दूध तुम्हें मिल सकता है; तो ही तुम उसके मालिक हो। वो दुबली-पतली हो, दीन-दरिद्र हो, अपनी हो, तो भी किसीकी स्वस्थ स्वीडन से आयी गाय के मुकाबिले भी बेहतर है।

पीनेवाले एक ही दो हों तो हों
मुफ्त सारा मयकदा बदनाम है

ज्ञानी बहुत दिखायी पड़ते हैं। 'पीनेवाले एक ही दो हों तो हों।' वेद के जानने वाले, उपनिषद्, कुरान के जाननेवाले बहुत हैं। 'पीनेवाले एक ही दो हों तो हों — मुफ्त सारा मयकदा बदनाम है।' शराबघर में जितनों को तुम बैठे देखते हो सबको पीनेवाले मत समझ लेना। उनमें से कई तो पानी ही पी रहे हैं, और नाटक कर रहे हैं। नाटक कर रहे हैं कि गहरे नशे में हैं। और पानी पीके सिर हिलाने से कुछ भी नहीं होता।

ज्ञान के मयखाने में सत्य की शराब जहाँ बिकती है, मिलती है, वहाँ पीनेवाले बहुत मुश्किल से कभी एक दो मिलेंगे; क्योंकि पीनेवाले को मिटना पड़ता है। वह रास्ता खतरनाक है। जोखिम का है, जुआरी का है। तो बहुत से तो केवल पीने का बहाना करते हैं, डगमगा के चलते हैं, नाटक करते हैं। पंडितों को गौर से देखना। शराब कभी पी ही नहीं; शराब का शास्त्र कंठस्थ किया है। और उसीसे मतवाले होके चल रहे हैं। बातचीत सुनी है, नशा छा गया है। इस नशे की भ्रांति में मत पड़ना।

'जो दूसरों की गौएँ गिननेवाले ग्वाले के समान है, वह श्रामण्य का अधिकारी नहीं हो सकता।'

इस शब्द को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। भारत के पास दो शब्द हैं —

'ब्राह्मण' और 'श्रमण'। कभी ब्राह्मण शब्द बड़ा अनूठा था। उसका अर्थ था, जिसने ब्रह्म को जाना। लेकिन फिर शब्द गिरा, पतित हुआ। फिर उसका अर्थ इतना ही हो गया कि जो शास्त्रों का जानकार है, ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ है। ब्रह्म के जानने से उसका कोई संबंध न रहा। वह शब्द पतित हो गया। उसका अर्थ खो गया।

उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा है कि ध्यान रख, हमारे घर में बस कहलाने वाले ब्राह्मण पैदा नही हुए। हमारे घर मे सच में ही ब्राह्मण पैदा हुए हैं। तो तू याद रखना, कहीं तू यह मत समझ लेना कि तू ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ, इसलिए ब्राह्मण हो गया। ब्राह्मण होना पडेगा। ब्राह्मण-कुल में पैदा होने से कोई ब्राह्मण होता है! ब्रह्म को जानने से कोई ब्राह्मण होता है। ब्रह्म के कुल में जब तक तुम पैदा न हो जाओ, जब तक ब्रह्म ही तुम्हारा कुल न हो जाए, जब तक ब्रह्म की कोख से ही तुम पुनरुज्जीवित न होओ, पुनर्जन्म न लो, तब तक ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। लेकिन ये हो गया था। सभी शब्दों के साथ ऐसा ही होता है।

तो बुद्ध और महावीर को एक नया शब्द खोजना पड़ा। वह शब्द है 'श्रमण'। वह ब्राह्मण के विपरीत है। श्रमण का अर्थ होता है, जिसने श्रम करके अर्जन किया है ज्ञान को। उधार नहीं लिया। जो ऐसे ब्राह्मण के घर में पैदा होके वेद कंठस्थ नहीं कर लिया है। बल्कि जिसने वेद को जिया और जाना है।

श्रम से आया है श्रमण। श्रमण का अर्थ होता है, जिसने अर्जित किया है ज्ञान। उधार, बासा, चुराया नहीं। किसी और की जूँठन इकट्ठी नहीं कर ली है। वह चाहे जूँठन फिर ऋषियों की ही क्यों न हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। जूँठन जूँठन है। जिसने अपने जीवन-सत्य को स्वयं ही पहचाना है, साक्षात्कार किया है, श्रम से जिसने अर्जित किया है, वह श्रमण।

तो बुद्ध कहते हैं, 'जो दूसरों की गौएँ गिननेवाले ग्वाले के समान है, वह श्रामण्य का अधिकारी नही होता।' वह ब्राह्मण अपने को कहता रहे, लेकिन श्रमण हम उसको न कहेंगे।

फिर श्रमण की भी वही दुर्गति हो गयी। सभी शब्दो की वही गति हो जाती है। अब जैन-मंदिरों में, बौद्ध-विहारों में श्रमण बैठे हैं; वे वैसे ही हो गये जैसे ब्राह्मण थे। उन्होंने कुछ जाना नहीं है, बुद्ध के शब्द कंठस्थ कर लिए, महावीर की वाणी कंठस्थ कर ली। खुद कोई अनुभव नहीं है। कोई एक किरण भी नहीं उतरी अनुभव की। शब्दों का अँधेरा है; अनुभव की एक किरण नहीं। शास्त्रों की बड़ी भीड़ है, बोझ है, लेकिन शून्य का एक भी स्वर नहीं। तो दब गये हैं शास्त्रों से, लेकिन

शून्य की मुक्ति उन्हें उपलब्ध नहीं हुई। जो 'ब्राह्मण' की दुर्गति हुई थी वही अब 'श्रमण' की हो गयी। सभी शब्दों की हो जाती है। क्योंकि जल्दी ही आदमी को यह समझ में आ जाता है -- मुफ्त ज्ञान, चुराया ज्ञान इकट्ठा कर लेना सस्ता है। उसमें दांव पर कुछ भी नहीं लगाना पड़ता। कूड़ा-करकट कहीं से भी इकट्ठा कर लाए। लेकिन अगर ज्ञान स्वयं पाना हो, तो अपने को गवाँना पड़ता है। जो अपने को खोने को राजी है, वही सत्य को पाने का अधिकारी होता है। वही श्रामण्य का अधिकारी होता है, वही ब्राह्मण कहलाने का हकदार होता है।

'भले ही किसीको थोड़ी सी ही संहिता कंठस्थ हो, लेकिन धर्म का आचरण हो, राग, द्वेष और मोह को छोड़कर सम्यक् ज्ञान और विमुक्त चित्तवाला हो, तथा इस लोक और परलोक में किसी भी चीज के प्रति निरभिलाष हो, तो वह श्रामण्य का अधिकारी होता है।'

लुफ्तेमय तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद
हाय कमबख्त तूने पी ही नहीं

वह जो शराब का मजा है--लुफ्तेमय--क्या कहूँ जाहिद !... हाय कमबख्त ! तूने पी ही नहीं ! इतना ही फर्क है जानने और जीने में। कितनी ही हम ब्रह्म की चर्चा करें, अगर तुमने भी थोड़ा स्वाद नहीं लिया, बात जमेगी नहीं। कितने ही हम ब्रह्म के चित्र तुम्हारे सामने उभारना चाहें, लेकिन अगर थोड़ी सी तुम्हारे भीतर भी किरण नहीं उतरी, अगर थोड़ी सुगबुगाहट तुम्हारे भीतर के बीज ने अनुभव नहीं की, अगर थोड़ा तुम्हारा बीज भी नहीं टूटा, तो तुम समझ न पाओगे। तुम सुन लोगे, लेकिन भरोसा न कर पाओगे। भरोसा तो तभी आता है जब तुम्हारा अनुभव भी गवाही बने। तुम्हारा अनुभव भी कहे कि हाँ, ठीक है। तुम्हारा अनुभव कहे, विचार नहीं। तर्क से तो मैं तुम्हें समझा दूं; लेकिन तर्क से कहीं प्यास बुझी है ! शब्द से तो मैं तुम्हें भरोसा दिला दूं; लेकिन शब्दों के भरोसों से कहीं पेट भरा है ! शास्त्र कितना ही ब्रह्म की चर्चा करते रहें, लेकिन तुम्हें किसी दिन पीनी पड़ेगी यह शराब, तुम्हें भी डोलना पड़ेगा उस नशे में, तुम्हें भी होश-हवास खोकर, लोक-लाज खोकर -- मीरा ने कहा, 'सब लोक लाज खोई'— तुम्हें भी पग घुंघरू बाँध नाचना पड़ेगा, मतवाला होना पड़ेगा, तो ही उस मदिरा का स्वाद तुम्हें आएगा। आचरण पर जोर इसीलिए है।

'भले ही किसीको थोड़ी सी ही संहिता कंठस्थ हो, या न हो' ... वेद सुना हो, न सुना हो; लेकिन धर्म का जीवन हो, होशपूर्ण जीवन हो, आनंदपूर्ण जीवन हो राग, द्वेष और मोह को छोड़कर, क्योंकि उनसे ही — 'दर्द के पेबंद लगे जाते हैं'; वे जो राग, द्वेष और मोह हैं, उनसे ही तुम्हारे लबादे पर -- 'दर्द के पेबंद लगे

जाते हैं।' 'तथा इस लोक और परलोक में किसी भी चीज के प्रति निरभिलाष हो'... क्योंकि जिसकी आशा आगे भागी जा रही है, वह यहां इसी क्षण मौजूद जीवन से अपरिचित रह जाएगा। वह कभी परिचित न हो पाएगा। जीवन यहाँ, तुम कहीं और। तो बुद्ध ने कहा है, इतनी सी भी अभिलाषा न रह जाए — परलोक पाने की, स्वर्ग पाने की; परमात्मा को पाने की भी अभिलाषा न रह जाए।

इसलिए, बुद्ध जानते हुए कि परमात्मा है और चुप रहे। क्योंकि शब्द निकाला मुंह से कि तुम्हारी वासना उसे पकड़ती है। जानते हुए कि मोक्ष है, बुद्ध चुप रहे। नहीं कि उन्हें कहना नहीं आता था। ऐसा भी नहीं कि बेज़ुबां थे। चुप रहे, क्योंकि तुमसे कुछ भी कहो, तुम तत्क्षण उसे अपनी वासना का विषय बना लेते हो। अगर मैं ईश्वर के तुमसे गुणगान करूँ, तुम्हारा मन कहता है तो फिर ईश्वर को पाना है; चाहे कुछ भी हो जाए ईश्वर को पाके रहेंगे। तुम पूछने आ जाते हो, क्या करें जिससे ईश्वर मिल जाए ?

ईश्वर भी तुम्हारी वासना बन जाता है। जबकि लाख तुम्हें समझाया जा रहा है कि जब तुम निर्वासना हो जाओगे तब ईश्वर अपने आप आ जाता है, तुम्हें उसे खोजने जाना नहीं पड़ता। मोक्ष का अर्थ है, जब तुममें कोई अभिलाषा न रहेगी। और तुम मोक्ष की ही अभिलाषा करने लगते हो। तो तुमने तो जड़ ही काट दी। बुद्ध कहते हैं जो निरभिलाष हो।

बाकी अभी है तर्के-तमन्ना की आरजू
क्योंकर कहूँ कि कोई तमन्ना नहीं मुझे

अमीर के ये शब्द हैं। बड़े महत्त्वपूर्ण। 'बाकी अभी है तर्के-तमन्ना की आरजू' — अभी इच्छा एक है बाकी, कि सब इच्छाएं छूट जाएँ। 'तर्के-तमन्ना की आरज़ू' — सब तमन्नाएँ मिट जाएँ, यह एक तमन्ना अभी बाकी है। 'क्योंकर कहूँ कि कोई तमन्ना नहीं मुझे' — इसलिए अभी कैसे कह सकता हूँ कि मेरी अब कोई वासना नहीं। एक वासना अभी मेरी शेष है। अमीर ने जरूर बुद्ध को समझके यह कहा होगा।

इतनी भी वासना न रह जाए, तो ही कोई निर्वासना को उपलब्ध होता है। कोई भी वासना न रह जाए। परमात्मा की, मोक्ष की, निर्वाण की, आत्मा की, ज्ञान की, कोई वासना न रह जाए। क्यों ? क्योंकि वासना का स्वभाव ही तुम्हें जीवन से वंचित करवाना है।

वासना का अर्थ है, चुकाना — जो यहाँ था, उससे हटा देना। वासना का अर्थ है, तुम्हें गैर-मौजूद करना, तुम्हें कहीं और ले जाना। और जीवन यहाँ था। जब

जीवन तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा था, तब वासना तुम्हें किन्हीं और ध्वनियों को सुनने को उत्प्रेरित करती है।

वो जो द्वार पर दस्तक पड़ती है वो तुम चूक जाते हो। वासना के शोरगुल में जो धीमी सी आवाज प्रतिपल तुम्हारे भीतर से उठ रही है : तुम्हारे परमात्मा की आवाज — तुम्हारी आवाज — वो वासना के शोरगुल में सुनायी नहीं पड़ती। कभी वासना बाजार की होती है — संसार की; कभी परमात्मा की — निर्वाण की; कभी धन की; कभी धर्म की; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

धर्म की वासना उतनी ही वासना है जितनी धन की। मोक्ष की कामना उतनी ही कामना है जितनी कोई और कामना। कामना कामना में कोई भी भेद नहीं है। क्योंकि कामना का मूल स्वभाव जो मौजूद है उससे तुम्हें चुकाना है। और निर्वासना का अर्थ है, जो मौजूद है उसमें होना। जो अभी है, जो यहां है, उसके साथ तालमेल बिठा लेना, उसके साथ स्वरबद्ध हो जाना, छंदबद्ध हो जाना।

इस क्षण के पार तुम न जाओ, परमात्मा तुम्हें मिल जाएगा। तुम उसकी फिकिर छोड़ो, वह मिला ही हुआ है। तुम इस क्षण में डूब जाओ, मोक्ष तुम्हारे घर आ जाएगा। वो सदा से आया ही हुआ था। तुम्हीं अपने घर न थे।

भले ही किसीको थोड़ी सी भी संहिता कंठस्थ न हो, लेकिन धर्म उसके जीवन में हो, होशपूर्ण जीवन हो उसका — जाग्रत [illegible] तो वेद जानने की जरूरत नहीं। क्योंकि तुम स्वयं वेद हो जाते हो। तुम जो बोलोगे, होगा वेद। तुम जो कहोगे, होगा उपनिषद्। उठोगे, पैदा हो जाएँगी भगवद्गीताएं। बैठोगे, कुरान जनम जाएँगे। क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। किन्हीं ऋषियों ने उसका ठेका नहीं लिया है। तुम ऋषि होने की क्षमता लेकर पैदा हुए हो। अगर तुम न हो पाए, तो तुम्हारे अतिरिक्त कोई और जिम्मेवार नहीं।

तुम बीज लेकर आए तो बुद्धत्व का। ठीक भूमि न दो, ठीक अवसर न दो, बीज बीज रह जाए, और फूल न खिल पाएँ, तो किसी और को जिम्मेवार मत ठहराना। तुम्हारे अतिरिक्त न तुम्हारा कोई मित्र है, और न कोई शत्रु। तुम्हारे अतिरिक्त न तुम्हें कोई मिटा सकता है, न कोई बना। तुम्हारे अतिरिक्त न कोई दुख है, न कोई सुख। तुम ही नर्क हो तुम्हारे, तुम्हीं स्वर्ग। ऐसा बोध तुम्हारे भीतर जन्मे तो श्रामण्य का अधिकार मिलता है।

आज इतना ही।

'आज' के गर्भाशय से 'कल' का जन्म

२६ नवंबर १९७५

सत्रहवां प्रश्न : आपने स्त्री के लिए प्रेम और पुरुष के लिए ध्यान का मार्ग बताया। मेरी तकलीफ यह है कि न प्रेम से पूरा हुआ जाती हूं, न ध्यान में गहराई आती है। कृपया बताएं मेरे लिए मार्ग क्या है?
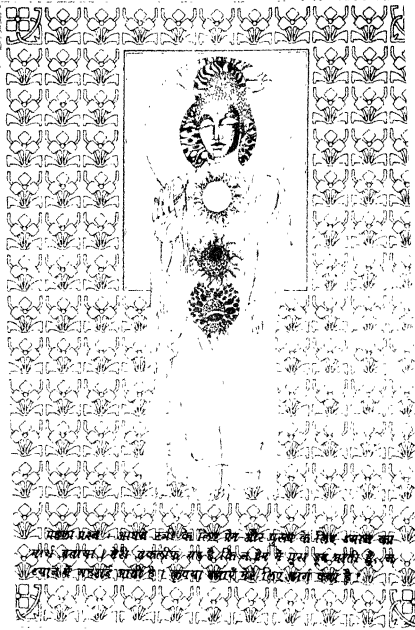
धर्म ज्योति ने पूछा है।

धर्मगुरुओं का डाला हुआ जहर बाधा बन रहा है। उस जहर से जब तक छुटकारा न हो, प्रेम तो असंभव है। क्योंकि प्रेम की सदा से निंदा की गयी है। प्रेम को सदा बंधन कहा गया है। और चूंकि प्रेम की निंदा की गयी है और प्रेम को बंधन कहा गया है, इसलिए स्त्री भी सदा अपमानित की गयी है। जब तक प्रेम स्वीकार न होगा तब तक स्त्री भी सम्मानित नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री का स्वभाव प्रेम है। और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि स्त्रियां जितनी धर्मगुरुओं से प्रभावित होती हैं उतना कोई भी नहीं होता। और उनकी जड़ पर ही वो कुठाराघात किये चले जाते हैं।

लेकिन एक बार तुम्हारे मन में जहर फैल जाए, और ऐसा खयाल आ जाए कि प्रेम बंधन है, तो तुमने पुरुष की भाषा सीख ली। हृदय तुम्हारा स्त्री का है। तब तुम बहुत अड़चन में पड़ो, स्वाभाविक है। पुरुष के लिए सही है यही बात कि प्रेम बंधन है। स्त्री के लिए प्रेम मुक्ति है। और जो पुरुष के लिए जहर है, वो स्त्री के

लिए अमृत है। और स्त्री का तो अब तक कोई धर्म पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ, और स्त्रियों का तो कोई तीर्थंकर नहीं हुआ, और अवतार नही हुआ; इसलिए स्त्री के हृदय की बात को किसीने प्रगट भी नहीं किया।

सारे धर्म पुरुषों के हैं। और स्वभावतः पुरुष ने अपने दृष्टिकोण को रखा है। वो पुरुष के लिए बिलकुल सही है। पुरुष जैसे ही प्रेम में पड़ता है वैसे ही बंधन खड़े हो जाते हैं। क्योंकि पुरुष का अहंकार प्रेम में बंधन देखता है। पूरा डूब तो नहीं पाता -- डूब जाए तो प्रेम मुक्ति हो जाए, तो प्रेम मोक्ष हो जाए -- डूब तो नहीं पाता, मजबूरी में, बेबसी में झुकता है, लेकिन भीतर अहंकार पीड़ा पाता है। और सदा लगता है, यह तो कारागृह हो गया। इससे कैसे छूटूं? स्त्री के लिए प्रेम बंधन नहीं मालूम होता, क्योंकि स्त्री पूरी ही झुक जाती है। समर्पण उसका स्वभाव है। कोई अहंकार पीछे नहीं बचता, तो बँधेगा कौन? जो बंध सकता था वह तो प्रेम में गिर ही गया। पुरुष कभी झुक नहीं पाता, इसीलिए बँधा हुआ मालूम पड़ता है। मिट जाए तो बँधने को ही कोई नहीं बचता, प्रेम बांधेगा क्या? और जब बँधने को कोई नहीं बचता, तो प्रेम मुक्त करता है, प्रेम परम-स्वातंत्र्य हो जाता है, लेकिन समर्पण के बाद।

पुरुष की अड़चन है, संकल्प तो कर सकता है, समर्पण नही कर सकता। स्त्री की अड़चन है, समर्पण तो कर सकती है, संकल्प नही कर सकती। मगर इसको अड़चन बनाने की जरूरत नहीं है। जो जहाँ है वहीं से मार्ग खोजना चाहिए। दूसरे की भाषा मत सीखना, अन्यथा अड़चन होगी।

धर्म ज्योति के साथ यही हुआ है। महात्माओं के सत्संग में रही है। महात्माओं ने पूरे मन को विकृत कर दिया है। उन्होंने जो भी सिखाया है, वो पीछा नही छोड़ रहा है। मेरी बात भी सुन रही है, लेकिन महात्मा बीच में खड़े हैं, वो मेरी बात को भीतर प्रवेश नहीं होने देते। उनका संस्कार पुराना है। और ऐसा भी नहीं है कि एक जन्म का हो -- बहुत जन्मों का हो सकता है। और जब तक ये महात्माओं की भीड़ विदा न होगी तब तक प्रेम तो संभव नही हो पाएगा। और प्रेम भी कहीं चुल्लू-चुल्लू किया जाता है, थोड़ा-थोड़ा किया जाता है? प्रेम तो बाढ़ है। प्रेम तो कोई हिसाब-किताब नही रखता। वहाँ कोई गणित नहीं है। प्रेम तो तुम पूरे डूब जाओ तो ही है, नही तो नही है। लेकिन प्रेम शब्द में ही घबड़ाहट मालूम होती है। सदियों-सदियों के संस्कार हैं।

तो जब मैं तुमसे प्रेम की बात करता हूँ, तब भी तुम समझते हो, ऐसा नहीं है। तब भी बात तुम तक पहुँच जाती है, ऐसा नहीं है। पुरुषों तक न पहुँचे, कोई अड़चन नहीं। क्योंकि ध्यान से उनके लिए सुविधा है। प्रेम से ज्यादा सुविधा है उनके लिए ध्यान के द्वारा। भक्ति पुरुषों को जमती ही नहीं। प्रेम के साथ तालमेल नहीं बैठता।

और कभी अगर अपवादरूप कोई पुरुष भक्त हो गया हो, तो अपवादरूप ही कोई स्त्री ध्यानी हुई है। लेकिन उससे नियम निर्मित नहीं होता।

पुरुष ध्यान से जाएगा। ध्यान है परम संकल्प। ध्यान का अर्थ समझ लो। ध्यान का अर्थ है, अकेले हो जाने की क्षमता। दूसरे पर कोई निर्भरता न रह जाए। दूसरे का ख्याल भी विस्मृत हो जाए। सभी ख्याल दूसरे के हैं। खयाल मात्र पर का है। जब पर का कोई विचार न रह जाए, तो स्व शेष रह जाता है। और उस स्व के शेष रह जाने में स्व भी मिट जाता है; क्योंकि स्व अकेला नहीं रह सकता, वो पर के साथ ही रह सकता है। जिस नदी का एक किनारा खो गया, उसका दूसरा भी खो जाएगा। दोनों किनारे साथ-साथ हैं। अगर सिक्के का एक पहलू खो गया, तो दूसरा पहलू अपने आप नष्ट हो जाएगा। दोनों पहलू साथ-साथ हैं। जिस दिन अंधकार खो जाएगा, उसी दिन प्रकाश भी खो जाएगा। ऐसा मत सोचना कि जिस दिन अंधकार खो जाएगा उस दिन प्रकाश ही प्रकाश बचेगा। इस भूल में मत पड़ना। क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस दिन मौत समाप्त हो जाएगी, उसी दिन जीवन भी समाप्त हो जाएगा। ऐसा मत सोचना कि जब मौत समाप्त हो जाएगी तो जीवन अमर हो जाएगा। इस भूल में पड़ना ही मत। मौत और जीवन एक ही घटना के दो हिस्से हैं — अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे पे निर्भर हैं। तो जब पर बिल्कुल छूट जाता है, तो स्वयं की उस निजता में अंततः स्वयं का होना भी मिट जाता है। शून्य रह जाता है। ध्यान की यही अवस्था है, उसको हमने समाधि कहा हे।

दो शब्द बनाने चाहिए। ध्यान-समाधि और प्रेम-समाधि। समाधि तो दोनों में एक ही है, लेकिन दोनों के मार्ग बड़े अलग हैं। पुरुष को जो समाधि उपलब्ध होती है, जो बुद्ध को उपलब्ध हुई, वह है ध्यान-समाधि। पर को छोड़ा, स्व छूट गया, समाधि उपलब्ध हुई। मीरा को जो समाधि उपलब्ध हुई, वह है प्रेम-समाधि। पर को नहीं छोड़ा, स्वयं को समर्पित किया। इतना समर्पित किया कि स्व न बचा, पर ही बचा। और जब पर अकेला बचा तो पर भी मिट गया; समाधि उपलब्ध हो गयी। जहाँ दो मिट जाते हैं वहाँ समाधि। लेकिन मीरा की समाधि प्रेम से आयी। बुद्ध की समाधि ध्यान से आयी। समाधि तो एक है, लेकिन मार्ग बड़ा अलग-अलग है।

बुद्ध की बात सुन-सुनके प्रेम से आस्था उठ गयी। पुरुष की उठ जाए, कोई हर्जा नहीं, लाभपूर्ण है। लेकिन स्त्री की उठ जाए तो खतरा है। क्योंकि पुरुष के स्वभाव के तो अनुकूल है ध्यान का मार्ग, स्त्री के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। और स्त्री-पुरुष विपरीत हैं। इसीलिए तो उनमें इतना आकर्षण है। वो ऋण और धन विद्युत

की तरह हैं। दिन और रात की तरह हैं। जीवन और मृत्यु की तरह हैं। विपरीत हैं। और इसीलिए तो इतना आकर्षण है। विपरीत में ही आकर्षण होता है। समान में तो विकर्षण हो जाता है। समान से तो ऊब हो जाती है। विपरीत में खोज और जिज्ञासा जारी रहती है।

अच्छा है कि पुरुष और स्त्री विपरीत हैं, अन्यथा संसार में सब रस खो जाए। स्त्री और पुरुष जितने विपरीत हों उतना ही सुखद है। जितना उनके बीच फासला हो, जितनी दोनों के बीच दूरी हो, और दोनों जितने एक दूसरे से भिन्न हों, उतना ही उनके बीच संबंध की गरिमा निर्मित होगी, संबंध के शिखर निर्मित होंगे।

मनुष्य ने अपने अतीत में स्त्री और पुरुष को जितना भिन्न बन सके बनाने की कोशिश की थी। इसलिए प्रेम की बड़ी अनूठी घटनाएँ घटीं। पश्चिम में आधुनिक युग में स्त्री और पुरुष को पास लाने की चेष्टा की गयी है, प्रेम समाप्त हुआ जा रहा है। क्योंकि स्त्री-पुरुष करीब-करीब समान मालूम होने लगे हैं। स्त्री-पुरुष समान होने चाहिए न्याय की दृष्टि में, समान नहीं होने चाहिए स्वभाव की दृष्टि से। बड़े असमान हैं। बड़े भिन्न हैं।

असमान का यह अर्थ नहीं है कि स्त्री पुरुष से नीची है, या पुरुष स्त्री से ऊँचा है। असमान का अर्थ है कि दोनों बड़े भिन्न हैं, जैसे रात और दिन, रोशनी और अँधेरा। इतना ही फासला है। कानून उनको समान माने, लेकिन मनोविज्ञान उन्हें समान नहीं कह सकता। और अगर समान बनाने की चेष्टा की गयी, तो जितने स्त्री-पुरुष समान होते जाएँगे उतना ही स्त्री पुरुष जैसी हो जाएगी, पुरुष स्त्री जैसा हो जाएगा; उन दोनों के बीच का आकर्षण खो जाएगा। उन दोनों के बीच जो एक मधुर तनाव है -- प्रेम भी है और संघर्ष भी है, मधुर तनाव है; लगाव भी है और विरोध भी है, कभी फूल भी खिलते है, कभी काँटे भी चुभ जाते हैं; पास भी आते है, दूर भी हटते हैं; निमंत्रण भी है, अस्वीकार भी है -- उन दोनों के बीच ये जो बड़ा खेल चलता है जीवन का, ये जो सारी लीला है जीवन की, वो मधुर है। वो शुभ है, सुंदर है। और उस सब का आधार यह है कि स्त्री समर्पण करने में कुशल है। स्त्री हार के जीतती है। उसके जीतने का ढंग वही है। वह चरणों में रख देती है अपने को और सिरताज हो जाती है। वह अपने को खो देती है और पुरुष के रोएँ-रोएँ में समा जाती है।

इसीसे पुरुष घबड़ाता है।

क्योंकि पुरुष जानता है, उसका समर्पण खतरनाक है। उसके समर्पण में ही बंधन पैदा हो जाता है। पुरुष अपने को बँधा अनुभव करता है। क्योंकि उसका अहंकार है। वो स्वाभाविक है कि वो अपने को बचाए, लड़े, संघर्ष करे। उसकी यात्रा अलग

है। पुरुष बहिर्मुखी है, स्त्री अंतर्मुखी है। पुरुष और स्त्री जब एक दूसरे को प्रेम भी कर रहे हों, तो पुरुष आँख खोलके प्रेम करता है, स्त्री आँख बंद करके।

जब भी स्त्री भाव में होती है, आँख बंद कर लेती है। क्योंकि जब भी भाव में होती है तब वह अंतर्मुखी हो जाती है। वह प्रेम भी जिस व्यक्ति को करती है, उसको भी जब ठीक से देखना चाहती है तो आँख बंद कर लेती है। यह भी कोई देखने का ढंग हुआ! मगर यही स्त्री का ढंग है। क्योंकि ऐसे आँख बंद करके ही वह उस चिन्मय को देख पाती है; आँख खोलके तो मृण्मय दिखायी पड़ता है, और स्त्री जब भी किसीको प्रेम करती है तो परमात्मा से कम नहीं मानती। आँख बंद करके परमात्मा दिखायी पड़ता है। आँख खोलो तो मिट्टी की देह है।

लेकिन पुरुष का रस भीतर में कम है, बाहर में ज्यादा है। पुरुष आँख खोल के प्रेम करना चाहता है। प्रेम के क्षण में भी चाहता है कि रोशनी हो, ताकि वह स्त्री की देह को ठीक से देख सके। तो पुरुषों ने तो स्त्रियों की नग्न मूर्तियाँ बहुत बनायी हैं, स्त्रियों ने पुरुषों की एक भी नग्न मति नहीं बनायी। और पुरुषों ने तो स्त्रियों के नाम पर कितना अश्लील पोर्नोग्रैफी और साहित्य, और चित्र, और पेंटिंग्स की हैं। स्त्रियों ने एक भी नहीं की। क्योंकि पुरुष का रस देह में है, रूप में है, रंग में है, बहिर में है।

स्त्रियों को तो भरोसा ही नहीं आता कि शरीर के चित्रण में इतनी उत्सुकता क्यों है? क्योंकि स्त्री को तो शरीर के पार के देखने की सुविधा है। उसके पास एक झरोखा है, जहाँ से वह देह को भूल जाती है और परमात्मा को देख लेती है। पुरुषों ने नहीं समझाया है स्त्री को कि पति परमात्मा है। ये स्त्रियों की प्रतीति है; कि जिसको भी उन्होंने प्रेम किया उसमें परमात्मा देखा। जहाँ प्रेम की छाया पड़ी, वहीं परमात्मा प्रगट होता है। जहाँ प्रेम की भनक आयी, वहीं परमात्मा के आने का प्रारंभ हो जाता है। प्रेम की पगध्वनि में परमात्मा की पगध्वनि अपने आप सुनायी पड़ने लगती है।

लेकिन पुरुष बँधा अनुभव करता है। उसकी यात्रा बहिर्यात्रा है। उसे चाँद-तारों पे जाना है। उसे दूर को जीतना है। उसे संसार को विजय करना है। ऐसे अगर घर में बँध जाएगा तो फिर ये दूर की यात्रा का क्या होगा? बाजार में कौन जीतेगा? दिल्ली में कौन विराजमान होगा? कहाँ जाएगा? कौन भागेगा? इस आपाधापी को कौन करेगा? तो जैसे ही जितना ही महत्त्वाकांक्षी पुरुष हो उतना ही स्त्री से बचेगा?

महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ हो, स्त्री से बचेगा। क्योंकि अगर स्त्री ने बाँध लिया, तो स्त्री काफी संसार है। फिर उसके पार संसार बचता नहीं। वैज्ञानिक महत्त्वा-

कांक्षी हो, अन्वेषण में लगा हो, स्त्री से बचेगा। ध्यान करनेवाला ध्यानी हो, स्त्री से बचेगा। क्योंकि स्त्री इस पूरी तरह घेर लेती है कि कुछ और करने की सुविधा तक नहीं रह जाती। ध्यान न करने देगी, शास्त्र न पढ़ने देगी, चुनाव न लड़ने देगी, धन न कमाने देगी। क्योंकि चारों तरफ से घेर लेगी। स्त्री तुम्हारे चारों तरफ प्रेम का एक घर बनाती है। उसमें तुम्हें लगता है कि तुम घुटे-घुटे अनुभव करते हो, क्योंकि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा मरती है।

वही पुरुष स्त्री के प्रेम के लिए राजी हो सकता है जो अहंकार को छोड़ने को राजी हो। ये पुरुष के लिए बहुत कठिन है। इसका एक ही उपाय है उसके लिए — ध्यान; कि वह गहरे ध्यान में उतरे। तो मेरे देखने में ऐसा है कि अगर पुरुष गहरे ध्यान में उतर जाए, तो ही प्रेम के योग्य हो पाता है। और स्त्री अगर प्रेम में उतर जाए, तो ही ध्यान के योग्य हो पाती है।

स्त्री सीधे ध्यान न कर सकेगी। तुम उसे लाख समझाओ कि चुप होके शांत बैठ जाओ, वह कहेगी लेकिन किसके लिए? किसको याद करे, किसका स्मरण करे? किसकी प्रतिमा सजाएँ? किसका रूप देखें भीतर? मंदिरों में जो प्रतिमाएँ हैं वो सभी स्त्रियो ने रखी है। परमात्मा के नाम के जितने गीत हैं वो सब स्त्रियों ने गाये हैं। भजन है, कीर्तन है, उसका अनूठा रस स्त्रियों ने लिया है। और पुरुष और स्त्री के बीच बड़ी बेबूझ पहेली है। वे एक दूसरे को समझ नहीं पाते हैं। समझें भी कैसे? तुम जिस स्त्री के साथ जीवन भर रहे हो, या जिस पुरुष के साथ जीवन भर रहे हो, उसको भी समझ नहीं पाते, क्योंकि भाषा अलग है, यात्रा अलग है; दोनों के सोचने का, होने का ढंग अलग है।

जिस दिन दुनिया में ठीक-ठीक समझ आएगी उस दिन स्त्री का मनोविज्ञान अलग होना चाहिए, पुरुष का मनोविज्ञान अलग। उन दोनों के मन अलग हैं। इसलिए सिर्फ मनोविज्ञान कहने से कुछ भी न होगा। मनोविज्ञान से क्या पता चलता है? किसका मनोविज्ञान? स्त्री का या पुरुष का? स्त्री का मन का ढाँचा ही अलग है। पुरुष के मन का ढांचा अलग है।

इसलिए पुरुष महावीर और बुद्ध बन जाता है। महावीर को हमने नाम दिया है — जिन्। जिसने जीत लिया। बुद्ध को हमने नाम दिया बुद्ध। जो जाग गया। लेकिन मीरा से पूछो, जीता? मीरा कहेगी, हारे। कृष्ण को, और जीतने की बात ही बेहूदी है! परमात्मा को जीतने की बात ही बेहूदी है! जीतने की भाषा में ही आक्रमण और हिंसा है।

अब थोड़ा समझो।

महावीर जैसे अहिंसक को भी हमने जिन् कहा है। लेकिन जिन् शब्द में ही हिंसा

है — जीता, विजय। वह भाषा ही क्षत्रिय की है। वह भाषा पुरुष की है। अब महावीर जैसे परम ध्यान को उपलब्ध हुए, ध्यान को उपलब्ध हुए, लेकिन भाषा तो पुरुष की ही रहेगी।

मीरा से पूछो, जीता ? मीरा कहेगी, तुम समझे ही नहीं; प्रेम में कहीं कोई जीतता है ? हारते हैं। मगर हार ही वहाँ जीत है। मीरा से पूछो, जागी ? मीरा कहेगी, जागना वहाँ कहाँ है ? वहाँ तो खोना है; वहाँ तो मिटना है। वहाँ तो बेहोशी ही होश है। अब इसको थोड़ा समझ लेना। मीरा के लिए बेहोश हो जाना होश, और हार जाना जीत जाना है।

महावीर और मीरा को मिला दो, इनके बीच बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। इनके बीच चर्चा न चल सकेगी। इनकी भाषा अलग होगी। जैसे दोनो दो अलग भाषाएँ बोलते हो। एक जरमन बोल रहा हो और एक जापानी, और कहीं कोई तालमेल न बैठता हो। बैठेगा नहीं।

पुरुष के लिए स्त्री पहेली रही है। स्त्री के लिए पुरुष पहेली है। स्त्री सोच ही नहीं पाती कि तुम किसलिए चाँद पर जा रहे हो ? घर काफी नहीं ? वही तो यशोधरा ने बुद्ध से पूछा, जब वो लौटकर आए, कि जो तुमने वहाँ पाया वह यहाँ नहीं मिल सकता था ? ऐसा जंगल भागने की क्या पड़ी थी ? ये घर क्या बुरा था ? अगर शांत ही होना था तो जितनी सुविधा यहाँ थी, इतनी वहाँ जंगल में तो नही थी। तुमने कहा होता, हम तुम्हें बाधा न देते। हम तुम्हें एकांत में छोड़ देते। हम सारी सुविधा कर देते कि तुम्हें जरा भी बाधा न पड़े। लेकिन बुद्ध को अगर यशोधरा ऐसा इंतजाम कर देती कि जरा भी बाधा न पड़े -- यशोधरा अपनी छाया भी न डालती बुद्ध पर — तो भी बुद्ध बँधे-बँधे अनुभव करते; क्योंकि वो अनजाने तार यशोधरा के चारों तरफ फैलते जाते -- और भी ज्यादा फैल जाते। वह छाया की तरह चारों तरफ अपना जाल बुन देती। वो घबड़ा के भाग गये।

जो भी कभी भागा है जंगल की तरफ, प्रेम से घबड़ा के भागा है। और क्या घबड़ाहट है ? कहीं प्रेम बाँध न ले। कहीं प्रेम आसक्ति न बन जाए। कहीं प्रेम राग न हो जाए। स्त्रियों को जंगल की तरफ भागते नहीं देखा गया। क्योंकि स्त्री को समझ में ही नहीं आता, भागना कहाँ है ? डूबना है। डूबना हो सकता है। और स्त्री ने बहुत चिंता नहीं की परमात्मा की जो आकाश में है, उसने तो उसी परमात्मा की चिंता की जो निकट और पास है।

स्त्री को रस नहीं मालूम होता कि चीन में क्या हो रहा है ? उसका रस होता है पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है ? पास। तुम्हें कई दफा लगता भी है— पति को — कि ये भी क्या फिजूल की बातों में पड़ी है कि पड़ोसी की पत्नी किसीके

साथ चली गयी, कि पड़ोसी के घर बच्चा पैदा हुआ, कि पड़ोसी नई कार खरीद लाया — ये भी क्या फिजूल की बातें हैं ? वियतनाम है, इजराइल है, बड़े सवाल दुनिया के सामने हैं। तू नासमझ ! पड़ोसी के घर बच्चा हुआ, यह भी कोई बात है ? लाखों लोग मर रहे है युद्ध में। इस एक बच्चे के होने से क्या होता है ?

स्त्री को समझ में नहीं आता कि पड़ोसी के घर बच्चा पैदा होता है, इतनी बड़ी घटना घटती है — एक नया जीवन अवतीर्ण हुआ; कि पड़ोसी की पत्नी किसीके साथ चली गयी — एक नये प्रेम का आविर्भाव हुआ; तुम्हें इसका कुछ रस ही नही है ! इजराइल से लेना-देना क्या है ? इजराइल से फासला इतना है कि स्त्री के मन पर उसका कोई अंकुरण नहीं होता, कोई छाप नहीं पड़ती। दूरी इतनी है।

स्त्री परमात्मा जो बहुत दूर है आकाश में उसमें उत्सुक नहीं है। परमात्मा जो बहुत पास है, बेटे में है, पति में है, परिवार में है, पड़ोसी में है, उसमें उसका रस है। क्योंकि दूर जाने में उसकी आकांक्षा नही है। यही डूब जाना है।

और जिसे डूबना है, वो कही भी डूब सकता है। लेकिन जिसे जीतना है, वह हर कहीं नही जीत सकता। जीतने के लिए तो इंतजाम करना पड़ेगा। युद्ध का। जीतने के लिए तो संघर्ष की व्यवस्था करनी पडेगी। हारने के लिए थोड़ी' कोई व्यवस्था करनी पड़ती है। जीतने के लिए व्यवस्था करनी पड़ती है, हारना तो कभी भी हो सकता है — निहत्थे। उसके लिए कोई शस्त्रों का थोड़े ही आयोजन करना पड़ेगा। सेनाये थोड़ी' इकट्ठी करनी पड़ेंगी। हारना तो अभी हो सकता है, जैसे हो तुम वैसे हो। लेकिन जीतने के लिए तो बड़ा उपाय करना पड़ता है। फिर भी पक्का नही है कि जीत पाओगे।

तो महावीर के जीवन में बड़ा आयोजन है। वो विजय की यात्रा है। मीरा के जीवन में कोई भी आयोजन नहीं है। वह जहाँ थी वहीं नाचने लगी। वह जहाँ थी वहीं दीवानी हो गयी। महावीर को होश साधना है, मीरा को बेहोशी साधनी है।

तो यह धर्म ज्योति की तकलीफ मैं समझता हूँ। साधुओं ने बिगाड़ा। और वो महात्मा अभी भी इसके चित्त पर भारी हैं। यह मेरे पास भी आ गयी है तो भी आ नहीं पायी। संस्कार इसके वही जड़ता के हैं। इसलिए प्रेम मुश्किल है। और ध्यान तो स्त्री को मुश्किल होता ही है। जब प्रेम ही न हो पाएगा, तो ध्यान तो हो ही न सकेगा। प्रेम से ही ध्यान की तरफ जाने का रास्ता है। बेहोशी से ही होश सधेगा; हार से ही विजय मिलेगी। तो जितने जल्दी हो सके उतनी जल्दी जो जहर के संस्कार दिये गये हैं उनको छोड़ दो। उनको हटाओ। इन संस्कारों के कारण तुम ठीक से स्त्री ही न हो पाओगी। तुम्हारा हृदय प्रमुदित न होगा, तुम खिल न पाओगी। ध्यान रखो, अगर प्रेम ही न सधा, तो ध्यान तो कैसे सधेगा ? प्रेम

को ही साध लो, तो ध्यान भी सध जाएगा। प्रेम की ही अन्यतम गहराई में ध्यान का फूल खिलेगा। वही स्त्री के लिए मार्ग है। हाँ, कुछ कभी-कभी अपवाद-स्वरूप कुछ स्त्रियों ने ध्यान भी साधा है। लेकिन अपवाद को मैं नियम नहीं बनाता।

कश्मीर में एक स्त्री हुई लल्लाह। उसकी महावीर से बैठ जाती बात। वह महावीर जैसी ही नग्न रही। कोई दूसरी स्त्री पूरी पृथ्वी पे नहीं रही। जैसे महावीर नग्न रहे ऐसे ही लल्लाह भी नग्न रही। अकेली ही स्त्री है वो पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में जो जंगल की तरफ भागी और नग्न हो गयी। कश्मीर में उसका बड़ा आदर है। कश्मीरी कहते हैं, हम दो ही शब्द जानते हैं — अल्लाह और लल्लाह। मगर लल्लाह स्त्रियों की प्रतिनिधि नहीं है। वो अपवाद है।

ऐसे ही चैतन्य हुए पुरुषों में। वो अपवाद है। वो पुरुषों के प्रतीक नहीं हैं। प्रतीक तो महावीर ही है। चैतन्य नाचे स्त्रियों जैसे। भक्ति विभोर! ठीक हैं। लेकिन उनसे नियम नहीं बनते। और हमेशा ध्यान रखना, नियम से चलने की कोशिश करना। और जो अपवाद है वो पूछने न आएगा। जो नियम है वही पूछने आया है। अपवाद जो है, वो तो पूछता ही नहीं।

अपवाद अगर धर्म ज्योति होती तो ध्यान सधने लगता। अपवाद नहीं है। है तो स्त्री। गलत बातों के प्रभाव में पड़ गयी। पुरुषों का जहर सिर पर हावी हो गया है। अब वह बाधा डाल रहा है, वह प्रेम नहीं करने देता। और जितना यह ध्यान करने की कोशिश करती है वह झूठी है। ये कोशिश सिर्फ प्रेम से बचने के लिए करती है। इसकी जो ध्यान की कोशिश चल रही है वो सिर्फ इसीलिए ताकि प्रेम में न उलझना पड़े। और प्रेम तो पाप है। प्रेम तो झंझट है। उससे बचना है। तो ध्यान करना है। और मैं तुमसे कह रहा हूँ कि प्रेम से ही ध्यान होगा। और तुम प्रेम से बचने को ध्यान करने चलोगी, कठिनाई हो जाएगी। अधर में अटक जाओगी। त्रिशंकु की दशा हो जाएगी।

और देर नहीं लगती, अगर समझ में बात आ जाए तो एक क्षण में छोड़ा जा सकता है सब कचरा। क्योंकि कचरा ही है, वह कभी स्वभाव नहीं बनता। भीतर तो स्वच्छ स्त्री मौजूद है। महात्मा उसे बिगाड़ नहीं सकते। महात्माओं की बातचीत ऊपर-ऊपर के पत्ते हैं। नीचे तो धारा बह रही है स्त्रैण स्वभाव की। जरा पत्तों को हटा दो और भीतर की नदी प्रगट हो जाएगी। लाख पत्ते दबा लें नदी को ... यहाँ पूना की नदी बिलकुल दब जाती है पत्तों में, फिर दिखायी ही नहीं पड़ती, लेकिन तो भी भीतर है। पत्ते लाख दबा दें, तो भी जरा सा हटाओ और नदी प्रगट हो जाती है।

मैंने पूछा था कि है मंजिले मकसूद कहाँ

खिज्र ने राह बतायी मुझे मयखाने की

मैंने पूछा था कि जीवन का लक्ष्य—मंजिले मकसूद—कहाँ है? और मेरे गुरु ने मुझे राह बतायी मयखाने की। उसने कहा बेहोशी में, प्रेम में।

मैंने पूछा था कि है मजिले मकसूद कहाँ

खिज्र ने राह बतायी मुझे मयखाने की

स्त्री के लिए वही राह है—मयखाने की, बेहोशी की, खोने की; लीन हो जाने की, तल्लीन हो जाने की; अपने को इस तरह मिटा देने की कि भीतर कोई बचे ही न। जिससे प्रेम किया है वही बच रहे। प्रेमी बचे, प्रेयसी खो जाए; परमात्मा बचे, भक्त खो जाए। और तब अचानक भगवान भी खो जाता है। जब भक्त ही खो गया, तो भगवान कहाँ रहेगा? भक्त की आँखों में ही भगवान है। भक्त के होने में ही भगवान है। जब भक्त ही खो गया तो भगवान कहाँ रह जाएगा? भक्त भी खो जाता है, भगवान भी खो जाता है, तब जो रह जाता है, वही है।

दूसरा प्रश्न : बुद्ध की मनोचिकित्सा और आज की पश्चिमी मनोचिकित्सा में क्या भेद है? आज का मनोविज्ञान क्या कभी धर्म की खोज में पहुँच पाएगा?

बड़ा भेद है। और बुनियादी भेद है।

पश्चिम का मनोविज्ञान—कहें आज का मनोविज्ञान, क्योंकि पश्चिम का जो है वो आज का है, इस सदी का है, आधुनिक है—आधुनिक मनोविज्ञान मन की दृष्टि से जो रुग्ण लोग हैं उनकी चिकित्सा करता है। जो सामान्य नहीं हैं, अस्वस्थ हैं, उनकी चिकित्सा करता है। बुद्ध का मनोविज्ञान उनकी चिकित्सा करता है जो सामान्य हैं और स्वस्थ हैं।

कोई आदमी पागल हो गया, उसकी चिकित्सा करता है आधुनिक मनोविज्ञान। कोई आदमी जब तक पागल न हो जाए तब तक आधुनिक मनोविज्ञान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। वो बीमार को ठीक करने का उपाय है। लेकिन बुद्ध के पास वे लोग जाते हैं जो पागल नहीं हैं, वरन् अगर हम ठीक से समझें तो होश में भर गये हैं और अब पागल नहीं रहना चाहते, पागल नहीं होना चाहते। सामान्य हैं, स्वस्थ हैं। साधारण लोग भी उनकी दृष्टि से ज्यादा पागल हैं। जिनको जीवन का होश आ गया है, जिन्होंने जीवन की समझ पा ली है, अब वे बुद्ध से कहते हैं, अकेले स्वस्थ होने से क्या होगा, सत्य भी चाहिए। स्वस्थ होना काफी नहीं है। सत्य के बिना स्वास्थ्य का भी क्या करेंगे? तो स्वस्थ को और परम स्वास्थ्य की तरफ ले जाने की व्यवस्था है।

अगर तुम डाँवाडोल हो गये हो सामान्य जीवन में, ठीक से दूकान नहीं कर पाते,

ठीक से दफ्तर नहीं जा पाते, स्मृति कमजोर हो जाती है, चूक जाते हो, इस तरह की बातें अगर तुम्हारे जीवन में हैं, तो आधुनिक मनोविज्ञान सहयोगी है। लेकिन सब ठीक चल रहा है, कोई गड़बड़ नहीं है : और जब सब ठीक चलता है और कोई गड़बड नहीं मालूम होती, तभी अचानक तुम्हें पता चलता है, ये सब भी ठीक चलता रहा तो मौत में समाप्त हो जाएगा। ये सब ठीक भी चलता रहा तो जाऊँगा कहाँ, पहुँचूंगा कहाँ ? ये सब ठीक भी है तो भी मौत आ रही है। ये सब ठीक भी है तो भी मैं मरा जा रहा हूँ, मिटा जा रहा हूँ। ये सब ठीक भी है, तो भी व्यर्थ और असार है।

जिस दिन तुम्हें सब ठीक होते हुए भी असार का बोध होता है, उस दिन तुम बुद्धपुरुषों के पास जाते हो पूछने, कि ऐसे सब ठीक है — धन है, पत्नी है, बच्चा है, मकान है, सब ठीक है — कहीं कोई अड़चन नहीं है, सुविधा से जी रहा हूँ, और सुविधा से ही मर भी जाऊँगा, लेकिन क्या सुविधा से जीना और सुविधा से मर जाना ही मंजिले मकसूद है ? क्या यही लक्ष्य है जीवन का ? इतना काफी है क्या कि सुविधा से जी लूँ और सुविधा से मर जाऊँ ? सुविधा काफी है ? तब बुद्ध के मनोविज्ञान की शुरुआत होती है। जिसको यह दिखायी पड़ने लगा — सुविधा सार नहीं है, सामान्य हो जाना कुछ भी मूल्य नहीं रखता, स्वस्थ हो जाने में भी कुछ नही है जब तक सत्य न मिल जाए।

जीसस के जीवन में उल्लेख है कि वे एक गाँव में आए और उन्होंने एक आदमी को शराब पिये रास्ते के किनारे नाली में पड़े गालियाँ बकते देखा। तो वे उसके पास आए, करुणा से उसे हिलाया और उठाया, और कहा कि तू अपना जीवन शराब पी-पीके क्यो बर्बाद कर रहा है ? नाली में पड़ा है। उस आदमी ने आँखें खोलीं, जीसस को देखकर उसे होश आया, उसने कहा कि मेरे प्रभु ! मैं तो रुग्ण था, खाट भी नहीं छोड़ सकता था, तुम्हींने छूके मुझे ठीक किया था। अब मैं ठीक हो गया, अब इस स्वास्थ्य का क्या करूँ ? मुझे तो बस शराब पीने के सिवाय कुछ सूझता नहीं। मैंने तो कभी पी भी न थी। मैं तो खाट पे पड़ा था, शराबघर तक भी नहीं आ सकता था। तुम्हारी ही कृपा से !

जीसस सोचने लगे कि मेरी कृपा का ये परिणाम हुआ है। वो उदास आगे बढ़े।

उन्होंने एक आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते देखा। उसे पकड़ा और कहा कि आँखें इसलिए नहीं परमात्मा ने दी हैं। ये क्यूँ वासना के पीछे भागा जा रहा है ? किस पागलपन में दौड़ रहा है ? उस आदमी ने गौर से रुकके देखा, उस आदमी ने कहा, मेरे प्रभु — वह पैर पे गिर पड़ा — मैं तो अंधा था, तुमने ही छूके मेरी आँखें ठीक की थीं। अब इन आँखों का मैं क्या करूँ ? मैं तो किसी वेश्या

के पीछे न भागा था। मुझे तो रूप का पता ही न था, मैं तो जन्मांध था। तुम्हारी ही कृपा है कि तुमने आँखें दीं। अब इन आँखों का क्या करूँ?

जीसस बहुत उदास हो गये। और वो गाँव के बाहर निकल आए, और बड़े चिंतन में पड़ गये कि मेरी कृपा के ये परिणाम!

उन्होंने एक आदमी को फाँसी लगाते देखा अपने को। रस्सी बाँध रहा था वृक्ष से। वह भागे गये और कहा मेरे भाई, रुक, ये तू क्या कर रहा है? उसने कहा अब मत रोको, बहुत हो गया। मैं मर गया था, तुम्हींने मुझे जिंदा किया था। अब जिंदगी का क्या करूँ? ये तुम्हारी ही कृपा का कष्ट मैं भोग रहा हूँ। अब बहुत हो गया, अब मत रोकना और मर जाऊँ तो मुझे जिलाना मत। तुम कहाँ मे आ गये और! मैं किसी तरह तो इंतजाम करके अपना मरने की व्यवस्था कर रहा हूँ। पहले भी मर चुका था।

जिसको तुम स्वास्थ्य कहते हो उसका परिणाम क्या है? गवाँओगे उसे कहीं जिंदगी के रास्ते पर। किसी नाली में पड़ोगे। जिसे तुम आँखों की ज्योति कहते हो, उसका करोगे क्या? कहीं रूप में भरमाओगे। और जिसे तुम जीवन कहते हो, उसका भी क्या उपयोग है सिवाय आत्महत्या के? कोई धीरे-धीरे करता है, कोई जल्दी करता है। कोई एक ही छलाँग मे कर लेता है, कोई आत्महत्या करने में सत्तर साल लगाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कुछ यह पता नहीं चलता कि तुममें और उस आत्महत्या करनेवाले आदमी में कोई फर्क है। वह जरा हिम्मतवर रहा होगा, एक झटके में करना चाहता था; तुम कमजोर हो, धीरे-धीरे करते हो। रोज-रोज मरते हो। तुम कर क्या रहे हो यहाँ पृथ्वी पर, सिवाय मरने के?

बुद्ध का मनोविज्ञान वहाँ से शुरू होता है जहाँ तुम्हारे पास सब है, और प्रतीति होती है कि कुछ भी नहीं है। आज का मनोविज्ञान दीन और रुग्ण के लिए है। बुद्ध का मनोविज्ञान सम्राट और समर्थ के लिए है। जिसके पास सब है और अनुभव में आया, कुछ भी नहीं है, हाथ खाली है। ऐसे हाथ भरे हैं हीरे-जवाहरातों से, मगर हीरे-जवाहरात व्यर्थ हैं। जिसको भरी जिंदगी के बीच जिंदगी उजाड़ मालूम पड़ी, स्वास्थ्य के बीच सिवाय रोगों के घर के और कुछ भी न मालूम पड़ा और जिंदगी केवल मौत की तरफ यात्रा मालूम पड़ी, वो बुद्ध के पास जाता है।

बुद्ध का मनोविज्ञान परम जीवन का मनोविज्ञान है। उस जीवन का जिसका फिर कोई अंत नहीं। शाश्वत का, सनातन का। एस धम्मो सनंतनो। वो उस धर्म और नियम की बात करते हैं जिससे सनातन उपलब्ध हो जाए, शाश्वत उपलब्ध हो जाए।

पश्चिम का मनोविज्ञान धीरे-धीरे बुद्ध के मनोविज्ञान के करीब सरक रहा है।

सरकना ही पड़ेगा। देखो, पश्चिम के चिकित्साशास्त्र का नाम है—'मेडिकल साइंस'। उसका मतलब होता है—औषधि-विज्ञान। पूरब में हमने जो औषधि-विज्ञान बनाया, उसको नाम दिया है—आयुर्वेद। औषधि का नाम नहीं दिया—आयु का विज्ञान। और विज्ञान भी नहीं वेद—विधायक। औषधि तो नकारात्मक है। बीमारी हो तो औषधि का उपयोग है। बीमारी न भी हो तो भी आयुर्वेद का उपयोग है। क्योंकि वह केवल जीवन का विज्ञान है। वह सिर्फ बीमारी की फिकिर नहीं करता कि बीमारी हो तो औषधि देके मिटा दो। बीमारी न भी हो, तो जीवन को कैसे गुण-नफल करो, जीवन को कैसे बढ़ाओ!

पूरब और पश्चिम की दृष्टि में ये फर्क है। पश्चिम फिक्र करता है काँटा निकाल लेने की। पूरब फिकिर करता है फूल को भी रख देने की। पश्चिम फिक्र करता है दुख निकाल लो, पूरब फिक्र करता है आनंद को जन्माओ। दुख को निकाल लेना काफी नही है। दुख भी न हो जीवन में तो भी जरूरी थोड़ी' है कि आनंद हो। कितने लोग हैं जिनके जीवन में दुख नहीं है; लेकिन इससे क्या आनंद होता है? बल्कि सच्चाई यह है कि जिनके जीवन में दुख नहीं है उनको ही पता चलता है कि जीवन बिलकुल व्यर्थ है। जिनके जीवन में दुख है उनको तो अभी आशा लगी रहती है कि कुछ उपाय करेंगे, दुख मिटाएँगे, कल सब ठीक हो जाएगा। जिनके जीवन में दुख नहीं रहा, वे एकदम चौंक के पूछते हैं, अब क्या करें? दुख भी नहीं रहा— जिसको मिटाते वह भी नहीं रहा— मिटाने की दौड़ भी समाप्त हो गयी, कोई कष्ट नहीं है; लेकिन आनंद भी नहीं है। उनका जीवन बड़ी उदासी से, बड़ी ऊब से भर जाता है। जीवन राख-राख हो जाता है। उसमें से सारी आशा और आनंद का अंगार बुझ जाता है। तुम चकित होओगे देखकर कि भिखारी के कदमों में भी तुम्हें गति मालूम होती है — हो सकती है — क्योंकि उसको कहीं पहुँचना है, कुछ दुख मिटाना है, कुछ तकलीफ ठीक करनी है; सम्राट के पैर बिल्कुल ही बोझिल हो जाते हैं। न कहीं पहुँचने को, न कुछ पाने को; जो पहुँचना था पहुँच चुके, जो पाना था पा लिया, अब? अब एक इतना बड़ा प्रश्न बनके खड़ा हो जाता है। अब सिर्फ घसिटते है। अब सिर्फ मौत की राह देख रहे हैं कि कब आए, कब छुटकारा दिला दे।

दुख का न हो जाना आनंद नही है। दुख का न हो जाना आनंद के होने के लिए जरूरी शर्त हो सकती है, आवश्यक हो सकता है, पर्याप्त नही है।

तो पश्चिम का मनोविज्ञान भी धीरे-धीरे सरक रहा है। फ्रॉयड ने जहाँ मनोविज्ञान को छोड़ा था उससे बहुत आगे जा चुका पश्चिम में भी मनोविज्ञान। नये मानवतावादी विचारक पैदा हुए हैं — अब्रहम, मैसलो, और दूसरे, जिन्होंने अब मनो-

विज्ञान को नयी दिशाएँ देनी शुरू की हैं। वो दिशाएँ ये हैं कि अब इस बात की हमें फिक्र नहीं है कि आदमी सिर्फ स्वस्थ हो, स्वस्थ से ज्यादा हो, आनंदित हो। इतना काफी नहीं है कि बीमारी न हो, इतने से क्या होगा? उत्सव हो। तुम चल सको, तुम्हारे पैर स्वस्थ हों, इतना काफी नही है। तुम नाच भी सको। चलना एक बात है। एक आदमी है, पैर ठीक नहीं है, चल नहीं सकता; पक्षाघात है, लकवा लग गया है, लकवा मिटाना जरूरी है। लकवा मिट जाए तो चल सकेगा, लकवा मिट जाए तो नाच भी सकेगा, लेकिन लकवा मिट जाने से कोई नाचने नहीं लगता है। लकवा मिट जाना नाचने के लिए जरूरी शर्त है, काफी नहीं है। कितने लोग हैं जिनको लकवा नही है, लेकिन वो नाचते दिखायी नहीं पड़ते। नाचने के लिए भीतर कुछ संपदा का अनुभव चाहिए। नाचने के लिए भीतर कोई किरण उतरे, गीत उतरे, कोई धुन उतरे, जीवन को कोई सुराग मिले रहस्य का, झलक मिले परमात्मा की, तो कोई नाच सकता है।

धीरे-धीरे पश्चिम का मनोविज्ञान सरक रहा है। सरकना ही पड़ेगा। क्योंकि बीमार तो बहुत थोड़े लोग हैं। बहुत लोग स्वस्थ हैं, और फिर भी उनके जीवन में कोई आनंद नही है, उनकी भी चिंता करनी पड़ेगी। लँगड़े-लूलों को ही ठीक नहीं करना है, नही तो काम बड़ा आसान था। जो लँगड़े-लूले नही हैं, उनको नाच भी देना है। और काम बड़ा कठिन है।

लेकिन, जब पहला कदम उठ जाए तो दूसरा कदम भी उठना शुरू हो जाता है। पहला कदम है, कोई आदमी नया बगीचा लगाता है तो घास-पात को उखाड़ता है; व्यर्थ के पौधे, झाड़ी-झखाड़ को अलग करता है, जमीन खोदके बदलता है, जड़ें निकालके फेंकता है। यह जरूरी है। लेकिन बस इतने पर ही रुक जाए तो फूल नही आ जाते। फिर बीज बोने पड़ते हैं, फिर पानी सींचना पड़ता है, फिर रखवाली करनी पड़ती है। फिर हजार बाधाएँ है, उनसे लड़ना पड़ता है। तो एक आदमी को जीवन में सुविधा मिल जाए, स्वास्थ्य मिल जाए, रहने का अच्छा मकान मिल जाए; रोटी, रोजी, मकान का इतजाम हो जाए; इतने से तो केवल बगीचे की तैयारी हुई थी। अभी बीज नहीं बोए गये थे। इतने भर से जो राजी हो गया वह नासमझ है। वो असार से राजी हो गया। उसने नकार को सब समझ लिया। वह औषधि से राजी हो गया। उतना काफी नही है।

चिकित्साशास्त्र का जिनका गहरा अनुभव है वे कहते हैं कि कई बार दो मरीज एक ही बीमारी के मरीज होते हैं, एक ही अवस्था के होते हैं, और एक पर दवा काम कर जाती है और दूसरे पर काम नहीं करती। तो इसका बड़ा चिंतन चलता है कि ऐसा क्यों होता है? खोज-बीन से पाया गया कि जिस आदमी पे दवा काम कर जाती

है वह आदमी जीना चाहता है, जीने की आकांक्षा है, जीवेषणा है, औषधि काम कर जाती है। वो जो दूसरा आदमी है जिसपे औषधि काम नहीं करती — वही बीमारी है, वही अवस्था है — वो जीना नहीं चाहता। वो उदास हो गया है, वो थक गया है, उसने आशा छोड़ दी; फिर औषधि काम नहीं करती। मेरे देखे, जो लोग मन से रुग्ण हैं वे वे ही लोग हैं जिनको जीवन में सुख का कोई सुराग नहीं मिला, और उन्होंने आशा छोड़ दी। वो हताश हो गये हैं। उनको तुम खींच-तान के खड़ा भी कर दो तो भी नचा न सकोगे। खीच-तान के खड़ा किया जा सकता है। धक्का-मुक्की देके चलाया भी जा सकता है। बैसाखियाँ भी दी जा सकती हैं और किसी तरह उनमें गति लायी जा सकती है। लेकिन नाच बैसाखियों से नहीं आता। और न धक्का देके कोई नाच ला सकता है। नाच तो उनके अंतरगृह में उतरे, कोई द्वार खुले, कोई झरोखा खुले, भीतर नयी रोशनी आए, नयी हवा आए, परमात्मा उनके भीतर पुनर्जन्म ले, तभी।

पूरब में हमने आनंद का विज्ञान निर्मित किया है। पश्चिम का विज्ञान केवल दुख से कैसे छुटकारा हो। इसीलिए पश्चिम में दुख से छुटकारा हो भी गया और लोग बड़े बेचैन हो गये है। सुख आता दिखायी नही पड़ता। इसीलिए पश्चिम का मनोविज्ञान एक-एक कदम आगे बढ़ रहा है। और आज नही कल बुद्धों के मनोविज्ञान से उसका संबंध जुड जाएगा।

तीसरा प्रश्न : आप कहते हैं, जीओ अभी और यही। पर स्वयं को देखकर हमें अभी और यही जीने जैसा नहीं लगता। वर्तमान में जीने की बजाय भविष्य की कल्पना में जीना ज्यादा सुखद लगता है। तो क्या करें?

तो जीओ, वैसे ही जीओ। अनुभव बताएगा कि जो सुखद लगता था वह सुखद था नही। प्रश्न से इतना ही पता चलता है कि प्रौढ़ नही हो, कच्चे हो अभी। अभी जीवन ने पकाया नहीं। अभी मिट्टी के कच्चे घड़े हो; वर्षा आएगी, बह जाओगे। अभी जीवन की आग ने पकाया नही। क्योंकि जीवन की आग जिनको भी पका देती है उसको ये साफ हो जाता है। क्या साफ हो जाता है? एक बात ही साफ हो जाती है कि भविष्य में सुख देखने का अर्थ ही यही है कि वर्तमान मे दुख है। इसलिए भविष्य के सपने सुखद मालूम होते है।

थोड़ा सोचो, जो आदमी दिनभर भूखा रहा है, वह रात सपने देखता है भोजन के। लेकिन जिसने भरपेट भोजन किया है, वह भी कहीं रात सपने देखता है भोजन के? देखे तो पागल है। जो तुम्हें मिला है उसके तुम सपने नही देखते। जो तुम्हें नहीं मिला है उसके ही सपने देखते हो। वर्तमान तुम्हारा दुख से भरा है। इसको

भुलाने को, अपने मन को समझाने को -- रिझाने को, राहत के लिए, सांत्वना के लिए तुम अपनी आँखें भविष्य में टटोलते हो। कोई सपना, कल सब ठीक हो जाएगा। उस कल की आशा में, भरोसे में आज के दुख को झेल लेते हो। मंजिल की आशा में रास्ते का कष्ट कष्ट नही मालूम पडता। पहुँचने के ही करीब है, हालाँकि वह कभी आता नही।

आज जिसको तुम आज कह रहे हो यह भी तो कल कल था। इस आज के लिए भी तुमने सपने देखे थे, वो पूरे नहीं हुए। ऐसा ही पिछले कल भी हुआ था, और पिछले कल भी हुआ था। और यही आगे भी होगा। अगर तुम्हारा आज सुखपूर्ण नहीं है, तो दुखपूर्ण आज से सुखपूर्ण कल कैसे निकलेगा? थोड़ा सोचो!

आज कही आकाश से थोड़े ही आया है। तुम्हारे भीतर से आया है। तुम्हारा आज अलग है, मेरा आज अलग है। कैलेंडर के धोखे में मत पडना। कैलेंडर पर तो तुम्हारा भी आज वही नाम रखता है, मेरा आज भी वही नाम रखता है। लेकिन यहाँ तुम जितने लोग बैठे हो इतने ही आज है। पूरी पृथ्वी पर जितने लोग हैं इतने आज है। और अगर तुम पशु-पक्षियों और पौधों को भी गिनो, तो उतनी ही संख्या है। कैलेंडर बिल्कुल झूठ है। उससे ऐसा लगता है, एक ही दिन है सबका। रविवार, तो सभी का रविवार। जरूरी नही है। किसी की जिंदगी में सूरज उगा हो तो रविवार, और किसी की जिंदगी में अँधेरा हो तो कैसा रविवार!

आज कही आकाश से नही उतरता है। समय कही बाहर से नही आता है। समय तुम्हारे भीतर से पैदा होता है। तुम ही आज को जीकर कल को पैदा करोगे। तुम्हारे ही गर्भ में निर्मित होता है कल। कल निर्मित हो रहा है आज।

और इसीलिए मैं कहता हूँ आज और अभी जी लो। और इतने आनंद से जिओ, भरपूर जिओ कि जो तुम्हारे गर्भ में निर्मित हो रहा है वह भी रूपांतरित हो जाए, वह तुम्हारे आनद को पकड़ ले। अगर आज तुम दुख में जी रहे हो, और कल की आशा कर रहे हो सुख की, आशा से पैदा नही होगा कल, कल तो तुमसे पैदा होगा। तुम जैसे जी रहे हो उससे पैदा होगा। तुम्हारे अस्तित्व से पैदा होगा, तुम्हारे सपनों से नही। समझो एक माँ बीमार है और उसके गर्भ में एक बेटा है; और रुग्ण है, और शरीर जराजीर्ण है। बेटा तो इस जराजीर्ण, रुग्ण शरीर से पैदा होगा। माँ चाहे सपने कितने ही देखती हो कि बेटा बड़ा स्वस्थ होगा, महावीर जैसा स्वस्थ होगा, इससे कुछ हल नहीं होने वाला। इस सपने से बेटा पैदा नही होने वाला। बेटा तो सचाई से पैदा होगा। तुम्हारा कल तुम्हारे सपने से पैदा नही होगा, तुम्हारे आज की असलियत से पैदा होगा -- हकीकत से पैदा होगा।

तुम आज क्या हो। अगर तुम नाच रहे हो, तो तुमने आनेवाले कल के लिए नाच

दे दिया। अगर तुम प्रमुदित हो, प्रफुल्लित हो, तो कल का फूल खिलने ही लगा। क्योंकि जिस फूल को कल खिलना है, उसकी कली आज ही तैयार हो रही है। प्रतिपल तुम अगला पल पैदा कर रहे हो। प्रतिक्षण अगला क्षण तुम्हारे भीतर निर्मित हो रहा है, तैयार हो रहा है। तुम स्रष्टा हो। तुम अपने समय को खुद पैदा करते हो।

इसलिए मैं तो कहता हूँ आज जिओ। लेकिन तुम्हें लगता है वर्तमान जीने जैसा नहीं लगता। अगर वर्तमान जीने जैसा नहीं लगता, तो कल भी तो वर्तमान होकर ही आएगा। फिर वो भी जीने जैसा नहीं लगेगा। परसों भी वर्तमान होकर ही आएगा, वो भी जीने जैसा नहीं लगेगा। तो इसीको तो मैं आत्मघात करना कहता हूँ। तब तो आत्महत्या कर रहे हो, जी नहीं रहे हो।

जीने का कोई और उपाय नहीं है। 'आज' ही है, और 'आज' ही जीना है। जीने जैसा लगे या न लगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जीने का और कोई ढंग है ही नहीं। जीना तो यहीं होगा। कल के भुलावे में मत पड़ो। कल के भुलावों ने बहुतों को डुबाया है।

आज जिओ। ये क्षण खाली न चला जाए। ये क्षण अवसर है। इसे तुम ऐसा ही मत गवाँ देना। कुछ बना लो इसका। कुछ रस ले लो इसमें। कुछ भोग लो इसे। कुछ पहचान लो इसे। इसका स्वाद उतर जाने दो तुम्हारे प्राणों में। ये ऐसा ही न चला जाए। क्योंकि अगर समय ऐसा ही जाता है तो समय को ऐसे ही चले जाने देने की आदत मजबूत होती चली जाती है। फिर धीरे-धीरे समय को गवाँना तुम्हारी प्रकृति हो जाती है। भोगो इसे। चूसो इस क्षण को, निचोड़ लो इसको पूरा, इसका रस जरा भी छूट न जाए। यही परमात्मा के प्रति धन्यवाद है। क्योंकि उसने तुम्हें अवसर दिया, जीवन दिया, और तुमने ऐसे ही गवाँ दिया। परमात्मा तुमसे ये न पूछेगा ...

यहूदियों की किताब है — 'तालमुद'। बड़ी अनूठी किताब है। दुनिया में कोई धर्मशास्त्र वैसा नहीं। तालमुद कहती है कि परमात्मा तुमसे ये न पूछेगा कि तुमने कौन-कौन सी गलतियाँ कीं। गलतियों का वो हिसाब रखता ही नहीं, बड़ा दिल है। परमात्मा तुमसे पूछेगा, तुम्हें इतने सुख के अवसर दिये तुमने भोगे क्यों नहीं? गलतियों की कौन फिकिर रखता है? भूल-चूक का कौन हिसाब रखता है? वो तुमसे पूछेगा, इतने अवसर दिये सुख के, तुमने भोगे क्यों नहीं? तालमुद कहती है, एक ही पाप है जीवन में, और वह है जीवन के अवसरों को बिना भोगे गुजर जाने देना। जब तुम आनंदित हो सकते थे, आनंदित न हुए। जब गीत गा सकते थे, गीत न गाया। सदा कल पर टालते रहे, स्थगित करते रहे।

स्थगित करनेवाला आदमी जिएगा कब ? कैसे जिएगा ? स्थगित करना ही तुम्हार जीवन की शैली हो जाती है। बच्चे थे तब जवानी पर छोड़ा, जवान हो तब बुढ़ापे पे छोड़ोगे। और बुढ़ापे मे लोग हैं वे अगले जनम पे छोड़ रहे हैं। वे कह रहे हैं, परलोक मे देखेंगे।

यही लोक है एकमात्र। और यही क्षण है। सत्य का यही क्षण है। बाकी सब झूठ है। मन का जाल है। लेकिन अगर तुम्हे अच्छा लगता है, तुम्हारी मर्जी। तुम्हें अच्छा लगता हो, तो मैं कौन हूँ बाधा देनेवाला ? तुम सपने देखो। कभी न कभी तुम जागोगे, तब रोओगे, पछताओगे। तब तुम पछताओगे कि इतना समय यूँ ही गवाँया। और ध्यान रखना जीवन में जितना दुख भर लोगे, जितने आँसू घने कर लोगे, जितना पछतावा हो जाएगा, उतना ही कठिन हो जाता है रोकना फिर दुख को, आँसुओं को। कभी तुमने खयाल किया, हँसी तो एकदम रुक जाती है, रोना एकदम नहीं रुकता। तुम हँस रहे हो, एकदम रुक सकते हो। रोना एकदम नही रुकता।

थमते थमते थमेंगे आँसू
रोना है कुछ हँसी नही है

दुख ऐसा सरोबोर कर लेता है, दुख ऐसी गहराइयों तक प्रविष्ट हो जाता है, तुम्हारी जड़ो तक समाविष्ट हो जाता है कि फिर तुम उसे रोकना भी चाहो तो कैसे रोको ?

थमते थमते थमेंगे आँसू
रोना है कुछ हँसी नही है

ये कोई मजाक नही है कि रो लिए और रोक लिए। ये कोई हँसी नहीं है कि हँस लिए और रोक लिए। हँसी तो तुम्हारी ऊपर-ऊपर होती है, रुक जाती है। रोना बहुत गहरे चला जाता है। रोना तुम्हारे जीवन मे सब तरफ भर जाता है, और रोज-रोज अगर तुम रोने को इस तरह सम्हालते गये, और जीने को कल पर टालते गये, तुमने कहा हँसेंगे कल, रोएँगे आज ... और तुम जो दलील दे रहे हो वह दलील यह है कि अपना वर्तमान तो सुखद मालूम नही पड़ता, इसलिए सुखद सपने देखेंगे। सुखद वर्तमान क्यो नही है, ये पूछो। इसीलिए नही है कि कल भी तुमने सपने देखे थे आज के। और कल का दिन गवाँ दिया जिसमें आज सुखद हो सकता था, जिसमें आज की आधारशिला रखी जा सकती थी। कल तुमने गवाँ दिया, इसीलिए आज दुखद है। और तुम यही दलील दे रहे हो कि हम आज को भी गवाँएँगे, क्योंकि कल का सपना अच्छा मालूम पड़ता है।

तुम्हारी मर्जी। गणित साफ है। फिर मुझसे मत कहना कि हमें किसीने चेताया

नहीं। तुम्हें ये मौका न मिलेगा कहने का, ये ध्यान रखना, कि हमें किसीने चेताया नहीं। दूसरों को तो ये भी सुविधा है कहने की कि उन्हें किसीने चेताया नहीं। लेकिन मैं तुम्हें रोज चेता रहा हूँ।

चौथा प्रश्न : पिछले जन्म के संस्कार इस जन्म में आदत बन जाते हैं। इस जन्म की आदतें अगले जन्म में फिर संस्कार बन जाएँगी। फिर अंत कहाँ है?

अंत है इस बात में, इस सत्य को जान लेने में कि तुम संस्कार नहीं हो, तुम आदत नहीं हो। अंत है इस सत्य के प्रति जाग जाने में कि तुम पृथक हो। अंत है होश में। अंत है साक्षीभाव में।

निश्चित ही तुमने कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, आदत बन गयी। आज किसीने जरा सा उकसा दिया, अंगारा तो था ही भीतर--रोज-रोज सँभाला था -- हो गया। राख भी जमी थी तो बस ऊपर जरा सी पर्त थी। किसी ने फूँक मार दी, पर्त झर गयी, अंगारा बाहर आ गया, तुम क्रोध से भर गये। आज तुम क्रोध करोगे, कल के लिए फिर और तैयारी हो गयी।

ऐसे रोज-रोज तुम अभ्यास बनाते जाओगे। संस्कार गहन होता जाएगा। और जितना संस्कार गहन हो जाएगा, उतने ही तुम यंत्रवत् हो जाओगे। कोई भी तुम्हारी बटन दबा दे, तो क्रोध करवा दे। कोई भी तुम्हारी बटन दबा दे तो तुम प्रसन्न हो जाओ। कोई भी झुककर नमस्कार कर ले, तुम्हारी प्रशंसा कर दे, तो तुम गद्गद! कोई जरा गाली दे दे, तो तुम जार-जार! तुम यंत्रवत् हो जाओगे। और बटनें लोगों को पता हो जाती हैं। सबको पता हैं एक दूसरे की बटनें। कहाँ से दबा दो कि सब ठीक हो जाता है। कहाँ से दबा दो कि सब गड़बड़ हो जाता है। तुम मशीन हो क्या? या मनुष्य हो।

मनुष्य होने का इतना ही अर्थ है कि कोई तुम्हारी क्रोध की बटन दबाए चला जाए, लेकिन तुम कहते हो नहीं करना है, तो बटन दबती रहती है, वह आदमी थक जाता है, लेकिन तुम क्रोध नहीं करते। तुम कहते हो मैं अपना मालिक हूँ। जब करना चाहूँगा करूँगा, जब न करना चाहूँगा नहीं करूँगा। प्रतिक्रिया और क्रिया में यही फर्क है। प्रतिक्रिया में दूसरा मालिक है, तुम नहीं। और क्रिया में तुम मालिक हो, दूसरा नहीं।

और बड़े मजे की बात है, प्रतिक्रिया बाँधती है, क्रिया मुक्त करती है। जो अपने कर्म का मालिक है, उसके कर्म का कोई संस्कार नहीं बनता। और जो अपने कर्म का मालिक नहीं है, जो प्रतिकर्म करता है -- 'रिएक्ट' होता है सिर्फ -- उस आदमी के जीवन में बंधन बनते चले जाते हैं। रोज-रोज जाल मजबूत होता चला जाता है।

आखिर में तुम पाते हो, तुम तो बचे ही नहीं, आदतों का एक ढेर — मुर्दा ढेर — जिसमें से जीवन कभी का उड़ चुका। पक्षी तो जा चुका है जीवन का बहुत पहले, कटघरा छूट गया है, पिंजड़ा छूट गया है।

जागो इसके पहले कि देर हो जाए। और आदतों से मुक्त होना शुरू करो। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा कि बुरी आदतों से मुक्त हो जाओ और भली आदतें बना लो। तुम्हारे महात्मागण तुमसे यही कह रहे हैं। वे तुमसे कहते हैं बुरी आदतें छोड़ो, अच्छी बनाओ। मैं तुमसे कहता हूँ आदत छोड़ो। बुरी और अच्छी आदत से कोई फर्क नहीं पड़ता। लोहे का हो पिंजड़ा कि सोने का, क्या फर्क पड़ता है?

एक आदमी को सिगरेट पीने की आदत है, सारी दुनिया बुरी कहती है। दूसरे को माला फेरने की आदत है, सारी दुनिया अच्छा कहती है। जो सिगरेट पीता है वह और न पिये तो मुसीबत मालूम होती है, जो माला फेरता है अगर न फेरने दो तो मुसीबत मालूम होती है। दोनों गुलाम हैं। एक को उठते ही से सिगरेट चाहिए, दूसरे को उठते ही से माला चाहिए। माला वाले को माला न मिले तो माला की तलफ लगती है। सिगरेट वाले को सिगरेट न मिले तो सिगरेट की तलफ लगती है। ऐसे बुनियाद में बहुत फासला नहीं है। सिगरेट भी एक तरह का माला फेरना है। धूआं भीतर ले गये, बाहर ले गये, (हूँ...) भीतर ले गये, बाहर ले गये — मनके फिरा रहे हैं। बाहर, भीतर। धूएँ की माला है। जरा सूक्ष्म है। कोई अपना ककड़-पत्थर की फेर रहा है। जरा स्थूल है।

असली सवाल आदत से मुक्त होने का है।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि माला मत फेरो। मैं यह भी नहीं कह रहा हूँ कि सिगरेट पिओ। मैं यह कह रहा हूँ कि तुम मालिक रहो। कोई आदत ऐसी न हो जाए कि मालिक बन जाए। कोई आदत। मंदिर जाने की आदत भी मालिक न हो जाए। ध्यान करने की आदत भी मालिक न हो जाए। मालिक तुम ही रहो।

मालिकियत बचाके आदत का उपयोग कर लेना, यही साधना है। मालिकियत खो दी, और आदत सवार हो गयी, तो तुम यंत्रवत् हो गये। तब तुम्हारा जीवन मूर्छित है। ऐसे लोग है, जो मेरे पास आके कहते हैं कि अगर पूजा न करें रोज, तो बेचैनी लगती है। वो सोचते हैं कि बड़ा धार्मिक, बड़ी धार्मिक घटना घट गयी उनके जीवन में। मैं उनसे पूछता हूँ, पूजा करने से कुछ आनंद मिलता है? वो कहते हैं, आनंद तो कुछ नहीं मिलता, लेकिन न करें तो बेचैनी लगती है। यही तो सिगरेट पीनेवाला कहता है। वह कहता है कि — उससे पूछो कुछ आनंद मिलता है — वह कहता है, आनंद! क्या रखा है! आनंद तो कुछ नहीं मिलता, कभी-कभी खाँसी जरूर आती है; आनंद तो कुछ भी नहीं मिलता, लेकिन न पिओ तो

बेचैनी मालूम होती है। इसे तुम थोड़ा सोचो। इसीको मैं यंत्र हो जाना कहता हूं, कि जिससे कुछ भी नहीं मिलता है उससे भी न करने पर बेचैनी मालूम होती है। उपलब्ध कुछ भी नहीं होता है, पाने को कुछ भी नहीं है, लेकिन छोड़ने में मुसीबत है।

ये आदत ने पकड़ा है अब। आदत इतना ही कर सकती है — करो, तो कुछ न मिले; न करो, तो कुछ खोता मालूम पड़े। अब ये बड़े मजे की बात है, जिस चीज को करने से कुछ नहीं मिलता, उसको न करने से खोएगा कैसे ? कुछ खोता नहीं, सिर्फ पुरानी आदत, पुरानी लकीरों पर न चलने से अड़चन मालूम होती है।

मैं एक बहुत बड़े वकील को जानता था। उनकी आदत थी कि जब भी वे अदालत में खड़े होते, पैरवी करते — बड़े वकील थे, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के थे, और लंदन और पेकिंग और दिल्ली तीन जगह उनके दफ्तर थे — तो उनकी आदत थी कि वो अपने कोट का बटन घुमाने लगते थे, जब अटक जाते। सभी की होती है। कोई अपना सिर खुजलाने लगता है, कोई कुछ करने लगता है। उस आदत का भी वैसा ही उपयोग है जैसे बटन दबाने का। तो अगर जब भी उनके विचार उलझ जाते, या कोई उत्तर न सूझता, तो वो कोट का बटन घुमाने लगते। घुमाने से कुछ मिलता था यह तो पक्का पता नहीं, क्योंकि कोट का बटन घुमाने से क्या मिलेगा ? और जिसकी बुद्धि उलझी हुई हो, समझ में न आ रहा हो, वह कोई कोट के बटन घुमाने से कुछ बात समझ में आ जाएगी ? लेकिन विरोधियों को यह बात दिखायी पड़ गयी कि वो जब भी उलझ जाते हैं तो बटन घुमाते हैं।

एक बड़ा मुकदमा था। एक बड़ी स्टेट का मुकदमा था प्रीवी कौंसिल में। लाखों का मामला था। तो विरोधी वकील ने उनके शोफर को मिला लिया — कुछ पैसे दिये — और कहा कि तू इतना करना, उनके कोट के ऊपर का बटन तोड़ देना। तो वो जब अदालत में अपना कोट लेके हाथ में रख के आए तो वो बटन नदारद था। तो उस वक्त तो उन्होंने देखा भी नहीं, कोट डाल लिया। जब वो पैरवी करने लगे और वक्त आया, हाथ कोट के बटन पर गया, बस, सब गड़बड़ हो गया ! जैसे मस्तिष्क ने साथ छोड़ दिया, कुछ सूझ-बूझ ही न रही, चक्कर-सा मालूम हुआ। बैठ गये। पहला मुकदमा हारे वो।

वो मुझसे कहते थे कि उस बटन से मुझे मिला तो कभी कुछ नहीं, लेकिन गवांया मैंने बहुत। उस बटन के घुमाने से कुछ मुझे सूझ-बूझ आती थी ऐसा भी नहीं था, लेकिन बटन न पाके बस, मैं समझ ही न पाया कि अब क्या करूं ? हाथ से जैसे कोई हथियार छूट गया। भरोसा किये बैठे थे, और वक्त पर जिस पर भरोसा था वह दगा दे गया।

जिनको तुम आदतें कहते हो — बुरी हों या भली, इससे कोई भेद नहीं पड़ता — सब आदतें, मालिक हो जाएँ तो बुरी हैं। तुम मालिक रहो तो कोई आदत बुरी नहीं। गुलामी बुरी है, मालकियत भली है। मेरी परिभाषा यही है। संस्कार बन रहे हैं प्रतिपल। आदतें निर्मित हो रही हैं। तुम जरा दूर खड़े रहो, तुम अपनी मालिकियत मत खोओ।

निश्चित जीवन में आदतों की जरूरत है। अगर आदतें न हों तो जीवन बहुत कठिन हो जाएगा। आदतें जीवन को सुगम बनाती है। तुम टाइपिंग सीखते हो, या कार चलाना सीखते हो, अगर आदत न बने और रोज-रोज फिर वहीं खड़े हो जाओ जहाँ पहले दिन खड़े हुए थे; फिर देखने लगो कि अब टाइप करने का फिर मौका आया अब फिर सीखो, या कार चलाने की फिर नौबत आ गयी अब फिर से सीखो, तो जिंदगी बहुत असंभव हो जाए। तुम कार चलाना एक बार सीख लेते हो, आदत बन गयी। फिर हाथ ही काम किये चले जाते हैं, फिर तुम्हें ध्यान भी देने की जरूरत नहीं होती। ठीक-ठीक ड्राइवर गीत भी गुनगुना लेता है, बात भी कर लेता है, रेडियो भी सुन लेता है, और कुछ तो ड्राइवर ऐसे है कि झपकी भी ले लेते हैं और गाड़ी चलती रहती है।

जीवन में आदत की जरूरत है। बस ध्यान इतना ही रखना जरूरी है कि आदत मालिक न हो जाए। मालिक तुम बने रहो तो संसार में कुछ भी बुरा नहीं है। स्वामित्व तुम्हारा हो, तो संसार मे सभी कुछ अच्छा है। स्वामित्व खो जाए, तुम गुलाम हो जाओ, तो वो गुलामी चाहे कितनी ही कीमती हो, खतरनाक है। हीरे-जवाहरात लगे हो सीखचों पर, जंजीरों पर, तो भी उनको आभूषण मत समझ लेना। वो खतरनाक हैं। वो महँगा सौदा है। अपने को गवाँके इस जगत में कमाने जैसा कुछ भी नहीं है। हाँ, अपने को बचाके जितना खेल खेलना हो खेल ले सकते हो। जब परमात्मा हो लीला कर रहा है, तो तुम क्यों परेशान हो? लेकिन परमात्मा मालिक है और जब तुम भी अपनी आदतों और संस्कारों के मालिक हो जाओगे तब तुम भी अपने छोटे संसार मे परमात्मा हो जाते हो।

बुद्ध ने इसीको होश कहा है, कि सब करना लेकिन होशपूर्वक करना। कदम भी उठाना तो होशपूर्वक उठाना। उठना, बैठना, लेटना होशपूर्वक। कोई भी चीज बेहोशी में मत करना। अगर तुम होश को साधते रहो तो आदत बनती रहेगी, आदत का तुम उपयोग करते रहोगे, लेकिन आदत के पीछे होश की धारा भी बह रही है। चैतन्य का दीया भी जल रहा है। वो भी निर्मित हो रहा है, उसकी भी सघनता बढ़ रही है। उसका भी प्रकाश गहन होता जा रहा है।

जीवन में सिर्फ आदतें ही आदतें रह जाएँ तो आत्मा खो जाती है। आदतों के

पीछे तुम भी रहो — अलग, पृथक। और इतनी तुममें मालिकियत हो कि किसी आदत को अगर तुम छोड़ना चाहो तो इसी क्षण छोड़ दो, लौटके दुबारा सोचने की जरूरत भी न पड़े।

मैंने सुना है कि जब पहली दफा उत्तर ध्रुव पर यात्री पहुंचे, तो वो एक बड़ी मुसीबत में पडे। तीन महीने का भोजन था, वो चुक गया। और कोई पंद्रह-बीस दिन उन्हें भूखे उपवास में गुजारने पड़े। कभी मछली पकड़ लेते तो ठीक, कभी न पकड़ पाते तो मुश्किल। जहाज उलझ गया, बरफ में फंस गया। लेकिन उन यात्रियो का जो केप्टन था उसको सबसे ज्यादा जो मुसीबत आयी वो भोजन की नही थी। लोग बिना भोजन के रहने को तैयार थे — यात्रियों को सिगरेट की सबसे ज्यादा मुसीबत खड़ी हुई। सिगरेट खत्म हो गयी। तो लोगों ने जहाज की रस्सियाँ काट-काट के पीना शुरू कर दिया। केप्टन घबड़ाया। उसने कहा कि अगर बीस दिन यह सिलसिला रहा तो फिर हम कभी वापिस न पहुँच पाएँगे, तुम रस्सियाँ ही काटे डाल रहे हो, तो ये जहाज आगे कैसे बढ़ेगा? ये पाल गिर जाएँगे। मगर लोग इतने दीवाने सिगरेट पीने के लिए कि केप्टन करे भी क्या? एक आदमी, बाकी सब सिगरेट पीनेवाले, उनका करो भी क्या? वो रात को चोरी से काट लें, इधर-उधर से काट ले।

जब यह जहाज लौटके किसी तरह आया और इसकी अखबारों में खबर छपी, तो एक आदमी ने अमरीका में, ये अखबार पढ़ते वक्त अपनी सिगरेट भी पी रहा था, अखबार भी पढ रहा था, उसे अचानक यह बात अजीब सी लगी कि लोग गंदी रस्सियाँ काट-काट के पी गये। वह भी 'चेन स्मोकर' था। उसने सोचा हाथ में सिगरेट थी — उसने सोचा क्या यही गति मेरी होती अगर मैं उनके साथ होता? क्या मैं भी रस्सियाँ काटके पी जाता? एक क्षण उसे खयाल आया, उसने सिगरेट ऐश-ट्रे पे रख दी, और उसने कहा अब इसको तभी उठाऊँगा जब मेरी ऐसी दशा आ जाए कि मुझे लगे अब मैं गंदी रस्सियाँ भी पी सकता हूँ, नहीं तो नहीं उठाऊँगा।

बीस साल बीत गये। वो सिगरेट अपनी टेबल पर ही रखे रहा। लोग उससे पूछते भी कि ये आधी जली सिगरेट यहाँ क्यों रखी है? वो कहते कि इसको मुझे उठाना है किसी दिन, लेकिन उसी दिन उठाऊँगा जिस दिन मेरी पीड़ा ऐसी हो जाएगी कि आदत बड़ी और मैं छोटा हो जाऊँगा। लेकिन मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वो घड़ी आती नहीं। बीस साल बीत गये। मैंने बीस साल से सिगरेट नहीं पी है, और याद भी नही आयी है। मैं याद करने की कोशिश कर रहा हूँ कि कभी भी आ

जाए, क्योंकि मैं जानना चाहता हूँ किस मुसीबत में जहाज के लोगों को रस्सियाँ पीनी पड़ेंगी। लेकिन वह कभी न आयी।

उसने अपना संस्मरण लिखा है। मैं संस्मरण पढ़ रहा था। उसने संस्मरण में लिखा है कि मै समझ ही नही पाता कि क्या बात हो गयी ? क्योंकि पहले भी मैंने कई बार सिगरेट छोड़ना चाही थी, लेकिन नहीं छोड़ सका था। कई बार छोड़ी भी थी, तो दिन-दो दिन के बाद फिर पीने लगा था। लेकिन क्या हुआ ? अब तो मैंने छोड़ा भी नही था। सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि जब भी आदत पकड़ लेगी और झकझोर डालेगी तो पियूंगा। लेकिन मै सिर्फ ये जानना चाहता हूँ कि मैं भी उस जहाज मे अगर होता तो क्या मैंने रस्सियाँ पी होती। बीस साल से आदत आयी नही। मेरी समझ में नहीं आता कि हुआ क्या ?

उसे समझ में नहीं आ रहा है, क्योंकि उसे ध्यान का कुछ पता नहीं है। होश का कुछ पता नही है। इसने छोड़ी नहीं है सिगरेट, छूट गयी होश के कारण। क्योंकि वो एक ही होश साधे हुए है कि जब इतने जोर से तलफ पकड़ेगी कि मैं रस्सियाँ पी लेता, तभी पियूंगा। लेकिन उस होश के कारण तलफ नही पकड़ती। होश हो तो तलफ पकड़ती ही नही। अब उसे कोई होश को जाननेवाला मिले तो उसे उत्तर मिले। लेकिन अनजाने उसने होश साध लिया है।

तुमसे मै कहता हूँ जो-जो आदत तुम्हें पकड़े हो, जबर्दस्ती पकड़े हो, उसके प्रति होश साधना। मैं तुमसे नहींक हता, सिगरेट पीना छोड़ो। मै कहता हूँ होशपूर्वक पियो। मैं तो यहाँ आश्रम में एक कमरा बनवाने जा रहा हूँ, जहाँ होशपूर्वक सिगरेट पीनेवालों को सुविधा होगी, कि वे जाके वहाँ सिगरेट जरूर पियें, लेकिन जितनी देर पियें उतनी देर ध्यान रखें। एक क्षण को भी बेहोशी में न पियें, बस। फिर अगर पीना हो तो मजे से पियें, कोई हर्जा नहीं।

लेकिन मैं जानता हूँ, अगर होश सध जाए तो ऐसी मूढ़ता कौन करेगा ? ऐसी मूढ़ता तो बेहोशी में ही होती है। तो मै तुमसे कुछ भी छोड़ने को नही कहता। क्योंकि मै जानता हूँ, छोड़ने से कभी कोई छोड़ नहीं पाया। मैं तुमसे केवल होश साधने को कहता हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ, होश साधने से जो भी व्यर्थ है अपने आप छूट जाता है, और जो सार्थक है बच रहता है।

होश आध्यात्मिक जीवन की आखिरी कीमिया है, अल्केमी है। वो रसायन है। उसके अतिरिक्त सब विस्तार की बातें हैं।

आज इतना ही।

जागकर जीना अमृत में जीना है

२७ नवंबर १९७५

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥ १८ ॥

एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पंडिता ।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ १९ ॥

ते झायिनो साततिका निच्चं दल्ह-परक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बानं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥ २० ॥

उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो ।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति ॥ २१ ॥

उट्ठानेनप्पमादेन संयमेन दमेन च ।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ २२ ॥

पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना ।
अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठंव रक्खति ॥ २३ ॥

ज़फर ने गाया है —

उमरे दराज माँगकर लाए थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गये दो इंतजार में

एसी ही कहानी है आदमी की। जिंदगी में कुछ हाथ आता नही। आशाएँ बहुत हैं सपने बहुत हैं। लेकिन हाथ मे सिर्फ राख ही लगती है। आशाओ की सपनों की धूल ही लगती है। और जाते समय जफर के शब्द अधिकाशत सभी के लिए सही सिद्ध होते हैं। चार दिन मिले थे जिंदगी के, दो आकाक्षाओ मे बीत गये, दो उनकी पूर्ति की प्रतीक्षा में। न तो कभी कुछ पूरा होता है न कही पहुँचते है। जीवन ऐसे ही बीत जाता है। व्यर्थता में, असार में।

जिसे जीवन की ये व्यर्थता दिखायी पडी वही सन्यस्त हुआ। जिसे ससार की ये दौड सिर्फ दौड मालूम पडी — अर्थहीन, कहीं ले जानेवाली नही — जिसे जीवन सिवाय मृत्यु के मुँह मे जाने के और कुछ न दिखायी पडा, वही जागा, उसीने होश को सँभाला, उसीने नीद से बाहर निकलने की चेष्टा की। अगर तुम्हे अभी भरोसा

है कि तुम्हारे सपने पूरे हो जाएंगे, तो तुम जागना न चाहोगे। जिसके मन में भी सपनों का जाल है, वो जागना न चाहेगा। क्योंकि जागने पर तो सपने टूट ही जाते हैं। सपनों के लिए नींद चाहिए।

अप्रमाद चाहिए जीवन के लिए, प्रमाद चाहिए नींद के लिए। अप्रमाद का अर्थ है होश। वो बुद्ध और महावीर का शब्द है। और प्रमाद का अर्थ है सुस्ती, तंद्रा, नींद। अगर तुम्हारे मन में कोई भी वासना है, तो प्रमाद चाहिए ही। तब तुम अप्रमत्त होने की चेष्टा न कर सकोगे, क्योंकि वह तो विपरीत होगा। कोई मधुर सपना देखता हो और तुम उसे जगाने जाओ, पीड़ा मालूम होती है। तुम दुश्मन जैसे मालूम पड़ोगे। इसीलिए बुद्धपुरुष सांसारिक व्यक्तियों को शत्रु जैसे मालूम पड़ते है। मधुर नींद ले रहे थे, अपने सपनों में खोए थे -- सपने स्वर्णिम भी हो सकते हैं, सोने के महलों के हो सकते हैं, लेकिन सपना सपना है। मिट्टी का घर हो कि सोने का महल हो, जागके दोनो ही समाप्त हो जाते हैं। जागते ही दोनों टूट जाते है।

बुद्धपुरुषों की सारी चेष्टा यही है कि तुम कैसे सपने के बाहर जाग जाओ। तो ही तुम जीवन के वास्तविक रूप को जान सकोगे, तो ही तुम उस जीवन को जान सकोगे जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। अभी तो जिसे तुमने जीवन समझा है, वो मान्यता है। वो जीवन नही है। इसे कौन जीवन कहेगा जो आज है और कल नही हो जाएगा ? पानी का बबूला है बुद्ध ने कहा, भोर का तारा है बुद्ध ने कहा -- अभी है, अभी गया। घास के पत्ते पर टिकी शबनम की बूंद है, बुद्ध ने कहा। कब गिर जाएगी, कोई भी नही जानता।

ऐसे जीवन पर भरोसा कर लेता है आदमी। नींद बड़ी गहरी होनी चाहिए, बेहोशी महान होनी चाहिए। और रोज तुम देखते हो कोई बूंद गिरी, रोज तुम देखते हो कोई तारा डूबा, रोज तुम देखते हो कोई बबूला फूटा और खो गया हवा में। तुम दो आँसू भी बहा देते हो किसीकी मृत्यु पर, सहानुभूति भी प्रगट कर आते हो; लेकिन तुम्हें ये बोध नही आता कि ये मृत्यु तुम्हारी मृत्यु की भी खबर है। तुम मरघट भी हो आते हो और फिर वैसे के वैसे संसार में वापिस लौट आते हो। नींद बड़ी गहरी होगी। मरघट भी नहीं तोड़ पाता। निकटतम प्रियजन मर जाता है तो भी तुम जो मर गया उसके लिए रो लेते हो, लेकिन तुम्हें ये होश नहीं आता कि तुम्हारी मौत भी करीब आयी चली जाती है। आज कोई मरा है, कल तुम भी मरोगे। लोग इस विचार से बचते हैं, लोग इस विचार से डरते हैं।

और पश्चिम के मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि जो व्यक्ति सोचता है मृत्यु के संबंध में, वो रुग्ण है। वो रुग्ण इसलिए है कि अगर ऐसा वो सोचेगा तो जी न

सकेगा। उनकी बात भी ठीक है। अगर यही जीवन जीवन है, तो मृत्यु के संबंध में बहुत सोचना खतरनाक है। क्योंकि जैसे ही तुम मृत्यु के संबंध में बहुत सोचोगे, तुम्हारे पैर रुक जाएँगे। जाती यात्रा पर तुम सहम जाओगे। महत्त्वाकांक्षा के लिए उड़ने की तैयारी कर रहे थे, पंख गिर जाएँगे।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, मृत्यु के संबंध में बहुत सोचना रुग्णता है। अगर यही जीवन जीवन है, तो वे ठीक कहते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह जीवन तो जीवन नहीं है। जीवन तो इस तंद्रा के पार है। इस बेहोशी के बाहर है। लेकिन हम इस बेहोशी को खूब सँभाल के चलते हैं। हम कहीं से भी इसे टूटने नहीं देते, बहुत मौके भी आ जाते हैं टूटने के, तो भी सँभाल-सँभाल लेते हैं। फिर करवट ले लेते हैं, फिर सो जाते है।

एक सपना टूटा नहीं कि उसके पहले ही हम दूसरे सपने के बीज बो देते हैं। एक आशा मिटी नहीं कि हम दूसरी आशा के सहारे टँग जाते हैं। लेकिन आशा को हम बनाए ही रखते है। एक क्षण का भी हम मौका नहीं देते कि जीवन की वास्तविकता का हम एहसास कर सकें, अनुभव कर सकें। छाती में चुभ जाए जीवन का ये सत्य, कि मौत छिपी है, मौत आ रही है, प्रतिपल चली आ रही है। जिस दिन से पैदा हुए है उस दिन से ही मौत पास आनी शुरू हो गयी है। जन्म का दिन मृत्यु का दिन भी है, ये ख्याल आ जाए। तुम जन्मदिन मनाते हो, लेकिन हर जन्मदिन जीवन को पास नहीं लाता, मृत्यु को पास लाता है। और एक वर्ष कम हो गया जीवन का। मौत और भी पास आ गयी। 'क्यू' मे तुम थोड़े आगे सरक गये मरघट की तरफ।

बुद्ध का पूरा मनोविज्ञान, समस्त बुद्धों का -- फिर वो महावीर हों, कृष्ण हों, क्राइस्ट हों या मुहम्मद हों -- समस्त बुद्धों का मनोविज्ञान मृत्यु के बोध पर निर्भर है। जिस दिन भी तुम्हें दिखायी पड जाएगा कि ये जीवन गया गया है, इसे पकड़ोगे तो भी बचा न पाओगे -- कोई नहीं बचा पाया -- इसको बचाने की कोशिश में सिर्फ समय व्यतीत होगा, शक्ति क्षीण होगी। इसे बचाने की कोशिश मत करो, ये तो जाएगा ही। ये कोशिश असंभव है। जो थोड़ा सा समय मिला है क्षणभंगुर, उसमें जागने की कोशिश करो। जीवन को बचाने की नहीं, जागने की। क्योंकि जागने से ही तुम्हें एक ऐसी संपदा मिलनी शुरू होगी जो फिर कभी छीनी नहीं जाती। जिसे चोर छीन नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते। मृत्यु भी जिसे छीन नहीं पाती है। जब तक वैसा स्वर तुम्हारे भीतर न बजने लगे जो सनातन है, शाश्वत है, ओंकार है, जो न कभी शुरू हुआ और न कभी अंत होगा; एस धम्मो सनंतनो; ऐसा धर्म तुम्हारे भीतर न उतर आए जो समयातीत है, काल के बाहर है, मृत्यु के हाथ जिस

तक नहीं पहुँच पाते, तब तक तुम जिए जरूर, जीवन को बिना जाने जिए। तुम सोए, तुमने झपकी ली, तुम नशे में रहे, तुम होश में न आए।

बुद्ध की सारी जीवन-प्रक्रिया को एक शब्द में हम रख सकते हैं, वह है अप्रमाद, 'अवेयरनेस'। जागकर जीना। जागकर जीने का क्या अर्थ होता है ? अभी तुम रास्ते पर चलते हो, बुद्ध से पूछोगे तो वो कहेंगे, ये चलना बेहोश है। रास्ते पर दुकानें दिखायी पड़ती हैं, पास से गुजरते लोग दिखायी पड़ते हैं, घोड़ागाड़ी, कारें दिखायी पड़ती हैं, लेकिन एक चीज तुम्हें चलते वक्त नहीं दिखायी पड़ती, वह तुम स्वयं हो। और सब दिखायी पड़ता है। पास से कौन गुजरा, दिखायी पड़ा। राह पर भीड़ है, दिखायी पड़ी। रास्ता सुनसान है, दिखायी पड़ा। सब तुम्हें दिखायी पड़ता है, एक तुम भर दिखायी नहीं पड़ते। यही तो सपना है।

यही तो स्थिति जीवन की है, जागने की है। जिसे तुम जागना कहते हो उसमें और नीद मे कोई अंतर नहीं मालूम होता। दोनों में एक बात समान है कि तुम्हारा तुम्हें कोई पता नहीं चलता। भीतर अँधेरा है। भीतर दिया नहीं जला। इसको बुद्ध प्रमाद कहते हैं, मूर्छा कहते है। अपना ही पता न चले, ये भी कोई जिंदगी हुई ? चले, उठे, बैठे, उसका पता ही न चला जो भीतर छिपा था। अपने से ही पहचान न हुई, ये भी कोई जिंदगी है ? अपने से ही मिलना न हुआ, ये भी कोई जिंदगी है ? और जो अपने को ही न पहचान पाया, और क्या पहचान पाएगा? निकटतम थे तुम अपने, उसको भी न छू पाए, और परमात्मा को छूने की आकांक्षा बनाते हो ? चाँद-तारों पर पहुँचना चाहते हो, अपने भीतर पहुँचना नही हो पाता। स्मरण रखो, निकटतम को पहले पहुँच जाओ, तभी दूरतम की यात्रा हो सकती है। और मजा ये है कि जिसने निकट को जाना, उसने दूर को भी जान लिया, क्योंकि दूर निकट का ही फैलाव है।

उपनिषद् कहते हैं, वह परमात्मा पास से भी पास, दूर से भी दूर है। इसका यह अर्थ हुआ, उसे जानने के दो ढंग हो सकते हैं क्या कि तुम उसे दूर की तरह जानने जाओ, या पास की तरह जानने जाओ ? नहीं, दो ढंग नहीं हो सकते। जब तुम पास से ही नहीं जान पाते तो तुम दूर से कैसे जान पाओगे ? जब मैं अपने को ही नहीं छू पाता, परमात्मा को कैसे छू पाऊँगा ? जब आँख अपने ही सत्य के प्रति नहीं खुलती, तो परमात्मा के विराट सत्य के तरफ कैसे खुल पाएगी ? इसलिए बुद्ध चुप रह गये, परमात्मा की बात ही नहीं की। वो बात कहनी फिजूल है। सोए आदमी से जागकर जो दिखायी पड़ता है उसकी बात कहनी फिजूल है। सोए आदमी से तो यही बात करनी उचित है, कैसे उसका सपना टूटे, कैसे उसकी नींद टूटे ?

'अप्रमाद अमृत का पथ है और प्रमाद मृत्यु का'। जो भी सोए-सोए जी रहा

है वो मौत में जा रहा है। वो रास्ता मौत का है। जो जागकर जी रहा है वो अमृत में चलने लगा। वो रास्ता अमृत का है। क्योंकि तुम्हारे भीतर जागते ही तुम्हें उसका पता चलता है जो मिट ही नहीं सकता। तुम एक ऐसे घर के वासी हो जिसमें अमृत भी छिपा है, अमृत के झरने छिपे हैं, लेकिन रोशनी नहीं है। रोशनी लानी है। घर अँधेरा है। झरने अमृत के छिपे हैं, खजाने शाश्वत के छिपे हैं, लेकिन घर अँधेरा है। और तुम अँधेरे घर के वासी हो। और तुम अगर कभी आँख भी खोलते हो तो खिड़की पे खड़े होके बाहर देखते हो।

शायद, जैसाकि राबिया की प्रसिद्ध घटना है, एक साँझ फकीर राबिया को — एक अनूठी स्त्री हुई राबिया, सूफी फकीर थी — लोगों ने घर के सामने कुछ खोजते देखा। साँझ थी और सूरज ढलता था। लोगों ने पूछा, बूढ़ी औरत को सहायता देने के लिए, कि क्या खो गया है? उसने कहा मेरी सुई खो गयी है। तो वे भी खोजने लगे। फिर एक आदमी को ख्याल आया कि सुई बड़ी छोटी चीज है, सूरज अब ढलता, अब-तब ढलता, जल्दी ही अँधेरा हो जाएगा; और छोटी सी चीज है, इतना बड़ा रास्ता है; कहाँ गिरी ये ठीक से पता न हो, तो खोजना मुश्किल है; फिर रात करीब आती है।

तो उसने पूछा कि राबिया, ठीक से बता कि सुई गिरी कहाँ है? स्थान का पता चल जाए तो खोज भी हो जाए। राबिया ने कहा, वह तो तुम न पूछो तो अच्छा है। क्योंकि सुई तो मेरे घर मे भीतर गिरी है। वो सब रुक गये जो खोज रहे थे। उन्होंने कहा, पागल औरत! हमें सदा से शक रहा है कि तेरा दिमाग खराब है। सांसारिक लोगों को संन्यासियों का दिमाग सदा से खराब मालूम पड़ा है। वो उनकी आत्मरक्षा की दृष्टि है। अगर संन्यासी ठीक है, तो फिर तुम पागल हो। तो बेहतर यही है कि संन्यासी पागल है, ऐसा मानके चलो। इससे कम-से-कम अपनी सुरक्षा होती है। फिर तुम्हारी भीड़ है। इसलिए तुम जो कहते हो वो भीड़ का वचन है। भीड़ के वचन झूठे हों तो भी सच मालूम होते हैं। लोग हँसने लगे। उन्होंने कहा हमें पहले से ही शक था कि तू पागल है। अब अगर सुई घर के भीतर गिरी है, तो बाहर किसलिए खोज रही है? राबिया ने कहा, भीतर अँधेरा है, और मैं गरीब हूँ, दिया भी मेरे पास नहीं। बाहर खोजती हूँ क्योंकि बाहर थोड़ी रोशनी है अभी सूरज की। और देर मत करो, साथ दो, खोजो, नहीं तो जल्दी सूरज भी डूब जाएगा, बाहर भी खोजना मुश्किल हो जाएगा।

उन्होंने कहा कि पागल औरत! रोशनी बाहर है ये हम समझे; लेकिन जब सुई बाहर गुमी ही न हो तो रोशनी क्या करेगी? रोशनी सुई थोड़े ही पैदा कर सकती है? तो राबिया ने कहा, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ? उन्होंने कहा ये भी कोई पूछने

की बात है ? कहीं से भी दिया ले आओ, घर में दिया ले जाओ, या सुबह तक ठहरो, सुबह जब सूरज उगेगा और घर में रोशनी आएगी तब खोज लेना। मगर खोजना तो वही होगा जहां खोया है।

राबिया हँसने लगी। उसने कहा कि तुम मुझे पागल समझते हो, लेकिन मैंने वही किया जो तुम कर रहे हो। आनंद तुम खोजते हो बाहर, परमात्मा को भी तुम जब खोजते हो तो बाहर — कभी मंदिर में, कभी मस्जिद में।

न हरम में है न दैर में
हम तो दोनों जगह पुकार आए

मस्जिद के सामने भी पुकारा, मंदिर के सामने भी पुकारा, कहीं पाया नहीं। 'हम तो दोनो जगह पुकार आए'। मगर जब आदमी खोजता है तो बाहर ही खोजता है। बिना ये पूछे कि खोया कहां है। तुमने परमात्मा को खोया कहां ? कब खोया ? किस जगह खोया ? सुई हो या परमात्मा, कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन यही घटना घटी है। खोया भीतर है, खोजते बाहर हो। क्यो खोजते हो बाहर ? क्योंकि इंद्रियाँ बाहर खुलती हैं, इंद्रियो की रोशनी बाहर पड़ती है। आँख बाहर खुलती है, भीतर नहीं। हाथ बाहर फैलते हैं, भीतर नहीं। कान बाहर सुनते हैं, भीतर नहीं। इसलिए आदमी बाहर खोजता है, और कभी खोज नहीं पाता।

उम्रे दराज माँगकर लाए थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गयें दो इतजार मे

माँगता है, रोता है, गिडगिड़ाता है, खोजता है, टकराता है, गिरता है, फिर उठता है। आधी जिंदगी माँगने में, आधी प्रतीक्षा में बीत जाती है। हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। और जिसे तुम खोजते थे वो भीतर मौजूद था, जरा रोशनी लाने की बात थी। दीया जलाने की बात थी। उस दीये का नाम है अप्रमाद, होश।

चलते, उठते, बैठते, कुछ भी करो — बुद्धने कहा — एक काम करना मत भूलो होशपूर्वक करो। बुद्ध अपने भिक्षुओ को कहते थे कि चलो भी रास्ते पर, तो रास्ते को ही मत देखो, अपने को भी देखते हुए चलो कि मै चल रहा हूँ। भाषा में कहने की भीतर जरूरत नहीं है कि मैं चल रहा हूँ। लेकिन यह प्रतीति बनी रहे कि मैं देख रहा हूँ। और तुम बड़े हैरान होगे, एक अनूठा अनुभव होगा।

एक सुंदर स्त्री रास्ते से गुजरती है। अगर तुम्हें होश रहे कि मै देख रहा हूँ; सुंदर स्त्री वहाँ है, मैं यहाँ हूँ, और मै देख रहा हूँ — तुम अचानक हैरान होओगे — ये बोध कि तुम देख रहे हो और कामना पैदा नहीं होती ! भूल जाओ कि मै देख रहा हूँ, बस सुंदर स्त्री दिखायी पड़ती है और वासना जग जाती है, कामना पैदा हो जाती है। किसीका महल दिखायी पड़ता है, मन मे सपने बनने लगते हैं — ऐसा महल मेरा

भी हो । लेकिन जरा सा जागो, महल भी दिखायी पड़े कोई हर्जा नहीं है, लेकिन देखनेवाला भी दिखायी पड़े । वो देखनेवाले को देख लेने की कला का नाम है अप्रमाद ।

कृष्णमूर्ति जिसे ' अवेयरनेस ' कहते हैं, वो बुद्ध का शब्द है ' अप्रमाद '। महावीर ने उसीको ' विवेक ' कहा है । गुरजिएफ ने एक शब्द प्रयोग किया है । वह बहुत ठीक-ठीक शब्द है — 'सेल्फ रिमेंबरिंग' । स्वयं का बोध । कुछ भी करो स्वबोध न खोए, स्वबोध की कड़ी भीतर लगी ही रहे । स्वबोध का सातत्य बना ही रहे । शुरू-शुरू में बार-बार तुम पकड़ोगे और खो-खो जाएगा । क्षणभर को लगेगा कि अपना बोध है, फिर खो जाएगा । पुरानी आदत है खोने की । लेकिन अगर सातत्य बना रहा, तो जैसे बूंद-बूंद गिरके बड़े चट्टान को भी तोड़ देती है, वैसे ही बूंद-बूंद अप्रमाद की, होश की, धीरे-धीरे तुम्हारे जन्मों-जन्मों के अंधकार की पर्तें को तोड़ देगी । और पहले दिन भी जब किरण तुम्हारे भीतर उतरेगी तब तुम पाओगे, अरे ! हम जिसे खोजते थे वह सदा घर में था । हम बाहर व्यर्थ ही खोजने गये थे । हमने उसे खोया ही न था । बाहर देखा, उसीमें भूल गये थे ।

कई बार तुम्हे खयाल होगा, जो लोग चश्मा लगाते हैं ... यहाँ तो काफी लोग चश्मा लगाए हुए है ... कई बार तुम्हें खयाल होगा, चश्मा आँख पर होता है और तुम चश्मा खोजते हो । और तुम ये भूल ही जाते हो कि चश्मे ही से चश्मे को खोज रहे हो । चश्मा लगाए हुए हो और चश्मे को खोज रहे हो । लोग कान में पेन्सिल और कलम खोंस लेते हैं और इधर-उधर खोजते हैं । भूल जाते हैं । परमात्मा खोया नही सिर्फ भूल गया है, विस्मरण है । सिर्फ विस्मरण है । इससे हिम्मत रखो । क्योंकि स्मरण आना कठिन नहीं है । अगर खो ही गया होता तो खोजना मुश्किल था । कहाँ खोजते, इतना विराट है जगत ! कहाँ खोजते ? असीम है ! कहीं से रास्ता न मिल सकता था ।

(परमात्मा मिल जाता है क्योंकि खोया नही है, केवल विस्मृत हुआ है । जैसे खीसे में ही रखे थे हीरे-जवाहरात और भूल गये । जब भी खीसे में हाथ डालोगे, पाओगे वही है । अप्रमाद का अर्थ है, खीसे में हाथ डालना । चेतना में भीतर हाथ डालना । भीतर जगाने की चेष्टा अपने आपको) ' अप्रमाद अमृत का पथ है और प्रमाद मृत्यु का ' ।

नीद मे और मृत्यु में बड़ा सामंजस्य है । समानता है । एकस्वरता है । नींद छोटी मृत्यु है । रोज रात तुम मर जाते हो । सुबह फिर उठते हो । दिन भर में जीवन थक जाता है, रात मर जाता है । रात तुम वही नहीं रहते जो तुम दिनभर थे । बिलकुल भूल ही जाता है कि दिन में तुम क्या थे, कौन थे । रात जब तुम सोते हो,

कभी तुमने ये खयाल किया, विचार किया, दिन में जो तुम्हारी पत्नी थी रात पत्नी नहीं रह जाती। याद ही नहीं रहती। दिन में जो तुम्हारा बेटा था रात बेटा नहीं रह जाता। दिन में जो तुम्हारा घर था रात तुम्हारा घर नहीं रह जाता। दिन में हो सकता है तुम भिखारी हो, रात सपने में सम्राट हो जाते हो। दिन हो सकता है सम्राट थे, रात भिखारी हो जाते हो। और दिन की जरा भी याद नहीं आती नींद मे। तो यह कहना ठीक नहीं है कि तुम नींद में वही होते हो जो तुम जागने में थे। मर ही जाते हो, जागरण का रूप तो खो ही जाता है। वो जो ढांचा था, तुम्हारा व्यक्तित्व था, बिलकुल विसर्जित हो जाता है। दिन में फिर तुम जागते हो। फिर तुम दूसरे व्यक्ति हो गये। फिर दुकान, बाजार, धन, दौलत, हिसाब-किताब, फिर वापिस लौट आया।

रोज आदमी नींद में मरता है। जैसे रोज नीद में मरता है दिन भर थकान के बाद, ऐसे ही मृत्यु भी जीवन भर की थकान के बाद मरना है। फिर जागता है, फिर नया जन्म हो जाता है। मौत का स्वभाव नीद जैसा है।

समाधि का स्वभाव भी नींद जैसा है। पतंजलि ने कहा है कि समाधि और सुषुप्ति एक जैसी है। इसीलिए तो जब संन्यासी मरता है तो उसकी कब्र को हम समाधि कहते हैं। हर किसीकी कब्र को समाधि नहीं कहते। समाधि हम तभी कहते हैं जब संन्यासी की कब्र बनाते है। क्यों? समाधि मृत्यु जैसी है। समाधि भी नीद जैसी है, सिर्फ एक फर्क है, छोटा — लेकिन बहुत बडा। समाधि जागती हुई नींद है।

इसलिए कृष्ण ने कहा है, 'या निशा सर्वभूतानाम् तस्याम जागर्ति संयमी'। जब सब सोते हैं, जब सबकी नींद है। 'सर्वभूतानाम्'। सारे भूत सो जाते हैं। पौधे भी सो जाते हैं, पत्थर भी सो जाते हैं, सारा संसार सो जाता है। 'तस्याम जागर्ति संयमी'। तब भी संयमी जागा रहता है। बाहर के ही भूत सो जाते हैं ऐसा नहीं, भीतर के भी तत्त्व सो जाते है — शरीर सो जाता है, शरीर के भीतर के सारे पाँचों तत्त्व सो जाते है — 'तस्याम जागर्ति संयमी', फिर भी भीतर चेतना जागती रहती है। सब तरफ नीद हो जाती है, लेकिन भीतर एक दिया होश का जलता ही रहता है। अडिग, अकंप। उस दिये को ही सँभाल लेना अप्रमाद है।

और नीद में तो मुश्किल होगा सँभालना अभी। पहले तो जिसे तुम जागना कहते हो उसमे सँभालो। जागने में सँभल जाए, तो संभव है कभी नीद में भी सँभल जाए। अभी तो जागने में भी सोए हुए हो। अभी तो नींद में जागने की बात ही फिजूल है। अभी तो जागना भी नींद जैसा है। अभी तो नीद को जागने जैसा बनाना बड़ा मुश्किल है। पहले जागने को ही वास्तविक जागना बनाओ। जिसे तुम अभी जागना कहते हो वो सिर्फ आँख का खुलना है, भीतर तो नींद बनी ही रहती है।

वो कहीं जाती नहीं। और तुम जरा आँख बंद करके कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ, तुम पाओगे, सपनों का सिलसिला शुरू। आँखें खुली थीं, बाहर के चित्रों में उलझ गये, तो भीतर के सपने दिखायी नहीं पड़ते। आँख बंद करो, दिवास्वप्न शुरू हो जाते हैं। सपनों का तारतम्य लगा है, सिलसिला लगा है।

तुम्हारा जागरण नाममात्र को जागरण है। बुद्धों का जागरण ही जागरण है। क्योंकि जो जागरण नींद में भी न टिके, वो जागरण क्या? कहते हैं, मित्र वही है जो संकट में काम आए। जागरण वही है जो नींद में काम आए। वो उसकी कसौटी है। नींद जिसको मिटा दे उसको जागरण कहना ही मत। वह नाममात्र का जागरण था।

'अप्रमाद अमृत का पथ है और प्रमाद मृत्यु का। अप्रमादी नहीं मरते; लेकिन प्रमादी तो मृतवत् ही हैं।'

अप्रमादी नहीं मरते हैं। बुद्धपुरुष कभी नहीं मरते हैं। मर नहीं सकते। मरते तो तुम भी नहीं हो, लेकिन इस सत्य का तुम्हें पता नहीं है। तुम मान लेते हो कि मर गये। तुम्हारी मान्यता ही सारी बात है। बुद्धपुरुषों में और तुममें मान्यता का भेद है। तथ्य का नहीं, सत्य का नहीं, धारणा का। तुम मान लेते हो कि मर गये। जब तुम मान लेते हो कि मर गये, तो मर गये।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक सुबह उठा और उसने अपनी पत्नी को कहा कि सुनो, मैं मर चुका। रात मर गया। सपना देखा था, लेकिन इतना प्रगाढ़ था सपना कि उसे भरोसा आ गया। पत्नी ने कहा पागल हुए हो, भले-चंगे बोल रहे हो, कहीं मरों ने खबर दी कि मर गये? मर गये तो मर गये। तुम बोल रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा, मैं कैसे मानूं? मुझे तो पक्का भरोसा हो गया है कि मैं मर गया हूँ। अब एक मुसीबत खड़ी हो गयी! बहुत समझाया, लेकिन वो माने न। वो कहे मैं और तुम्हारी मानूं? जबकि मुझे पक्का अनुभव हो रहा है कि मैं मर चुका हूँ।

उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। मनोवैज्ञानिक भी परेशान हुआ। ऐसा कोई केस पहले आया भी नहीं था कि जिंदा आदमी और कहे कि मैं मर गया हूँ। पागल उसने बहुत देखे थे, पागल भी ऐसा नहीं कहते; वो भी मानते हैं कि जिंदा है। उसने बहुत समझाने की कोशिश की लेकिन वो माने न। तो उसने सोचा कि कुछ ठोस प्रमाण खोजने पड़ेंगे तभी मानेगा, जिद्दी है। तो वो उसे ले गया पोस्ट-मार्टम घर में—अस्पताल में—जहाँ मुर्दों की लाशें इकट्ठी पड़ी थीं। उसने कहा कि नसरुद्दीन अगर तुम मर गये तो ये तुम काम करके देखो, ये छुरी लो, मुर्दों की लाश काटके देखो। काटके देखा। उसने पूछा कि खून निकलता है? नसरुद्दीन ने कहा, 'नहीं, खून नहीं निकलता।' ऐसी कई लाशें दिखलायीं। रोज सात दिन तक

ले गया। फिर उसने कहा, अब एक बात पक्की हो गयी है कि मरे हुए आदमी के शरीर से खून नहीं निकलता। उसने कहा, 'बिलकुल पक्की हो गयी।' घर लाया, तेज धारवाला चाकू लिया, उसकी अँगुली — नसरुद्दीन की अँगुली उसने काटी, खून का फव्वारा निकला। उसने कहा अब देखो, अब तुम मानते हो कि जिंदा हो? नसरुद्दीन ने कहा इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि अपनी वह धारणा गलत थी, मरे हुए आदमियों से भी खून निकलता है। वो मुर्दे धोखा दे गये। या मुर्दे कुछ गलत थे। या तुमने कोई चालबाजी की। लेकिन इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि मुर्दों से भी खून निकलता है।

आदमी की जब एक मान्यता हो, तो वह अपनी मान्यता को सब तरफ से सहारे देता है। तुम जो मान लेते हो उसको तुम सहारा देते हो। ये तुम्हारी मान्यता है कि तुम मरणधर्मा हो। इस मान्यता को सहारा भी मिल जाता है, क्योंकि शरीर मरणधर्मा है। तुम मरणधर्मा नहीं हो, तुम अमृतपुत्र हो। 'अमृतस्य पुत्रः'। लेकिन शरीर मरणधर्मा है, वह बहुत करीब है। और शरीर को तुमने करीब-करीब अपना होना मान लिया है। तुम ये भूल ही गये हो कि तुम शरीर से पृथक हो, शरीर से पार हो। शरीर नहीं था तब भी थे, शरीर नहीं होगा तब भी रहोगे। लेकिन शरीर से तुम ऐसे चिपट गये हो, और शरीर से ऐसा तादात्म्य हो गया है कि शरीर मरता है तो तुम मानते हो कि शरीर नहीं, तुम ही मरे।

इस तादात्म्य को तोड़ना पड़ेगा, ये मूर्छा है, ये प्रमाद है। अपने को शरीर मान लेना प्रमाद है। और जिसने अपने को शरीर माना, वो मरेगा, क्योंकि शरीर मरने वाला है। फिर ये भ्रांति बनी रहेगी कि शरीर मर गया तो मैं मरा।

जब तुम छोटे थे, बच्चे थे, तब तुम मानते थे मैं बच्चा हूँ। शरीर बच्चा था। तुम तो बच्चा कभी भी नहीं थे, तुम तो सनातन पुरुष हो। छोटे बच्चे में भी सनातन चैतन्य है। वो उतना ही प्राचीन है जितने बुद्ध और कृष्ण। वो तभी से है। अगर संसार शुरू हुआ हो तो तभी से है। और अगर कभी संसार शुरू न हुआ हो, तो वह तभी से है। फिर तुम जवान हो गये। तुम मानते हो तुम जवान हो। शरीर के साथ तुम अपने को मानते चले जाते हो। फिर तुम बूढ़े हो गये, हाथ-पैर कंपने लगे, लकड़ी टेकके चलने लगे, तुम मानते हो मैं बूढ़ा हो गया। शरीर ही हो रहा है। ये तो ऐसे ही है जैसे नया कपड़ा पहना, और तुमने समझा कि मैं नया। और फिर कपड़ा पुराना होने लगा, जराजीर्ण होने लगा, और तुमने समझा कि मैं पुराना और जराजीर्ण हो गया। ये तो ऐसे है कि जैसे कोई यात्री ट्रेन में यात्रा करे, पूना स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हो तो वह समझे कि मैं पूना। फिर बंबई गाड़ी पहुँच जाए तो वो समझे कि मैं बंबई। ये तो शरीर की यात्रा के स्टेशन हैं। कभी बीमार, कभी

स्वस्थ। कभी रुग्ण, कभी रुग्ण नहीं। कभी जन्म, कभी मृत्यु। ये तो शरीर के पड़ाव हैं।

लेकिन प्रमाद गहरा है, और छोटी-छोटी बात में छिपा है। भूख लगती है, तुम कहते हो मुझे भूख लगी। ज्ञानी कहेगा, शरीर को भूख लगी। तुम्हें क्या भूख लगेगी? तुम्हें कैसे भूख लगेगी? शरीर की जरूरत है; शरीर के लिए रोज नया पदार्थ चाहिए, ताकि शरीर अपने को सक्रिय रख सके, शक्तिवान रख सके। भूख लगती शरीर को, तुम्हें नहीं। प्यास लगती है शरीर को, तुम्हें नहीं। और जब तुम भोजन करते हो तब तुम्हारी आत्मा में थोड़े ही जाता है? जब तुम पानी पीते हो तब तुम्हारी आत्मा में थोड़े ही जाता है? शरीर से ही गुजरता है, शरीर से ही निकल जाता है। सिर में दर्द होता है तो तुम मान लेते हो कि मुझे दर्द हो रहा है। तुम दर्द से अलग हो।

मैं एक आदमी का जीवन पढ़ रहा था, एक अमेरिकन कवि का। कार का एक एक्सीडेंट हो गया और उसका हाथ पूरा पिचल गया। भयंकर पीड़ा थी उसे, अस्पताल भी बहुत दूर था। जिस राह से वे गुजर रहे थे, यात्रा को गये थे किसी जंगल की, वहां तक पहुँचने में तो समय लगेगा। उसकी पीड़ा असह्य थी। उसकी पत्नी ने कहा सुनो, मैं एक किताब पढ़ रही हूँ। वो कार में बैठी किताब पढ़ रही थी। झेन के ऊपर एक किताब थी। ध्यान के ऊपर एक किताब थी। उसने कहा कि इसमें बुद्ध का एक सूत्र दिया हुआ है। कर के देख लो, हर्ज क्या है?

बुद्ध अपने भिक्षुओं को एक सूत्र दिये थे कि जब तुम्हें पीड़ा हो, दर्द हो, चोट लगे, तो ऐसा मत मान लेना कि मुझे दर्द हो रहा है, या मुझे पीड़ा लगी है। उसी मान्यता से उपद्रव है। तुम आँख बंद कर लेना, अगर हाथ में चोट लगी या सिर में दर्द है, तो सारी चेतना को वहीं इकट्ठी कर लेना। जैसे सारी चेतना की ज्योति-किरणें इकट्ठी हो गयीं, और वही एक ही जगह फोकस हो गया। वहीं केंद्रित कर लेना, सिरदर्द हो रहा है तो वहीं केंद्रित कर लेना, और पूरी तरह गौर से सिरदर्द को देखना। इसी देखने में तुम अलग हो जाओगे — देखनेवाला और जो दिखायी पड़ रहा है, वो अलग हो जाएगा। और जब तुम्हारा दर्द पूरी तरह दिखायी पड़ने लगे, तब सिर्फ तीन दफे कहना दर्द... दर्द... दर्द...। भीतर ही कहना, पर बड़े सजगता से कहना, दर्द को देखते हुए कहना — दर्द! ये मत कहना कि मुझे दर्द हो रहा है, वही तो सम्मोहन है जिसमें आदमी उलझ जाता है। तुम सिर्फ इतना कहना, ये रहा दर्द... ये रहा दर्द... ये रहा दर्द...। तीन बार दर्द-दर्द कहना और समझना कि दर्द वहां है। और बुद्ध कहते हैं कि दर्द विलीन हो जाएगा।

उस स्त्री ने कहा कि ये किताब में ऐसा लिखा हुआ है। उस आदमी ने कहा फेंको इस किताब को बाहर। मैं मरा जा रहा हूँ, तुम्हें ज्ञान की पड़ी है। ये सब बकवास

है। इधर मेरा हाथ ... इतना भयंकर पीड़ा हो रही है, अब यहां ध्यान करने का ये कोई अवसर है ?

लेकिन कोई और तो उपाय न था। कोई दवा न थी पास, अस्पताल पहुँचते-पहुँचते घंटों लगते। पंद्रह-बीस मिनट बाद उसने कहा, अच्छा हर्ज क्या है, कोशिश कर के देख लें। कोई और उपाय भी नहीं है।

निरुपाय आदमी कभी-कभी ठीक बातें कर लेते है। जब तक उपाय होते हैं तब तक कौन ठीक बातें करे? अगर अस्पताल पास होता तो उसने प्रयोग न किया होता। अगर 'एस्प्रो' पास होती तो उसने 'ऐस्प्रो' पर भरोसा किया होता, बुद्ध पर नहीं। आदमी की मूढ़ता का कोई हिसाब है! 'ऐस्प्रो' पर ज्यादा भरोसा कर ले, ध्यान पर नहीं।

न कोई उपाय देखकर, मजबूरी में, असहाय अवस्था मे, वो लेट गया कार में और उसने कहा, अच्छा, मैं कर के देखता हूँ। सारी चेतना तो अपने आप दौड़ी जा रही थी। जब कहीं चोट होती है तो चेतना अपने आप उस तरफ दौड़ती है, और बुद्ध ने कहा सब इकट्ठा कर लेना, जैसे पूरा शरीर भूल हो जाए, बस उतनी ही जगह याद रह जाए जहाँ दर्द है। वो दर्द को करीब लाया, चेतना को दर्द के करीब लाया, दर्द ऐसा हो गया जैसाकि छुरी की धार हो। तेज हो गया, पैना हो गया, भयंकर हो गया, और भी त्वरा पकड़ ली उसने, तेजी आ गयी, एक लपट की तरह मालूम होने लगा, और तब उसने कहा, दर्द ... दर्द ... दर्द ...। और वह चकित हुआ, उसे भरोसा न आया कि क्या हुआ! दर्द एकदम विलीन हो गया। तादात्म्य टूट गया।

इसे तुम प्रयोग करके देखना। प्यास लगे तो ध्यान रखना, तुम्हें नहीं लगी है, शरीर को लगी है। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, जब भी कोई तुम्हें चीज ज्यादा सताने लगे तो तीन बार, ध्यान करके तीन बार कहना — प्यास ... प्यास ... प्यास ...! और तुम पाओगे प्यास अलग हो गयी। और जैसे ही प्यास अलग हो जाती है, उसकी पकड़ छूट जाती है। तब तुम्हें ऐसा लगता है जैसे प्यास किसी और को लगी, भूख किसी और को लगी, बूढ़ा कोई और हुआ, रोग किसी और को आया, तुम अलग हो जाते हो।

ये अलग हो जाने की कला ही अप्रमाद है। और जो जीवन के रोज-रोज छोटे-छोटे में अलग होता गया, बूंद-बूंद चोट पड़ी चट्टान पर अँधेरे की, बूंद-बूंद चोट पड़ी चट्टान पर अज्ञान की, बूंद-बूंद चोट पड़ी चट्टान पर तादात्म्य की, और जो रोज-रोज प्यास लगी तब भी उसने ध्यान से अपने को अलग किया; पानी दिया, तृप्ति हुई, तो भी अपने को अलग रखा; कहा कि शरीर को प्यास थी, शरीर को तृप्ति हुई; शरीर की भूख थी, शरीर की भूख मिटी; शरीर को रोग था, शरीर का रोग गया;

और हर घड़ी अपने को अलग रखा, अलग-रखा, अलग रखा; अपने को बचाया और दूर रखा, अपने को सँभाला; होश को खोने न दिया, शरीर के साथ जुड़ने न दिया; तो अंतिम घटना जो घटेगी वो ये, जब मौत आएगी तब ये जीवन भर का अनुभव तुम्हारे साथ होगा। तुम मौत को भी देख पाओगे कि मौत आती है शरीर को, मुझे नहीं।

लेकिन इसे आज से साधोगे तो ही मौत में सध पाएगा। ऐसा मत सोचना कि मरते वक्त ही साध लेंगे। जब प्यास में न सधेगा तो मौत में कैसे सधेगा? जब सिरदर्द में न सधेगा तो मौत में कैसे सधेगा? भूख में कोई मर नहीं जाता है एक दिन में। अगर आदमी भूखा रहे तीन महीने, तब मरेगा। जब एक दिन की भूख में न सधा और तुम खो गये, और एक हो गये शरीर के साथ, तो मृत्यु में कैसे सधेगा? मृत्यु में तो चेतना शरीर से पूरी तरह अलग होगी, और तुम्हारा ध्यान शरीर पर रहेगा। क्योंकि जिंदगी भर उसीका अभ्यास किया, उसीका सम्मोहन किया — तो तुम भूल-ही जाओगे कि तुम नहीं मर रहे हो, तुम समझोगे कि मैं मर रहा हूँ।

कोई कभी मरा नहीं। कोई कभी मर नहीं सकता। इस संसार में जो है वो सदा से है, सदा रहेगा। रूपांतरण होते हैं, घर बदलते हैं, देह बदलती है, वस्त्र बदलते हैं, मृत्यु होती ही नहीं। मृत्यु असंभव है। कोई मरेगा कैसे? जो है, वह नहीं कैसे हो जाएगा? जो है, वह रहेगा; रहेगा, सदा-सदा रहेगा।

लेकिन, फिर भी लोग रोज मरते हैं। रोज तड़फते हैं। बुद्ध जब कहते हैं अप्रमादी नहीं मरते, तो तुम यह मत समझना कि वो मरते नहीं, और उनको मरघट नहीं ले जाना पड़ता। वो तो बुद्ध को भी ले जाना पड़ा। नहीं मरते, क्योंकि वे जानते हैं वे अलग हैं। तुम्हारे लिए तो वे भी मरते हैं, स्वयं के लिए वे नहीं मरते। क्योंकि मृत्यु की घड़ी में भी वे अपने भीतर के दिये को देखते चले जाते हैं। 'या निशा सर्वभूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी'। अँधेरी रात में, नींद में ही नहीं मृत्यु की घनघोर अमावस में भी : 'तस्याम् जागर्ति संयमी।' फिर भी संयमी जागा रहता है, देखता रहता है, सजग रहता है।

काशी के नरेश का एक ऑपरेशन हुआ उन्नीस सौ दस में। पाँच डॉक्टर यूरोप से ऑपरेशन के लिए आए। पर काशी के नरेश ने कहा कि मैं किसी तरह का मादक-द्रव्य छोड़ चुका हूँ; मैं ले नहीं सकता। तो मैं किसी तरह की बेहोश करनेवाली कोई दवा, कोई इंजेक्शन, वह भी नहीं ले सकता, क्योंकि मादक-द्रव्य मैंने त्याग दिये हैं। न मैं शराब पीता हूँ, न सिगरेट पीता हूँ, चाय भी नहीं पीता। इसलिए तो ऑपरेशन तो करें आप — अपेंडिक्स का ऑपरेशन था, बड़ा ऑपरेशन था — लेकिन मैं कुछ

लूंगा नहीं बेहोशी के लिए । डॉक्टर घबड़ाए, उछलने-कूदने लगे तो बहुत मुश्किल हो जाएगी ! आप सह न पाएँगे । उन्होंने कहा कि नहीं, मैं सह पाऊँगा । बस इतनी ही मुझे आज्ञा दें कि मैं अपना गीता का पाठ करता रहूँ ।

तो उन्होंने प्रयोग करके देखा पहले । उँगली काटी, तकलीफें दीं, सुइयां चुभायीं और उनसे कहा कि आप अपना ..., वो अपना गीता का पाठ करते रहे । कोई दर्द का उन्हें पता न चला । फिर ऑपरेशन भी किया गया । वह पहला ऑपरेशन था पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में, जिसमें किसी तरह के मादक-द्रव्य का कोई प्रयोग नहीं किया गया ।

काशी-नरेश पूरे होश में रहे । ऑपरेशन हुआ । डॉक्टर तो भरोसा न कर सके। जैसेकि लाश पड़ी हो सामने, जिंदा आदमी न हो, मुर्दा आदमी हो । ऑपरेशन के बाद उन्होंने पूछा कि ये तो चमत्कार है, आपने किया क्या ? उन्होंने कहा, मैंने कुछ किया नहीं । मैं सिर्फ होश सँभाले रखा । और गीता जब मैं पढ़ता हूँ, इसे जन्म भर से पढ़ रहा हूँ, और जब मैं गीता पढ़ता हूँ ... और यही पाठ का अर्थ होता है । पाठ का अर्थ ऐसा नहीं होता कि बैठे हैं, नींद आ रही, तंद्रा आ रही, दोहराए चले जा रहे हैं; मक्खी उड़ रहीं और गीता पढ़ रहे हैं । पाठ का ये मतलब नहीं होता। पाठ का अर्थ होता है बड़ी सजगता से, कि गीता ही रह जाए, उतने ही शब्द रह जाएँ, सारा संसार खो जाए ... तो उन्होंने कहा गीता के पाठ से मुझे होश बनता है, जाग्रति आती है । बस, उसका मैं पाठ जब तक करता रहूँ तब तक मुझसे भूल-चूक नहीं होती । तो मैं उसे दोहराता रहूँ तो फिर शरीर मुझसे अलग है । ' ना हन्यते हन्यमाने शरीरे ' । तब मैं जानता हूं कि शरीर को काटो, मारो, तो भी तुम मुझे नहीं मार सकते । ' नैनं छिदंति शस्त्राणि ' । तुम छेदो शस्त्रों से, तुम मुझे नहीं छेद सकते । बस इतनी मुझे याद बनी रही, उतना काफी था; मैं शरीर नहीं हूँ ।

हाँ, अगर मैं गीता न पढ़ता होता तो भूल-चूक हो सकती थी । अभी मेरा होश इतना नहीं है कि सहारे के बिना सध जाए । पाठ का यही अर्थ होता है । पाठ का अर्थ अध्ययन नहीं है, पाठ का अर्थ गीता को दोहराना नहीं है, पाठ का बड़ा बहुमूल्य अर्थ है । पाठ का अर्थ है गीता को मस्तिष्क से नहीं पढ़ना, गीता को बोध से पढ़ना । और गीता पढ़ते वक्त गीता जो कह रही है उसके बोध को सँभालना । निरंतर-निरंतर अभ्यास करने से, बोध सँभल जाता है । पर काशी-नरेश को भी डर था, अगर सहारा न लें तो बोध शायद खो जाए ।

बुद्ध ने तो कहा है कि शास्त्र का भी सहारा न लेना, सिर्फ श्वाँस का सहारा लेना । क्योंकि शास्त्र भी जरा दूर है । श्वाँस भीतर जाए, देखना; श्वाँस बाहर जाए, देखना । श्वाँस की जो परिक्रमा चल रही है, श्वाँस की जो माला चल रही

है, उसे देखना। इसको बुद्ध ने 'अनापानसतीयोग' कहा। श्वाँस का भीतर आना, बाहर जाना, इसे तुम देखते रहना। श्वाँस भीतर जाए, तो तुम देखते हुए भीतर जाना। श्वाँस नासापुटों को छुए तो तुम वहाँ मौजूद रहना, गैर-मौजूदगी में न छुए। तुम होशपूर्वक देखना कि श्वाँस ने नासापुटों को छुआ। ऐसा भीतर कहने की जरूरत नहीं है, ऐसा साक्षात्कार करना। फिर श्वाँस भीतर चली, श्वाँस के रथ की यात्रा शुरू हुई, वो तुम्हारे फेफड़ों में गयी, और गहरी गयी, उसने तुम्हारे नाभिस्थल को ऊपर उठाया, देखते जाना। उसके साथ ही साथ जाना। छाया की तरह उसका पीछा करना। फिर श्वाँस एक क्षण को रुकी, तुम भी रुक जाना। फिर श्वाँस वापिस लौटने लगी, तुम भी लौट आना। श्वाँस बाहर चली गयी। फिर श्वाँस भीतर आए। इस श्वाँस की परिक्रमा का तुम पीछा करना होशपूर्वक।

तब बुद्ध ने कहा ये सबसे सुगम सहारा है। पढ़ा-लिखा हो, गैर पढ़ा-लिखा हो, पंडित हो, गैर पंडित हो, सभी साध लेंगे। श्वाँस तो सभी को मिली है। ये प्रकृतिदत्त माला है, जो सभी को जन्म के साथ मिली है।

और श्वाँस की एक और खूबी है कि श्वाँस तुम्हारी आत्मा और शरीर का सेतु है। उससे ही शरीर और आत्मा जुड़े हैं। अगर तुम श्वांस के प्रति जाग जाओ, तो तुम पाओगे शरीर बहुत पीछे छूट गया, बहुत दूर रह गया। श्वाँस में जागकर तुम देखोगे, तुम अलग हो, शरीर अलग है। श्वाँस ने ही जोड़ा है, श्वाँस ही तोड़ेगी।

तो मृत्यु के वक्त जब श्वाँस छूटेगी, अगर तुमने कभी श्वाँस के प्रति जागकर न देखा हो, तो तुम समझोगे गये, मरे। वह केवल भ्रांति है, आत्मसम्मोहन है। वो लंबा सुझाव है, जो तुमने सदा अपने को दिया था और मान लिया है। वो एक भ्रांति है। लेकिन अगर तुम जागे रहे, और तुमने श्वाँस का जाना भी देखा, तुमने देखा कि श्वाँस बाहर चली गयी और भीतर नहीं आयी और तुम देखते रहे — श्वाँस बाहर चली गयी, लौटी नहीं, और तुम देखते रहे — तब तुम कैसे मरोगे? वो जो देखता रहा श्वाँस का जाना भी, वो तो अभी भी है। वह तो सदा ही है।

अप्रमादी नहीं मरते, और प्रमादी तो मरे हुए ही हैं। उनको जिंदा कहना ठीक नहीं। प्रमादी को क्या जिंदा कहना! सोए हुए आदमी को क्या जिंदा कहना!

अमरीका में एक लड़की की जान अटकी है। वो बेहोश पड़ी है। कई महीने हो गये हैं, और चिकित्सक कहते हैं वो होश में कभी आएगी नहीं। बीमारी असाध्य है। लेकिन तीन-चार साल तक, और ज्यादा भी, ऑक्सीजन के सहारे और यंत्रों के सहारे वह जिंदा रह सकती है। वह जिंदा है। मगर उसको क्या जिंदा कहो! बिस्तर पर पड़ी है बेहोश, कई महीने हो गये, यंत्र टँगे हैं चारों तरफ, फेफड़ा यंत्र से चल रहा है, श्वाँस यंत्र से ली जा रही है, शरीर में खून डाला जाता है।

माँ-बाप पीड़ित हैं। क्योंकि माँ-बाप कहते हैं ये कोई जिंदगी है ? और ऐसी ही वो बर्षों तक अटकी रहेगी। इससे तो बेहतर है मर जाए। कभी-कभी मौत बेहतर होती है जिंदगी से। तो माँ-बाप ने आज्ञा चाही है अदालत से, क्योंकि अदालत झंझट करती है खड़ा बीच में, बाप चाहते हैं कि जो ऑक्सीजन की नली है वो अलग कर ली जाए, ताकि लड़की मर जाए। कोई माँ-बाप पे खर्चा भी नहीं पड़ रहा है, सरकार खर्च उठा रही है, लेकिन माँ-बाप को देखके पीड़ा होती है कि ये क्या सार है इसमें ? और पता नहीं इसको भीतर कितनी पीडा हो रही है ! इससे तो शरीर से छुटकारा हो जाए। लेकिन अदालत ने आज्ञा नहीं दी। क्योंकि अदालत कहती है, ये तो हत्या करना होगा श्वाँस की नली निकालना। ये तो उसे मारना होगा। वो अपने आप मरे तब ठीक। अब कैसी दुविधा है ? इसको जीवन कहोगे ? ये जीवन तो नहीं हुआ। ये तो मरे हुए होना हुआ। मरने से भी बदतर हुआ। मरने में भी एक जीवंतता होती है। उतनी जीवंतता भी नहीं है। लेकिन जिसे तुम जीवन कह रहे हो, वह भी बस ऐसा ही है कमोबेश।

जिंदगी है या कोई तूफान है
हम तो इस जीने के हाथों मर चले

इसे जिंदगी क्या कहो जिसके हाथों मौत ही आती है, और कुछ भी नहीं आता। फल से वृक्ष पहचाने जाते हैं। और अगर तुम्हारे जीवन में मृत्यु का ही फल लगता है अंत में, तो वृक्ष पहचान लिया गया, ये कोई जीवन न था। जीसस ने कहा है, 'जिस जीवन में महाजीवन के फल लगें वही जीवन है'। इस जीवन में तो मृत्यु के फल लगते हैं।

'पंडितजन अप्रमाद के विषय में यह अच्छी तरह जानकर आर्यों के, बुद्धों के उचित आचरण में निरत रहकर अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।'

बुद्ध के समय तक पंडित शब्द खराब नहीं हुआ था। पंडित का अर्थ होता है शाब्दिक —प्रज्ञावान। जो प्रज्ञा को उपलब्ध हो गया है। बुद्ध के समय तक पंडित शब्द समादृत था। आज नहीं है। आज पंडित शब्द एक गंदा शब्द है। उसमें रोग लग गया। अब पंडित हम उसको कहते हैं जिसको शास्त्र का ज्ञान है। बुद्ध के समय में पंडित उसे कहते थे जिसे स्वयं का ज्ञान है।

'पंडितजन अप्रमाद के विषय में यह अच्छी तरह जानकर आर्यों के, बुद्धों के उचित आचरण में निरत रहकर अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।'

वे होश में जागके आनंदित होते हैं। और कोई आनंद है भी नहीं। तंद्रा है दुख, निद्रा है नर्क, लेकिन हमारी आँखें नहीं खुलती।

हजार बार भी वादा न हो वफा लेकिन

मैं उनकी राह में आँखें बिछाके देख तो लूं

'हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन'। आशाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। कोई वादा वफा नहीं होता। भरोसे दिये जाते हैं और टूट जाते हैं। लेकिन फिर भी आदमी का बेहोश मन है —'मैं उनकी राह में आँखें बिछाके देख तो लूं'। लेकिन एक बार और सही, फिर एक बार और सही। अब तक नहीं हुआ है, कौन जाने कल हो जाए, एक बार और सही। आशा मरती नहीं। आशा हारती है, पराजित होती है, हताश होती है, मरती नहीं। आशा यही कहे चली जाती है, अब तक नहीं हुआ है, ठीक, लेकिन कौन जाने कल हो जाए। 'हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन, मैं उनकी राह में आँखें बिछाके देख तो लूं'। ऐसे ही आँखें बिछा-बिछाके तुम अपने को गवाँ देते हो। आखीर में पाते हो कभी कोई वादा वफा नहीं होता। वासना आश्वासन बहुत देती है, पूरा कोई आश्वासन कभी नहीं होता। आश्वासन देने में वासना बड़ी कुशल है।

मैंने एक बड़ी पुरानी कहानी सुनी है, कि एक आदमी ने बड़ी भक्ति की परमात्मा की। परमात्मा प्रसन्न हुआ, और उस आदमी से पूछा, क्या चाहता है? उसने कहा, आप मुझे कोई एक ऐसी चीज दे दें कि उससे मैं जो भी माँगूं वो मेरी माँग पूरी हो जाए। तो परमात्मा ने उसे एक शंख दिया, और कहा कि इस शंख को तू जब भी बजाएगा और इससे जो भी तू कहेगा वो पूरा हो जाएगा। तू कहेगा लाख रुपये चाहिए, शंख बजके पूरा भी न हो पाएगा, ध्वनि विलीन भी न हो पाएगी, लाख रुपये मौजूद हो जाएँगे। वो आदमी तो बड़ा प्रसन्न हुआ। अब तो कोई बात ही न रही। जो भी माँगता, मिल जाता।

उस घर में एक महात्मा एक बार मेहमान हुए। महात्मा ने ये शंख देखा। महात्मा ने कहा ये कुछ भी नहीं है, मेरे पास महाशंख है। उस साधारण गृहस्थ आदमी ने कहा, महाशंख! महाशंख की क्या खूबी है? तो महात्मा ने कहा, महाशंख की खूबी ये है कि माँगो लाख, देता है दो लाख। ये तुम्हारा तो एक ही लाख देता है न? मेरा महाशंख है, उसको माँगो दो लाख, वो कहे दे चार लाख। गृहस्थ को लोभ बढ़ा। उसने कहा, अब आप तो महात्माजन हैं, आप तो सब छोड़ ही चुके, शंख आप ले लो, महाशंख मुझे दे दो। महात्मा ने कहा खुशी से, हम तो त्यागी हैं, रख लो। महाशंख महात्मा छोड़ गये, शंख ले गये। और उसी रात वो विदा भी हो गये। सुबह — रात भर सो न सका गृहस्थ — सुबह होते ही स्नान-ध्यान करके पूजा की। महाशंख फूँका। कहा कि लाख रुपये इसी वक्त चाहिए। महाशंख ने कहा लाख! अरे, दो लाख लो। लेकिन कुछ आया-करा नहीं। उसने कहा कि भाई क्या हुआ दो लाख का? महाशंख ने कहा, दो लाख! अरे, चार लाख लो। मगर कुछ

आया-गया नहीं। उसने पूछा -- कुछ दोगे भी? उसने कहा तुम जो भी माँगोगे उससे दुगुना दूँगा, मगर दूँगा कभी नही। तुम दस लाख माँगो, मैं बीस लाख दूँगा। यही महाशंख है। इसलिए महाशंख जब किसीको तुम कहते हो उसका मतलब ये होता है -- किसी काम के नहीं। महाशंख! वायदे बहुत, आश्वासन बहुत!

ये जिंदगी एक महाशंख है। तुम इससे कुछ भी माँगो, जिंदगी आशा बँधाती है-- अरे! इतने में क्या होगा? हम दुगुना देने को तैयार हैं। और तुम आशा किये चले जाते हो। जिसने आशा न छोड़ी वो धार्मिक नहीं हो पाता। जिसने आशा की ये व्यर्थता न देखी, जिसने आशा का ये महाशंखपन न पहचाना, वो धार्मिक नहीं हो पाता।

'वे ध्यान का सतत अभ्यास करनेवाले और सदा दृढ़ पराक्रम करनेवाले धीर पुरुष अनुत्तर योगक्षेम रूप निर्वाण को प्राप्त होते है।'

अप्रमाद यानी ध्यान। बुद्ध ने कहा है कि ऐसा अलग बैठके घड़ी भर ध्यान कर लेना काफी नही है। अच्छा है, न करने से बेहतर है, काफी नही है। ध्यान का सातत्य होना चाहिए। जैसे श्वांस चलती है -- जागो, सोओ, उठो, बैठो -- ऐसे ही ध्यान भी चलना चाहिए। ऐसा न हो कि कभी ध्यान कर लिया, फिर भूल गये। क्योंकि अगर घड़ी भर ध्यान किया और फिर तेईस घंटे न किया तो घड़ी भर में तुम जो सफाई करोगे, तेईस घंटे में फिर कचरा लद जाएगा। ये तुम रोज साफ करोगे, रोज गंदा हो जाएगा। ध्यान तो जीवन की शैली बन जानी चाहिए।

'वे ध्यान का सतत अभ्यास करनेवाले और सदा दृढ़ पराक्रम करनेवाले धीर पुरुष अनुत्तर योगक्षेम रूप निर्वाण को प्राप्त होते हैं।'

वे उस जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ अमृत है। वे उस जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ अहंकार का दिया बुझ जाता है और जहाँ जीवन का दिया जलता है। वे उस जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ शरीर आवश्यक नहीं रह जाता, आत्मा पर्याप्त होती है। वे उस जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ सब सीमाएँ गिर जाती हैं और असीम उपलब्ध हो जाता है। जैसे बूंद सागर में खो जाए, ऐसे वे सागर में खो जाते है। लेकिन ये खोना नही है, ये पाना है। क्योंकि वे सागर हो जाते हैं। बूंद कुछ खोती नही, सब कुछ पा लेती है।

'जो उत्थानशील, स्मृतिवान, शुचि कर्म वाला तथा विचारकर काम करनेवाला है, उस संयत, धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी पुरुष का यश बढ़ता है।'

बुद्ध कहते हैं, यश ही चाहो तो ध्यान का यश चाहना, धन का नहीं। यश ही चाहो तो ज्ञान का यश चाहना, पदार्थ का नहीं। यश ही चाहो तो अंतर्ज्योति का यश चाहना। बाहर कितनी ही रोशनी कर लो और भीतर अँधेरा रहे; और लोग

तुम्हारी कितनी ही प्रशंसा करें तुम खुद अपने भीतर आनंद से न भर पाए, यशस्वी न हुए, उस यश का क्या मूल्य है ? किसको धोखा देते हो ? ये तो अपने ही हाथ अपनी फाँसी हो जाएगी। ये तो आत्मघात है । यश एक ही है, बुद्ध कहते हैं, वो ध्यान का है। फिर कोई पहचाने, न पहचाने, उससे दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है।

दो तरह के यश हैं। एक तो जो दूसरे तुम्हें देते हैं। और एक, जिससे दूसरे का कोई प्रयोजन नहीं, तुम अपनी अंतरात्मा में जिसे जन्माते हो। एक तो धन का यश है, पद का यश है, राजनीति है, संसार का फैलाव है, वहाँ का यश है। उस यश को बहुत मूल्य मत देना, क्योंकि मौत उस सब को छीन लेगी। कोई याद रखता है किसीको ? इधर मरे नहीं कि उधर लोग अर्थी तैयार करने लगते हैं। घर के लोग रोने-धोने में लगे ही होते हैं, तो पास-पड़ोसी आ जाते हैं । वो अर्थी तैयार करने लगते हैं । जल्दी पड़ती है, विदा करो। भुलाओ जल्दी । मरे नहीं कि लोग भुलाने को तत्पर हो जाते है । मरघट ले जाने को उत्सुक हो जाते हैं। चार दिन बाद कहानी भी नहीं रह जाती। कौन याद करता है ? किसको पड़ी है ? पानी पे खींची गयी लकीर है ये जीवन। खिंच भी नहीं पाती और मिट जाती है।

एक और भी यश है। वो यश किसी दूसरे से नहीं मिलता। वो आत्मप्रतिष्ठा से मिलता है। वो स्वयं में केंद्रित होने से मिलता है। वो स्वयं के ज्ञान से मिलता है। वो ध्यान का यश है।

'मेधावी पुरुष को उत्थान, अप्रमाद, सयम और दम के द्वारा ऐसा द्वीप बना लेना चाहिए जिसे बाढ़ न डुबा सके।'

बाढ़ यानी मौत । तुमने जो यश बनाया है वो डूब जाएगा सब। वो कागज की नाव है। घर के हौज में चलाते हो एक बात, जीवन के सागर में न चलेगी। कागज की नाव पर धोखे में मत पड़ना। दूसरे के विचार और दूसरे के मंतव्य और दूसरे के द्वारा मिली प्रशंसा कागज की नाव है। ताश का बनाया महल है। जरा सा हवा का झोंका, समाप्त हो जाएगा।

बुद्ध कहते हैं, 'मेधावी पुरुष को उत्थान...'। उत्थान एक प्रक्रिया है जिसमें तुम जीवन-चेतना को ऊपर की तरफ उठाते हो।

साधारणतः आदमी की चेतना नीचे की तरफ बहती है, कामवासना की तरफ बहती है। कामवासना का केंद्र सबसे नीचा केंद्र है आदमी के जीवन में । वहाँ से चेतना नीचे की तरफ जाती है। उत्थान एक प्रक्रिया है बुद्ध-योग की, जिसमें तुम चेतना को ऊपर की तरफ उठाते हो। जब भी तुम पाते हो चेतना नीचे की तरफ जा रही है, तब तुम उसे ऊपर खींचते हो। तुम उसे सहस्त्रार की तरफ ले जाते हो। तुम

आँख बंद कर लेते हो, और सिर के ऊपरी भाग में तुम सारी जीवन-ऊर्जा को खींचते हो। इसका तुम प्रयोग करके देखना। शीर्षासन इसीलिए शुरू हुआ कि उससे सहारा मिल जाता है। क्योंकि अगर तुम सिर के बल खड़े हो जाओ तो ऊर्जा आसानी से सिर की तरफ बहनी शुरू हो जाती है। ऊर्जा वैसे ही है जैसे जल नीचे की तरफ बहता है। शीर्षासन का भी यही अर्थ है कि जीवन-ऊर्जा को तुम मस्तिष्क की तरफ लाओ। कामकेंद्र सबसे निम्न है, और सहस्त्रार सबसे ऊपर। और जो व्यक्ति सहस्त्रार में जीवन को ले आता है, जो वहां से जीने लगता है, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं।

साधारणतया लोगों का जब प्राण निकलता है तो कामकेंद्र से निकलता है। जननेंद्रिय से निकलता है। सिर्फ योगियों का, समाधिस्थ पुरुषों का प्राण सहस्त्रार से निकलता है। तुम जहां हो वहीं से तो निकलोगे। तुम्हारा मन जहां-जहां घूमता था, जहां-जहां भटकता था, वहीं से तो मरेगा। और जो कामकेंद्र से मरता है वह फिर जन्म ले लेता है। क्योंकि कामवासना और जन्म की आकांक्षा है। जो सहस्त्रार से विदा होता है फिर उसका कोई जन्म नहीं। सहस्त्रार से तुम परमात्मा में लीन होते हो, और कामकेंद्र से तुम प्रकृति में लीन होते हो। कामकेंद्र प्रकृति से जोड़ता है, सहस्त्रार परमात्मा से।

'उत्थानशील, अप्रमाद से भरा, संयम और दम के द्वारा ऐसा द्वीप बना लेना चाहिए जिसे बाढ़ न डुबा सके।'

जिसे मौत न डुबा सके। ऐसा द्वीप बन जाता है। सहस्त्रार की ही चर्चा है। वहां तुम्हारी चेतना इकट्ठी होती चली जाती है। धीरे-धीरे शरीर से तुम अलग हो जाते हो। धीरे-धीरे चैतन्य ही तुम्हारी एकमात्र भावदशा रह जाती है, होश प्रगाढ़ हो जाता है। सग्रहीभूत हो जाता है। सघन हो जाता है। तुम तब नीचे नहीं भटकते। बुद्ध ने इसको कहा है मेघ-समाधि। जैसेकि बादल ऊपर डोलता है। बरस जाए तो जमीन पर धाराएँ बहती हैं। अन्यथा जल आकाश में भटकता है, ऊपर उठ जाता है, उत्थान हो जाता है। जब कोई व्यक्ति अपनी जीवन-चेतना को शरीर से निरंतर अलग करता रहता है, तो धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में मेघ-समाधि का जन्म होता है। उसकी सारी चेतना एक मेघ की भाँति उसके मस्तिष्क में समाहित हो जाती है। सारा शरीर नीचे पड़ा रह जाता है। वह आकाश में घूमते एक सफेद बादल की तरह हो जाता है। और जब प्राण वहां से निकलते हैं तो मृत्यु तुम्हें छू भी नहीं पाती। वहां से अमृत का द्वार है। लेकिन तुम उस द्वार पर खड़े हो जहाँ सिर्फ आशाओं के आश्वासन हैं। तुम महाशंख के सामने प्रार्थनाएँ कर रहे हो।

कोई न आया न आएगा लेकिन

क्या करें गर इंतजार न करें

न कोई कभी आया वहाँ उस द्वार पर, न कोई कभी आएगा, लेकिन, 'क्या करें गर इंतजार न करें'! आदमी कहता है, क्या करें? क्योंकि तुम्हें एक ही द्वार का पता है, वही तुम होना जानते हो। उत्थान करो चेतना का, जागो, खींचो अपने को ऊपर की तरफ; दृढ़ता, पराक्रम का, संयम का एक द्वीप बनाओ।

'दुर्बुद्धि लोग प्रमाद में लगते हैं, और बुद्धिमान पुरुष श्रेष्ठ धन की तरह अप्रमाद की रक्षा करते हैं।'

लेकिन ये तभी संभव है जब तुम जिंदगी की असलियत को पहचान लो। इस जिंदगी की असलियत को पहचानते ही तुम्हारे कदम दूसरी जिंदगी की तरफ उठने शुरू हो जाते हैं। 'दुर्बुद्धि, मूढ़ लोग प्रमाद में लगते हैं।' इससे बड़ी मूढ़ता और क्या हो सकती है कि जिस द्वार पर कभी कोई नहीं आया, वहीं तुम प्रतीक्षा किये बैठे हो। कब तक बैठे रहोगे? कितने जन्मों से तुम बैठे रहे हो इसी कामवासना के द्वार पर। कब तक बैठे रहोगे? बहुत देर हो गयी। ऐसे ही बहुत देर हो गयी। अब जाग जाना चाहिए। कितनी बार मर चुके हो, फिर भी खयाल न आया कि जिस वृक्ष में हर बार मृत्यु का फल लगता है वो वृक्ष बीज से ही गलत है। जो जागे, जिन्होंने जरा गौर से जिंदगी को देखा, उन्होंने क्या पाया? उन्होंने कुछ और ही बात पायी --

मैंने पूछा जो जिंदगी क्या है
हाथ से गिर के जाम टूट गया

जिन्होंने भी पूछा, जिन्होंने भी जरा होश सँभाला, जरा जिंदगी को गौर से देखा, 'हाथ से गिर के जाम टूट गया'। बेहोशी में ही जिंदगी का जाम सँभला है। होश आते ही टूट जाता है, टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। पर हो ही जाए तो अच्छा। तुम जिसे जिंदगी कहते हो वो टूट ही जाए तो अच्छा। क्योंकि तुम और किसी तरह जागोगे नहीं। तुम्हारा सपना किसी तरह बिखर ही जाए तो अच्छा।

पर तुम अपने अनुभव को झुठलाए चले जाते हो। आदमी अनुभव से सीखता ही नहीं। तुम अपने सारे अनुभव को भूलते चले जाते हो, कल भी तुमने क्रोध किया, परसों भी क्रोध किया, क्रोध से कुछ पाया? कुछ भी नहीं पाया। तुम भलीभाँति जानते हो। किसी बुद्धपुरुष की जरूरत नहीं है तुम्हें ये समझाने को। लेकिन आज भी तुम क्रोध करोगे, और कल भी तुम क्रोध करोगे। क्या तुम अनुभव से कभी कुछ सीखते ही नहीं? क्या अनुभव का तुम कभी कोई इत्र नहीं निचोड़ते? क्या अनुभव आते हैं और चले जाते हैं और तुम चिकने घड़े की तरह रह जाते हो? तुमने कल भी वासना की थी, परसों भी वासना की थी, कौन से फूल खिले? कौन से

वाद्य बजे ? कौन सा उत्सव हुआ ? हर बार हारे, हर बार थके, हर बार विषाद ने मन को घेरा, हर बार पीड़ा अनुभव की, संताप अनुभव किया, फिर-फिर भूल गये। ऐसा लगता है कि तुमने अपने को धोखा देने की कसम खा रखी है।

तुम कहाँ वस्ल कहाँ वस्ल के अरमान कहाँ
दिल के बहलाने को एक बात बना रक्खी है

तुम्हें भलीभाँति पता है कि दिल को बहला रहे हो। लेकिन इस दिल का बहलाना बड़ा महँगा सौदा है। जो मिल सकता था वो तुम गवाँ रहे हो, और जो मिल नहीं सकता उस द्वार पर हाथ जोड़े खड़े हो।

जागो। थोड़े से भी जागोगे, एक किरण काफी है अँधेरे को मिटाने को। मिट्टी का छोटा-सा दिया काफी है, कोई सूरज थोड़ी ' चाहिए ? लेकिन जिस घर में पहली किरण आ गयी, उस घर में सूरज का आगमन शुरू हो गया। और जिस घर में मिट्टी का दिया जल गया, देर नहीं है, जल्दी ही हज़ार-हज़ार सूरज भी जलेंगे। थोड़ी सी किरण भी; जरा सा बोध भी; पर बैठे मत रहो, कोई और इस काम को तुम्हारे लिए न कर सकेगा। तुम्हीं को करना होगा। इसलिए प्रतीक्षा मत करो कि कोई आएगा और आशीर्वाद दे देगा, और किसीके आशीर्वाद से हो जाएगा। ये आशीर्वाद तुम्हें स्वयं को ही अपने को देना होगा।

इसलिए बुद्ध कहते है. 'पराक्रमी'। यही एक पराक्रम है। उत्थानरत, सतत ध्यान में लगा, अप्रमत्त, ऐसा जिसका जीवन है वह जीवन ही धार्मिक जीवन है। मंदिर जाने से कुछ न होगा, मस्जिद जाने से कुछ न होगा, परमात्मा तुम्हारे भीतर है। कहीं और खोजोगे, व्यर्थ ही समय जाएगा। और सब जगह तुम खोज भी चुके हो। कितनी पृथ्वियों पर तुम भटके हो, कितने लोक-लोकांतर में ? कितनी योनियों मे ? कितनी जीवन-स्थितियों मे ? अब एक काम और कर लो कि अपने भीतर खोज लो। जिसने उसे वहाँ खोजा, वह कभी खाली हाथ नहीं आया। और जिनने कहीं और खोजा, उनके हाथ कभी भरे नहीं।

उम्रे दराज माँगकर लाए थे चार दिन
दो आरज़ू मे कट गये दो इंतजार में

जो थोड़ा बहुत समय बचा हो, उसे अब आरज़ू में और इंतजार में मत लगाओ। अब उसे भीतर के होश को जगाने में, भीतर की चेतना को उठाने में, भीतर के परमात्मा को पुकारने में लगाओ। और पुकारते ही वो उपलब्ध हो जाता है, क्योंकि केवल विस्मृति हुई है, उसे कभी खोया तो नहीं।

आज इतना ही।

प्रेम है महामृत्यु

२८ नवंबर १९७५
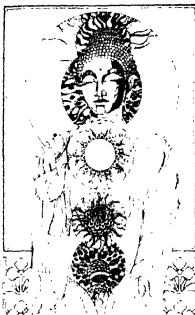
पहला प्रश्न : दुनिया के ज्यादातर धर्मगुरुओं ने अपनी स्त्री-पुरुष संन्यासियों को हो सके उतनी दूरी रखने के नियम दिये, पर आप हमेशा दोनों के प्रेम पर ही जोर देते हैं। क्या आप प्रेम का कुछ विधायक उपयोग करना चाहते हैं, या उसकी निरर्थकता का हमें अनुभव कराना चाहते हैं?

प्रेम को समझना जरूरी है।

जीवन की ऊर्जा या तो प्रेम बनती है, या भय बन जाती है। दुनिया के धर्मगुरुओं ने आदमी को भय के माध्यम से परमात्मा की तरफ लाने की चेष्टा की है। पर भय से भी कहीं कोई आना हुआ है? भय से भी कहीं कोई संबंध बनता है? भय से घृणा हो सकती है, भय से प्रतिरोध हो सकता है; लेकिन भय से मुक्ति नहीं हो सकती। भय तो जहर है, फिर परमात्मा का ही क्यों न हो। और इसीलिए दुनिया में धर्मगुरु तो बहुत हुए, लेकिन धर्म नहीं आ पाया। इसका कारण यही नहीं है कि लोग धार्मिक नहीं होना चाहते। धर्मगुरुओं ने जो मार्ग बताया, वह मार्ग ही धार्मिक होने का नहीं है। आश्चर्य है कि इक्के-दुक्के लोग धार्मिक हो गये; कैसे धर्मगुरुओं से बच गये, ये आश्चर्य है! कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट धर्मगुरुओं से बचके भी धार्मिक हो गया। अन्यथा धर्मगुरुओं के माध्यम से सारी दुनिया अधार्मिक बनी रही है।

भय अधर्म है। और धर्मगुरु ने सिखाया कि इस संसार से घृणा करो, और पर-

मात्मा से भय करो। मेरे देखे दोनों बातें ही खतरनाक हैं। दोनों ही तुम्हारे जीवन को विकृत कर देंगी। मैं तुमसे कहता हूँ, इस संसार से भी प्रेम करो, और उस परमात्मा से भी प्रेम करो। और मेरे कहने के पीछे कारण हैं। क्योंकि जो इस संसार को प्रेम न कर सकेगा, वो इस संसार के बनानेवाले को भी प्रेम न कर सकेगा। जिसने इस संसार को इनकार किया, उसने इस संसार के पीछे छिपे हाथों को भी इनकार कर दिया। तुम ये न कह सकोगे कि हे परमात्मा, हम तुझे तो प्रेम करते हैं, लेकिन तेरी बनायी गयी दुनिया को घृणा करते हैं। ये क्या ढंग हुआ? क्या तुम यह कह सकोगे किसी कवि से कि तेरी कविताओं को तो हम नफरत करते हैं और तुझे प्रेम करते हैं? किसी चित्रकार से कह सकोगे कि तेरे चित्रों को तो हम मिटा डालना चाहते हैं, तेरी हम पूजा करना चाहते हैं?

सृष्टि का प्रेम ही तो स्रष्टा के प्रेम में रूपांतरित होगा। और दृश्य के साथ जो प्रेम है वही तो अदृश्य में ले जाएगा।

प्रेम सीढ़ी है। सीढ़ी पे रुकना मत। सीढ़ी बड़ी दूरगामी है। तुमने धन का प्रेम जाना है, धर्म का प्रेम भी जानो। तुमने शरीर को प्रेम किया है; और थोड़े गहरे, और थोड़े गहरे उतरो -- और तुम पाओगे कि शरीर में ही छिपी हुई आत्मा की झलकें मिलने लगीं। तुमने व्यक्तियों को प्रेम किया है; थोड़ा और गहरे जाओ, और व्यक्तियों में छिपे हुए तुम समष्टि को पाओगे। तुमने अभी रूप को पहचाना है, अरूप भी वहीं छिपा है, पास ही खड़ा है, ज्यादा दूर नहीं है। रूप के भीतर ही छिपा है। रूप अरूप का ही एक ढंग है। आकार निराकार की ही एक तरंग है। लहर सागर ही है। लहर में सागर ही लहराया है।

लहर को सागर से भिन्न मत मान लेना। संसार को परमात्मा से भिन्न मत मान लेना। जैसे नर्तक को नृत्य से अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही स्रष्टा को सृष्टि से अलग नहीं किया जा सकता।

धर्मगुरुओं ने तुम्हें भय सिखाया, क्योंकि भय के आधार पर ही तुम्हारा शोषण हो सकता है। धर्मगुरुओं ने तुम्हें संसार की घृणा सिखायी, क्योंकि उस घृणा में डाल कर ही वे तुम्हें बेचैनी में डाल सकते हैं। वो घृणा पूरी तो नहीं हो पाएगी, तुम अपराध से भर जाओगे। क्योंकि जो अस्वाभाविक है, वह किया नहीं जा सकता। और जब भी तुम अस्वाभाविक को करने की चेष्टा करोगे, तभी तुम पाओगे तुम्हारे भीतर अपराध-भाव पैदा होता है। नहीं होता, तो अपराध-भाव पैदा होता है—न मालूम कितने जन्मों के पापों के कारण, दुष्कर्मों के कारण, जो होना चाहिए वो नहीं हो रहा है।

मैं तुमसे सहज होने को कहता हूँ। मैं तुमसे स्वाभाविक होने को कहता हूँ। मैं तुमसे सर्व-स्वीकार को कहता हूँ।

इसलिए प्रेम के विरोध में नहीं हूँ मैं। प्रेम को उसकी पूरी गहराई में जानने के पक्ष में हूँ; यद्यपि तुम जिसे प्रेम कहते हो, वह प्रेम भी नहीं है। तुम जिसे प्रेम कहते हो वह कैसे प्रेम होगा? अभी तुम ही नहीं हो, अभी तो प्रेम करनेवाला ही मौजूद नहीं है -- तुम जो करोगे वह कैसे वास्तविक होगा? तुम ही झूठ हो, तो तुम्हारा प्रेम तो झूठ होने ही वाला है। तुम हो घृणा से भरे हो, तो तुमसे प्रेम कैसे निकल आएगा? तुम्हारे भीतर हिंसा ही हिंसा है, क्रोध ही क्रोध है, ईर्ष्या है, द्वेष है — तुमसे प्रेम कैसे निकल आएगा? प्रेम को तुमसे हो निकलना है, तुम्हारे भीतर होना चाहिए।

इसलिए मैं कहता हूँ कि प्रेम जिसे तुम कहते हो वो प्रेम नहीं है। लेकिन उस प्रेम के ही सूत्र को पकड़के अगर तुम धीरे-धीरे प्रयोग करोगे, तो जो आज पतले महीन धागे की तरह हाथ में है, कल वही बड़ी धारा बन जाएगा।

एक बडी प्राचीन कथा है। एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। उसने उसे एक मीनार पर बंद करवा दिया। वहाँ से भागने का कोई उपाय् न था। अगर वो कूदे भी तो प्राण निकल जाएँ। बड़ी ऊँची मीनार थी। उसकी पत्नी बड़ी चिंतित थी, कैसे उसे बचाया जाए। वो एक फकीर के पास गयी। फकीर ने कहा कि जिस तरह हम बचे, उसी तरह वो भी बच सकता है। पत्नी ने पूछा कि आप भी कभी किसी मीनार पर कैद थे? उसने कहा कि मीनार पर तो नहीं, लेकिन कैद थे। और हम जिस तरह बचे, वही रास्ता उसके काम भी आ जाएगा। तुम ऐसा करो...

...उस फकीर ने अपने बगीचे में जाके एक छोटा-सा कीड़ा उसे पकड़ के दे दिया। कीडे की मूछों पर शहद लगा दी और कीडे की पूँछ में एक पतला महीन रेशम का धागा बाँध दिया। पत्नी ने कहा, 'आप ये क्या कर रहे हैं? इससे क्या होगा?' उसने कहा, 'तुम फिकर मत करो। ऐसे ही हम बचे। इसे तुम छोड़ दो मीनार पर। ये ऊपर की तरफ बढ़ना शुरू हो जाएगा। क्योंकि वो जो मधु की गंध आ रही है -- मूछों पे लगी मधु की गंध — वो उसकी तलाश में जाएगा। और गंध आगे बढ़ती जाएगी जैसे-जैसे कीड़ा आगे बढ़ेगा, तलाश उसे करनी ही पड़ेगी। और उसके पीछे बँधा हुआ धागा तेरे पति तक पहुँच जाएगा।'

पर पत्नी ने कहा, 'इस पतले धागे से क्या होगा?' फकीर ने कहा, 'घबड़ा मत। पतला धागा जब ऊपर पहुँच जाए, तो पतले धागे में थोड़ा मजबूत धागा बाँधना। फिर मजबूत धागे में थोड़ी रस्सी बाँधना। फिर रस्सी में मोटी रस्सी बाँधना। उस मोटी रस्सी से तेरा पति उतर आएगा।'

उस छोटे से कीड़े ने पति को मुक्ति दिलवा दी। एक बड़ा महीन धागा! लेकिन उस धागे के सहारे और मोटे धागे पकड़ में आते चले गये।

तुम्हारा प्रेम अभी बड़ा महीन धागा है, बहुत कचरे-कूड़े से भरा है। इसलिए जब धर्मगुरु तुम्हें समझाते है कि तुम्हारा प्रेम पाप है, तो तुम्हें भी समझ में आ जाता है; क्योंकि वो कूड़ा-कर्कट तो बहुत है, हीरा तो कहीं दब गया है। इसलिए तो धर्मगुरु प्रभावी हो जाते है, क्योंकि तुम्हें भी उनकी बात तर्कयुक्त लगती है कि तुम्हारे प्रेम ने सिवाय आसक्ति के, राग के, दुख के, पीड़ा के, और क्या दिया! तुम्हारे प्रेम ने तुम्हारे जीवन को कारागृह के अतिरिक्त और क्या दिया! तुम्हें भी समझ में आ जाती है बात कि ये प्रेम ही बंधन है।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि जिस कूड़ा-कर्कट को तुम प्रेम समझ रहे हो, उसी को धर्मगुरु भी प्रेम कहके निंदा कर रहा है। लेकिन तुम्हारे कूड़ा-कर्कट में एक पतला सा धागा भी पड़ा है, जिसे शायद तुम भी भूल गये हो। उस धागे को मुक्त कर लेना है। क्योंकि उसी धागे के माध्यम से तुम कारागृह के बाहर जा सकोगे।

ध्यान रखना, इस सत्य को बहुत खयाल में रख लेना कि जो बाँधता है उसीसे मुक्ति भी हो सकती है। जंजीर बाँधती है तो जंजीर से ही मुक्ति होगी। काँटा गड जाता है, पीड़ा देता है, तो दूसरे काँटे से उस काँटे को निकाल लेना पड़ता है। जिस रास्ते से तुम मेरे पास तक आए हो, उसी रास्ते से वापिस अपने घर जाओगे, सिर्फ रुख बदल जाएगा, दिशा बदल जाएगी। आते वक्त मेरी तरफ चेहरा था, जाते वक्त मेरी तरफ पीठ होगी। रास्ता वही होगा, तुम वही होओगे। प्रेम के ही माध्यम से तुम संसार तक आए हो, प्रेम के ही माध्यम मे परमात्मा तक पहुँचोगे; रुख बदल जाएगा, दिशा बदल जाएगी।

सितारों के आगे जहाँ और भी है
अभी इश्क के इम्तिहाँ और भी है

जिसे तुमने प्रेम समझा, वो अंत नहीं है। 'इश्क के अभी इम्तिहाँ और भी हैं'। अभी प्रेम की और भी मंजिलें है, और प्रेम के अभी और भो इम्तिहान है, परीक्षाएँ हैं। और प्रेम की आखिरी परीक्षा परमात्मा है।

ध्यान रखना, जो तुम्हें फैलाए वही तुम्हें परमात्मा तक ले जाएगा। प्रेम फैलाता है, भय सिकुड़ाता है।

संसार से डरो मत, परमात्मा से भरो। जितने ज्यादा तुम परमात्मा से भर जाओगे, तुम पाओगे, तुम संसार से मुक्त हो गये। संसार तुम्हें पकड़े हुए मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम्हारे हाथ में कुछ और नहीं है। आदमी के पास कुछ न हो तो कंकड़-पत्थर भी इकट्ठे कर लेता है। हीरे की खदान न हो तो आदमी पत्थरों को

ही इकट्ठे करता चला जाता है। मैं तुमसे कहता हूं, हीरे की खदान पास ही है। मैं तुमसे कंकड़-पत्थर छोड़ने को नहीं कहता। मैं तुमसे त्याग की बात ही नहीं करता। जीवन महाभोग है। जीवन उत्सव है।

मैं तुमसे यही कहता हूं कि जब विराट तुम्हारे भीतर उतरेगा, क्षुद्र अपने आप बह जाएगा। तुम विराट का भरोसा करो, क्षुद्र का भय नहीं। तुम विराट को निमंत्रण दो, क्षुद्र को हटाओ मत। ध्यान रखो, क्षुद्र से लड़ोगे, क्षुद्र हो जाओगे। क्षुद्र का बहुत चिंतन करोगे कैसे इसे छोड़ें, कैसे इससे मुक्त हों — उतने ही बंधते चले जाओगे। क्षुद्र का चिंतन भी क्या करना, मनन भी क्या करना! क्षुद्र बांधेगा भी क्या! उसकी सामर्थ्य भी क्या है! कूड़ा-कर्कट को कोई छोड़ने जाता है, त्यागने जाता है? हीरों को खोजने चलो।

धर्मगुरुओं ने निषेधात्मक धर्म दिया है; मैं तुम्हें विधेय दे रहा हूं। मैं तुमसे कहता हूं छोड़ना जरूरी नहीं है, पाना जरूरी है। और जिसने पा लिया, उसने छोड़ा। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा:'। जब तुम्हें बड़ा धन मिलता है तो छोटा धन अपने आप छूट जाता है। फिर छोड़ने की पीड़ा भी नहीं होती। त्याग भी मालूम नहीं पड़ता, क्योंकि त्याग भी पीड़ा है। और उस त्याग का क्या मजा जिसमें पीड़ा हो? वो त्याग सच्चा भी नहीं है, जिसमें पीछे थोड़ा दंश छूट जाए।

जीवन ऐसा सहज होना चाहिए कि तुम रोज-रोज परमात्मा में आगे बढ़ते जाओ, रोज-रोज संसार तुमसे अपने आप पीछे हटता जाए; तुम्हें संसार को धकाना न पड़े, तुम्हें संसार से लड़ना न पड़े।

दो ही उपाय हैं : या तो संसार से घृणा करो, या परमात्मा से प्रेम करो। घृणा करनी तुम्हें भी आसान है, क्योंकि घृणा में तुम भी निष्णात हो। इसलिए धर्मगुरुओं की बात तुम्हें जम गयी। तुमने कहा, ये तो ठीक है, घृणा तो हम कर सकते हैं। जब मैं तुमसे प्रेम की बात कहता हूं तो तुम घबड़ाते हो, क्योंकि प्रेम का तुम्हें खुद भी भरोसा नहीं है कि तुम कर सकते हो। पर मैं तुमसे कहता हूं, कर सकते हो। माना कि तुम्हारा प्रेम बड़ी गंदगी में दबा पड़ा है, पर है, मौजूद है। और घबड़ाओ मत, कूड़े-कर्कट से, मिट्टी से, कीचड़ से कमल निकल आता है। कीचड़ में कमल छिपा है। थोड़ी खोज की जरूरत है। और फिर कमल और कीचड़ का क्या तुम संबंध जोड़ पाओगे! कहां कमल, कहां कीचड़!

धर्मगुरु तुमसे कह रहे हैं कीचड़ छोड़ो। उनकी बात तुम्हें भी जंचती है कि इस कीचड़ को घर में क्या रखना, छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूं इस कीचड़ में कमल छिपा है। छोड़ो मत, उपयोग कर लो। उपयोग में ही छूट जाएगा। जब कमल मिल

जाएगा तो कीचड छूट ही गयी । लेकिन ऐसा न हो कहीं कि कीचड़ को फेंकने में कमल भी फिंक जाए।

अगर तुम्हारे जीवन से प्रेम का स्वर चला गया तो तुम संसार को कितना ही घृणा कर लो, तुम परमात्मा को न पा सकोगे; क्योंकि संसार को घृणा करने से वो नहीं मिलता है, उसे ही प्रेम करने से मिलता है । घृणा तो नकारात्मक है। ये तो ऐसे है जैसे कोई अँधेरे को धक्का दे-दे के बाहर निकाल रहा हो। प्रेम तो विधायक है, दिया जलाने जैसा है ।

तुम धर्मगुरुओं से राजी हो गये, क्योंकि तुम्हे भी लगा कि यही आसान है । लेकिन तुम अपने त्यागियों को, अपने तपस्वियों को गौर से देखो, जरा उनकी आँखो में झांको, उनके आसपास की हवा को परखो — तुम पाओगे उन्होंने छोड़ तो दिया है कुछ, ये बात पक्की है; लेकिन पाया कुछ भी नहीं । सिर्फ छोड़ने से ही थोडी मिलने का कोई सबूत मिलता है । जाओ, अपने संन्यासियों के अंतर्तम में झांको, वहाँ तुम्हें सूना घर मिलेगा । तुमसे भी ज्यादा सूना, क्योंकि तुम्हारे घर में कम से कम अँधेरा तो है; तुम्हारे घर में कम से कम कूड़ा-कर्कट, कीचड़ तो है — वह भी उन्होंने फेंक दी । कमल तो खिला नहीं; क्योंकि कीचड को फेंक के कहीं कोई कमल खिला है !

काम ही राम बनता है । संभोग की ही यात्रा विपरीत हो जाती है तो समाधि बन जाती है । वो जो नीचे की तरफ जा रहा है वो काम है । वही ऊर्जा जब ऊपर की तरफ जाने लगती है तो राम हो जाती है । पर राम और काम एक ही ऊर्जा की दो भिन्न दिशाएँ हैं । जिसने काम को काट डाला, उसने राम की संभावना मिटा दी ।

प्रेम पर भरोसा करो । भरोसे पर प्रेम करो । और जल्दी मत करना छोड़ने की । छोड़ने की भी क्या जल्दी है; जब मिल जाएगा, छोड़ देंगे । मैं तुमसे कहता हूँ पाने की फिकिर करो ।

सारी दृष्टि खोज मे लगाओ ।

आशिकी से मिलेगा ऐ जाहिद
बंदगी से खुदा नहीं मिलता

गहन प्रेम से, आशिकी से ।

तुम्हारी बंदगी झूठी है, अगर उसमे गहन प्रेम नहीं है । तुम कितना ही झुको, कितनी ही इबादत और प्रार्थना करो, कितने ही मंदिरों की घंटियाँ बजाओ और पूजा के थाल सजाओ — ये बंदगी झूठी है, जब तक इसके भीतर आशिकी का स्वर न बजता हो, जब तक परमात्मा तुम्हारा प्रेमी न हो जाए, तुम्हारी प्रेयसी न हो जाए, जब तक ऐसा आत्मीय निकट का संबंध न हो जाए ।

लेकिन चूँकि, तुम प्रेम से परेशान हो, चूँकि तुम प्रेम करना सीख नहीं पाए, चूँकि तुम नाचना नहीं जानते, तुम कहते हो आँगन टेढ़ा है। आँगन की कोई फिकिर करता है जिसको नाचना आता हो ? आँगन की वही फिकिर करता है जिसे नाचना न आया। संसार से भागते वही हैं जो नाच न सके। जिसे नाचना आता है, टेढ़ा आँगन भी पर्याप्त है।

असली बात जीवन की कला को सीखने की है।

मैं तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता, तुम्हें जोड़ना चाहता हूँ। अगर तुम ठीक से समझो, तो मैं तुम्हें जो दे रहा हूँ वही योग है। योग यानी जोड़। प्रेम एकमात्र योग है, क्योंकि वही जोड़ता है। और तो सब चीजें तोड़ देती हैं।

परमात्मा से हम दूर हो गये हैं, टूट गये हैं, पास आना है; दूर चले गये हैं घर से, लौटना है। घृणा, विरोध, त्याग, निषेध — इनसे तुम कैसे पहुँच पाओगे ? और इनसे तुम अगर पहुँच भी गये तो तुम इनसे ही भरे रहोगे, तुम परमात्मा को भी पहचान न पाओगे। अगर तुम आज जैसे हो, ऐसे ही परमात्मा के सामने पहुँच जाओ, तुम पहचान न पाओगे। पहचानोगे तो तुम्हीं ? तुमने जो भी जाना है, उसमें कहीं भी तो परमात्मा की झलक तुम्हें मिली नहीं, परमात्मा का कोई परिचय नहीं।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, प्रेम परमात्मा से पहला परिचय है। तुम जिसके भी प्रेम में पड़ जाओगे उसीमें तुम्हें परमात्मा की थोड़ी-सी झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। जहाँ तुम्हें प्रेम किसीके प्रति हुआ, वहीं तुम्हें रूपांतरण दिखायी पड़ेगा। अब जिस व्यक्ति के प्रति तुम्हारा प्रेम हो गया है, वह साधारण नहीं रह गया, असाधारण हो गया। तुम्हारा प्रेम उसके भीतर कहीं न कहीं परमात्मा को खोजने लगेगा। प्रेम परमात्मा को खोज ही लेता है, क्योंकि बिना परमात्मा के प्रेम हो ही नहीं सकता। तुम्हें उस व्यक्ति की बुराइयाँ दिखायी पड़नी बंद हो जाती हैं जिसको तुम प्रेम करते हो। और जिसको तुम घृणा करते हो, उसकी सिर्फ बुराइयाँ दिखायी पड़ती हैं। जिसको तुम घृणा करते हो, उसमें शैतान दिखायी पड़ने ही लगेगा। और जिसको तुम प्रेम करते हो उसमें परमात्मा दिखायी पड़ने ही लगेगा। उसकी भलाई ही भलाई दिखती है। वह बुरा भी करे तो भी भला मालूम होता है। उसमें सुगंध ही सुगंध मालूम पड़ती है। मंदिर बनना शुरू हो गया। यही तो पहचान होगी। यहीं से परिचय बनेगा। ये परिचय अगर पास में रहा, तो किसी दिन तुम परमात्मा के सामने खड़े होओगे तो पहचान पाओगे। अगर ये परिचय तुम्हारे पास नहीं है, जैसाकि तुम्हारे तथाकथित त्यागियों के पास नहीं है, इनके सामने भी परमात्मा खड़ा रहे तो इन्हें शैतान ही दिखायी पड़ेगा।

राबिया एक सूफी फकीर औरत हुई। कुरान में एक वचन है कि शैतान को घृणा

करो, उसने काट दिया। अब कुरान में कोई संशोधन करना बड़ा खतरनाक मामला है। और कोई दूसरा बरदाश्त भी कर ले, मुसलमान बरदाश्त भी नहीं कर सकते। अगर कोई वेद में सुधार कर दे तो हिंदू बहुत फिक्र न करेंगे। अगर कोई गीता में भी दो-चार पंक्तियाँ इधर-उधर कर दे तो कहेंगे, उसकी मौज है, क्या करना! लेकिन मुसलमान बरदाश्त न करेंगे।

एक दूसरा फकीर राबिया के घर मेहमान था। उसने सुबह ही कुरान उठाके पढ़ी, देखा कि लकीरें कटी हुई है। कुरान में, और तरमीम, सुधार! वो घबड़ा गया। उसने कहा, 'ये किसने पाप किया? ये तो आखिरी वचन है परमात्मा का, इसके आगे अब कोई सुधार नहीं हो सकता। जो कहना था वो कह दिया गया है। जो नही कहना था वो नही कहा गया है। आखिरी! मुहम्मद के बाद अब कोई पैगंबर होने को नहीं है। ये किसने नासमझी की है?' वो बड़ा क्रोधित हो गया। राबिया ने कहा, 'नाराज मत हो। किसी और ने नही की, मैंने ही की है।' वो तो विश्वास भी न कर सका। उसने कहा कि तू जैसी भक्त, और तूने ये किया! उसने कहा, 'मैं क्या करूँ? मेरी मजबूरी है। जब से परमात्मा से प्रेम लगा, जब से आशिकी बनी, तब से अब कोई शैतान दिखायी नही पड़ता। अब तो शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो तो मुझे परमात्मा ही दिखायी पड़ेगा। इसलिए शैतान को घृणा करो, अब इस वाक्य का क्या अर्थ रहा? इसको मैंने काट दिया, मेरे काम का नही है। जब तक शैतान दिखायी पड़ता था तब तक काम का हो भी सकता था, अब किस काम का है?'

प्रेम की पहचान बढ़ती जाए तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि इसी संसार में रंग-ढंग बदलने लगे जीवन के। पक्षी वही हैं, लेकिन गीत के अर्थ बदल गये। अब पक्षियों की गुनगुनाहट नहीं है, वेदों का उच्चार है। फूल अब भी वही हैं, लेकिन रंग बदल गये; अब सिर्फ फूल नहीं है, अब परमात्मा की खबर है। झरने अब भी बहेंगे और कलकल नाद करेंगे, लेकिन अब ये परमात्मा के पैरों के बजते हुए पायल हैं। सब बदल गया। प्रेम जिसने किया उसने संसार को रूपांतरित कर लिया।

तुम्हारी दृष्टि में तुम्हारा संसार है। और ध्यान रखना, अगर प्रेम पर कहीं भूल-चूक हो गयी — और प्रेम पहला कदम है परमात्मा की तरफ, अगर वहीं भूल-चूक हो गयी — तो तुम कितना ही चलो, पहुँच न पाओगे।

सिर्फ एक कदम उठा था गलत राहे-शौक में — प्रेम के रास्ते पर सिर्फ एक गलत कदम उठा, मंजिल तमाम उम्र मुझे ढूँढ़ती रही — फिर मेरा ढूंढ़ना तो ठीक ही है, फिर मंजिल भी मुझे ढूँढ़ती रही तमाम उम्र तो भी मुझे पा न सकी।

सिर्फ एक कदम उठा था गलत राहे-शौक मे

मंजिल तमाम उम्र मुझे ढूंढ़ती रही

प्रेम के संबंध में बहुत-बहुत होश रखना। वही भूल हो गयी तो परमात्मा से तुम सदा के लिए चूके। उसे सुधारोगे तभी परमात्मा की तरफ बढ़ पाओगे। प्रेम के बिना न कोई प्रार्थना है, न कोई परमात्मा है।

इसलिए मैं तुम्हें सिर्फ एक ही सूत्र देता हूं, कि तुम अबाध प्रेम करो, कि तुम बेशर्त प्रेम करो, कि तुम जितने गहरे प्रेम में उतर सको उतने गहरे उतरो। ध्यान व्यर्थ पर मत दो, प्रेम में जो सार्थक स्वर हो उसको मुक्त कर लो। प्रेम में जो हीरा हो उसे निकाल लो, मिट्टी को पड़े रह जाने दो। प्रेम में जो कमल हो उसे जगा लो, कीचड को पड़ा रह जाने दो। और जिस दिन कमल जग जाएगा कीचड़ से, तुम कीचड़ के प्रति भी धन्यवाद अनुभव करोगे, क्योंकि उसके बिना कमल न हो सकता। और जिस दिन तुम कीचड़ को भी धन्यवाद दे सको, उसी दिन मैं तुम्हें कहूँगा तुम धार्मिक हो। जिस दिन संसार के प्रति भी तुम सिर झुका सको अनुग्रह के भाव से...क्योंकि इस संसार में अगर न घूमे होते, न भटके होते, तो परमात्मा से मिलने का कोई उपाय न था। ये भटकाव भी उसीकी यात्रा का पड़ाव है।

दूसरा प्रश्न : ध्यान और प्रेम के दो मार्ग आपने कहे हैं, पर होश, 'अवेयरनेस' का तत्त्व दोनों मार्ग पर किस प्रकार संबंधित है, कृपा कर इसे समझाएँ।

होश तो दोनों मार्गों पर होगा ही, लेकिन होश की परिभाषा दोनों मार्गों पर अलग-अलग होगी। होश तो होगा, लेकिन होश का स्वाद दोनों मार्गों पर बड़ा अलग-अलग होगा। स्वाद अलग होगा।

प्रेम के मार्ग पर होश बेहोशी जैसा होगा। ध्यान के मार्ग पर बेहोशी होश जैसी होगी। ये थोड़ा समझने में कठिन होगा, जटिल होगा।

प्रेम में एक मस्ती आती है, जैसे कोई शराब में डूबा हो। सारी दुनिया को लगता है वो बेहोश है — वो जो प्रेम का दीवाना है; लेकिन भीतर उसके होश का दीया जलता है। जितनी गहरी बेहोशी दुनिया को लगती है, उतना ही भीतर का दीया सजग होके जलने लगता है।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसा बहुत बार हुआ। वे प्रेम के पथिक थे। और कभी-कभी उनकी समाधि लग जाती तो छः घंटे, बारह घंटे, अठारह घंटे, कभी-कभी छः दिन, सात दिन, दस दिन, वो बिलकुल बेहोश पड़े रहते। हाथ-पैर ऐसे अकड़ जाते जैसे मुर्दे के हों, सिर्फ श्वांस धीमी-धीमी चलती रहती। उनके प्रेमी और भक्त बड़े परेशान हो जाते, कि वे अब लौटेंगे या नहीं। और प्रेमी और भक्त भी समझते कि ये तो बड़ी बेहोशी है। लेकिन रामकृष्ण को जैसे ही होश आता—भक्तों की दृष्टि

में, आसपास की भीड़ की दृष्टि में — जैसे ही उन्हें होश आता, वे फिर चिल्लाते कि माँ, ये बेहोशी मुझे नहीं चाहिए। जिसको भक्त कहते बेहोशी, उसको वो कहते होश। और जिसको भक्त कहते होश, वो उस होश में आते ही चिल्लाते कि माँ, ये बेहोशी मुझे नहीं चाहिए। अब क्यों वापस इस बेहोशी में भेजती है। जब ऐसा होश सध गया था तो वापस वहीं बुला ले। बाहर से शरीर मुर्दे की तरह हो जाता था, और भीतर कोई ज्योति जलती थी।

प्रेम के मार्ग पर बाहर से जो बेहोशी दिखायी पड़ेगी वो भीतर होश है।

बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं —

मेरी निगाह में वो रिंद ही नहीं साकी
जो हुशियारी और मस्ती में इम्तियाज़ करे

वो पीनेवाला ही नहीं है, जो अभी होश और बेहोशी में फर्क करे। 'मेरी निगाह में वो रिंद ही नहीं साकी' — उसने अभी पीना ही नहीं जाना, वो पियक्कड़ नहीं है, वो अभी मतवाला नहीं है, अभी मधुशाला को पहचाना ही नहीं है। 'जो हुशियारी और मस्ती में इम्तियाज़ करे' — जो होश में और बेहोशी में फर्क करे, उसने अभी पीना ही नहीं सीखा।

प्रेम के रास्ते पर होश और बेहोशी एक हो जाती हैं। यही ध्यान के रास्ते पर भी घटता है, लेकिन स्वाद अलग है। महावीर बैठे हैं या बुद्ध बैठे हैं, तुम उन्हें परिपूर्ण होश में पाओगे, लेकिन भीतर उनके ऐसा नशा बह रहा है जैसा नशा इस जमीन पर कभी-कभी बहता है। भीतर उन्हें वह परम मधुशाला उपलब्ध हो गयी है। भीतर वर्षा हो रही है मधु की। भीतर आनंद में सरोबोर हैं। बाहर से बिलकुल होश सधा है। भीतर डूबे हैं। ठीक उलटा मालूम होगा। बुद्ध बाहर से होशपूर्ण मालूम होते हैं, भीतर डूबे हैं। चैतन्य, मीरा, रामकृष्ण बाहर से बेहोश मालूम होते हैं, भीतर होश में हैं।

ध्यान के मार्ग से जो चलेगा, होश बाहर होगा, भीतर बेहोशी होगी। प्रेम के मार्ग से जो चलेगा, बेहोशी बाहर होगी, होश भीतर होगा। पर दोनों साथ-साथ है।

होश की आखिरी जो घड़ी है, वो बेहोश की भी आखिरी घड़ी है। क्यों? क्योंकि जहाँ पता चलता है मैं कौन हूँ, वहीं तो मैं मिट जाता है। जहाँ मैं मिटता है, वहीं तो पता चलता है कि मैं कौन हूँ। शून्य जहाँ हम हो जाते हैं वहीं तो पूर्ण का पदार्पण होता है। और जहाँ पूर्ण आता है वहाँ सब शून्य हो जाता है। उस अंतिम घड़ी में, उस आखिरी शिखर पर, उस गौरीशंकर पर सब भेद, सब द्वैत गिर जाता है। सब द्वंद्व विलीन हो जाते हैं। वहाँ न होश होश है, न बेहोशी बेहोशी है।

ठीक कहा है यह —

मेरी निगाह में वो रिंद ही नहीं साकी
जो हुशियारी और मस्ती में इम्तियाज़ करे

अगर तुम बुद्ध के सामने रामकृष्ण को रखोगे तो वो पहचान लेंगे। अगर तुम रामकृष्ण को बुद्ध को पहचानने को कहोगे, रामकृष्ण भी पहचान लेंगे।

ऐसा ही समझो कि तुम्हारे हाथ में एक सिक्का है, किसीने सीधा रखा है हाथ में, किसी ने उलटा रखा है — इससे क्या फर्क पड़ता है? सिक्का दोनों के हाथ में है, दोनों बाज़ार में जाएँगे, सिक्के का बराबर मूल्य मिल जाएगा। कोई ये थोड़े पूछेगा कि सिक्के का सिर ऊपर की तरफ है कि नीचे की तरफ है। सिक्का सिक्का है।

प्रेम की दुनिया में बेहोशी बाहर-बाहर होगी, होश भीतर होगा। ध्यान की दुनिया में होश बाहर होगा, बेहोशी भीतर होगी। और दोनों समान होंगी। दोनों का बराबर बल होगा। तराजू के दोनों पलड़े समान होंगे।

जहाँ बेहोश और होश दोनों मिल जाते हैं, वहीं वो परम घटना घटती है, जिसे हम निर्वाण कहें, मोक्ष कहें, ब्रह्मोपलब्धि कहें। फिर सब भेद नामों के हैं, शब्दों के हैं।

तीसरा प्रश्न :

तुम न जाने किस जहाँ में खो गये
हम तेरी दुनिया में तनहा हो गये
तुम न जाने किस जहाँ में खो गये
मौत भी आती नहीं
साँस भी जाती नही
दिल को ये क्या हो गया
कोई अब भाता नहीं
लूट कर मेरा जहाँ
छुप गये हो तुम कहाँ
तुम कहाँ, तुम कहाँ, तुम कहाँ...
तुम न जाने किस जहाँ में खो गये

तरु ने पूछा है।

प्रेम खोने का रास्ता है! और वही प्रेम परमात्मा तक ले जाएगा, जो खोना सिखाए। वही प्रेमी तुम्हें परमात्मा तक ले जा सकेगा, जो खुद भी धीरे-धीरे खोता जाए और तुम्हें भी खोने के लिए राजी करता जाए।

प्रेम के मार्ग पर मिट जाना ही पाना है। कठिन होता है मिटना। पीड़ा होती

है । बचा लेने का मन होता है । लेकिन जिसने बचाया उसने गवाँया । जो मरने को राज़ी है, वही प्रेम को जान पाया । प्रेम मृत्यु है, और बड़ी मृत्यु है; साधारण मृत्यु नहीं है जो रोज घटती है । वो मर जाना भी कोई मर जाना है ! क्योंकि तुम तो मरते ही नहीं, शरीर बदल जाता है। लेकिन प्रेम में तुम्हें मरना पडता है, शरीर वही रहा आता है। इसलिए प्रेम बड़ी मृत्यु है, महामृत्यु है ।

इतने से काम न चलेगा — ' मौत भी आती नहीं, साँस भी जाती नहीं । ' साँस भी चली जाए, मौत भी आ जाए, तो भी काम न चलेगा । जब प्रेम में मरने की घड़ी आती है तो आदमी सोचता है, इससे तो बेहतर ये होता कि शरीर ही मर जाता, श्वाँस ही चली जाती । वो भी कम खतरनाक मालूम पड़ता है ।

यही तो अड़चन है प्रेम की। तपश्चर्या यही है : कि प्रेम भीतर से मार डालेगा । वो जो भीतर मैं है, वो जब चला जाएगा, फिर श्वाँस भी आती रहेगी तो भी कोई अंतर नही पड़ेगा । तुम न बचे ।

मेरे साथ जो चलने को राज़ी हुए हैं, वो मिटने को ही राजी हुए हैं । तो ही मेरे साथ चलना हो सकता है । और स्वाभाविक है कि अगर मैं तुम्हें राज़ी करना चाहूँ मिटने के लिए, तो मैं तुमसे दूर होता जाऊँ और खोता चला जाऊँ । तुम मुझे खोजते हुए आगे बढ़ते चले आओ और एक दिन तुम पाओ, कि मैं भी खो गया हूँ और मुझे खोजने में तुम भी खो गये हो ।

तुम न जाने किस जहाँ में खो गये ।

यही तो प्रेम की मंजिलें हैं, यही तो उसके आगे के इम्तिहान हैं ।

सितारो के आगे जहाँ और भी है
अभी इश्क के इम्तिहाँ और भी हैं

आखिरी प्रेम का इम्तिहान यही है कि वहाँ प्रेमी खो जाता है । और जिस दिन खोता है उसी दिन पाता है, सब मिल गया । इसलिए प्रेम की भाषा गणित की भाषा नहीं है । प्रेम की भाषा हिसाब की भाषा नही है। प्रेम की भाषा तो पागलपन की भाषा है, दीवानगी की भाषा है, मतवालेपन की भाषा है ।

तो तरु से मैं कहूँगा, बजाय ये सोचने के कि ' तुम न जाने किस जहाँ में खो गये '; बजाय ये सोचने के कि ' मौत भी आती नहीं, साँस भी जाती नहीं, दिल को ये क्या हो गया '; सोचो —

आरजू तेरी बरकरार रहे
दिल का क्या है रहा न रहा

सब खो जाएँ, तो भी जो अमृत है वो तो नही खो जाता है । वही खोता है जो खो जा सकता है । और जो खो जा सकता है, वो जितने जल्दी खो जाए उतना

अच्छा है। क्योंकि जितनी देर उलझे रहे उतनी ही मुसीबत! जितनी देर उलझे रहे उतना ही समय गवांया। जितनी जल्दी जागे उतना अच्छा। जितनी देर सोए उतनी ही रात, उतना ही व्यर्थ।

ध्यान रहे कि मिटने की जितनी तैयारी होगी — और मिटना पीड़ापूर्ण है, इसे जानकर — उतनी ही जल्दी पीड़ा की रात का अंत आ जाता है। जब तक तुम नही मिटे हो तभी तक पीड़ा मालूम होती है — क्योंकि मिटना है...मिटना है...मिटते जाना है। जल्दी करो, मिट जाओ। स्वीकार कर लो मृत्यु को। वो भीतर जो एक लड़ाई चलती है बचने की, वो छोड़ दो। फिर पीड़ा भी समाप्त हो गयी। छोड़ते ही संघर्ष, पीड़ा समाप्त हो जाती है। लेकिन संकल्प आदमी का जन्मों-जन्मों का कमाया हुआ है, समर्पण कठिन होता है। समर्पण भी हम करते हैं तो रत्ती-रत्ती करते हैं।

रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया और उसने आके हजार सोने की अशर्फियाँ उनके सामने डाल दीं। उन्होंने कहा, 'आप स्वीकार कर लें, बस मैं आपके चरणों में रखना चाहता हूँ।' रामकृष्ण ने कहा, 'इनका क्या करूंगा? अब इनकी हिफाजत कौन करेगा? तू एक काम कर, बाँध पोटली वापिस, और जाके गंगा में डुबा दे। हमने स्वीकार कर लिया। अब ये अशर्फियाँ हमारी हैं। हमारी तरफ से तू गंगा में फेंक आ, इतना और कर। इतनी दूर तू लाया, इतना हमारे लिए कर दे।'

उस आदमी को जँची नही बात। उसने कहा, ये भी कोई बात हुई? मगर अब रामकृष्ण को इनकार भी न कर सका। बाँधी पोटली बेमन से। बड़ी देर हो गयी, लौटा नहीं। तो रामकृष्ण ने कहा, 'क्या हुआ उस आदमी का? देखो कहीं डूब तो नहीं गया। कहीं ऐसा न किया हो कि पोटली तो रख दी हो किनारे और खुद डूब मरा हो! क्योंकि लोग धन को बचा लेते हैं, खुद को मिटा देते हैं। देखो, क्या हुआ उस बेचारे का?' लोग गये तो देखा कि वो एक-एक अशर्फी को बजा रहा था पत्थर पर, गिन-गिन के फेंक रहा था। और बड़ी भीड़ इकट्ठी कर ली थी उसने। लोगों ने कहा, 'तुम ये क्या कर रहे हो? परमहंसदेव ने बुलाया है।

उसने कहा, 'भई, आता हूँ, अब जरा पूरा गिन के...!' जब वो लौटके आया तो रामकृष्ण ने कहा, 'पागल! इकट्ठा करते वक्त गिनते हैं, तब तो समझ में आता है। फेंकते वक्त क्या गिनना! जब फेंक ही रहे हैं, फिर क्या गिनना! तो पोटली इकट्ठी डुबा देता। मगर तू छोड़ते वक्त भी गिनता रहा।'

अगर गिन-गिन के छोड़ोगे तो पीड़ा की रात बहुत लंबी हो जाएगी। जब छोड़ना ही है तो बिन गिने छोड़ दो। अगर छोड़ते न बनता हो तो प्रेम की फिकिर न करो,

फिर ध्यान का मार्ग है। फिर कोई जरूरत नहीं है। तब ध्यान ठीक है। ध्यान ज्यादा गणितपूर्ण है, तकनीक है। उसमें तुम बचोगे और काम जारी रहेगा। वो भी तुम्हें मिटा देगा, लेकिन धीरे-धीरे मिटाएगा।

प्रेम छलांग है। ध्यान में तो धीरे-धीरे व्यवस्था जमायी जा सकती है, प्रेम में कोई व्यवस्था नहीं जमायी जा सकती। होता है तो पूरा, नहीं होता है तो नहीं। सोचो मत। प्रेम के रास्ते पर तो पागल होने की हिम्मत चाहिए ही। और अगर बहुत सोच-विचार किया, और बहुत हिसाब से चले, तो न केवल देर हो जाएगी बल्कि अगर हिसाब की आदत हो गयी तो किसी दिन परमात्मा सामने भी खड़ा हो जाए, तो तुम अपने हिसाब में तल्लीन रहोगे, तुम उसे देख न पाओगे।

रामतीर्थ कहते थे कि एक प्रेमी दूर देश गया। उसकी प्रेयसी राह देखती है, राह देखती है, फिर वो लौटा नहीं। हर बार पत्र आता है कि अब आऊँगा, अब आऊँगा, लेकिन देर होती चली गयी। एक दिन प्रेमी पत्र लिख रहा है साँझ को -- और प्रेमी जैसा लंबे पत्र लिखते है-- लिखते ही जा रहा है। उसने आँख उठाके देखा ही नहीं कि सामने कौन खड़ा है। प्रेयसी ये देखके कि ये लौट नहीं रहा है, उसे खोजती हुई उसके गाँव आ गयी। वो द्वार पे खड़ी है आकर। लेकिन वो पत्र लिखने में तल्लीन है। वो इतना तल्लीन है कि जिसके लिए पत्र लिख रहा है वो सामने खड़ी है, लेकिन वो उसे देख नहीं पाया। और प्रेयसी ने ये सोचकर कि वो इतना तल्लीन है, बाधा देना ठीक नहीं, उसका काम पूरा कर लेने दो, वो चुपचाप खड़ी रही। जब उसने पत्र पूरा किया और आँख उठायी तो उसे भरोसा न आया। वो घबड़ा गया। यहाँ कहाँ प्रेयसी हो सकती है उसकी? समझा होगा कोई भूत-प्रेत है, या कौन है? उसने अपनी आँखें मलीं। उसकी प्रेयसी ने कहा, 'आँखे मत मलो, मैं बिलकुल वास्तविक हूँ। और मैं बड़ी देर से खड़ी हूँ, लेकिन तुम पत्र लिखने में तल्लीन थे। तुम जिसे पत्र लिख रहे थे वो सामने खड़ा है। लेकिन तुम इतने तल्लीन थे कि मैंने बाधा देनी ठीक न समझी।'

कई बार हम हिसाब लगाने में तल्लीन रहते हैं और परमात्मा द्वार पे खड़ा होता है। शायद सदा ही ऐसा है। हम उसीकी तरफ जाने का हिसाब बिठाते होते हैं, वो सामने ही खड़ा होता है।

> कुछ इतने दिये हसरते-दीदार ने धोखे
> वो सामने बैठे हैं यकीं हमको नहीं है

बहुत बार ऐसा हो जाता है, कि तुम कल्पना कर लेते हो अपने प्रेमी की, और फिर पाते हो कल्पना ही की। सपना देख लेते हो, फिर जागके पाते हो सपना ही था।

' कुछ इतने दिये हसरते-दीदार ने धोखे '— कुछ अपनी ही कल्पना से इतने बार दर्शन कर लिए परमात्मा के, और हर बार पाया कि धोखा है।

कुछ इतने दिये हसरते-दीदार ने धोखे
वो सामने बैठे हैं यकीं हमको नहीं है

और अब सामने परमात्मा बैठा हो तो भी यकीन नहीं आता। पता नहीं कहीं फिर हमारी ही कल्पना धोखा न दे रही हो; कहीं फिर हमने ही न सोच लिया हो; कहीं फिर हमने ही यह मूर्ति न बना ली हो।

मिटने की तैयारी करो, कल्पनाएँ सजाने की नहीं। प्रेमी को देखने की फिकिर छोड़ो, अपने को मिटाने की फिकिर करो। तुम्हारे मिटने में ही उसका दर्शन है। प्रेमी की कला मरने की कला है। ध्यानी की कला जागने की कला है। मगर दोनों एक ही जगह ले आते हैं।

चौथा प्रश्न : मीरा का मार्ग था प्रेम का, पर कृष्ण और मीरा के बीच अंतर था पाँच हजार साल का। फिर यह प्रेम किस प्रकार बन सका? कृपया समझाएँ।

प्रेम के लिए न तो समय का कोई अंतर है और न स्थान का। प्रेम एकमात्र कीमिया है जो समय को और स्थान को मिटा देती है। जिससे तुम्हें प्रेम नहीं है वो तुम्हारे पास बैठा रहे, शरीर से शरीर छूता हो, तो भी तुम हजारों मील के फासले पर हो। और जिससे तुम्हारा प्रेम है वो दूर चाँद-तारों पर बैठा हो, तो भी सदा तुम्हारे पास बैठा है।

प्रेम एकमात्र जीवन का अनुभव है जहाँ ' टाइम ' और ' स्पेस ', समय और स्थान दोनों व्यर्थ हो जाते है। प्रेम एकमात्र ऐसा अनुभव है जो स्थान की दूरी में भरोसा नहीं करता और न काल की दूरी में भरोसा करता है, जो दोनों को मिटा देता है।

परमात्मा की परिभाषा में कहा जाता है कि वह काल और स्थान के पार है, कालातीत। जीसस ने कहा है कि प्रेम परमात्मा है—इसी कारण। क्योंकि मनुष्य के अनुभव में अकेला प्रेम ही है जो कालातीत और स्थानातीत है। उससे ही पर-मात्मा का जोड़ बैठ सकता है।

इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि कृष्ण पाँच हजार साल पहले थे। प्रेमी अंतराल को मिटा देता है। प्रेम की तीव्रता पर निर्भर करता है। मीरा के लिए कृष्ण सम-सामयिक थे। किसी और को न दिखायी पड़ते हों, मीरा को दिखायी पड़ते थे। किसी और को समझ में न आते हों, मीरा उनके सामने ही नाच रही थी। मीरा उनकी भाव-भंगिमा पर नाच रही थी। मीरा को उनका इशारा-इशारा साफ था।

ये थोड़ा हमें जटिल मालूम पड़ेगा, क्योंकि हमारा भरोसा शरीर में है। शरीर तो मौजूद नहीं था।

बुद्ध ने स्वयं कहा है कि जो मुझे प्रेम करेंगे और जो मेरी बात को समझेंगे, कितना ही समय बीत जाए, मैं उन्हें उपलब्ध रहूँगा। और जिन्होंने बुद्ध को प्रेम नहीं किया, वो बुद्ध के सामने बैठे रहे हो तो भी उपलब्ध नही थे।

शरीर समय और क्षेत्र से घिरा है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, समय और क्षेत्र का उस पर कोई सबंध नही है। वो बाहर है। वो अतिक्रमण कर गया है। वो दोनो के अतीत है।

जिस कृष्ण को मीरा प्रेम कर रही थी, वो कृष्ण देहधारी कृष्ण नहीं थे। वो देह तो पाँच हजार साल पहले जा चुकी। वो तो धूल धूल में मिल चुकी। इसलिए जानकार कहते है कि मीरा का प्रेम राधा के प्रेम से भी बड़ा है। होना भी चाहिए। अगर राधा प्रसन्न थी कृष्ण को सामने पाकर, तो ये तो कोई बडी बात न थी। लेकिन मीरा ने पाँच हज़ार साल बाद भी सामने पाया, ये बडी बात थी। जिन गोपियो ने कृष्ण को मौजूदगी में पाया और प्रेम किया –– प्रेम करने योग्य थे वो, उनकी तरफ प्रेम सहज ही बह जाता। वैसा उत्सवपूर्ण व्यक्तित्व पृथ्वी पर मुश्किल से होता है — तो कोई भी प्रेम में पड़ जाता। लेकिन कृष्ण गोकुल छोडकर चले गये द्वारका, तो बिलखने लगीं गोपियाँ, रोने लगीं, पीड़ित होने लगी। गोकुल और द्वारका के बीच का फासला भी वो प्रेम पूरा न कर पाया। वो फासला बहुत बड़ा न था। स्थान की ही दूरी थी, समय की तो कम से कम दूरी न थी। मीरा को स्थान की भी दूरी थी, समय की भी दूरी थी; पर उसने दोनों का उलंघन कर लिया, वो दोनों के पार हो गयी।

प्रेम के हिसाब में मीरा बेजोड़ है। एक क्षण उसे शक न आया, एक क्षण उसे सदेह न हुआ, एक क्षण को उसने ऐसा व्यवहार न किया कि कृष्ण पता नहीं हों या न हों। वैसी आस्था, वैसी अनन्य श्रद्धा : फिर समय की कोई दूरी दूरी नही रह जाती। दूरी रही ही नही।

आत्मा सदा है। जिन्होंने प्रेम का झरोखा देख लिया, उन्हें वो सदा जो आत्मा है, उपलब्ध हो जाती है। जो अमृत को उपलब्ध हुए व्यक्ति हैं — कृष्ण हों, कि बुद्ध हो, कि क्राइस्ट हों –– जो भी उन्हें प्रेम करेंगे, जब भी उन्हें प्रेम करेंगे, तभी उनके निकट आ जाएँगे। वे तो सदा उपलब्ध हैं, जब भी तुम प्रेम करोगे, तुम्हारी आँख खुल जाती है।

इस चिंता में मत पड़ो कि कैसे मीरा पाँच हज़ार साल के बाद प्रेम कर पायी। प्रेम को क्या लेना-देना है सालों से?

रामकृष्ण मरते थे। उन्हें गले का कैंसर हुआ था। डॉक्टर ने कह दिया कि अब आखिरी घड़ी आ गयी। तो शारदा उनकी पत्नी रोने लगी। रामकृष्ण न कहा, 'रुक, रो मत। क्योंकि जो मरेगा वो तो मरा ही हुआ था, और जो जिंदा था वो कभी नहीं मरेगा। और ध्यान रख, चूड़ियाँ मत तोड़ना।'

शारदा अकेली स्त्री है पूरे भारत के इतिहास में, पति के मरने पर जिसने चूड़ियाँ नहीं तोड़ीं। क्योंकि रामकृष्ण ने कहा, 'चूड़ियाँ मत तोड़ना। तूने मुझे चाहा था कि इस देह को? तूने किसको प्रेम किया था? मुझे या इस देह को? अगर इस देह को किया था तो तेरी मर्जी, फिर तू चूड़ियाँ तोड़ लेना। और अगर मुझे प्रेम किया था तो मैं नहीं मर रहा हूँ। मैं रहूँगा।' मैं उपलब्ध रहूँगा।' और शारदा ने चूड़ियाँ नहीं तोड़ीं। शारदा की आँख से आँसू की एक बूंद नहीं गिरी। लोग तो समझे कि उसे इतना भारी धक्का लगा है कि वह विक्षिप्त हो गयी है। लोगों को तो उसकी बात विक्षिप्तता ही जैसी लगी। लेकिन उसने सब काम वैसे ही जारी रखा जैसे रामकृष्ण जिंदा हों। रोज सुबह वो उन्हें बिस्तर से आके उठाती कि अब उठो परमहंसदेव, भक्त आ गये हैं — जैसा रोज उठाती थी, भक्त आ जाते थे, और उनको उठाती थी आके। मसहरी खोल के खड़ी हो जाती — जैसे सदा खड़ी होती थी। ठीक जब वे भोजन करते थे तब वो थाली लगाके आ जाती थी, बाहर आके भक्तों के बीच कहती कि अब चलो, परमहंसदेव! लोग हँसते, और लोग रोते भी कि बेचारी! इसका दिमाग खराब हो गया! किसको कहती है? थाली लगाके बैठती, पंखा झलती। वहाँ कोई भी न था।

अगर प्रेम की आँख न हो तो वहाँ कोई भी न था, और अगर प्रेम की आँख हो तो वहाँ सब था। प्रेमी इसीलिए तो पागल दिखायी पड़ता है, क्योंकि उसे कुछ ऐसी चीजें दिखायी पड़ने लगती हैं जो अप्रेमी को दिखायी नहीं पड़तीं। और प्रेमी अंधा मालूम पड़ता है, बड़े मजे की बात है। प्रेमी के पास ही आँख होती है, लेकिन प्रेमी आँखवालों को अंधा दिखायी पड़ता है। क्योंकि उसे कुछ चीजें दिखायी पड़ती हैं जो तुम्हें दिखायी नहीं पड़ती; तुम्हें लगता है पागल है, अंधा है।

शारदा सधवा ही रही। प्रेम की एक बड़ी ऊँची मंजिल उसने पायी। रामकृष्ण उसके लिए कभी नहीं मरे। प्रेम मृत्यु को जानता ही नहीं। लेकिन प्रेम की मृत्यु में जो मरा हो पहले, वही फिर प्रेम के अमृत को जान पाता है। प्रेम स्वयं मृत्यु है, इसलिए फिर किसी और मृत्यु को प्रेम क्या जानेगा!

नहीं, समय का और स्थान का कोई अंतर नहीं है। प्रेम सब फासले मिटा देता है। एक ही फासला है, और वो अप्रेम का है। एक ही दूरी है, वो अप्रेम की है। जब तक तुम्हारे जीवन में अप्रेम है तब तक तुम सभी से दूर हो। जिस दिन तुम्हारे

जीवन में प्रेम जागेगा, प्रेम का झरना फूटेगा, तुम सभी के पास हो जाओगे। और तुमने एक के साथ भी अगर प्रेम का नाता जोड़ लिया, तो तुम पाओगे कि तुम्हें प्रेम का स्वाद मिल गया। फिर एक से क्या जोड़ना! फिर सभी से जोड़ लेना। फिर सर्व से जोड़ा जा सकता है।

प्रेम तो पाठ है प्रार्थना का।

सितारों के आगे जहाँ और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहाँ और भी हैं

प्रेम तो पाठ है प्रार्थना का। वो तो बारहखड़ी है। फिर बड़े इम्तिहान हैं। आखिरी इम्तिहान तो वही है जहाँ इस सारे अस्तित्व के प्रति तुम्हारा प्रेम हो जाना है, सर्व तुम्हारा प्रेमी हो जाता है। किसी एक को प्रेम करना ऐसे ही है जैसे खिड़की से संसार के सौंदर्य को झांकना। फिर खिड़की से जिसने झांकके देख लिया, वो खिड़की पर ही क्यों रुकेगा; फिर बाहर का निमंत्रण मिल गया, फिर चाँद-तारे बुला रहे हैं; फिर वो बाहर आ जाता है खुले आकाश के नीचे। प्रेम का पाठ सीखा, खिड़की के पास थे। इसलिए खिड़की के प्रति सदा ही कृतज्ञता का बोध रहेगा, भाव रहेगा।

गुरु के पास परमात्मा का पाठ सीखा जाता है। प्रेमी के पास प्रेम का पाठ सीखा जाता है। अनुग्रह रहेगा उसका, सदा-सदा के लिए। लेकिन जल्दी ही उससे पार होना है, और विराट चारों तरफ घिरा हुआ है। क्या खिड़की से देखना आकाश को, जब पूरा आकाश मिलने को संभव है, उपलब्ध है!

पाँचवां प्रश्न : बुद्ध ने कहा है, ध्यान का सतत अभ्यास करने वाले धीर पुरुष अनुत्तर योगक्षेम रूप निर्वाण को प्राप्त होते है। क्या निर्वाण के भी प्रकार हैं?

निर्वाण के तो कोई प्रकार नहीं है। जैसे फल जब पक जाता है तो एक क्षण में गिर जाता है, गिरने में कोई प्रकार नहीं है। लेकिन फल के पकने की बहुत सीढ़ियाँ हैं। अधपका फल है — अभी गिरा नहीं। कच्चा फल है — अभी गिरना बहुत दूर, गिरने की यात्रा पर है। गिरेगा तो फल एक क्षण में। पक गया, क्षण भी नहीं लगेगा। फिर गिरने में सीढ़ियाँ नहीं हैं; गिर तो एकदम जाएगा। लेकिन गिरने के पहले बहुत-सी सीढ़ियाँ हैं।

कच्चा फल भी वृक्ष से लगा है, अधपका फल भी वृक्ष से लगा है — अगर हम वृक्ष से लगे होने को ध्यान में रखें तो दोनों में कोई भी फर्क नहीं है। फर्क इतना ही है कि अधपका फल पकने के करीब आ रहा है, कच्चा फल बहुत दूर है। मगर दोनों वृक्ष से लगे हैं। निर्वाण तो एक ही क्षण में घट जाता है। लेकिन एक व्यक्ति

है जिसने कभी ध्यान नहीं किया, कभी प्रेम नहीं किया — कच्चा फल है। वो भी अभी संसार में है। फिर किसीने प्रेम किया, किसीने ध्यान किया — वो भी अभी टूट नहीं गया है, अभी वो भी पकके गिर नहीं गया है, वो भी संसार में है। अगर संसार में ही होने को देखें, तो दोनों संसार में हैं। लेकिन अगर उस भविष्य की घटना को हम खयाल में रखें तो एक कुछ कदम आगे बढ़ा है गिरने के करीब, और दूसरा अभी बहुत दूर खड़ा है। एक कच्चा फल है, एक अधपका फल है।

बौद्धों के विचार में ध्यान की तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था में शून्यता उत्पन्न होती है। काम कुछ भी करते रहो, भीतर एक शून्यभाव छाया रहता है। जपान में उसे वे कहते हैं झिन्माई — पहली अवस्था। कभी-कभी खुद को भी पता नहीं चलती वो अवस्था; क्योंकि बड़ी महीन और सूक्ष्म है और अचेतन तल पर होती है। ध्यान करनेवाले व्यक्ति की अक्सर हो जाती है — झिन्माई। मतलब उसका इतना है कि वैसा व्यक्ति बाहर काम भी करता रहता है, लेकिन बाहर उसका रस नहीं रह जाता। बोलता है, उठता है, बैठता है, दुकान करता है, लेकिन रस उसका बाहर खो गया होता है। बस कर रहा होता है, किसी तरह कर रहा होता है। कर्तव्य निभाता है। सारा रस भीतर चला गया है, और भीतर एक शून्य का अनुभव होने लगा है। जैसे कुछ भी नहीं है; एक शांति गहन होने लगी है। ये पहली अवस्था है।

दूसरी अवस्था को झेन में सतोरी कहते हैं। दूसरी अवस्था तब है जब ये शून्य कभी-कभी इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि इस शून्य का बोध होता है, जागरण होता है। अचानक एक क्षण को जैसे बिजली कौंध जाए, ऐसा भीतर शून्य कौंध जाता है। मगर ऐसी कोंध कौंधती है, समाप्त हो जाती है। बिजली कौंधी, थोड़ी देर को रोशनी हो गयी — क्षण भर को — फिर रोशनी खो गयी, फिर अँधेरा हो गया।

सतोरी कई घट सकती हैं।

फिर तीसरी अवस्था समाधि की है। समाधि ऐसी अवस्था है, बिजली जैसी नहीं, सूरज के उगने जैसी। उग गया तो उग गया। फिर ऐसा नहीं कि फिर बुझा, फिर उगा, फिर डूबा — ऐसा नहीं है। उग गया।

समाधि अंतिम अवस्था है। फल पक गया। समाधि उस क्षण का नाम है जो निर्वाण के एक क्षण पहले की है: फल पक गया, बस अब टूटा, अब टूटा। और तब फल टूट गया। फल का टूट जाना निर्वाण है।

लेकिन इस निर्वाण तक पहुँचने में पहले ध्यान या प्रेम के माध्यम से एक शून्यता साधी जाएगी; एक भीतर ठहरना आ जाएगा; बाहर से हटना हो जाएगा; ऊर्जा भीतर की तरफ बहने लगेगी; बाहर एक तरह की अनासक्ति छा जाएगी; करते

को सब किया जाएगा लेकिन करने में कोई रस न रह जाएगा) हो जाए तो ठीक, न हो जाए तो ठीक; सफलता हो कि असफलता, सुख मिले कि दुख — बराबर होगा (व्यक्ति ऐसे जिएगा जैसे नाटक में — अभिनेता; अभिनय करेगा बस)

ये संन्यास का पहला कदम है : अभिनेता हो जाना। करते सब वही हैं जैसा कल भी करते थे, लेकिन अब ऐसा करते हैं जैसा अपना कोई लेना-देना नहीं है। जरूरत है, कर रहे हैं। कल करते थे किसी गहरी आसक्ति और लगाव से, अब करते हैं केवल कर्तव्य से।

फिर दूसरी अवस्था है, जब कभी-कभी झलकें मिलेंगी। अचानक द्वार खुल जाएगा। अचानक तुम रूपांतरित हो जाओगे; एक तल से दूसरे तल पर पहुँच जाओगे। वो दिखायी पड़ेगा दूर का शिखर — बादल हट गये है और गौरीशंकर का उत्तुंग शिखर दिखायी पड गया है; बादल हट गये हैं और चाँद दिखायी पड गया है; फिर बादल घिर गये हैं। ऐसा कई बार होगा।

झेन फकीर रिझाई के संबंध में कहा जाता है कि उसे अट्ठारह सौ सतोरी अनुभव हुईं समाधि के पहले। अट्ठारह सौ भी सिर्फ प्रतीक है, अट्ठारह हजार भी हो सकती हैं। तो कितनी ही बार झलक हो सकती है। लेकिन झलक सिर्फ खबर है इस बात की कि मैं करीब आ रहा हूँ, करीब आ रहा हूँ; लेकिन अभी आ नहीं गया हूँ। मंजिल दिखायी पड़ने लगी है (फिर कई बार खो भी जाती है मंजिल, क्योंकि मन के भावावेग बदलते रहते हैं। कभी ध्यान सध जाता है किसी दिन, मन प्रफुल्ल होता है, शांत होता है, आनंदित होता है) सध जाता है किसी दिन (किसी दिन नहीं सधता, चूक जाता है, बड़ी दूरी हो जाती है। ऐसा कई बार पास आना और कई बार दूर होना हो जाता है)

(लेकिन, जिसको झलकें मिलने लगीं, जरा-जरा स्वाद आने लगा, वो अब भटक नहीं सकता। अब एक बात तो पक्की हो गयी कि जिसकी तलाश है, वो है; जिसको खोजते थे, वो कल्पना नहीं है) जिसकी तरफ चले थे, वो चाहे मिले न जन्मों-जन्मों तक भी अब, लेकिन है। श्रद्धा का आविर्भाव होता है। और जैसे ही श्रद्धा का आविर्भाव होता है, सतोरी धीरे-धीरे समाधि बनने लगती है। श्रद्धा और सतोरी का जुड़ जाना समाधि है (एक बात तो पक्की हो गयी, बिजली चमक गयी अँधेरी रात में, दिखायी पड़ गया कि रास्ता है) और दूर मंदिर के कलश भी दिखायी पड़ गये। फिर बिजली खो गयी, अंधेरा फिर हो गया; लेकिन अब एक बात पक्की है कि मंदिर है। उसके स्वर्ण-कलश दिखायी पड़ गये। एक बात पक्की है कि रास्ता है। टटोल रहे हैं अँधेरे में, मिले न मिले; कभी मिल भी जाए, कभी फिर भटक जाए — लेकिन रास्ता है, मंदिर है। अब चाहे जन्म-जन्म लग जाएँ, लेकिन हम

व्यर्थ ही नहीं खोज रहे हैं। सत्य है। परमात्मा है। आत्मा है। निर्वाण है।

और जैसे ही ये अनुभव होने लगता है कि है, वैसे-वैसे कदमों का बल बढ़ जाता है, खोज की त्वरा बढ़ जाती है। सब कुछ दांव पर लगा देने की हिम्मत आ जाती है। फिर तुम मंदिर के द्वार पर पहुँच गये। सूरज उग गया। अब तुम द्वार पे खड़े हो। सब सीढ़ियाँ पूरी हो गयीं। ये समाधि की अवस्था है — प्रवेश के एक क्षण पहले। इसके बाद निर्वाण है। इसके बाद फल गिर जाता है। तुम प्रविष्ट हो गये।

द्वार पर भी कोई रुक सकता है। द्वार पर रुकने का कारण वासना नहीं होती, द्वार पर रुकने का कारण करुणा हो सकती है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। निर्वाण के द्वार पर वे आ गये हैं। द्वार खोल दिया गया। लेकिन वे पीठ फेर के खड़े हो गये हैं। कहानी है, पर बड़ी मधुर है, और बुद्धत्व के संबंध में बड़ी सूचक है। द्वारपाल ने कहा, 'आप भीतर आएँ। हम कितने युगों से आपकी प्रतीक्षा करते हैं। कितने युगों से आपका निरीक्षण करते हैं कि प्रति कदम आप आते जा रहे है करीब।' बुद्ध ने कहा, 'लेकिन मेरे पीछे बहुत लोग है। अगर मै खो गया शून्य में, तो उनके लिए मैं कोई सहारा न दे सकूँगा। मुझे यहीं रुकने दो। मैं चाहूँगा कि सब मुझसे पहले प्रवेश हो जाएँ निर्वाण में, फिर अंतिम मैं रहूँ।'

ऐसा होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन यह महाकरुणा का प्रतीक है।

कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था एक यहूदी फकीर की, जो इससे भी मीठी है। झूसिया नाम का हसीद फकीर मरा। वो स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है, निर्वाण के द्वार पर। वो भीतर नहीं जाता। वो कहता है, भीतर जाके भी क्या करेंगे! जो पाना था वो पा लिया। और फिर अभी बहुत लोग हैं जिनको मेरी जरूरत है। स्वयं परमात्मा चिंतित हो गया है। कोई रास्ता नहीं है झूसिया को समझाने का कि तुम भीतर आ जाओ। परमात्मा सिंहासन पर बैठा है। द्वार से झूसिया देख रहा है। परमात्मा कहता है भीतर आ जाओ। झूसिया कहता है, 'क्या करेंगे? देख लिया, पा लिया। अभी दूसरों को सहायता देनी है। जो मिला है उसे बाँटना है। मुझे यहीं रुकने दें। मुझ पे दया करें। द्वार बंद कर लें।'

कोई रास्ता न देखके, परमात्मा यहूदियों की किताब 'तोरा' अपने हाथ में रखे है, उसने किताब छोड़ दी। वो किताब जमीन पे गिरी। पुरानी आदतवश झूसिया भागा; क्योंकि 'तोरा' गिर जाए तो उसे उठाना चाहिए। वो किताब उठाने गया, दरवाजा बंद कर दिया गया। तब से वो बाहर नहीं निकल पाया। परमात्मा को तरकीब लगानी पड़ी — 'तोरा' गिराना पड़ा।

कहानी बड़ी मीठी है। झूसिया वहीं रुक जाना चाहता था — समाधि पर; निर्वाण तक नहीं जाना चाहता था। लेकिन कोई उपाय करना ही पड़ेगा, समाधि पर कोई रुक नहीं सकता। फल जब पक गया तो गिरेगा ही। फल कितना ही चाहे, पर अब रुकने का कोई उपाय न रहा। पक जाना गिर जाना है। समाधिस्थ हो जाना निर्वाण हो जाना है।

पर निर्वाण के पहले ये तीन घटनाएँ घटती है। पहले एक सातत्य बनता है भीतर अचेतन मन में; फिर चेतन में झलकें आनी शुरू होती हैं; फिर कोई द्वार पे खड़ा हो जाता है; फिर सब खो जाता है। फिर न जाननेवाला बचता, न जाना जानेवाला बचता; न ज्ञाता, न ज्ञेय; न भक्त, न भगवान; फिर वही रह जाता है जो है। कृष्णमूर्ति जिसे कहते हैं: दैट व्हिच इज़ — वही रह जाता है जो है। निःशब्द ! अनिवचनीय ! वही मंज़िल है। वही पाना है।

पाने के दो उपाय मैंने तुमसे कहे : या तो प्रेम से, संभव हो सके तो प्रेम का रास्ता बड़ा हरा-भरा है, वहाँ इंद्रधनुष हैं और फूल खिलते हैं और झरनों में कल-कल नाद है, और गीत का गुंजार है, और नृत्य भी है। अगर नहीं, तो ध्यान का मार्ग है। ध्यान का मार्ग थोड़ा मरुस्थल जैसा है। उसका अपना सौंदर्य है। उसकी अपनी स्वच्छता है। उसका अपना विस्तार है। लेकिन थोड़ा रूखा-सूखा है। वहाँ काव्य नहीं है, हरियाली नहीं है, मरुद्यान नहीं है। पर प्रत्येक को अपने को ध्यान में रखना है कि उसको कौनसी बात ठीक पड़ेगी।

स्त्रैण चित्त प्रेम के मार्ग से जा सकेगा। और कई पुरुषों के पास स्त्रैण चित्त है; वे भी प्रेम से ही जा सकेंगे। पुरुष चित्त ध्यान से जा सकेगा। और कई स्त्रियों के पास पुरुष चित्त है; वे भी ध्यान से ही जा सकेंगी। इसलिए शरीर से स्त्री और पुरुष होने पर ध्यान मत देना। अपने चित्त को पहचानने की फिकिर करना। कहीं ऐसा न हो कि तुम जा सकते थे प्रेम से और ध्यान की कोशिश करो, तो फिर तुम सफल न हो पाओगे। तुम्हारे स्वभाव के विपरीत कुछ भी सफल नहीं हो सकता।

इसलिए मार्ग पर साधकों के लिए सबसे बड़ी जो बात है, वो यही जान लेना है कि उनका क्या प्रकार है। और इसलिए गुरु अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि तुम कैसे पहचानो कि क्या तुम्हारा प्रकार है ? अपने से इतनी दूरी नहीं कि अपना निरीक्षण कर सको। कोई चाहिए, जो रास्ते से गुज़र चुका हो। कोई चाहिए, जो तुम्हें दूर से खड़े होके देख सके और पहचान सके, और तुमसे कह सके कि तुम्हारा प्रकार क्या है। क्योंकि सबसे बड़ी बात वहीं घटती है। अगर प्रकार ठीक तालमेल खा गया, तो जो जन्मों में नहीं घटता वो क्षणों में घट जाता है। और अगर तुम प्रकार

के विपरीत चेष्टा करते रहे, तो जो क्षणों में घट सकता था वो जन्मों में भी नहीं घटता है।

मेरे अनुभव में, मेरे देखने में, तुम अपने पापों या कर्मों के कारण इतने नहीं भटकते हो, जितना गलत विधि चुनने के कारण भटकते हो। अनुकूल को चुन लेना बड़ा आवश्यक है। प्रतिकूल को चुनना ऐसा ही है जैसे कोई गुलाब का फूल कमल होने की कोशिश कर रहा हो। वो कमल तो हो ही न पाएगा, गुलाब भी न हो पाएगा, क्योंकि कोशिश में सब ऊर्जा व्यर्थ हो जाएगी। गुलाब का फूल गुलाब ही हो सकता है। कमल का फूल कमल ही हो सकता है। मगर न तो कमल का सवाल है न गुलाब का, असली सवाल खिल जाने का है। प्रेम से खिलो कि ध्यान से खिलो, कोई फर्क नहीं पडता। आखिरी हिसाब में खिल गये, बंद-बंद न मर गये। बंद-बंद मरे तो वापिस आना पड़ेगा, खिलकर मरे तो वापसी नहीं है। जो खिल के गया, वो सदा के लिए गया। वो फिर स्वीकार हो गया। इसलिए तो हम परमात्मा के चरणों में जाके फूल चढ़ाते हैं। वो सिर्फ प्रतीक हैं कि उसके चरणों में केवल वे ही स्वीकार होंगे जो फूल की तरह खिलके जाते हैं। जो बीज की तरह ही हैं उनको तो वापिस आना पड़ेगा।

निर्वाण का अर्थ है खिल जाना। जो भीतर था, वो प्रगट हो गया; जो अनभिव्यक्त था, वो अभिव्यक्त हो गया; जो गीत अनगाया पड़ा था, वो गा लिया गया; जो नाच अननाचा पड़ा था, वो नाच लिया गया।

जिस दिन भी तुम्हारी नियति पूरी हो जाती है, तुम सौरभ से भर जाते हो, तुम्हारी पखुड़ियाँ खिल जाती हैं — उसी दिन तुम स्वीकार हो जाते हो। तुमने अर्जित कर लिया मोक्ष। तुमने कमा लिया मोक्ष। अस्तित्व अपनी बाँहें फैलाकर तुम्हारा स्वागत करता है।

सारा अस्तित्व उत्सव मनाता है जिस दिन एक व्यक्ति भी बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। क्योंकि सारा अस्तित्व सदियों तक प्रतीक्षा करता है, तब कहीं करोड़ों लोगों में से कोई एक पहुँच पाता है। और सभी पहुँचने के हकदार थे। सभी पहुँचने को ही हैं। सभी को पहुँचना ही चाहिए। दुर्भाग्य है कि लोग न मालूम दूसरे कामों में उलझ जाते हैं, व्यर्थ के कामों में उलझ जाते हैं; सार को नहीं पहचान पाते, असार को नहीं पहचान पाते।

बुद्ध कहते हैं, जिसने सार को सार की तरह जान लिया, असार को असार की तरह जान लिया — वही, वही उपलब्ध हो पाता है।

आज इतना ही।

यात्री, यात्रा, गंतव्य : तुम्हीं

२९ नवबर १९७५
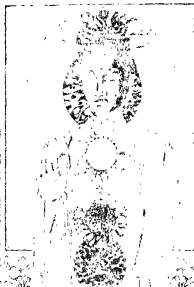
ढूँढ़ता फिरता हूँ ऐ इक़बाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफ़िर आप ही मंज़िल हूँ मैं

खोज किसकी है? किसी और की नहीं, अपनी ही। पाना किसे है? वो बाहर नहीं है, भीतर है। जिसे हम तलाश रहे हैं वो हमारा स्वभाव है। इसलिए यात्रा पदयात्रा नहीं है, यात्रा आत्म-यात्रा है। यात्रा किसी और तक पहुँचने की नहीं है, यात्रा अपने तक ही पहुँचने की है। जो मिला ही हुआ है, उसके प्रति जागना है। संपदा खोजनी नहीं है, सिर्फ आँख खोलनी है।

ढूँढ़ता फिरता हूँ ऐ इक़बाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंज़िल हूँ मैं

यात्री भी तुम्हीं हो; यात्रा भी तुम्हीं हो; यात्रा का लक्ष्य और गंतव्य भी तुम्हीं हो। इसलिए बिना कहीं जाए भी पहुँचना हो सकता है। जहाँ बैठे हो वहीं बैठे-बैठे भी पहुँचना हो सकता है। जरा भी बिना हिले-डुले भी पहुँचना हो सकता है।

और जो बाहर खोजने गये वो भटक गये। यात्रा पहले कदम से ही गलत हो गयी। जिन्होंने सोचा बाहर है, पहले से ही चूक गये। कहीं जाना नहीं, अपने पास आना है। कहीं खोजना नहीं, अपने भीतर जागना है। और जिसे ये बात समझ में आ गयी, वो तथाकथित धर्म के जाल से मुक्त हो जाता है।

और ध्यान रखना, अधर्म से मुक्त होना कठिन नहीं है, धर्म से मुक्त होना कठिन है। अधर्म तो अँधेरा जैसा है, दिया जलते ही अपने आप नष्ट हो जाता है। लेकिन तथाकथित धर्म राह पर पड़ी पत्थर की चट्टानों जैसा है। सिर्फ दिये के जलने से ही दूर नहीं हो जाता है। और तथाकथित धर्म का बड़ा गहरा जाल प्रत्येक व्यक्ति के पास है। तुम्हें ऐसा व्यक्ति खोजना मुश्किल होगा जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है, न सिक्ख है। कोई न कोई जाल पास है। खालिस आदमी खोजना मुश्किल है।

और खालिस आदमी ही स्वयं तक आ सकता है। जिसे तुमने धर्म समझा है, वो तुम्हारे बाजार का ही हिस्सा है। और जिसे तुमने मंदिर समझा है, वो परमात्मा के नाम की दूकान है।

कुछ दिन पहले मैं एक कहानी पढ़ता था। एक गाँव में एक महाकंजूस था। यहूदी। या कहें मारवाड़ी। उसने कभी एक पैसा दान न दिया। गाँव में भिखारी भी उसके घर की तरफ नहीं जाते थे। अगर कोई नया भिखारी उसके घर की तरफ जाता, तो लोग समझ जाते कि नया भिखारी है। जिसको थोड़ा भी पता है, वो कभी भीख माँगने उसके द्वार पर न जाएगा। उसने कभी दिया ही नहीं। वो भिखारी से भी कुछ छीन सकता था। देना उसकी आदत न थी।

लेकिन एक दिन वो गाँव के धर्मगुरु के द्वार पर पहुंचा। यहूदी धर्मगुरु। और उसने कहा कि आज मेरे लिए कुछ प्रार्थना करनी होगी। धर्मगुरु ने सोचा कि अब प्रार्थना करवाने आया है, तो कुछ दान करवा लेने का मौका है। लेकिन यहूदी कंजूस भी सोच-विचार के ही आया था। पूछा धर्मगुरु ने, क्या प्रार्थना करनी है? उस कंजूस ने कहा कि मेरी पत्नी बीमार पड़ी है, मर जाए ये प्रार्थना करनी है। धर्मगुरु ने कहा, दान क्या दोगे? उस कंजूस ने कहा कि जीवन अगर माँगता, तब तो दान माँगना उचित भी था। मौत माँग रहा हूँ; इसके लिए भी दान देना पड़ेगा? कुछ तो संकोच करो – वो मौत माँगते संकोच नहीं कर रहा है – कुछ तो थोड़ा खयाल करो, कुछ तो दया करो।

धर्मगुरु ने देखा कि इतना आसान नहीं है मामला। उसने कहा, कुछ भी हो, मौत हो कि जीवन हो, प्रार्थना तो तभी हम करेंगे जब कुछ दान हो। उसने कहा, अच्छा एक रुपया दे देंगे। बहुत धर्मगुरु ने जोर डाला तो उसने कहा, दो रुपया दे

देंगे। ऐसे कुछ बात बनती न दिखी तो धर्मगुरु ने कहा सुनो, मौत की प्रार्थना की नहीं जा सकती। कोई उल्लेख ही नहीं है शास्त्र में कि किसीकी मौत के लिए प्रार्थना कभी की गयी हो। परमात्मा से लोग जीवन की प्रार्थना करते हैं, मौत की नहीं। तुम मुझे क्षमा करो। यह काम मुझसे न हो सकेगा।

महाकंजूस ने कहा, छोड़ो भी ये बातें कानूनी, पाँच रुपये दे सकता हूँ। धर्मगुरु बोला कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता, प्रार्थना तो जीवन की ही हो सकती है। लेकिन एक तरकीब तुम्हें मैं बता देता हूँ — क्योंकि कानून में सब जगह तरकीब तो होती ही है — शास्त्रों में ऐसा कहा है कि अगर कोई आदमी मंदिर को दान का वचन दे और तीन महीने के भीतर दान न दे, तो उसकी पत्नी मर जाती है — दंडस्वरूप। तो तुम दान की घोषणा कर दो। देने की तो कोई जरूरत ही नहीं है। पत्नी तीन महीने के भीतर मर जाएगी। तो उस महाकंजूस ने कहा कि जब देना ही नहीं है, तो उसने कहा तब ठीक है, तब एक लाख रुपया दान दे देंगे। जब देना ही नहीं है! धर्मगुरु ने कहा, जब देना ही नही है तब लाख क्या दस लाख? अरे, दस लाख ही कह दो! थोड़ा सकुचाया, क्योंकि कल्पना में भी देना कष्टकर मालूम होता है। उसने कहा, दस लाख ज्यादा हो जाएँगे। पर धर्मगुरु ने कहा, जब देना ही नहीं है, तो जैसा एक वैसा दस लाख। वो बड़े बेमन से राजी हुआ। लौट गया घर।

पत्नी मरी तो नहीं; बीमार थी, ठीक हो गयी। वो बड़ा चकित हुआ। तीन महीने पूरे हुए, वो वापिस आया। उसने कहा कि ये नियम तो काम नहीं किया। धर्मगुरु ने कहा कि देखो, शास्त्र कहता है -- दंडस्वरूप, 'एज ए पनिशमेंट'। मगर तुम तो चाहते हो कि पत्नी मर जाए। इसलिए ये तुम्हें दंड तो न होगा, ये तो पुरस्कार हो जाएगा। इसलिए प्रार्थना व्यर्थ गयी। अगर तुम सच में ही चाहते हो पत्नी मर जाए, तो तुम अब ऐसा करो कि जाके बजार से कुछ हीरे-जवाहरात खरीदो, कुछ सुंदर साड़ियाँ खरीदो, पत्नी को भेंट करो। पत्नी तुम्हारे प्रति इतनी प्रेम से भर जाए और तुम भी इतने प्रेम से भर जाओ कि तुम्हारे प्राण कहने लगें कि नहीं, अब मत मार; हे परमात्मा, अब मत मारना! तब वो मारेगा, 'कि तभी तो दंड हो सकता है। नहीं तो नियम ...। ये बात जँची। पर उसने कहा, हीरे-जवाहरात मैंने कभी खरीदे नहीं। धर्मगुरु ने कहा क्या हर्ज है, पत्नी तो मर ही जाएगी, तुम बेच देना। थोड़ा लाभ ही भला हो जाए, नुकसान तो क्या होगा! चीजों के दाम तो रोज बढ़ते ही जाते हैं।

ये बात जँची। वो गया। उसने हीरे-जवाहरात खरीदे। साड़ियाँ खरीदीं बहुमूल्य। कभी खरीदके घर लाया न था। पत्नी तो हैरान हो गयी कि इसमें ऐसा रूपांतरण हुआ। निश्चित ही धर्मगुरु की कृपा से हुआ होगा। मंदिर गया, इसी-

लिए हुआ होगा। उसने भी पहली दफा उसे प्रेम से देखा। और पत्नी उसे इतना प्रेम करने लगी कि उस कंजूस को भी पहली दफा एहसास हुआ कि ये पत्नी तो बड़ी अनूठी है। मैं नाहक ही इसके मरने की प्रार्थना करता था। तब वो डरा। अब उसके मन में ये होने लगा कि कहीं मर न जाए। और तीन महीने करीब होने के पास आ रहे थे। और पत्नी बीमार पड़ गयी। तो वो घबड़ाया हुआ पहुँचा धर्मगुरु के पास। उसने कहा, ये तो मुसीबत हो गयी। नियम काम करता मालूम पड़ रहा है; पत्नी बीमार पड़ गयी। अब कैसे बचाएँ उसे? धर्मगुरु ने कहा कि वो जो दस लाख दान दिया था वो दान दे दो। अब तो बचने का और कोई उपाय नहीं।

जिनको तुम मंदिर कह रहे हो, वो तुम्हारी ही दूकान के आसपास बड़ी दुकानें हैं। वहाँ भी व्यापार के वही नियम काम कर रहे हैं। तुम्हारे धर्मगुरु तुमसे भिन्न नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। नहीं तो तुम्हारे धर्मगुरु कैसे होंगे? तुम्हारे धर्मगुरु होने के लिए तुम्हारे जैसा ही होना जरूरी है। तुम्हारा ही गणित, तुम्हारा ही हिसाब, तुम्हारे ही मन का व्यवसाय। तुम्हारा मंदिर तुम्हारे जैसा है। ध्यान रखना, तुम्हारा मंदिर तुम्हारा है, परमात्मा का नहीं। तुमने ही बनाया है। और तुमने जो मूर्ति स्थापित की है, वो तुम्हारी ही मूर्ति होगी। परमात्मा की तो मूर्ति का तुम्हें पता भी कहाँ है! और तुम जिस मूर्ति के सामने झुके हो, वो अपनी ही धारणाओं के सामने झुकना है।

परमात्मा की कोई मूर्ति बनानी जरूरी नहीं है, क्योंकि वो तो तुममें मूर्तिमान हुआ है। तुम्हें कहीं बाहर झुकने का सवाल नहीं है। भीतर झुकने की कला आ जाए। ध्यान रखना, किसीके सामने भी झुकने का सवाल नहीं है। बस झुकने की कला आ जाए; झुकना तुम्हारा स्वभाव बन जाए। जिस दिन भी तुम भीतर झुकोगे, तुम पाओगे मंदिर के सामने खड़े हो। जिस दिन भी भीतर तुम्हारी अकड़ टूटेगी, अहंकार गिरेगा, तुम पाओगे ये चिन्मय मंदिर तो सदा से भीतर था। मैं मृण्मय मंदिरों में खोजता था, आदमी के बनाए घरों में पुकार रहा था, और जिसे मैं खोज रहा था वो मेरे भीतर सदा मौजूद था।

> ढूंढ़ता फिरता हूँ ऐ इकबाल अपने आपको
> आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंजिल हूँ मैं

तुम ही हो भगवान और तुम ही हो भक्त। तुम ही हो पूजा, पुजारी, पूज्य। और जब तक तुम्हें ये बात स्मरण न आ जाए, तब तक तुम भटकते ही रहोगे। इसलिए बुद्ध न तो परमात्मा की बात करते है, न प्रार्थना की बात करते हैं, बुद्ध केवल ध्यान की बात करते हैं। अप्रमाद।

'प्रमाद में मत लगे रहो; कामरति का गुणगान मत करो। प्रमादरहित व ध्यान

में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है।'

एक-एक शब्द समझ लेने जैसा है।

'प्रमाद में मत लगे रहो'। जैसे तुम जी रहे हो, वो जीवन प्रमाद का है। प्रमाद का अर्थात मूर्छा का। वो जीवन तंद्रा का है। कभी-कभी तुम भी जागते हो तो तुम्हें भी लगता है, तुम व्यर्थ ही जी रहे हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसे कभी-कभी झलक न आती हो कि मैं क्या व्यर्थ जी रहा हूँ। किसी दिन सुबह उठके ऐसा लगता हो : क्या सार है, इसमें ? रोज उठता हूँ, रोज जागता हूँ, दौड़ता हूँ; बजार है, दौड़-धूप है, आपाधापी है, कमाना है, साँझ फिर सो जाना है, फिर सुबह उठ आना है।

सुबह होती है शाम होती है
उम्र यूँ ही तमाम होती है

लेकिन किसलिए ? क्या प्रयोजन है इस सब का ? एक दिन ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते राह में गिर जाऊँगा। धूल-धूल से मिल जाएगी। क्या परिणाम होगा इस सब यात्रा का ? और तुम कोई पहले नहीं हो। तुम जिस धूल पर चल रहे हो, वो न मालूम कितने लोगों को अपने में समा चुकी है। तुम जिसे रास्ता कहते हो, वहाँ कितने लोगों का मरघट बन गया है। थोड़े गौर से अपने चारों तरफ देखो तो दिखायी पड़ेगा --

आग बुझी हुई इधर टूटी हुई तनाब उधर
क्या खबर इस मुकाम से गुजरे हैं कितने कारवाँ

जरा गौर से देखो अपने चारों तरफ।

आग बुझी हुई इधर टूटी हुई तनाब उधर

कितने खंडहर पड़े हैं। कहीं आग बुझी पड़ी है। जैसे किसीने कभी जल्दी ही थोड़े समय पहले रोटी बनायी हो। चीजें टूटी-फूटी पड़ी हैं। कोई गुजरा है।

क्या खबर इस मुकाम से गुजरे हैं कितने कारवाँ

कितने लोग, कितने यात्री इस मुकाम से गुजर चुके हैं; और खो गये। उनका कोई चिह्न भी खोजे नहीं मिलता। ऐसे ही तुम भी खो जाओगे। ये बोध सभी को कभी न कभी पकड़ लेता है।

लेकिन तुम इसे झुठला देते हो; तुम अपने को सम्हाल लेते हो। तुम्हारा सम्हा-लने का मतलब क्या है ? तुम अपने को सम्हलने नहीं देते। जब कभी सम्हलने का क्षण आता है, तुम फिर अपने पुराने ढाँचे में लग जाते हो; दौड़के दुकान पे पहुँच जाते हो, या रेडियो खोल लेते हो, या अखबार पढ़ने लगते हो, या किसीसे बात-चीत करने में लग जाते हो। घबड़ाहट होती है कि ये क्षण खतरनाक हो सकते हैं।

क्योंकि इन्हीं क्षणों में वैराग्य जन्मता है, इन्ही क्षणों में संन्यास का जन्म होता है। तुम यहां-वहां उलझा लेते हो ताकि ये खतरनाक बातें तुम्हें दिखायी न पड़ें। तुम किसी झूठ में तल्लीन हो जाते हो। सत्य अगर जगाने को तुम्हारे पास भी आता है, तो तुम करवट ले लेते हो, फिर नयी नींद में खो जाते हो।

ऐसा आदमी तो खोजना ही मुश्किल है जिसको कभी न कभी ये दिखायी न पड़ता हो कि ये सब व्यर्थ है जो मैं कर रहा हूँ। लेकिन फिर भी आदमी वही किये चला जाता है जो व्यर्थ दिखायी पड़ता है। प्रकाश के किन्हीं क्षणों में, ज्योतिर्मय चैतन्य की किसी अवस्था में, जब सब व्यर्थ दिखायी पड़ता है, तब फिर तुम कैसे अँधेरे में उतर आते हो बार-बार?

इसे बुद्ध प्रमाद कहते है। प्रमाद का अर्थ है जानते हो, फिर भी जो जानते हो उसके विपरीत जाते हो। जानते हो आग में हाथ डालने से हाथ जलेगा, फिर-फिर डालते हो। पुराने घाव भी नहीं मिट पाते और फिर हाथ डाल देते हो। निश्चित ही तुम होश में नहीं हो सकते, बेहोश हो; कोई बड़ी गहरी निद्रा में जी रहे हो।

'प्रमाद में मत लगे रहो'। ये जो कभी-कभी प्रकाश के क्षण तुम्हारे जीवन मे आते हैं, इनको सहारा दो, सहयोग दो। इनको घना करो। इनको पुकारो। इनकी प्रार्थना करो। इनका स्वागत करो। इनको सम्हालो अपने भीतर। इनको संजोओ। क्योंकि इनसे बड़ी कोई संपदा नही है। और अगर तुम इनके साथ सहयोग करो, स्वागत करो, इन्हे स्वीकार करो, अंगीकार करो, तो ये क्षण बढ़ते जाएँगे। इन क्षणों के बढ़ते जाने का नाम ही ध्यान है।

ध्यान का अर्थ है, जागा हुआ चित्त।

प्रमाद का अर्थ है, सोया हुआ चित्त।

इसलिए बुद्ध और महावीर ध्यान के लिए अप्रमाद शब्द का प्रयोग करते है। 'प्रमाद में मत लगे रहो'। काफी लगे रहे हो। और तुम हजार बहाने खोज लेते हो लगे रहने के। तुम कहते हो अभी...अभी बच्चे बड़े हो रहे है। तुम कहते हो, अभी तो महत्त्वाकांक्षा के दिन है, थोड़ा और कमा लूं। तुम कहते हो, अभी तो जवान हूँ, ये धर्म और वैराग्य, ये तो बुढ़ापे की बाते है।

एक युवक को मैंने संन्यास दिया। उसका बूढा बाप आ गया। बूढ़े बाप की उम्र होगी कोई सत्तर-पचहत्तर। उसने कहा, आप भी क्या अन्याय कर रहे हैं? जवान आदमी को संन्यास देते हैं? शास्त्रों में तो कहा है कि संन्यास तो अंत में लेने की बात है। मैंने कहा, छोड़ो, तुम्हारे लड़के का संन्यास वापिस ले लेंगे। तुम संन्यास लेने को तैयार हो? तुम तो पचहत्तर वर्ष के हुए। कब आखीर आएगा? वो आदमी मुस्कराने लगा, उसने कहा आपकी बात ठीक है; लेकिन अभी बहुत दूसरे काम भी

हैं, अभी दूसरी उलझनें भी हैं। तो मैंने कहा कि इस लड़के का मैं संन्यास वापिस ले सकता हूँ, अगर तुम संन्यास लेने को तैयार हो। तुमने ही कहा।

मगर वो आदमी सिर्फ तर्क दे रहा था, लड़के को संन्यास से बचाने को। खुद संन्यास लेने के लिए वो तर्क काम का नहीं था। लोग जवान रहते हैं, तब कहते हैं अभी तो जवान हैं। और जब बूढ़े हो जाते हैं तब वो कहते हैं, अब तो बूढ़े हो गये।

जब कश्ती साबित-ओ-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे

जब नाव जवान थी, 'जब कश्ती साबित-ओ-सालिम थी'—'साहिल की तमन्ना किसको थी'? तब कौन फिक्र करता था किनारे की, कौन आकांक्षा करता था किनारे की? तब तो तूफानों से जूझ लेने का मन था। 'जब कश्ती साबित-ओ-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी, अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर...'अब बुढ़ापा आ गया, अब नाव जराजीर्ण हो गयी—'अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे'?

प्रमाद से भरा चित्त अपने सोने के लिए उपाय ही खोजता रहता है। जवान हो, तब कहता है अभी जवान है। बूढ़ा हो जाए, तो कहता है अब बूढ़े हो गये, अब क्या कर सकेंगे? बच्चे बच्चे है, कैसे सन्यस्त हो जाएँ? जवान जवान हैं, अभी तो जिंदगी बहुत शेष है। बूढ़े बूढ़े हो गये, अब तो कुछ शेष ही न रहा। तुम प्रमाद के लिए तर्क खोजते हो।

प्रमाद को जो तर्क सहारा देता है, उसीको शास्त्रों ने कुतर्क कहा है। प्रमाद से जो जगाता है, उसी तर्क को शास्त्रों ने सुतर्क कहा है। जो तर्क तुम्हें नींद में डुबाए रखता है, वो आत्मघाती है, वो जहर है। उसमें दबे-दबे तुम मर जाओगे। उसमें बहुत मर चुके हैं। तर्क का उपयोग अपने को जगाने के लिए करना। जैसे-जैसे तुम *जागने के लिए थोड़ा रास्ता बनाओगे, तुम पाओगे जाग्रति के और क्षण आने लगे।* तुम जितना-जितना जाग्रति के लिए उत्सुक होने लगोगे, प्रतीक्षा करने लगोगे, उतने ज्यादा क्षण आने लगेंगे। जिसे तुम चाहते हो, वो आ ही जाता है।

बुद्ध का एक बहुत अनूठा वचन है कि आकांक्षा सोच-विचारके करना, क्योंकि आकांक्षाएँ पूरी हो जाती हैं। जिसे तुम चाहते हो वो आ ही जाता है देर-अबेर। आकांक्षा सोच-समझके करना। अगर धन माँगा, धन आ जाएगा; एक दिन आ ही जाएगा। अगर पद माँगा, पद आ जाएगा; एक दिन आ ही जाएगा। क्योंकि आदमी जो चाहता है, धीरे-धीरे उस तरफ खिंचता चला जाता है। जिसकी आकांक्षा होती है, उसका प्रयास भी होने लगता है। जिसका प्रयास होता है, उसकी प्राप्ति भी होने लगती है। सोचके माँगना। क्योंकि जो माँगा है वो मिल जाता है। विचार

के माँगना। नहीं तो पछताओगे, नहीं तो रोओगे। क्योंकि इतने दिन माँगने में गये, इतने दिन जो माँगा उसको इकट्ठा करने में गये, अब वो मिल गया और कुछ भी नहीं मिला। कुछ और माँग लिया होता।

'प्रमाद में मत लगे रहो'। पूरी जिंदगी, जिसे तुम जिंदगी कहते हो, एक गहरी नींद है; जिसमें तुम करते बहुत हो, होता कुछ भी नहीं, चलते बहुत हो, पहुँचते कहीं भी नहीं; जिसमें तुम सिर्फ मरते हो, जीते नहीं।

'कामरति का मत गुणगान करो'।

मत गुणगान करो वासना का। क्योंकि जितना ही तुम गुणगान करते हो, अपने ही गुणगान से प्रभावित होते चले जाते हो। आदमी आत्मसम्मोहन में गिरता है। तुमने कभी सोचा, तुम जिस चीज का गुणगान करते हो वही चीज तुम्हारे मन में समाने लगती है। गुणगान तुम्हारा ही तुम्हीको प्रभावित कर जाता है।

बुद्ध और महावीर दोनों ने कहा है: कामकथा मत सुनो। लेकिन कामकथा ही लोग देखते हैं, सुनते है। फिल्म हो, कि रेडियो हो, कि किताब हो, कि उपन्यास हो, कि कविता हो, लोग कामकथा ही सुनते और पढते हैं। और फिर जब कामवासना जोर से पकड़ती है, घबड़ाते है। तब कहते है, ये तो बड़ा मुश्किल है, इससे छुटकारा कैसे हो? उसीको आरोपित करते हैं, उसीको सींचते हैं, उसीको सम्हालते हैं, और जब सम्हल जाती है और सारे जीवन को जकड लेती है, तो फिर चिल्लाते हैं; चीखते है कि इससे छुटकारा कैसे हो।

कामवासना वस्तुत. कुछ भी नही, सम्मोहन है। और जिस चीज के प्रति भी तुम सम्मोहित होते चले जाओ — सम्मोहन का अर्थ है जिसका भी तुम सुझाव अपने को देते चले जाओ — वही चीज रसपूर्ण हो जाती है। रस आदमी स्वय डालता है। रस वस्तुओं में नहीं है, तुम डालते हो। इसलिए प्रत्येक सस्कृति, प्रत्येक सभ्यता अलग-अलग तरह की चीजो में उत्सुक हो जाती है। पर जिसमे उत्सुक हो जाती है, उसीमें सौंदर्य और कामवासना का जन्म हो जाता है। हजारो सस्कृतियाँ जमीन पर रही हैं, उन्होने अलग-अलग चीजो मे सौदर्य देख लिया है। जिसमें सौंदर्य देखना चाहा है वही दिखायी पड गया है।

बुद्ध कहते हैं, 'कामरति का मत गुणगान करो'। रुको। सोचो। क्योंकि जिस चीज का भी तुम गुणगान करोगे, तुम उस तरफ अनजाने आकर्षित होते चले जाओगे। आदमी अपनी ही बातो से प्रभावित हो जाता है। तुमने कभी देखा, रास्ते मे, अंधेरे मे, किसी गली-कूँचे से गुजरते हो, अकेले हो डरते हो, गीत गुनगुनाने लगते हो, या सीटी बजाने लगते हो। क्या फायदा सीटी बजाने से? तुम्हारी ही सीटी है, कोई इससे कुछ सार तो न हो जाएगा। लेकिन अपनी ही सीटी की आवाज सुनके हिम्मत

बढ़ जाती है। जैसेकि अकेले नहीं हो। गाना गुनगुनाने लगते हो, अपने ही गाने की गर्मी शरीर में आ जाती है, लगता है जैसे अकेले नहीं हो।

तुमने अपने जीवन को अपने ही सुझावों से भर लिया है। तुम उन्हींमें घिरे हो, उन्हींमें दबे हो।

तुम्हारा सुझाव ही तुम्हारा संसार है। तुम्हारा आत्मसम्मोहन, 'ऑटोहिप्नोसिस' ही तुम्हारा संसार है। और जब बुद्ध या शंकर कहते हैं, संसार माया है, तो तुम ये मत समझना कि इन वृक्षों, चाँद-तारों के संबंध में कह रहे हैं। वो उस संसार के संबंध में कह रहे हैं जो तुमने अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया है, जिसको तुमने ही अपने सपनों में रंग लिया है, जिसके रंग तुम्हारे मन के दिये हुए हैं। ये संसार तो बड़ा सत्य है। लेकिन इस संसार का तो तुम्हें पता ही नहीं है। तुम्हें तो वही दिखायी पड़ता है, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हें तो वही दिखायी पड़ता है, जिसकी तुम कामना करते हो।

पूरी मनुष्यजाति कामरति के गुणगान में पागल हुई जा रही है। तुम्हारे कवि, सौ में से निन्यानबे प्रतिशत कामवासना का गुणगान करते हैं। तुम्हारे उपन्यासकार कामवासना के शास्त्र लिखते हैं। तुम्हारे फिल्म-निर्माता कामवासना की फिल्में बनाते है। हर चीज कामवासना के आसपास घूम रही है। अगर कार भी बेचनी हो तो एक नग्न स्त्री को या सुंदर स्त्री को उसके पास खड़ा करना पड़ता है। कार नहीं बिकती, सुंदर स्त्री बिकती है। कुछ भी बेचना हो, दंतमंजन बेचना हो, कि टूथपेस्ट बेचना हो, तो एक स्त्री के हँसते हुए दांत दिखायी पड़ने चाहिए। वो दाँत बिकते हैं। कुछ भी, छोटी सी चीज से लेकर बड़ी चीज तक, सारेबजार में कामवासना बिकती है।

और फिर तुम राम को पाना चाहते हो, मुश्किल में पड़ जाते हो। अपना ही दलदल खड़ा कर लेते हो, उसमें खुद ही उलझ गये हो।

बुद्ध कहते हैं, 'कामरति का मत गुणगान करो'। क्योंकि वो गुणगान तुम्हें सुलाएगा, वो लोरी बन जाएगा और तुम प्रमाद में डूब जाओगे। अगर गुणगान ही करना हो तो निर्वाण का करो, मोक्ष की चर्चा करो। अगर गुणगान ही करना है तो सत्य का करो, सपनों का नहीं। लेकिन सत्य को सुनने को कौन आता है? सत्य का गुणगान सुनने की किसको इच्छा है? सत्य की बात ही सुनके कड़वी लगती है। क्योंकि सत्य तुम्हारे सपनों को तोड़ता है। सत्य दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है।

इसलिए तो बुद्धों को हम पत्थर मारते हैं, जीसस को सूली पे लटका देते हैं, सुकरात को जहर पिला देते हैं। हम बर्दाश्त नहीं करते इन लोगों को। ये खतरनाक हैं। हम मजे से सो रहे हैं, और गहरी नींद ले रहे हैं, और बड़े मधुर सपनों में डूबे

हैं, और ये नासमझ आ-आ के जगाने लगते हैं -- कि जागो, सुबह हो गयी। जैसे सर्दी की रात अगर तुमने किसीको कहा है सुबह उठा देना, हालाँकि तुमने ही कहा है, लेकिन सुबह जब वो तुम्हें उठाता है तो मन में नाराजगी आती है कि ये दुष्ट आ गया। कहा तुम्हीने था। तो जब साधारण सर्दी की रात में सुबह उठने में ऐसी कठिनाई हो जाती है ... लोग अलार्म घडी को उठाके पटक देते हैं। अलार्म घड़ी का क्या कसूर है? तुम्हीने भरा था अलार्म, तुम्हीने बिस्तर के पास रखी थी ... तो तुम सोचो, जो जन्मों-जन्मों की, जीवन-जीवन की तंद्रा के बाद कोई बुद्धपुरुष से तुम्हारा सौभाग्य से मिलना हो जाता है तो तुम्हे दुर्भाग्य ही मालूम पड़ता है, कि ये और कहाँ की मुसीबत हो गयी, चुपचाप मजे से सपना लिए जा रहे थे, एक करवट और लेते, थोड़ा और सो लेते!

ध्यान रखो, अगर तुम बुद्धपुरुषों की वाणी भी सुनते रहो, तो भी धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारे आसपास जो झूठ का एक जाल था वो खिसकना शुरू हो गया। सत्य की एक किरण भी गहन से गहन अँधेरे को तोड़ने में समर्थ है। छोटी सी किरण, जन्मों का अँधेरा भी टूट जाता है।

'प्रमाद में मत लगे रहो। कामरति का मत गुणगान करो। प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है।'

एक ही सुख है। और वो सुख है स्वयं में रमण। एक ही सुख है, वो सुख दूसरे में रमण का नहीं है।

कामवासना का सार है, दूसरे में सुख की आशा। ध्यान का सार है, स्वयं में सुख की खोज। बस ये दो ही यात्राएँ हैं। या तो दूसरे को खोजो, या अपने को। जिसने दूसरे को खोजा, वो अपने को न खोज पाया। जिसने अपने को खोजा, उसे दूसरे की जरूरत ही न रही। जिसने अपने को पा लिया, उसने सब पा लिया।

एक सूफी फकीर हुआ बहाउद्दीन। उसकी बड़ी ख्याति थी। उसके शब्द बड़े गहरे थे। उसका व्यक्तित्व बड़ा अनूठा था। दूर-दूर से लोग यात्रा करके उसके पास आते। लेकिन सभी ठीक कारणों से आते थे, ऐसा नहीं। क्योंकि कारण तो तुम्हारे भीतर होता है।

एक आदमी उसके पास इसीलिए आ गया था और शिष्य हो गया था, कि कैसे मैं भी इतना प्रभावशाली हो जाऊँ जैसा बहाउद्दीन है। बहाउद्दीन ने उसे देखते ही से कहा कि तुम गलत कारण से सही जगह आ गये हो। उस आदमी ने कहा, क्या मतलब? बहाउद्दीन ने कहा कि तुम अपने को बदलने नहीं आए हो, अपने को सजाने आ गये हो। और तुम मेरे पास ध्यान करने नहीं आए हो, तुम्हारी उत्सुकता अभी भी पर में है। तुम दूसरों को प्रभावित करना चाहते हो। और यही तो ध्यान के

विरोध में है। तुम सोच-समझ के आओ। उस आदमी को बात तो सही लगी कि वो आया तो इसीलिए है कि दूसरे उससे कैसे प्रभावित हों, कैसे वो भी एक गुरु हो जाए।

'गुरु होने की आकांक्षा कामवासना है,' बहाउद्दीन ने कहा, 'क्योंकि उसकी नजर ...।' तुम्हारी नजर इस पे है कि दूसरे मुझे कैसे मानें, कैसे पूजें? ध्यानी इस बात की चिंता करता है कि कैसे मैं स्वयं हो जाऊँ। कोई पूजेगा, नहीं पूजेगा, ये उसके विचार में भी नहीं आता। कोई पूजेगा या पत्थर मारेगा, ये दूसरे समझें। ध्यानी अपने में डूबता है।

उसको बात तो लगी। अब उसको बहाउद्दीन के सामने आना भी मुश्किल हो गया। वो छिपके आने लगा ये देखने कि जरूर कोई तरकीब होगी इस आदमी की जिसकी वजह से इतने लोग प्रभावित हैं।

एक दिन बहाउद्दीन ने अपने खीसे से एक हीरा निकाला और कहा कि ये हीरा ऐसा ही मूल्यवान है जैसा सत्य मूल्यवान होता है, और ये हीरा बड़ा चमत्कारी है। उस आदमी ने सोचा कि मिल गयी बात, ये... इसी हीरे की वजह से ये आदमी इतना प्रभावी है। रात छिप गया वो। जब सब सो गये, वो अंदर गया। खीसे में से बहाउद्दीन के हीरा निकालके भाग खड़ा हुआ। लेकिन हीरा लेके उसने बड़ी कोशिश की, कोई प्रभावित न हो। हाथ मे रखके बैठा रहे, कोई पूजा न करे। वो बड़ा परेशान हुआ कि मामला क्या है? हीरा तो वही है।

ऐसे वर्ष बीत गये। एक दिन बहाउद्दीन उसके द्वार पर आया और उसने कहा कि अब बहुत हो गया, अब वो हीरा वापिस लौटा। उस आदमी ने कहा, लेकिन मैं इसी हीरे के बल बड़ा प्रभाव पैदा करने की कोशिश कर रहा हूँ, कोई प्रभावित ही नहीं होता। मामला क्या है? बहाउद्दीन ने कहा, 'जब तक तू हीरा न हो जाए, तब तक तेरे हाथ में आया हीरा भी पत्थर हो जाएगा। और अगर तू हीरा हो गया, तो तेरे हाथ में आया हुआ पत्थर भी हीरा हो जाता है। तू कब तक बाहर की चीजों में परेशान रहेगा? इस हीरे में कुछ भी नहीं रखा है। तू इसे अब वापिस लौटा दे। उस दिन जानता था कि तू छिपा है, इसलिए हीरा निकाला था, ताकि तुझसे छुटकारा हो। अब तू रात निकालके ले गया जेब से, तब भी मैं जागा था। क्योंकि योगी कहीं सोता है? इसीलिए तो मुझे पता है कि हीरा कहाँ है। और तूने अब काफी दिन प्रयोग कर लिया, अब लौटा दे। और अब तो समझ, बाहर से नजर को भीतर हटा। हीरा माँगने नहीं आया हूँ, तुझे बुलाने आया हूँ कि अब तुझमें अकल आ जानी चाहिए।

जीवन के दो ही ढंग हैं: या तो बाहर का हीरा या भीतर का हीरा। जीवन के

दो ही मार्ग हैं : या तो तुम भिखारी की तरह खोजते रहो हाथ फैलाकर, भिक्षापात्र लिए, या तुम सम्राट हो जाओ — अपने भीतर झाँको ।

'प्रमाद में मत लगे रहो। कामरति का मत गुणगान करो। प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है।'

ये ध्यान की खोज क्या है ?

ध्यान की खोज उस मूल स्रोत की खोज है जो नितांत तुम्हारा स्वभाव है। जिसे तुमसे अलग नहीं किया जा सकता। मेरा हाथ तुम काट सकते हो, वो मेरा स्वभाव नहीं है। क्योंकि बिना हाथ के भी मैं रहूँगा। मेरी आँख तुम फोड़ सकते हो, वो मेरा स्वभाव नहीं है। क्योंकि बिना आँख के भी मैं रहूँगा। योगियों ने ऐसे प्रदर्शन किये है, जिनमें उन्होंने श्वाँस भी छोड़ दी, और फिर भी रहे। तो श्वाँस भी स्वभाव नहीं है। जो भी अलग किया जा सके, वो स्वभाव नहीं है। जो तुमसे अलग न किया जा सके, वही तुम हो। इस मूल की खोज करनी ही ध्यान है, कि मैं उसीको पकड लूं जिसको कोई मुझसे छीन न सके। जो चुराया न जा सके, जो काटा न जा सके, चलाया न जा सके, मिटाया न जा सके।

मैं अकेला ही चला था जानिबे मंजिल मगर
लोग साथ आते गये और कारवाँ बनता गया

प्रत्येक व्यक्ति जब चला था तो अकेला ही चला था। प्रत्येक व्यक्ति जब चला था तो ऐसी ही क्षीण धारा थी जैसी गंगोत्री की — शुद्ध स्वभाव की। प्रत्येक व्यक्ति जब चला था तो सिर्फ ध्यान की तरह चला था। फिर, 'लोग साथ आते गये और कारवाँ बनता गया'। फिर इंद्रियाँ जुड़ीं, और शरीर जुड़ा, और वासनाएँ जुड़ीं, और काम जुड़ा, और ससार जुड़ा।

फिर से उसकी खोज कर लेनी है जो तुम चले थे, मूल जो तुम्हारा था। झेन फकीर अपने शिष्यों को कहते है, अपने मूल चेहरे को खोजो — 'ओरिजिनल फेस'। झेन फकीर कहते है, उस चेहरे को खोजो जो तुम्हारा था जब तुम्हारे माँ-बाप भी पैदा न हुए थे। उस मौलिक को खोजो जो सदा-सदा तुम्हारा था। कभी रास्ते पे नहीं मिला था। और शेष सब वस्त्र हैं, जो तुम अपने चारो तरफ इकट्ठा करते चले गये। पर्त-पर्त वस्त्रों की उतार डालनी है और उसको खोज लेना है जो तुम हो मूलतः, जो तुम्हारा स्वभाव है।

ध्यान ऐसे ही है जैसे कोई प्याज के छिलकों को छीलता चला जाए। छिलके के बाद छिलके हैं, और छिलके के बाद छिलके है। और फिर एक घड़ी आती है जब सब छिलके खो जाते हैं और शून्य हाथ मे रह जाता है। वही शून्य तुम्हारा स्वभाव है।

इसलिए बुद्ध को लोगों ने शून्यवादी कहा। क्योंकि उन्होंने कहा कि वही शून्य तुम्हारा स्वभाव है, वही शून्य ध्यान है। तो ध्यान में परमात्मा की भी याद न रह जाए, क्योंकि वो भी एक पर्त होगी, वो भी एक अशुद्धि होगी, क्योंकि वो भी छोड़ी जा सकती है। जो भी छोड़ा जा सकता है वो छोड़ देना ध्यान की खोज है। उसीको बचा लेना है जो बच ही जाएगा, जिसको तुम छोड़ना भी चाहो तो न छोड़ सकोगे।

और जैसे ही कोई व्यक्ति उस मूल स्वभाव को पहुँच जाता है, आनंद की अपरिसीम वर्षा हो जाती है। कबीर ने कहा है कि मैं नाच रहा हूँ और अमृत बरस रहा है। उस शून्य की घड़ी में सब मिल जाता है, सब — जो तुमने चाहा था और जो तुमने चाहा भी नहीं था, जो तुमने सोचा था और जिसे तुम सोच भी न सकते थे। सब। कोई कमी नहीं रह जाती। संतोष तभी उपलब्ध होता है। उसके पहले संतोष सब मन को समझाना है।

अपने मन को समझा लेना एक बात है, कि ठीक है, संतोष करो, क्योंकि लोग कहते हैं संतोष में सुख है। मैं तुमसे कहता हूँ सुख में संतोष है। संतोष में क्या खाक सुख होगा! क्योंकि जो संतोष करके सोच रहा है सुख मिल जाए, वो दुखी तो है ही। लोग कहते हैं कि हम तो अपनी गरीबी में ही संतोष कर रहे हैं। लेकिन गरीबी का पता है, तो पीड़ा है। अमीर होने की दौड़ में उतरने का साहस भी नहीं है, तो संतोष कर लिया है। ये संतोष मजबूरी है। ये संतोष सुख नहीं है। इस संतोष से इतना हो सकता है कि तुम्हें बहुत दुख न मिलें, लेकिन सुख न मिलेगा। ये संतोष तुम्हें यात्रा की तकलीफ से बचा देगा, लेकिन मंजिल के आनंद को इससे तुम न पा सकोगे।

मैं तुमसे कहता हूँ, सुख संतोष है।

और सुख केवल उसीको मिलता है जिसने स्वयं को जाना। स्वयं को जानना सुख है। स्वयं में रत हो जाना महासुख है। स्वयं में ठहर जाना स्वर्ग है। उसके अतिरिक्त सब दुख है। उसके अतिरिक्त तुम कुछ भी पा लो, तृप्ति न होगी। उसे पाते ही तृप्ति हो जाती है।

'जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर स्वयं अशोक और धीर बना संसार की शोकाकुल प्रजा को उसी प्रकार देखता है जिस प्रकार कोई पर्वत पर चढ़कर नीचे भूमि पर खड़े लोगों को देखे।'

एक-एक शब्द बहुमूल्य है।

'जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है'। अँधेरे को हटाने का और कोई उपाय भी नहीं है। कैसे हटाओगे अँधेरे को? दिया जला लो। तलवारें लाने की जरूरत नहीं है कि अँधेरे से लड़ो, न बम-बंदूक काम आएगी, न पहलवानी की कोई

जरूरत है । मोहम्मद अली को भी लड़ाओगे अँधेरे से तो मोहम्मद अली ही हारेगा, अंधेरा हारने वाला नहीं है । क्योंकि अँधेरा है ही नहीं, उससे लड़ोगे कैसे ? लड़ने के लिए भी तो कोई चाहिए । अँधेरा तो अभाव है । तो अँधेरे को धक्के मत देने लग जाना । बहुत लोग यही कर रहे हैं । कोई क्रोध से लड़ रहा है, कोई काम से लड़ रहा है, कोई लोभ से लड़ रहा है, कोई मोह से लड़ रहा है । ये सब अँधेरे से लड़नेवाले लोग हैं । बुद्धपुरुषों ने ये नहीं कहा है ।

बुद्ध कहते हैं, 'जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है' अँधेरे को हटाने का एक ही उपाय है : दिये को जला लेना जब पंडित, ज्ञानवान व्यक्ति प्रमाद के अंधकार को अप्रमाद के दिये से हटा देता है, बेहोशी को होश से तोड़ डालता है । और कोई उपाय नहीं है ।

इसलिए तुम क्रोध से मत लड़ना । उतनी ही शक्ति ध्यान को पाने में लगाओगे तो ध्यान भी मिल जाएगा, और क्रोध तो अपने से चला जाता है जितनी शक्ति लोगों ने अंधकार से लडने में लगायी, वो व्यर्थ ही गयी — और अंधकार हँसता है, तुम्हारा मज़ाक उडाता है — क्योंकि वो मूढ़तापूर्ण है । कभी नकार से मत लड़ना । संसार से मत लड़ना, सत्य को पाने की चेष्टा करना । नीद से मत लड़ना, जागने की फिक्र करना । नीद तो अपने से चली जाती है ।

खयाल रखना, जिससे हम लड़ते हैं वो है या नही । अगर है, तो लड़ाई हो सकती है । अगर नहीं है तो कैसे लड़ाई होगी ? और जो नही है, वो शक्तिशाली मालूम होगा । अँधेरे से लड़ो, अँधेरा बड़ा शक्तिशाली मालूम होगा । कितने ही हाथ-पैर चलाओ, उसपे कोई असर नहीं होता । कितना ही उछलो-कूदो, तुम ही थक जाते हो, अँधेरा नहीं थकता । पोटली में बाँधो, पोटली बाहर चली जाती है, अँधेरा वही का वहीं रह जाता है । तो तुम्हें लगेगा, तर्क कहेगा, अँधेरा बड़ा शक्तिशाली है । अँधेरा शक्तिशाली नहीं, अँधेरा है ही नहीं । तुम्हारी भूल है । छोटे से दिये को जलाओ । अँधेरे से लड़ने में जितनी शक्ति लगती थी उसको रोशनी बनाने में लगाओ ।

इसलिए मैं कहता हूँ, संसार से मत लड़ो, सत्य को खोजो । गृहस्थी को छोड़के मत भागो, संन्यास को जगाओ । विधायक की चिंता करो, नकार की चिंता मत करो ।

'जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है' —

वही एकमात्र रास्ता है । इसलिए बुद्ध उसे पंडित कह रहे हैं । वही ज्ञानवान है, जो दिये को जलाता है । जो अँधेरे से लड़ता है, वो महामूढ़ है ।

'तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर ... ।'

ये एक समझने की बात है। बौद्ध चिंतन, मनन और ध्यान की प्रक्रिया का एक गहनतम सूत्र है। बुद्ध कहते हैं, पहले व्यक्ति को प्रमाद तोड़ना है, अंधेरा तोड़ना है। ये तोड़ना प्रकाश के लाने से होगा। तो प्रमाद मिटाना है, अप्रमाद जगाना है। लेकिन जब पहली दफा अप्रमाद आता है, तो वो इतनी बड़ी घटना है, वो इतनी विराट घटना है कि व्यक्ति उसमें डूब जाता है। जब पहली दफा ध्यान घटता है, तो ध्यान में ही व्यक्ति खो जाता है।

जो यहाँ ध्यान कर रहे हैं, उनको इसके अनुभव होते हैं। जब पहली दफा ध्यान घटता है तो लोग मेरे पास आके कहते हैं, क्या हुआ कुछ समझ में नहीं आता, विचार तो चले गये लेकिन अपना होश भी न रहा — नींद थी कि ध्यान था ? बीच में एक अंतराल आ गया, कुछ क्षणों के लिए कुछ भी न रहा, तो हम सो गये थे, खो गये थे, या जाग गये थे ? कुछ पता नहीं चलता, कोई स्मृति भी नहीं बनती उस घड़ी की। इतनी बड़ी घटना है ध्यान कि स्मृति का यंत्र अवाक् होके ठहर जाता है; काम नहीं करता।

बड़ी मीठी घटना है सूफी फकीर बायज़ीद के संबंध में। वो एक दिन बोल रहा था। पास में ही एक घड़ियाल टँगा था। जब वो बोल रहा था तो बीच में ही घड़ियाल के घंटे बजने लगे। उसने कहा, चुप। घड़ी चुप हो गयी और वो बोलता रहा। लोग बड़े हैरान हुए। जब वो बोल चुका, तब घड़ी जहाँ रुक गयी थी, जितने घंटे बजाने बाकी रह गये थे, वो उसने बजाए। लोगों ने कहा कि राज़ समझे नहीं, ये मामला क्या है ? बायज़ीद ने कहा कि जब भीतर का समय रुक गया, तो घड़ी न मानेगी ?

ऐसा हुआ हो, जरूरी नहीं। पर बात महत्त्वपूर्ण है। भीतर की घड़ी जब रुक जाती है तो बाहर की घड़ी का क्या कहना ? जब ध्यान उतरता है तो समय की धारा ठहर जाती है। जब ध्यान उतरता है तो स्थान का भाव खो जाता है। तुम कहाँ हो, कब हो, कौन हो, सब ठहर जाता है। स्मृति का यंत्र अवाक् हो जाता है, चौंक के रुक जाता है।

ध्यान का समय आता है, चला जाता है। जब तुम वापस लौटते हो अपनी तंद्रा के जगत में, विचार में, और घड़ी फिर घंटे बजाती है, तब तुम सोचते हो हुआ क्या? क्या मैं सो गया था ? लेकिन सोने की भी याद होती है। रात तुम आज सोए थे, सुबह तुम कहते हो, बड़ी गहरी नींद आयी। या एक दिन तुम कहते हो, नींद ठीक से न आयी, उथली-उथली रही, ऊबड़-खाबड़ रही; सपने बहुत रहे, राहत न मिली, विश्राम न मिला; रात भर पड़े रहे, करवटें बदलीं; नींद आयी टूट-टूट के आयी, टुकड़ों-टुकड़ों में आयी — सातत्य न रहा। या कभी तुम कहते हो, बड़ी गहरी नींद

आयी, बड़ा आनंद मालूम हो रहा है, सुबह बड़ी ताजगी है। तो नींद की तो स्मृति बनती है। ध्यान की स्मृति नहीं बनती।

पर पहली दफा जब ध्यान घटता है तो ऐसा ही लगता है जैसेकि सब खो गया। हुआ क्या? हम कहाँ थे? हम कहाँ खो गये थे? कारण है। जब पहली दफा अँधेरा जाता है और रोशनी आती है, तो आँखें चकाचौंध से बंद हो जाती हैं। तो पहला तो प्रकाश का अनुभव भी करीब-करीब अँधेरे जैसा ही होता है। जैसे तुम अँधेरे कमरे से अचानक बाहर रोशनी में आ गये और तुमने सूरज देखा, तुम्हारी आँखें बंद हो जाएँगी। और जो जन्मों-जन्मों से अँधेरी गुहा में रहा है, वो जब पहली दफा ध्यान के सूरज को देखेगा, स्वाभाविक है आँख बंद हो जाए, सब ठहर जाए।

तो बुद्ध ने कहा है, प्रमाद मिटता है अप्रमाद से। और जब व्यक्ति अप्रमाद के भी ऊपर उठता है, तब प्रज्ञा। जब ध्यान के भी ऊपर उठता है, समाधि के भी ऊपर उठता है। ये बुद्ध की बड़ी गहन खोज है। समाधि के ऊपर उठने की बात पतंजलि ने भी नहीं कही। और बुद्ध ठीक कहते हैं। मैं भी उसका गवाह हूँ।

पतंजलि ने समाधि तक बात कही। ऐसा नहीं कि समाधि के आगे पतंजलि को पता नहीं। लेकिन कहने की कोई जरूरत न समझी होगी। जो समाधि तक पहुँच गया, वो अगला कदम अपने आप उठ जाता है। उसकी चर्चा व्यर्थ है। लेकिन बुद्ध पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने समाधि के पार की बात का ठीक-ठीक उल्लेख किया। वो इतना अज्ञात लोक है, उसका न तो कोई भूगोल बना है, न कोई एटलस है। बुद्ध-पुरुषों ने धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी बातें उसके संबंध में कही हैं। थोड़े इशारे।

बुद्ध का यह इशारा गहरे से गहरे इशारों में एक है। बुद्ध कहते हैं, समाधि के भी पार उठने की एक दशा है। समाधि का उपयोग इतना ही है कि उससे चित्त मिट जाए। रोशनी को इसीलिए चाहा था कि अँधेरा मिट जाए। कोई रोशनी को पकड़के थोड़े ही बैठ जाना है। रोशनी के भी पार जाना है। अँधेरे के पार तो जाना ही है, रोशनी के भी पार जाना है। संसार के तो पार जाना ही है, संसार के विपरीत में जो तुमने संन्यास स्वीकार किया उसके भी पार जाना है। परम संन्यासी वही है जिसका संन्यास भी विसर्जित हो गया। परमध्यानी वही है जिसका ध्यान भी पीछे छूट गया, जो ध्यान से भी आगे निकल आया। संसार को छोड़ा ही, स्वप्न तो छोड़े ही, जागरण को पकड़ा नहीं, वह भी छोड़ दिया। पूरा द्वंद्व चला गया। निर्द्वंद्व हुए। अद्वैत हुआ।

'जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर ...।' तब पहली दफा प्रज्ञा के शिखर पर चढ़ाई शुरू होती है। 'स्वयं

अशोक और धीर बना... '। अब न तो उसे कोई दुख होता, न कोई सुख। ध्यान में सुख है, गैर-ध्यान में दुख है। इसलिए बुद्ध ने कहा प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है। लेकिन सुख भी बहुत सुख नहीं है, महासुख नहीं है। जो मिला है वो कितना ही बड़ा हो, अनंत नहीं हो सकता। अनंत तो वही हो सकता है जिसकी शुरुआत भी कभी नहीं हुई। उसीका अंत भी न होगा।

तो बुद्ध कहते हैं : 'प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर स्वयं अशोक और धीर बना, संसार की शोकाकुल प्रजा को उसी प्रकार देखता है जिस प्रकार कोई पर्वत पर चढ़-कर नीचे भूमि पर खड़े लोगों को देखे।'

'प्रमादी लोगों में अप्रमादी और सोए लोगों में बहुत जाग्रत पुरुष वैसे ही आगे निकल जाता है जैसे तेज घोड़ा मंद घोड़े से आगे निकल जाता है।'

इन प्रतीकों में उलझ मत जाना। क्योंकि मजबूरी है बुद्धपुरुषों की भी, शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। शब्द तुम्हारे हैं, और तुम्हारे रंग में रँगे हैं। बुद्ध भी उनका उपयोग करें तो भी तुम्हारे अर्थ की धूल उन शब्दों पर जम जाती है। जैसे बुद्ध कहते है, प्रमादी लोगों में अप्रमादी और सोए लोगों में बहुत जाग्रत पुरुष —

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो —

जो बहुत जागा हुआ है सोए हुए लोगों में, प्रमादियो में जो अप्रमादी है, वो वैसे ही आगे निकल जाता है जैसे तेज घोड़ा मंद घोड़े से आगे निकल जाता है। लेकिन ये उदाहरण ठीक नहीं। क्योंकि तेज घोड़ा और मंद घोड़ा, उनके बीच जो भेद है वो मात्रा का है, गुण का नहीं। वो 'डिग्री' का है, क्वांटिटी का है, 'क्वालिटी' का नहीं। लेकिन सोए और जागे आदमी में जो भेद है वो गुणात्मक है, परिमाणात्मक नहीं। सोए और जागे हुए आदमी में जो भेद है वो आगे और पीछे का नहीं है, ऊपर और नीचे का है। जागा हुआ आदमी तुमसे जरा आगे है, ऐसा नहीं। तब तो तुम दोनों एक ही तल पर हो; कोई तुमसे दस कदम आगे है, तुम दस कदम पीछे हो; रास्ता वही है, भेद ज्यादा नहीं है। तुम थोड़ा तेज चलो — थोड़ा मंद घोड़ा भी दौड़ ले— तो पहुँच जाएगा। भेद मात्रा का है। लेकिन जागे और सोए व्यक्ति में मात्रा का भेद नहीं है, गुण का भेद है। वो दोनों अलग तल पर हैं।

इसलिए बुद्ध का पहला प्रतीक ठीक है कि जैसे पहाड़ पर कोई खड़ा है, और नीचे जनता मैदान में खड़ी है। ऐसा भेद है। दो तलों का भेद है। एक अलग ही आयाम है। और निश्चित ही जो तुमसे ऊपर है, वो तुमसे आगे तो होगा ही। लेकि न जो तुमसे आगे है, वो जरूरी नहीं कि तुमसे ऊपर हो।

इसे ऐसा समझो कि तुम थोड़ा जानते हो, कोई विद्वान तुमसे ज्यादा जानता है, वो तुमसे आगे है। तुम सौ बातें जानते हो, वो हजार बातें जानता है। फर्क मात्रा

का है । नौ सौ बातें ज्यादा जानता है । तुमने एक शास्त्र पढ़ा, उसने हजार पढ़े । तब तुम दोनों में बुनियादी कोई भेद नहीं है । फिर एक प्रज्ञा को उपलब्ध व्यक्ति है । उसमें भेद ऐसा नहीं है कि तुमने एक शास्त्र पढ़ा, उसने हजार पढ़े । ये सवाल ही नहीं है । तुम सोए, वो जागा । तुम नींद में पड़े, वो होश में । तुम अँधेरे में खड़े, वो प्रकाश में । गुण का भेद है ।

स्वभावतः, जो तुमसे ऊपर है वो तुमसे आगे तो होगा ही । इसलिए प्रज्ञावान पुरुष प्रतिभाशाली तो होगा ही, लेकिन प्रतिभाशाली पुरुष अनिवार्यरूप से प्रज्ञावान नहीं होता । तो जिन्होंने प्रज्ञा को खोजा उन्होंने प्रतिभा को तो मुफ्त पा लिया । वो तो *छाया* है । लेकिन जो प्रतिभा को ही खोजते रहे, उन्होंने प्रज्ञा को नहीं पाया । तो तुम्हारा प्रतिभाशाली से प्रतिभाशाली पुरुष भी — कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो, नोबल-पुरस्कार का विजेता हो — उसमें और तुममें गुण का कोई फर्क नहीं होता । उसी रास्ते पर उसी लकीर में तुम भी खड़े हो, जहाँ वो खड़ा है । तुमसे आगे है, तेज घोड़ा हो सकता है; तुम मंद घोड़े हो, लेकिन दोनों घोड़े हो ।

बुद्ध की मजबूरी है । वह कहना यह चाहते हैं कि जिस व्यक्ति के पास जागरण की कला है, उसके पास अनंत समय उपलब्ध हो जाता है उसे । तुम्हारे पास हमेशा समय कम है । तुम हमेशा समय को रोते मालूम पड़ते हो । तुमसे अगर कहो प्रार्थना करो, ध्यान करो, तुम कहते हो समय कहाँ ?

मैं कल दो पंक्तियाँ पढ़ रहा था —

वो कौन है जिन्हें तौबा की मिल गयी फुर्सत
हमें गुनाह भी करने को जिंदगी कम है

(वो कौन हैं जिन्हें प्रायश्चित्त करने का भी समय मिल गया ? हमको तो पाप करने के लिए भी जिंदगी कम मालूम पड़ रही है । प्रायश्चित्त)?

वो कौन हैं जिन्हें तौबा की मिल गयी फुर्सत
हमें गुनाह भी करने को जिंदगी कम है

इतने धीमे तुम चल रहे हो । चलना कहना ठीक नहीं, तुम घसिट रहे हो । इसलिए तुम्हें जिंदगी कम है । जो होश से चलता है, उसे जिंदगी अनंत है ।

ये बड़े आश्चर्य की बात है कि समय उतना ही कम मालूम पड़ेगा तुम्हें जितने तुम सोए हुए हो । जितने तुम जागे हुए हो, उतना ही समय अनंत हो जाता है । जागे हुए व्यक्ति को एक-एक क्षण अनंतता हो जाता है । क्योंकि जागे हुए व्यक्ति को समय का विस्तार ही नहीं दिखायी पड़ता, गहराई भी दिखायी पड़ती है । तुम ऐसे हो जैसे सागर के किनारे खड़े हो और सागर की सतह भर तुम्हें दिखायी पड़ती है । जागा हुआ आदमी ऐसा है जैसे सागर में डुबकी ली; उसे सतह तो दिखायी

पड़ती है, सागर की गहराई भी दिखायी पड़ती है । अगर एक क्षण से तुम दूसरे क्षण पे गये, दूसरे से तीसरे क्षण पे गये — अ से ब पर, ब से स पर — तो तुम्हें अनंतता का कभी पता ही न चलेगा । अगर तुम प्रत्येक क्षण की गहराई में गये, तो वो गहराई अथाह है । तब तुम्हें अनंतता का पता चलेगा । और जब एक-एक क्षण अनंत हो जाए, तो सब क्षण मिलके कितनी अनंतताएँ न हो जाएँगी !

इसलिए महावीर ने एक शब्द प्रयोग किया है जो कभी किसीने प्रयोग नहीं किया । वो है : अनंतानंत । ' इनफिनिट इनफिनीटीज़ । ' वेद और उपनिषद् एक ही अनंत की बात करते हैं । वो कहते हैं : परमात्मा अनंत है । महावीर कहते हैं : मोक्ष अनंतानंत है । क्योंकि प्रत्येक चीज दो दिशाओं में अनंत है — फैलाव में और गहराई में । और इसलिए अंतिम हिसाब में अनंत गुणित अनंत ।

बड़ा विस्तार है । लेकिन होश जितना बढ़ता जाए, उतना ही विस्तार बढ़ता चला जाता है ।

' प्रमादी लोगों में अप्रमादी, और सोए लोगों में बहुत जाग्रत पुरुष वैसे ही आगे निकल जाता है जैसे तेज घोड़ा मंद घोड़े से आगे निकल जाता है । '

' जो भिक्षु अप्रमाद में रत है, अथवा प्रमाद में भय देखता है, वह आग की भाँति छोटे-मोटे बंधनों को जलाते हुए बढ़ता है । '

बधन छोडने थोडी ' हैं । इसे थोड़ा समझो । थोड़ा नहीं इसे बहुत समझो । बंधन छोडने थोड़ी ' हैं, बंधन जलाने हैं । क्योंकि छोड़े बंधन फिर बँध सकते हैं । बंधन जला के राख कर देने हैं । और मजा यह है कि जो छोड़ता है, वो कभी नहीं छोड़ पाता; लेकिन जो जागता है, वो अचानक पाता है वो जल गये । क्योंकि बंधन हैं तुम्हारी नींद के ही ।

जैसे एक आदमी सोया है । सपने में खोया है ... कि कारागृह में बंद है ... कि हाथ में जंजीरें पड़ी हैं । वो लाख उपाय करे सपने में जंजीरें रख देने का, क्या फायदा होगा ? सपना नहीं टूट जाएगा । वो छूट भी जाए जंजीरों से, तो भी सपने में ही है । कारागृह से भी निकल जाए सपने में, तो भी सपने में ही है । सपना ही असली कारागृह है । लेकिन जाग जाए, तो फिर हँसने लगे । क्योंकि न कोई बंधन है -- जल गये, बचे ही नहीं, राख भी न बची । ऐसे जले कि पीछे कोई निशान भी नहीं छूट गया है । बंधन बेहोशी के हैं । होश है मुक्ति ।

तो बुद्ध कह रहे हैं, ' जो भिक्षु अप्रमाद में रत है ... । ' जो धीरे-धीरे जागने में लीन रहने लगा है, जो धीरे-धीरे जागने में डूबने लगा, जो जागने में रस लेने लगा है, वो आग की भाँति है, वो छोटे-मोटे बंधनों को जलाते हुए बढ़ता है । छोड़ता नहीं, छोड़ने की क्या जरूरत है ? जहाँ भी उसकी होश भरी आँख पड़ती है, वहीं

बंधन जल जाते है। जहाँ भी उसकी एकाग्र दृष्टि पड़ जाती है वहीं बंधन गिर जाते हैं। जहाँ भी वो होश से देखता है, वही संसार राख हो जाता है।

हिमालय में एक ... हिमालय में बसे लोगों में एक कहावत है कि अगर कभी किसीका विवाह हो रहा हो तो संन्यासी को निमंत्रित मत करना। या अगर कभी कोई किसान खेत में बीज बोता हो, तो संन्यासी को आसपास देख ले, कि कोई संन्यासी तो नहीं आसपास। कहावत बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उसका मतलब केवल इतना ही है कि तुम बंधन बना रहे हो। और जाग्रत पुरुष वहाँ मौजूद हो, कहीं जला न दे। विवाह को हम कहते हैं बंधन। एक संसार बसाया जा रहा है। बैंडबाजे बज रहे हैं, शहनाई बज रही है। एक सपने का जाल बुना जा रहा है। दो व्यक्ति संसार में उतरने को जा रहे हैं -- बड़े सपने लिए। संन्यासी को वहाँ मत बुलाना। कहावत ठीक कहती है, क्योंकि जागा हुआ आदमी अपने साथ चारों तरफ जागरण की खबर लेके चलता है। जागा हुआ आदमी, जहाँ उसकी नजर पड़ जाए वहाँ बंधन गिर जाते है। तो कही ऐसा न हो कि ये बिचारे अभी बंधन में बँध ही रहे हैं और कोई संन्यासी की नजर पड़ जाए।

ये बात बड़ी मीठी है। ये बात बड़ी मूल्यवान है। जाग्रत पुरुष के बोध में उसके खुद के बंधन तो गिरते ही हैं, जो उसके करीब आने का साहस जुटा लेते हैं उनके भी गिर जाते हैं।

सूफी फकीर हुआ हफीज। महाकवि भी हुआ। उसने एक गीत लिखा। गीत, ऐसा लगता है अपनी प्रेयसी के लिए लिखा है। गीत में उसने कहा कि तेरी दाढ़ी पर जो तिल का निशान है, उसके लिए मन होता है बुखारा दे दूं, कि समरकंद! समरकंद और बुखारा का मालिक उस समय था तेमूरलंग। वो बहुत नाराज हो गया, जब उसके कान में ये गीत पड़ा कि ये कौन है ? मालिक मैं हूँ, ये देनेवाला कौन है ?

उसने हफीज को पकड़वा बुलाया। उसने कहा कि हद्द हो गयी। पहली तो बात ये कि किसी स्त्री के दाढ़ी पर तिल है, ये इस योग्य नही कि तुम बुखारा और समरकंद दे दो। फिर दूसरी बात ये कि पहले ये भी तो पक्का कर लो कि बुखारा-समरकंद तुम्हारे बाप के हैं, जो तुम दे रहे हो ? ये मेरे हैं। मैं अभी जिंदा हूँ। तुमने मुझसे पूछे बिना ये कविता कैसे लिखी ?

हफीज हँसने लगा इस मूढ़ता पर। उसने कहा सुनो -- पहले तो जिसके तिल की बात है, बुखारा-समरकंद उसीके हैं। तुम नाहक बीच में उपद्रव कर रहे हो। तुम आज हो, कल न रहोगे। जिसके तिल की बात है, बुखारा-समरकंद उसीके हैं। वो तो परमात्मा की बात कर रहा है। सूफी फकीर परमात्मा को प्रेयसी के रूप में बात करते हैं। और फिर दूसरी बात, उसीकी चीज उसीको लौटा देने में क्या लगता

है ? न बुखारा-समरकंद तुम्हारे हैं, न मेरे — वो मुझे भी पता है। मगर जिसके हैं उसीको मैं लौटा रहा हूँ, तुम बाधा डाल रहे हो; देखो, पीछे पछताओगे। और हफीज ने कहा, सुनो, मैं गरीब आदमी हूँ, लेकिन मेरा दिल तो देखो ! कुछ मेरे पास नहीं, बुखारा-समरकंद दे दिये। तुम्हारे पास सब है, अपनी कृपणता तो देखो !

हफीज की ऐसी बात सुनके कहते हैं तैमूरलंग भी हँसने लगा। अन्यथा वो हँसने-वाला आदमी न था।

जो अपना नहीं है, उसको अपना मान लेने में बंधन है। और जो अपना नहीं है, उसको अपना मान लेने में न केवल बंधन है बल्कि दूसरे से प्रतिस्पर्धा है, संघर्ष है (सारे जगत की कलह यही तो है कि यहाँ सभी ने चीजों को अपना मान रखा है, जो उनकी नहीं है। असली मालिक तो चुप है) बुखारा-समरकंद उसीके हैं। लेकिन तैमूरलंग, ये लँगड़ा बीच में खड़ा है। लँगड़ा था इसलिए लंग। लँगड़ा है, लेकिन सारी दुनिया पे कब्जे की आकांक्षा है। सभी लँगड़ों की यही आकाक्षा है। ये पर-मात्मा की चीज भी परमात्मा को देने में इसको कष्ट हो रहा है। देना भी कहाँ है ? उसकी ही है। ये तो एक बात थी, कहने का एक ढंग था, एक लहजा था।

(जैसे-जैसे तुम्हारा होश बढ़ेगा, तुम्हें लगेगा अपना कुछ भी नहीं है। अपने सिवाय अपना कुछ भी नहीं है) और अखीर में तुम पाओगे कि वो जो अपना है, वो भी अपना नहीं है, वो भी परमात्मा का है। तब प्रज्ञा।

समाधि तक भी तुम्हें अपना थोड़ा बोध रहेगा। सारी चीजो से संबंध छूट जाएगा, लेकिन स्वयं से संबंध बना रहेगा। प्रज्ञा में वो संबंध भी छूट जाता है। इसलिए बुद्ध ने कहा, आत्मा समाधि तक, उसके बाद अनात्मा। 'अत्ता' समाधि तक — कि तुम हो; फिर एक ऐसी भी घड़ी आती है जहाँ तुम भी नहीं हो — बूँद सागर में गिर गयी।

'जो भिक्षु अप्रमाद मे रत है, वो आग की भाँति छोटे-मोटे बंधनों को जलाता हुआ बढ़ता है।'

'जो भिक्षु अप्रमाद में रत है अथवा प्रमाद में भय देखता है, उसका पतन होना संभव नहीं है। वह तो निर्वाण के समीप पहुँचा हुआ है।'

लेकिन ध्यान रखना : समीप। बुद्ध एक-एक शब्द के संबंध में बहुत ... बहुत हिसाब से बोलते हैं। अप्रमाद सिर्फ समीप है। जब अप्रमाद भी छूट जाएगा, तब निर्वाण (बेहोशी तो जाएगी ही, होश भी चला जाएगा। क्योंकि बेहोशी और होश दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पराया तो छूटेगा ही, स्वयं का होना भी छूट जाएगा। क्योंकि पराया और स्वयं दोनों भी एक सिक्के के दो पहलू हैं। तू तो

मिटेगा ही, मैं भी मिट जाएगा । क्योंकि मैं और तू एक ही चर्चा के दो हिस्से हैं, एक ही संवाद के दो छोर हैं।

लेकिन जो अप्रमाद मे रत है, उसका कोई पतन नहीं होता । ऐसे ही जैसे दिया हाथ में हो तो तुम टकराते नही । घर में अँधेरा हो और तुम अँधेरे में चलो तो कभी कुर्सी से, कभी मेज से, कभी दीवाल से टकराते हो । हाथ में दिया हो, फिर टकराना कैसा ? फिर तुम्हें राह दिखायी पडती है। असली सवाल हाथ में दिये का होना है।

इसलिए बुद्ध का आखिरी वचन, जो उन्होंने इस पृथ्वी पर अंतिम शब्द कहे-- आनद ने पूछा, हम क्या करेंगे ? तुम जाते हो, तुम्हारे रहते हम कुछ न कर पाए, दिन और रात हमने बेहोशी में गवाँ दिये, तुम्हे सुना और समझ न पाए, तुमने जगाया और हम जागे नही, अब तुम जाते हो, अब हमारा क्या होगा — बुद्ध ने कहा, इस बात को सूत्र की तरह याद रखना, क्योंकि मैं तुम्हारे काम नहीं पड सकता: 'अप्प· दीपो भव ।' तुम अपने दिये बनो, क्योंकि वही काम पड़ सकता है । अप्रमाद यानी ' अप्प दीपो भव ' : अपने दिये बनो । जागो । होशपूर्वक जियो ।

संसार यही है। जो बेहोशी मे जीता है, वो माया में; जो होश मे जीता है, वो ब्रह्म में । जीने की शैली बदल जाती है, जीने की जगह थोडी ' बदलती है। यही है सब — यही वृक्ष, यही पौधे, यही पक्षी, यही झरने --तुम बदल जाओगे । लेकिन जब दृष्टि बदल जाती है, तो सब सृष्टि बदल जाती है ।

आज इतना ही ।

देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुज़र में है

३० नवबर १९७५
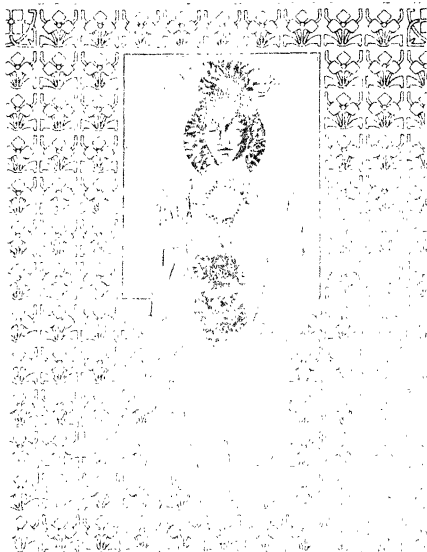
पहला प्रश्न : भगवान, एक ही आरजू है कि इस खोपड़ी से कैसे मुक्ति हो जाए? आपकी शरण आया हूं।

पूछा है चिन्मय ने।

खोपड़ी से मुक्त होने का खयाल भी खोपड़ी का ही है।

मुक्त होने की जब तक आकांक्षा है, तब तक मुक्ति संभव नहीं। क्योंकि आकांक्षा की अभीप्सा मन का ही जाल और खेल है। मन संसार ही नहीं बनाता, मन मोक्ष भी बनाता है। और जिसने ये जान लिया वही मुक्त हो गया। साधारणतः ऐसा लगता है, मन ने बनाया है संसार, तो हम मन से मुक्त हो जाएँ तो मुक्त हो जाएँगे। वहीं भूल हो गयी। वहीं मन ने फिर धोखा दिया। फिर मन ने चाल चली। फिर मन ने जाल फेंका। फिर तुम उलझे। फिर नया संसार बना। मोक्ष भी संसार बन जाता है।

संसार का अर्थ क्या है? जो उलझा ले। संसार का अर्थ क्या है? जो अपेक्षा बन जाए, वासना बन जाए। संसार का अर्थ क्या है? जो तुम्हारा भविष्य बन जाए। जिसके सहारे और जिसके आसरे और जिसकी आशा में तुम जीने लगो, वही संसार है। दुकान पर बैठे हो, इससे संसार में हो; मंदिर में बैठ जाओगे, संसार के बाहर हो जाओगे —इतनी सस्ती बातों में मत पड़ जाना। काश, इतना आसान होता!

तब तो कुछ उलझन न थी। दुकान में संसार नहीं है, और न मंदिर में संसार से मुक्ति है; अपेक्षा में, आकांक्षा में, आशा में संसार है; सपने में संसार है। तो तुम मोक्ष का सपना देखो, तो भी संसार में हो।

संसार के बाहर वही है जो अभी और यहीं है। लेकिन इसका तो अर्थ यह हुआ कि मोक्ष की आकांक्षा भी छोड़ देनी पड़ेगी। अन्यथा, मोक्ष के बहाने भी, मोक्ष की वासना से भी तुम नये-नये संसार बनाते चले जाओगे।

समझना काफी है, छूटना नहीं है। छूटना किससे है? किसीने बाँधा होता तो छूटते। किसीने बाँधा भी नहीं है। बंधन कहाँ है? बंधन से छूटने की जल्दी मत करो — क्योंकि यह भी हो सकता है, बंधन हो ही न — तब तुम छूटने की कोशिश से बँध जाओगे। और अगर बंधन नहीं है, तो छूटोगे कैसे?

बंधन से छूटने की कोशिश मत करो, बंधन को जानने की कोशिश करो कि बंधन कहाँ है! पूछो। जिज्ञासा करो। वासना मत करो।

विपरीत की वासना भी वासना है। तुम कुएँ से बचते हो, खाई में गिर जाते हो। इससे क्या फर्क पड़ेगा कि तुमने गिरने का ढंग बदल लिया? तुम बाएँ गिरे कि दाएँ गिरे, इससे क्या भेद पड़ता है?

जिज्ञासा करो कि बधन कहाँ है, बंधन क्या है? बंधन को भर आँख देखो। इसी को बुद्ध ध्यान कहते हैं, अप्रमाद कहते हैं, कि बंधन को भरी आँख से देखो। तुम्हारे देखने-देखने में तुम पाओगे, बंधन पिघला, बंधन गया। क्योंकि बंधन तुम्हारी मूर्छा है। अगर तुम जागके देखोगे, कैसे टिकेगा? बंधन वस्तुतः होता तो मुक्ति का कोई उपाय न था। बंधन केवल खयाल है। बात में से बात निकल आयी है। कहीं कुछ है नहीं।

एक युवक भिक्षु नागार्जुन के पास आया और उसने कहा कि मुझे मुक्त होना है। और उसने कहा कि जीवन लगा देने की मेरी तैयारी है। मैं मरने को तैयार हूँ, लेकिन मुक्ति मुझे चाहिए। कोई भी कीमत हो, चुकाने को राजी हूँ।

अपनी तरफ से तो वो बड़ी समझदारी की बातें कह रहा था।

चिन्मय ने भी यही पूछा है आगे प्रश्न में :

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ू-ए-कातिल में है

उसने भी यही कहा होगा नागार्जुन को कि मरने की तैयारी है; अब तुम्हारे हाथ में सब बात है। मुझसे न कह सकोगे कि मैंने कुछ कमी की प्रयास में। मैं सब करने को तैयार हूँ। अपनी तरफ से वो ईमानदार था। उसकी ईमानदारी पे शक

भी क्या करें ! मरने को तैयार था — और क्या आदमी से माँग सकते हो ? लेकिन ईमानदारी कितनी ही हो, भ्रांत थी ।

नागार्जुन ने कहा, ठहर । एक छोटा-सा प्रयोग कर । फिर, अभी इतनी जल्दी नहीं है मरने-मारने की । ये भाषा ही नासमझी की है । यहाँ मरना-मारना कैसा ? तू एक तीन दिन छोटा-सा प्रयोग कर, फिर देखेंगे । और उससे कहा कि तू चला जा सामने की गुफा में, अंदर बैठ जा, और एक ही बात पर चित्त को एकाग्र कर कि तू एक भैंस हो गया है । भैंस सामने खड़ी थी, इसलिए नागार्जुन को खयाल आ गया कि 'तू एक भैंस हो गया है ।' यह सामने भैंस खड़ी है । उस युवक ने कहा ज़रा चिंतित होके कि इससे मुक्ति का क्या सबंध ? नागार्जुन ने कहा, वो हम तीन बाद सोचेंगे । बस तू तीन दिन बिना खाए-पिए — बिना सोए — एक ही बात सोचता रह कि तू भैंस हो गया है । तीन दिन बाद मैं हाज़िर हो जाऊँगा तेरे पास। अगर तू इसमें सफल हो गया, तो मुक्ति बिलकुल आसान है । फिर मरने की कोई ज़रूरत नहीं ।

उस युवक ने सब दाँव पे लगा दिया । वह तीन दिन न भोजन किया, न सोया। तीन दिन अहर्निश उसने एक ही बात सोची कि मैं भैंस हूँ। अब तीन दिन अगर कोई सोचता रहे वो भैंस है -- वो भैंस हो गया ! हो गया, नहीं कि हो गया; उसे प्रतीत होने लगा कि हो गया । एक प्रतीति पैदा हुई । एक भ्रमजाल खड़ा हुआ ।

जब तीसरे दिन सुबह उसने आँख खोलके देखा तो वो घबड़ाया — वो भैंस हो गया था ! और भी घबड़ाया, क्योंकि अब बाहर कैसे निकलेगा ! गुफा का द्वार छोटा था । आए तब तो आदमी थे; अब भैंस थे, उसके बड़े सींग थे । उसने कोशिश भी की तो सीग अटक गये । चिल्लाना चाहा तो आवाज तो न निकली, भैंस का स्वर निकला । जब स्वर निकला तो नागार्जुन भागा हुआ पहुँचा । देखा, युवक है । कहीं कोई सींग नहीं हैं । मगर सींग अटक रहे हैं । कहीं कोई सींग नहीं हैं। वो आदमी जैसा आदमी है । जैसा आया था वैसा ही है । लेकिन तीन दिन का आत्मसम्मोहन, तीन दिन का सतत सुझाव ! तीन बार भी सुझाव दो तो परिणाम हो जाते हैं, तीन दिन में तो करोड़ों बार उसने सुझाव दिये होंगे । फिर बिना खाए, बिना सोए !

जब तुम तीन दिन तक नहीं सोते तो तुम्हारी सपना देखने की शक्ति इकट्ठी हो जाती है । तीन दिन तक सपना ही नहीं देखा ! जैसे भूख इकट्ठी होती है तीन दिन तक खाना न खाने से, ऐसा तीन दिन तक सपना न देखने से सपना देखने की शक्ति इकट्ठी हो जाती है। वो तीन दिन की सपना देखने की शक्ति, तीन दिन की भूख... !

भूख में भी जितना शरीर कमज़ोर हो जाता है उतना मन मजबूत हो जाता है। भूख से शरीर तो कमजोर होता है, मन मजबूत होता है। इसलिए तो बहुतसे धर्म

उपवास करने लगे और बहुत से धर्मों ने रात्रि-जागरण किया। अगर रात भर जागते रहो तो परमात्मा जल्दी दिखायी पड़ता है। सपना इकट्ठा हो जाता है। अभी इसपर तो वैज्ञानिक शोध भी हुई है। और वैज्ञानिक भी इस बात पे राजी हो गये हैं कि अगर तुम बहुत दिन तक सपना न देखो तो 'हैलूसिनेशन्स' पैदा होने लगते हैं। फिर तुम जागते में सपना देखने लगोगे। आँख खुली रहेगी और सपना देखोगे।

सपना एक जरूरत है। सपना तुम्हारे मन का निकास है, रेचन है।

तीन दिन तक जागता रहा। सपने की शक्ति इकट्ठी हो गयी। तीन दिन भूखा रहा, शरीर कमजोर हो गया।

यह तुमने कभी खयाल किया, बुखार में जब शरीर कमजोर हो जाए तो तुम ऐसी कल्पनाएँ देखने लगते हो जो तुम स्वस्थ हालत में कभी न देखोगे। खाट उड़ी जा रही है! तुम जानते हो कि कहीं उड़ी नहीं जा रही है। अपनी खाट पे लेटे हो, मगर शक होने लगता है। क्या, हो क्या गया है तुम्हें? शरीर कमजोर है।

जब शरीर स्वस्थ होता है तो मन पर नियंत्रण रखता है। जब शरीर कमजोर हो जाता है तो मन बिलकुल मुक्त हो जाता है। और मन तो सपना देखने की शक्ति का ही नाम है। तो बीमारी में लोगों को भूत-प्रेत दिखायी पड़ने लगते हैं। स्त्रियों को ज्यादा दिखायी पड़ते है पुरुषों की बजाय। बच्चों को ज्यादा दिखायी पड़ते हैं प्रौढ़ों की बजाय। जहाँ-जहाँ मन कोमल है और शरीर से ज्यादा मजबूत है, वहीं-वहीं सपना आसान हो जाता है।

तीन दिन का उपवास, तीन दिन की अनिद्रा, और फिर तीन दिन सतत एक ही मंत्र — यही तो मंत्रयोग है। तुम बैठे अगर राम-राम-राम-राम कहते रहो कई दिनों तक, पागल हो ही जाओगे। एक सीमा है झेलने की। वो तीन दिन तक कहता रहा: मैं भैंस हूँ, मैं भैंस हूँ, मैं भैंस हूँ। हो गया। मंत्र शक्ति काम कर गयी। लोग मुझसे पूछते हैं मंत्रशक्ति? उनको मैं यह कहानी कह देता हूँ। ये मंत्रशक्ति है।

नागार्जुन द्वार पे खड़ा हँसने लगा। वह युवक बहुत शर्मिंदा भी हुआ और उसने कहा, लेकिन आप हँसें, ये बात जँचती नहीं। तुम्हारे ही बताए उपाय को मानके मैं फँस गया हूँ। अब मुझे निकालो। सींग बड़े हैं, द्वार से निकलते नहीं बनता। और मैं भूखा भी हूँ। नींद भी सता रही है। नागार्जुन उसके पास गया, उसे जोर से हिलाया। हिलाया तो थोड़ा वो तंद्रा से जागा। जागा तो उसने देखा, सींग भी नदारद हैं, भैंस भी कहीं नहीं है। वह भी हँसने लगा। नागार्जुन ने कहा, बस यही मुक्ति का सूत्र है। संसार तेरा बनाया हुआ है, कल्पित है।

संसार को छोड़ना नहीं है, जागके देखना है। इसलिए जिन्होंने तुमसे कहा कि संसार छोड़ो, उन्होंने तुम्हें मोक्ष में उलझा दिया। मैं तुम्हें संसार छोड़ने को इसी-

लिए नहीं कह रहा हूँ। छोड़ने की बात ही भ्रांत है। जो है ही नहीं उसे छोड़ोगे कैसे ? छोड़ोगे तो भूल में पड़ोगे। जो नहीं है उसे देख लेना, जान लेना कि वो नहीं है, मुक्त हो जाना है।

इसलिए बुद्ध ने कहा : असत्य को असत्य की तरह देख लेना मोक्ष है। असार को असार की तरह देख लेना मोक्ष है। सारा राज देख लेने में है।

ये तो पूछो ही मत कि खोपड़ी से कैसे मुक्ति हो जाए। ये कौन है जो पूछ रहा है ? ये खोपड़ी ही है जो पूछ रही है। अगर इस खोपड़ी की बात मानके चले, इससे तुम कभी मुक्त न हो पाओगे। जागके देखो, कौन पूछता है ? गौर से सुनो, कौन प्रश्न उठाता है ? ये कौन है जो मुक्त होना चाहता है ? क्यों मुक्त होना चाहता है ? बंधन कहां है ?

और जिसने भी जागके देखा, वो हँसने लगा, क्योंकि बंधन उसने कभी पाए नही। जागने में कोई बंधन नहीं है। इसलिए बुद्ध चिल्ला-चिल्लाके कहते हैं, प्रमाद में मत जियो। अप्रमाद ! जागो ! होश में आ जाओ ! और तुम कहीं भी गये नहीं हो। तुम वहीं हो जहाँ तुम्हें होना चाहिए। भैंस तुम कभी हुए नहीं हो। तुम वही हो जो तुम हो। तुम परमात्मा हो। इससे तुम रत्ती भर यहाँ-वहाँ न हो सकते हो, न होने का कोई उपाय है। हाँ, तुम भ्रांति में रह सकते हो। तुम अपने को जो चाहे समझ लो।

मन शक्तिशाली है। तुम जो चाहोगे वही बन जाओगे। और जिस दिन भी तुम देखना चाहोगे, उस दिन तुम दृष्टि बन जाओगे।

दृष्टि मुक्ति है।

समझे थे तुझसे दूर निकल जाएँगे कहीं —
समझे थे तुझसे दूर निकल जाएँगे कहीं
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है

कहाँ जाओगे दूर निकलके परमात्मा से ? कहीं भी जाओगे, पाओगे उसके ही रास्ते में तुम्हारा मुकाम है —

समझे थे तुझसे दूर निकल जाएँगे कहीं
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है

हर मुकाम उसीका है। हर पल उसीका है। अस्तित्व से दूर जाने का उपाय कहाँ है ? कैसे जाओगे दूर ? हाँ, सोच सकते हो, विचार कर सकते हो कि दूर निकल गये। और जब दूर निकलने का खयाल आ जाएगा तो तुम चिल्लाओगे, पूछोगे, पास कैसे आ जाएँ ? अब जो तुम्हें पास आने का रास्ता बता देगा, वो तुम्हें भटका

देगा। क्योंकि दूर अगर निकले होते, तो पास भी आ सकते थे। दूर कभी निकले ही नहीं, इसको ही जानना है।

तो अगर सार में तुमसे कहूँ : बंधन की तरफ आँख करो। जहाँ-जहाँ बंधन दिखता हो, वहीं-वहीं ध्यान को लगाओ। बंधन ध्यान का विषय बन जाए। और तुम पाओगे, तुम्हारे ध्यान की ज्योति जैसे-जैसे सघन होती है, वैसे-वैसे बंधन तरल होके बिखर जाता है। जिस दिन ध्यान की ज्योति परिपूर्ण सघन हो जाती है, अचानक तुम पाते हो कि बंधन गया। सपना था, टूट गया। नींद का खयाल था, मिट गया।

बिखरा ध्यान हो, तो खोपड़ी है। इकट्ठा ध्यान हो, खोपड़ी गयी। विचार ध्यान के टुकड़े हैं। छितर गया ध्यान, जैसे दर्पण को किसीने पटक दिया, खंड-खंड हो गया। इकट्ठा जमा लो; बस उतना ही राज है। चिंतन, इसलिए ध्यान को मनन, विमर्श बनाओ। खोपड़ी से मुक्त हो जाने की बात मत पूछो। खोपड़ी में कुछ भी बुरा नहीं है; वहाँ भी परमात्मा ही विराजमान है। वो भी उसीका मंदिर है। वो भी उसकी ही रहगुजर है। वहाँ से वही गुजरता है।

अगर तुम गलत न समझो तो मैं तुमसे कहूँगा, विचार भी उसीके हैं, निर्विचार भी उसीका है। तनाव भी उसीका है, और शांति भी उसीकी है। संसार भी उसीका है और मोक्ष भी उसीका है।

इसलिए झेन फकीरों ने एक बड़ी अनूठी बात कही है, जिसका सदियों तक लोग सोचते रहे हैं और समझ नहीं पाते हैं। झेन फकीरों ने कहा : संसार और मोक्ष एक ही चीज के दो नाम हैं। ठीक से न देखा तो संसार, ठीक से देख लिया तो मोक्ष। लेकिन सत्य एक ही है।

गैर-ठीक से देखने का ढंग क्या है? आँख बचा-बचाके चलते हो। भीतर काम-वासना है, तुम उसे देखते नहीं। *तुम्हारे न देखने में ही वो बड़ी होती चली जाती* है — भैंस के सींग बड़े होते चले जाते हैं। भीतर क्रोध है, *तुम उसकी तरफ पीठ* कर लेते हो डर के मारे कि कहीं आ ही न जाए, ऊपर न आ जाए, किसीको पता न चल जाए! भीतर-भीतर क्रोध की जड़ें फैलती जाती हैं। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व विषाद, दुख, उदासी, भय और क्रोध के जहर से भर जाता है। और जितना ही ये बढ़ने लगता है, उतने ही तुम डरने लगते हो। जितने तुम डरने लगते हो, उतना ही तुम देखते नहीं; तुम आँख बचाने लगते हो। तुम अपने से आँख बचा-बचाके कब तक भागोगे, कहाँ भागकर जाओगे?

तुम अपने से आँख बचा रहे हो, यही उलझन है। बचाओ मत। जो है, जैसा है, उसे देख लो। और मैं तुमसे कहता हूँ, *उसके देखने में ही मोक्ष है।* जिसने देख लिया ठीक से अपने को, उसने सिवाय परमात्मा के और कुछ भी न पाया।

समझे थे तुझसे दूर निकल जाएँगे कहीं
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है

दूसरा प्रश्न : कभी-कभी भगवान बुद्ध और लाओत्से का बोध एक-सा लगता है; मगर हैं दोनों एक-दूसरे के उलटे छोर पर। मेरी अपनी समस्या ये है कि मेरा स्वभाव प्रेम से ज्यादा ध्यान पर लगता है, और मैं सबसे ज्यादा लाओत्से से प्रभावित हूँ। इसे कैसे सुलझाऊँ?

सुलझाना क्या है? अगर सुलझी-सुलझी बात को उलझाना हो, तो बात अलग। इसमें कहाँ समस्या है?

कभी-कभी मैं हैरान होता हूँ कि तुम कितने कुशल हो गये हो समस्या बनाने में! जहाँ नहीं होती वहाँ बना लेते हो! अगर ध्यान में मन लगता है तो समस्या क्या है? कौन तुमसे कह रहा है प्रेम में मन लगाओ? ध्यान में मन लग गया है, बस हो गयी बात। जिनका ध्यान में न लगता हो, वो प्रेम में लगाएँ।

लेकिन मेरे पास लोग आ जाते हैं, वो कहते हैं : प्रेम में मन लगता है, ध्यान में नहीं लगता। बड़ी समस्या है! क्या करें?

अगर तुमने जिद्द ही बना ली है कि समस्या तुम बनाए ही चले जाओगे, तुम्हारी मौज है।

फिर से इस प्रश्न को गौर से सुनो, ये सभी का प्रश्न है :

'कभी-कभी भगवान बुद्ध और लाओत्से का बोध एक-सा लगता है; मगर हैं दोनों एक-दूसरे के उलटे छोर पर। मेरी अपनी समस्या यह है कि मेरा स्वभाव प्रेम से ज्यादा ध्यान पे लगता है।'

इसमें समस्या कैसी है? ये तो समाधान है। छोड़ो प्रेम की बकवास। तुम्हारे लिए बकवास है, उसकी तुम चिंता में मत पड़ो। हाँ, अगर समस्या ही बनानी हो, बिना समस्या के रहना ही मुश्किल पड़ता हो, तो बात अलग! फिर तुम्हारी मर्जी!

'और मैं सबसे ज्यादा लाओत्से से प्रभावित हूँ।'

इसमें भी क्या बुराई है? यह तो बहुत ही बढ़िया है। बुद्ध को भूल ही जाओ। लेना-देना क्या है? लाओत्से काफी है।

तुम्हारी हालत ऐसी है कि तुम बाएँ रास्ते पे चलते हो तो दायाँ रास्ता समस्या बन जाता है, कि दाएँ पे चलते! अगर दाएँ पे चलते हो तो बायाँ समस्या बन जाता है। दोनों रास्तों पे एक साथ चलोगे भी कैसे? तुम अकेले हो, रास्ते बहुत हैं।

अनेक रास्ते हैं, अगर सब पे चलना चाहा तो पागल हो जाओगे । इतना तो होश रखो कि जो जम जाए, उसपे चल जाना है ।

मैं तुमसे बुद्ध, लाओत्से, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट की बात कर रहा हूँ, ताकि कोई तुम्हें जम जाए । मगर मै जानता हूँ, तुम खतरनाक हो । तुम बजाय किसीको जमाने के, अगर तुम कहीं थोडे-बहुत जमे भी होओगे, तो उसको भी उखाड डालोगे ।

मै तुम्हें सब रास्ते खोले दे रहा हूँ, ताकि जिससे तुम्हारा तालमेल बैठ जाए, वही से तुम्हारी मंजिल आ जाए । कोई बुद्ध ने ठेका नही लिया है कि बुद्ध के साथ ही जाओगे तो ही पहुँचोगे । लाओत्से, एकदम बढिया है । रास्ता ठीक है । तुम चल पड़ो । डगमगाते क्यों हो ? जहाँ समस्या नही है वहाँ तुम समस्या कैसे देख लेते हो ? ऐसा लगता है कि बिना समस्या देखे तुम जी नही सकते, क्योंकि फिर तुम करोगे क्या ?

एक मेरे पुराने मित्र है । मेरे साथ पढ़े भी । फिर मेरे साथ विश्वविद्यालय मे शिक्षक भी थे । कोई पद्रह साल बाद मुझे मिलने आए । कहने लगे, आपकी सब समस्याएँ मिट गयी ? कोई प्रश्न न रहा ? तो फिर आप करते क्या होओगे ? खाली आदमी जिएगा कैसे ? कुछ तो करने को चाहिए ! उनकी तकलीफ मैं समझता हूँ । वो सोच भी नहीं सकते कि खाली होने में भी कोई रस हो सकता है । खाली होना उन्हें घबड़ाहट देगा । कुछ भी करने को नहीं है । कोई समस्या नहीं है, कोई प्रश्न नही है । न हो, तो आदमी बना लेता है ।

मै तुमसे कहता हूँ, समस्याएँ हैं नही, तुमने बनायी है । इस प्रश्न की ही बात नहीं कर रहा हूँ; तुम्हारे सब प्रश्नो की बात कर रहा हूँ । ये प्रश्न तो बहुत सीधा-साफ है, इसलिए तुम पकड़ में आ गये । तुम बहुत चालबाजी भी करते हो । तुम ऐसे भी प्रश्न बनाते हो कि कोई पकड़ नही सकता ।

लेकिन मै तुमसे कहता हूँ, सब प्रश्न तुम्हारे बनाए हुए हैं । तुम चूँकि खाली होने से डरते हो, इसलिए कोई न कोई समस्या बनाए चले जाते हो । समस्या है, तो हल करने की सुविधा है । हल होगा तब होगा ! विधि खोजेंगे, विधान खोजेंगे, शास्त्र खोजेंगे -- कुछ व्यस्तता रहेगी !

इस संसार में बड़ी अजीब अवस्था है ! आदमी दुख को भी इसलिए नहीं छोड़ता कि दुख में उलझा तो रहता है, लगा तो रहता है, कुछ काम तो करता रहता है । तुम कहते जरूर हो कि दुख मिट जाए; लेकिन तुमने सच में कभी चाहा नहीं कि दुख मिट जाए, क्योंकि फिर तुम करोगे क्या ! तुम कहते हो अशांति मिट जाए, लेकिन तुमने कभी पूछा कि अशांति मिट जाएगी तो तुम करोगे क्या; नहीं, भीतर

एक भरोसा है कि मिटनेवाली नहीं है, इसलिए पूछते रहो, कोई हर्जा नहीं है। मिटेगी थोड़ी '!

तुम्हारे सामने अगर एकदम से शून्य का द्वार खुल जाए, तुम भाग खड़े होओगे। तुम फिर लौटके न देखोगे।

रवींद्रनाथ का गीत है कि जन्मों-जन्मों तक खोजा परमात्मा को। जब तक न मिला, तब तक बड़ी बेचैनी थी, और दौड़ थी, और तड़फ थी। लोग तड़फ का भी बड़ा मजा लेते हैं, बड़ा प्रदर्शन करते हैं। परमात्मा को खोजने जा रहे हैं! अहंकार को बड़ी तृप्ति होती है! कहीं दूर उसकी झलक मिलती है तो जन्मों-जन्मों तक यात्रा करके वहाँ पहुँचते हैं, लेकिन तब तक वह कहीं और जा चुका होता है।

पर एक दिन मुश्किल हो गयी, उसके द्वार पर ही पहुँच गये! तख्ती लगी थी। पुराना जोश जन्मों-जन्मों का पाने का : एकदम चढ़ गये सीढ़ी। साँकल हाथ में ले ली, तभी समझ आयी, कि अगर वो मिल ही गया तो फिर क्या करेंगे! कहीं ये घर सच में ही उसका हुआ! धोखा हुआ, तब तो कोई अड़चन नहीं है, फिर खोज पे निकल जाएँगे। खोज भरे रखती है। अगर सच में ही ये घर उसका हुआ — फिर?

रवींद्रनाथ की कविता बड़ी महत्त्वपूर्ण है। लिखा है कि आहिस्ता से साँकल छोड़ दी कि कहीं बज न जाए — भूल-चूक — कहीं वह द्वार खोल ही न दे! जूते उतार के हाथ में ले लिए कि कहीं सीढ़ियों से उतरते वक्त आवाज न हो जाए! और फिर जो भागा हूँ तो पीछे लौटके नहीं देखा। अब फिर खोजता हूँ, हालाँकि मुझे उसका घर पता है। उस जगह को छोड़के सब जगह खोजता हूँ। वहाँ भर नहीं जाता, क्योंकि मुझे मालूम है।

ये कहीं हालत तुम्हारी भी तो नहीं है? जब मैं गौर से तुम्हारे भीतर देखता हूँ तो पाता हूँ, यही हालत तुम्हारी है। तुम्हें भी उसका घर पता है। तुम भाग खड़े हुए हो। वो घर तुम्हारे भीतर है। वहाँ तुम जाते ही नहीं, सब जगह तुम खोजते हो। वहाँ भर जाके तुम ठिठकते हो, डरते हो।

नहीं, कोई समस्या मत बनाओ। अगर ध्यान में रस आ गया, तो प्रेम अपने-आप आ जाएगा। यही तो मैं तुमसे कह रहा हूँ कि दो ढंग हैं। उनको दो ढंग भी कहना ठीक नहीं; वो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

ध्यान से चलो, तो प्रेम अपने आप आ जाता है। प्रेम से चलो, तो ध्यान अपने आप आ जाता है।

और हर आदमी अलग-अलग ढंग से बना है।

मुहब्बत के लिए कुछ खाश दिल मख़सूस होते हैं
ये वो नग्मा है जो हर साज़ पर गाया नहीं जाता

यह गीत है मुहब्बत का, जो किन्हीं साजों पे गाया जाता है। सभी साजों पे नहीं गाया जाता। लेकिन यही बात ध्यान के लिए भी सच है। उसके लिए भी कुछ खास दिल मख़सूस होते हैं। वो भी : 'ये वो नग्मा है जो हर साज़ पर गाया नहीं जाता'।

मीरा के साज पर प्रेम का गीत जमा। बुद्ध के साज पर ध्यान का गीत जमा। गाया -- ये असली बात है। भरपूर गाया। समग्रता से गाया। ध्यान को गाया या प्रेम को गाया -- ये पंडित सोचते रहे। गा लिया! गीत अनगाया न रहा! जो छिपा था वो प्रगट हो गया! जो बंद था कली में वो फूल बना! वह जो बीज में दबा था, चाँद-तारों से उसने बात की! खुले आकाश में गंध फेंकी! दूर-दूर तक संदेश दिये! लुट गया! परिपूर्ण हुआ!

गीत तुम कौन-सा गाओ, इसका बहुत सवाल नहीं है; और ध्यान रखना, गीत तुम अपना ही गा सकोगे; दूसरे का गीत तुम कैसे गाओगे? यही तो मैं सतत तुम्हारे सिर पर हथौड़ी की तरह चोट मारता रहता हूँ कि गीत तुम अपना ही गा सकोगे, किसी और का नहीं। उधार भी गीत गाके कहीं तुम गायक बन सकोगे? हाँ, मीरा की नकल करके अगर नाच लिए और भीतर कोई प्रेम का रस जगता ही न था, तो तुम्हारा नाच झूठा होगा। और झूठे नाच से तुम सच्चे परमात्मा तक न पहुँच पाओगे। नाच थोड़े ही पहुँचाता है, नाच की सच्चाई पहुँचाती है। प्रामाणिकता, उसकी गहराई!

अगर तुम बुद्ध की तरह वृक्ष के, बोधिवृक्ष के नीचे शांत बैठना ही तुम्हारा स्वभाव हो तो उससे भी पहुँच जाओगे। क्योंकि बैठना थोड़ी' पहुँचाता है, बैठने की सच्चाई!

झेन फकीर कहते हैं, सिर्फ बैठना काफी है। इससे ज्यादा करने की कोई जरूरत नहीं है। जो चुप होके बैठ गया, वो पहुँच गया। क्योंकि जाना कहाँ है? अपने ही भीतर, अपने ही भीतर उतर जाना है। कुछ करने की जरूरत नहीं है। तुम ये मत समझना कि मीरा नाचके वहाँ पहुँचती है। नाचने से उसका क्या लेना-देना है? या बुद्ध बैठके पहुँचते हैं। बैठने से भी क्या लेना-देना है? कोई भी कृत्य जो तुम्हारी परिपूर्णता से आता है, वही पहुँचा देता है। परिपूर्णता पहुँचाती है।

'और ध्यान रखना उधारी से तुम न पहुँचोगे। कोई 'प्रॉक्सी' वहाँ नहीं चलती। तुम ही जाओगे तो ही ...। कोई दूसरा तुम्हारी जगह हाजिरी न भरवा सकेगा। तुम किसी दूसरे से न कह सकोगे। वो कोई भारतीय विश्वविद्यालय की कक्षा नहीं है कि एक मित्र को कह गये कि जब मेरा नाम आए -- तो कह देना। मैं खुद ही

यही करता रहा सालों। लेकिन उस सत्य के जगत में कोई 'प्रॉक्सी', कोई दूसरा तुम्हारे लिए 'येस सर' न कह सकेगा। तुम ही मौजूद होओगे तो ही ...।

एक खयाल रखो बात : अपने साज को पहचानो।

ध्यान से मन लग रहा है, तो तुम्हारा साज खुद ही तुमसे कह रहा है कि गाओ गीत ध्यान का।

मुहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता

पर ध्यान भी ऐसा ही है। हर कोई ध्यान न कर सकेगा। मीरा को लाख कहो कि बैठ जा तू, वो बैठ न सकेगी। वो बैठना दूभर हो जाएगा। बुद्ध को कहो : नाचो। थोड़ा सोचो, उनपे कैसी मुसीबत न आ जाएगी! तुम कितना ही बैंडबाजा बजाओ, उनके पैर में थिरकन भी न होगी। तुम्हारा बैंडबाजा सुनके वो और भी आँख बंद करके शांत हो जाएँगे।

अलग-अलग साज हैं। अलग-अलग नग्मे हैं। हर साज का अपना नग्मा है। अपने साज को पहचानो, नग्मे की नकल मत करना। तुम्हारा साज बजने लगे! गुलाब गुलाब बने, कमल कमल बने। जब वो खिल जाएँगे, तो दोनों ही परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाते हैं। एक ही बात खयाल रहे, इस बात को ही मैं आस्तिकता कहता हूँ—

जो कहोगे तुम कहेंगे हम भी हाँ यूँ ही सही
आपकी गर यूँ खुशी है मेहरबाँ यूँ ही सही

तुम अपनी खुशी बीच में मत डालना। तुम ये मत कहना कि मैं तो प्रेम का गीत गाऊँगा। वही नास्तिकता है। तुम ये मत कहना कि मैं तो ध्यान का ही गीत गाऊँगा, चाहे साज पर बैठता हो या न बैठता हो। वही नास्तिकता है। जिसने अपनी जिद्द लानी चाही अस्तित्व के विपरीत, वही नास्तिक है। जिसने अस्तित्व को हाँ कहा— हाँ मेहरबाँ यूँ ही सही — बस, उसके लिए मंदिर के द्वार खुले हैं।

तीसरा प्रश्न : हम प्रमादी लोगों के जीवन में सपने ही सपने हैं, पर सपनों का सत्य क्या है? क्या प्रमाद रहते उसे हम जान सकते हैं?

सपने ही सपने हैं— ये तुमने मुझे सुनके समझ लिया। इतने जल्दी मत मान लेना। जानना जरूरी है, मानना नहीं। मैंने कह दिया और तुमने मान लिया, तो काम न चलेगा; उधार हो गयी बात। तुम्हें ही खोजना पड़ेगा कि सपने हैं।

बहुत लोग भटक जाते हैं दूसरों की बात मानके। क्योंकि मैं लाख कहूँ कि सपना है, अगर तुम्हें भीतर सच ही लग रहा है, तो तुम मेरी मानते भी रहोगे और चलते

भी उसीकी दिशा मे रहोगे जो तुम्हें सच लग रहा है। यही तो उलझन है आदमी की।

बुद्ध कहते हैं: क्रोध पागलपन है। तुमने सुन लिया, इनकार भी न कर सके। और बुद्ध बलशाली हैं। जब वो कहते हैं, तो उनके कहने मे वजन है। जब वे कहते हैं, तो उनका पूरा व्यक्तित्व उसका प्रमाण है। तुम इनकार भी नहीं कर सकते। बुद्ध से तर्क भी नही कर सकते। और बहुत गहरे में तुम्हारा सोया हुआ बुद्धत्व भी भीतर से हाँ भरता है कि ठीक है। कितना ही तुम झुठलाओ अपने भीतर को, वो भीतर भी कहता है कि ठीक है।

संगीतज्ञ कहते है कि अगर कोई बड़ा कुशल संगीतज्ञ वीणा बजाए, और दूसरी वीणा कमरे में सिर्फ रखी हो तो उसके तार भी झनझनाने लगते हैं; वो भी जवाब देने लगते है; वो भी प्रतिध्वनित होने लगते हैं। पुराने दिनों में तो यही कसौटी थी संगीतज्ञ की कि कोई अगर सच में वीणा बजाने में कुशल हो गया है, तो वो तभी कुशल माना जाता था, जब दूसरे कोने मे रखी वीणा जवाब देने लगे। तुम्हारी वीणा भर बजाने का सवाल नहीं है। अगर तुम्हारी वीणा मंच मे बज रही है, तो प्रतिध्वनि उठनी शुरू हो जाएगी, शांत कोने में बैठी वीणा से भी। क्योंकि वीणा भी ऐसी ही वीणा है: सोयी है। किसीने छेड़ा नही है उसके तारों को। लेकिन ये आवाज छेड़ देगी।

जब बुद्ध की बजती वीणा के पास तुम आते हो, या मीरा, या चैतन्य की नाचती हुई अपूर्व घटना के पास तुम आते हो, तुम्हारे भीतर का बुद्ध भी संवेदित होता है, संचालित होता है, तुम्हारे भीतर का बुद्ध भी प्रतिध्वनित होता है। तो तुम ही भीतर से अनुभव करते हो कि ठीक है। और बुद्ध का बल है, वो भी कहता है: ठीक है। लेकिन इन दोनों के बीच में तुम्हारा अपना अनुभव है, उसकी बड़ी परत है। वो तुममे कहे चली जाती है कि बुद्ध ठीक कहते हैं, लेकिन अभी मेरे लिए नहीं। ठीक है अंत में पर अभी मैं, संसारी आदमी हूँ। होगा ठीक अखीर में, फिर भी कौन जाने!

तुम बीच मे संदेह भी उठाते जाते हो। तुम तर्क भी नही कर सकते, बुद्ध से लड़ भी नहीं सकते और बुद्ध को तुम स्वीकार भी कैसे करो? इनकार भी नहीं कर सकते है, स्वीकार करना भी मुश्किल है -- इन दोनों के बीच दुविधा में तुम्हारा जीवन हो जाता है। तब तुम मानते बुद्ध की हो और करते अपनी। तब तुम मानते तो यही हो -- दीवाल पे लिख लेते हो, क्रोध पाप है; लेकिन तुम्हारी जिंदगी में क्रोध ही क्रोध लिखा होता है। तुम कहते हो, ये तो दीवाल पे इसलिए लिखा है ताकि याद रहे। लेकिन जब तुम्हे भीतर ही याद नहीं रहता तो दीवाल पे लिखा

हुआ क्या याद आएगा, क्या काम पड़ेगा ? हां, जब तुम क्रोध न करोगे, तब तुम पढ़ लोगे और पछता लोगे। और जब क्रोध आएगा, तब तो तुम्हें भीतर की लिखावट भी दिखायी नहीं पड़ती, दीवाल को कौन देखेगा ?

जियोगे तुम अपने ही ढंग से, मान लोगे बुद्ध की। उससे एक अड़चन पैदा होगी, एक दुविधा, एक द्वंद्व; तुम दोहरे हो जाओगे, तुम पाखंडी हो जाओगे। कहोगे कुछ, करोगे कुछ। जो कहोगे उसके विपरीत करोगे। जो करोगे उसके विपरीत कहोगे। इसलिए तो अगर किसीसे सलाह लेनी हो तो नासमझ से नासमझ आदमी भी बड़ी बुद्धिमानी की सलाह दे सकता है। अगर तुम किसी मुसीबत में हो, किसीसे भी पूछ लो जो उस मुसीबत में नहीं है, वो तुम्हें ऐसी सलाह देगा कि बुद्ध भी सोचें कि शायद हमसे भी ऐसी सलाह देते न बनती। लेकिन जब तुम उस आदमी को मुसीबत में देखोगे तो तुम पाओगे, वो तुम्हारे जैसा ही व्यवहार कर रहा है। अपनी सलाह अपने ही काम नहीं आती। कहां भूल हो गयी है ?

मेरे पास लोग आते हैं, वो कहते हैं : हमें ज्ञान तो सब है, हमें मालूम सब है कि क्या ठीक है और क्या गलत है, लेकिन ठीक फिर होता क्यों नहीं ?

ठीक होने के लिए कोरा ज्ञान काफी नहीं है। ठीक होने के लिए ध्यान जरूरी है, ज्ञान जरूरी नहीं है। ज्ञान के बिना भी ठीक हो सकता है, ज्ञान के होते भी ठीक न हो। ध्यान चाहिए।

मैंने कहा कि सपना है तुम्हारी जिंदगी, मेरी बात मान मत लेना; अन्यथा मुझ से तुम्हें लाभ न हुआ, हानि हो गयी; मैंने तुम्हारी जिंदगी को बदला नहीं, पाखंडी कर दिया। तुम रहोगे तो अपने सपने में ही और कहते जाओगे, सपना है। तुम रहोगे तो माया में और माया को गाली देते चले जाओगे।

तुम देख सकते हो, तुम्हारे साधु-संन्यासियों को मिल सकते हो, वो वही कर रहे हैं जिसको गाली दिये चले जाएंगे। स्वाभाविक है ये द्वंद्व, क्योंकि जो वो कह रहे हैं वो शास्त्रों से उधार है। वो उन्होंने स्वयं जाना नहीं।

सुकरात का बड़ा प्रसिद्ध वचन है : ज्ञान क्रांति है। जिसने जान लिया, वो बदल गया। अगर जानने के बाद भी न बदलो, तो समझना कि जाना ही नहीं। ये तो प्रश्न बिलकुल गलत है कि हम जानते हैं, फिर बदलाहट क्यों नहीं होती ? ये तो असंभव है। जिसने जान लिया आग जलाती है, तो वो आग में हाथ न डालेगा। और अगर डालता हो, तो सिर्फ एक ही प्रमाण देता है कि उसने सुना होगा किसीसे कि आग जलाती है, खुद जाना नहीं है। खुद तो वो यही जानता है कि आग बड़ी शीतल है। और अगर एक आग जला देती है तो भी नहीं सीखता, क्योंकि वो सोचता है, जरूरी थोड़े ही है कि दूसरी आग भी जलाती हो। फिर तीसरी भी आग है।

जिंदगी में हजार रंग हैं आग के। एक रंग जला देता है, तो दूसरा जलाएगा ये कोई जरूरी थोड़े ही है। वो प्रयोग करता चला जाता है। और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाता है आग से जलने का; फिर जलने की पीड़ा भी नहीं होती, फिर चमड़ी उसकी इतनी जल चुकी होती है कि जलने की संवेदना भी नहीं होती।

क्रोध का पता भी उन्हीको चलता है जो अभी नये-नये अभ्यास कर रहे हैं। जो पुराने अभ्यासी हैं, उन्हें क्रोध का कोई पता ही नहीं चलता, वो मजे से क्रोध में जीते हैं। जैसे नाली का कीड़ा नाली में जीता है, कुछ पता नहीं चलता। तुम उनसे कहो भी कि ये क्रोध बुरा है, वो कहेंगे कि हम तो बड़े मजे में हैं। सच तो ये है, उन्हें अगर क्रोध करने का मौका न मिले तो बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है। तलफ लगती है। अगर उन्हें दो-चार दिन क्रोध करने का मौका न मिले तो वो पागल हो जाएँगे, वो कुछ न कुछ उपाय खोज लेंगे। वो कहीं न कहीं कोई झंझट खड़ी कर लेंगे। वो किसी न किसी से जाके जूझ जाएँगे, तभी उनको थोड़ी राहत मिलेगी।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पूरी मनुष्यजाति लड़ने को आतुर है। इसलिए तो हर दस वर्ष में एक महायुद्ध की जरूरत पड़ जाती है। इतना क्रोध लोग इकट्ठा कर लेते हैं कि फिर छोटे-मोटे झगड़े से काम नहीं चलता, पति-पत्नी के झगड़े से हल नहीं होता — वो तो रोज चलता रहता है, वो तो अभ्यास है — फिर कोई महायुद्ध चाहिए, जहाँ सब लपटों में हो जाए, जहाँ विध्वंस करने की पूरी छूट मिल जाए, जहां लाखों लोग मारे जाएँ। तब कहीं दस-पंद्रह साल के लिए आदमी का मन थोड़ा हलका होता है।

तुम सोचते हो, हिंदू-मुसलमान इसलिए लड़ते हैं कि उनके धर्म अलग-अलग हैं, तुम गलती में हो। तुम सोचते हो, हिंदुस्तान-पाकिस्तान इसलिए लड़ते हैं कि उनकी राजनीति अलग-अलग है, तुम गलती में हो। तुम सोचते हो, रूस-अमरीका इसलिए लड़ते हैं कि उनका सिद्धांत और शास्त्र अलग-अलग है, तुम गलती में हो। शास्त्र बदल दो, सिद्धांत बदल दो, धर्म बदल दो — लड़ाई जारी रहेगी। हिंदू-मुसलमान न लड़ेंगे, तो गुजराती-मराठी लड़ेंगे — वो दोनों ही हिंदू हैं। हिंदू-मुसलमान न लड़ेंगे, तो पूर्व पाकिस्तान पश्चिम पाकिस्तान से लड़ेगा — वो दोनों ही मुसलमान हैं। जिन्ना के भूत को भी स्मरण नहीं आता होगा कि ये कैसे हो रहा है? समझ में नहीं आता होगा कि ये कैसे हो रहा है? मुसलमान मुसलमान से लड़ रहे हैं! छोड़ो, पाकिस्तान दोनों अलग हो गये अब तो, अब बंगला देश में बंगला मुसलमान ही बंगला मुसलमान की हत्या कर रहा है।

आदमी हत्या में उत्सुक है, बाकी सब बहाने हैं। आदमी मारने में उत्सुक है, क्योंकि आदमी जीना नहीं जानता। आदमी क्रोध के लिए आतुर है, क्योंकि आदमी प्रेम की

कला भूल गया है। आदमी के साज पर प्रेम का, ध्यान का नग्मा बजता ही नहीं; साज ही टूट गया है। साज से बस ऐसी आवाजें उठती हैं — युद्ध की, विध्वंस की।

एक बात खयाल रखना, पाखंडी मत बन जाना। मैं जो कहता हूँ, उसे मान लेने की जरूरत नहीं है, उसे जानने की जरूरत है। तुम मेरी मानके आचरण में मत बदलने लगना उसे, अन्यथा तुम सदा के लिए भटक जाओगे।

तुम्हारे धर्मगुरु तुमसे यही कहते हैं कि सुन लिया, अब इसे आचरण में लाओ। मैं तुमसे कहता हूँ, सुन लिया, अब इसे जानो, आचरण की बकवास मत उठाओ। क्योंकि जाननेवाले के लिए आचरण अपने आप आ जाता है।

आचरण छाया है ज्ञान की। ज्ञान क्रांति है। मैं तुमसे ये नहीं कहता कि आचरण में लाओ। ये तो बात ही व्यर्थ है। मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ, जो तुमने मुझसे सुना, समझ मत लेना कि तुमने जान लिया। मुझसे तुमने सिर्फ सुना, ये एक परिकल्पना है तुम्हारे लिए। मैंने तुम्हें एक कुंजी दी खोज के लिए, खोज तुम्हें करनी पड़ेगी। ये खजाना नहीं है, ये सिर्फ कुंजी है। इस कुंजी को तुम खीसे में रखे रहो, इससे खजाना न मिल जाएगा; खजाना तुम्हें खोजना पड़ेगा। जो मैंने कहा, इसको तुम दिशासूचक-संकेत समझो। ये मील का पत्थर है, जिसपे तीर लगा है कि आगे जाना है। इस मील के पत्थर को मंजिल मत समझ लेना; यात्रा करना। और मैं तुमसे कहता हूँ, यात्रा आचरण की नहीं, ज्ञान की; क्योंकि जब ज्ञान आता है, तो आचरण अपने से आ जाता है। जिसने ठीक जान लिया, वे ठीक हो जाता है।

सम्यक्-बोध सम्यक्-जीवन की आधारशिला है। इसलिए महावीर ने कहा : सम्यक्-ज्ञान। बुद्ध ने कहा : सम्यक्-दृष्टि। ठीक-ठीक दृष्टि, बस, पर्याप्त है; बाकी तो सब बिस्तार की बातें हैं। लेकिन सस्ता मालूम पड़ता है ये। मैंने कहा, तुमने मान लिया — ये बिलकुल सरल है। तुम्हें कुछ करना ही न पड़ा, तुमने सुन लिया। तुम तो शायद ये समझते हो कि सुनने में भी तुम कुछ मुझपे एहसान कर रहे हो।

मेरे पास लोग पत्र लिखके भेज देते हैं कि हम आपको इतने दिन से सुन रहे हैं, अभी तक कुछ क्यों नहीं हुआ? जैसे मेरा कोई कसूर है! जैसे उन्होंने इतने दिन से सुना है तो बड़ी कृपा की है। लिखके भेज देते हैं कि हम हजारों मील से चल के आए हैं और अभी तक कुछ नहीं हुआ! तुम हजारों मील से चलके आए हो, इससे तुमने मुझपे कोई एहसान नहीं किया। कुछ अभी तक क्यों नहीं हुआ? तुम क्या सोचते हो, मुझे सुनके ही कुछ हो जाएगा? अगर ऐसा होता, तो सारी दुनिया कभी की बदल गयी होती।

दो दुनिया में दो तरह की मूढ़ताएँ हैं। एक मूढ़ता कि लोग सोचते हैं कि सुन

लिया, सब हो गया। पंडित हो जाते हैं। दूसरी मूढ़ता, सुन लिया. उसको आचरण में लाने लगे। पाखंडी हो जाते हैं।

सुनो और उसे जानो। वह ठीक सूत्र है। आचरण की चिंता मत करो। और सुनने को, जान लिया ऐसा मत मानो। तब तुम सम्यक्-मार्ग पर हो।

तुम्हारे सपने सपने हैं — ऐसा मैं कहता हूँ, बुद्ध कहते हैं। ठीक ही कहते होंगे, ऐसा तुम समझो। इतनी श्रद्धा रखो कि ठीक कहते होंगे। लेकिन खोजना है तुम्हें। उनके ठीक का तुम्हें गवाह होना है। जब तक तुम उनके गवाह न बन जाओ, जब तक तुम भी अपने जीवन के अनुभव से न कह सको कि हाँ, ठीक, तब तक जल्दी मत करना। और सपने को जानने का एक ही उपाय है कि तुम थोड़े जागो। सपने में सपना तो याद नहीं आता। सपने में सपना तो पहचान नहीं आता। सुबह जागके पहचान आता है कि रात सपना देखा। जब तुम सपना देखते हो तब तो सपना ही सत्य होता है।

लोग कहते हैं, हम कान की सुनी नहीं मानते, आँख की देखी मानते हैं। मगर आँख की देखी का भी कितना भरोसा है? रोज़ सपना देखते हो, सुबह उठके पाते हो सब झूठ था। न यहाँ कान का भरोसा है, न यहाँ आँख का भरोसा है। यहाँ भरोसा ही नहीं है। इसलिए बहुत कदम सम्हाल-सम्हाल के चलना है। सुबह उठ के पता चलता है कि सपना था, रात पता नहीं चलता। और हज़ार बार ऐसा हो चुका है। हर रात सपना देखा, हर सुबह पता चला — फिर भी जब तुम साँझ फिर सो जाते हो, फिर भूल जाते हो।

सपने में ही जागना पड़ेगा। सपने को देखना पड़ेगा। और मजा ये है कि जो जागता है वही देख पाता है कि सपना सपना है; और साथ में ये भी कि जैसे ही तुम देख पाते हो सपना सपना है — सपना तिरोहित हो जाता है। तुम जाग गये, फिर सपना हो कैसे सकता है?

तो उन्होंने ही जाना, जो जागे। और जिन्होंने जाना और जागे, उनका सपना मिट गया। तो जागना ही सपने से मुक्त होने की भी कला है — सपने को जानने की भी और सपने से मुक्त होने की भी।

चौथा प्रश्न: रजनीश-ए-इश्क ने हमें निकम्मा कर दिया
वरना आदमी थे हम भी कुछ काम के

काम के तो रहे होओ, राम के नहीं थे। और जब काम की दुनिया में जब तक निकम्मे न हो जाओ, तब तक राम की दुनिया में गति नहीं होती। काम की दुनिया

ही तो संसार है। काम की दुनिया से जाओ, तो ही राम की दुनिया की पात्रता उपलब्ध होती है। और काम की दुनिया में चल-चल के किसको क्या मिला ?

रहे होओगे काम के, लेकिन पाया क्या ? अगर पा लिया ही होता तो मेरे पास ही क्यों आते ? तब तो मैं तुम्हारे पास आता।

नहीं, काम बहुत काम का सिद्ध नहीं हुआ।

एक सूफी कथा है। गजनी के महमूद के दरबार में एक आदमी आया। वो अपने बेटे को साथ लाया था। उसने बेटे को बड़े ढंग से बड़ा किया था, बड़े संस्कारों में ढाला था, बड़ा परिष्कृत किया था। सदा से उसकी यही आकांक्षा थी कि उसका एक बेटा कम से कम महमूद के दरबार में हिस्सा हो जाए। उसने उसके लिए ही उसे बड़ी मेहनत से तैयार किया था। उसे पक्का भरोसा था, क्योंकि उसने सभी परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कर ली थीं और जहाँ-जहाँ, जहाँ-जहाँ उसे पढ़ने-लिखने भेजा था गुरुओं ने बड़े प्रमाण-पत्र दिये थे और उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। वह बड़ा बुद्धिमान युवक था। सुंदर था, दरबार के योग्य था। आशा थी बाप को कि कभी न कभी वो बड़ा वजीर भी हो जाएगा।

महमूद से आके उसने कहा कि मेरे पाँच बेटों में ये सबसे ज्यादा सुंदर, सबसे ज्यादा स्वस्थ, सबसे ज्यादा बुद्धिमान है। ये आपके दरबार में शोभा पा सकता है, आप इसे एक मौका दें। और जो भी जाना जा सकता है, इसने जान लिया। महमूद ने सिर भी ऊपर न उठाया। उसने कहा, एक साल बाद लाओ।

सोचा बाप ने, शायद अभी कुछ कमी है, क्योंकि सम्राट ने चेहरा भी उठाके न देखा। उसे एक साल के लिए और अध्ययन के लिए भेज दिया। साल भर के बाद जब वो और अध्ययन करके लौट आया — अब अध्ययन को भी कुछ न बचा, वो आखिरी डिग्री ले आया — फिर लेके पहुँचा। महमूद ने उसकी तरफ देखा; लेकिन कहा ठीक है, लेकिन इसकी क्या विशेषता है ? किसलिए तुम चाहते हो कि ये दरबार में रहे ? तो उसके बाप ने कहा : इसे मैंने सूफियों के सत्संग में बड़ा किया है। सूफी-मत के संबंध में जितना बड़ा अब ये जानकार है, दूसरा खोजना मुश्किल है। ये आपका सूफी सलाहकार होगा। रहस्य धर्म के कोई न कोई जानने-वाला दरबार में होना चाहिए, नहीं तो दरबार की शोभा नहीं है। सब हैं आपके दरबार में — बड़े कवि हैं, बड़े पंडित हैं, बड़े भाषाविद् हैं, कोई सूफी नहीं। महमूद ने कहा, ठीक है। एक साल बाद लाओ।

एक साल बाद फिर लेके उपस्थित हुआ। अब तो बाप भी थोड़ा डरने लगा कि ये तो हर बार एक साल... !

महमूद ने कहा कि ऐसा करो — तुम्हारी निष्ठा है, तुम सतत पीछे लगे हो, इस-

लिए मुझे भी लगता है कुछ करना जरूरी है। तुम हार नहीं गये हो, हताश नहीं हो गये हो! अब ऐसा करो — इस युवक को उसने कहा — कि तुम जाओ और किसी सूफी को अपना गुरु मान लो, और किसी सूफी को खोज लो जो तुम्हें अपना शिष्य मानने को तैयार हो। तुम्हारा गुरु मान लेना काफी नहीं है। कोई गुरु तुम्हें शिष्य भी मानने को तैयार हो। फिर साल भर बाद आ जाना।

वो युवक गया। एक गुरु के चरणों में बैठा। साल भर बाद बाप उसको लेने आया। वो गुरु के चरणों में बैठा था, उसने बाप की तरफ देखा ही नहीं। बाप ने उसे हिलाया कि नासमझ, क्या कर रहा है? उठ, साल बीत गया, फिर दरबार चलना है। उसने बाप को कोई जवाब भी न दिया। वो अपने गुरु के पैर दबा रहा था, वो पैर ही दबाता रहा। बाप ने कहा कि व्यर्थ गया; काम से गया, निकम्मा सिद्ध हो गया। इसलिए हमने तुझे पहले किसी सूफी फकीर के पास नहीं भेजा था। हम सूफी पंडितों के पास भेजते रहे; ये महमूद ने कहाँ की झंझट बता दी कि कोई गुरु खोज, और फिर कोई गुरु जो तुझे शिष्य की तरह स्वीकार करे! तू सुनता क्यों नहीं? क्या तू पागल हो गया है, कि बहरा हो गया है? मगर वो युवक चुप ही रहा। साल बीत गयी, बाप दुखी होके घर लौट गया, महमूद ने पुछवाया कि लड़का आया क्यों नहीं? बाप ने कहा कि व्यर्थ हो गया, निकम्मा साबित हो गया। क्षमा करें, मेरी भूल थी, मैंने पत्थर को हीरा समझा।

लेकिन महमूद ने अपने वजीरों से कहा कि तैयारी की जाए, उस आश्रम में जाना पड़ेगा।

महमूद खुद आया। द्वार पे खड़ा हुआ। गुरु लड़के को हाथ से पकड़के दरवाजे पे लाया और महमूद से उसने कहा कि अब तुम्हारे ये योग्य है, क्योंकि पहले तो ये तुम्हारे पास जाता था, अब तुम इसके पास आए। बाप की दृष्टि में ये निकम्मा हो गया, किसी काम का न रहा! अब ये परमात्मा की दुनिया में काम का हो गया। अगर ये राजी हो, और तुम ले जा सको, तो तुम्हारा दरबार शोभायमान होगा। ये तुम्हारे दरबार की ज्योति हो जाएगा। कहते हैं, महमूद ने बहुत हाथ-पैर जोड़े, पर उस युवक ने कहा कि अब इन चरणों को छोड़के कहीं जाना नहीं है। दरबार मिल गया!

ठीक पूछते हो तुम कि 'वरना आदमी थे हम भी कुछ काम के'। जरूर किसी न किसी काम के रहे ही होओगे। संसार में सभी काम के आदमी हैं! और मेरे पास आके तुम मेरे प्रेम में निकम्मे भी हो गये हो, वो भी सच है। लेकिन एक ऐसा निकम्मापन भी है जहाँ राम में प्रवेश शुरू होता है। और ध्यान रखना, काम के आदमी तो भिखारी हैं; भिक्षापात्र ही हाथ में रहता है, कभी भरता नहीं। राम

के आदमी ही भर जाते हैं। एक तो ऐसी बड़ी है जब तुम संसार के पीछे भागते रहते हो, दरबारों की तलाश करते हो, और हर जगह ठुकराए जाते हो। फिर एक ऐसी भी घड़ी है कि दरबार तुम्हारी खोज करना शुरू करते हैं, संसार तुम्हारे पीछे आता है और तुम उन्हें ठुकरा देते हो। इसको ही मैं संन्यास कहता हूँ। ऐसी घड़ी को उपलब्ध हो जाना, जब साधारण आदमी जिन चीजों को माँगता है, चाहता है, वे तुम्हारे पीछे आने लगें और तुम्हें उनमें कोई रस न रह जाए — संसार पीछे आए और तुम लौटके भी न देखो!

मेरी दृष्टि में तभी तुम असली काम के हुए, जब तुम राम के हुए। लेकिन अगर मन में थोड़ी सी भी दुविधा हो और लगता हो कि ये तो सिर्फ निकम्मे हो गये, राम के तो न हुए, तो लौट जाओ। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। थोड़े-बहुत दिन में वापिस संसार के काम के हो जाओगे। अभी बात बिलकुल नहीं बिगड़ गयी है। बिलकुल बिगड़ गयी होती तो ये सवाल ही तुमने न पूछा होता। अभी कुछ न कुछ संसार में पैर है। भूल गये होओ, थोड़े दिन में वापिस सीख लोगे, पुरानी आदत फिर से सजीव हो जाएगी। या तो लौट जाओ, या पूरे डूब जाओ; बीच में मत खड़े रहो।

इश्क करता है तो फिर इश्क की तौहीन न कर
या तो बेहोश न हो हो तो न फिर होश में आ

या तो डूबना है तो पूरे ही डूब जाओ, ये निकम्मा होने का जो पाठ मैं पढ़ा रहा हूँ, इसमें फिर पूरी तरह हो जाओ। यही तो अकर्म है, निष्काम है। अगर थोड़ी भी शक-शुबा मन में हो, थोड़ा भी संदेह हो, तो जितने जल्दी भाग सको भाग जाओ, दूर निकल सको निकल जाओ। क्योंकि ज्यादा देर रुक गये बुरी संगत में, तो फिर बिलकुल सदा के लिए निकम्मे हो जाओगे। अगर संसार में थोड़ा भी रस है, तो ये बुरी संगत है। अगर संसार में कोई रस न रहा, तो ये सत्संग है।

निकम्मे होकर काम के हो जाओगे। बेहोश होकर एक ऐसे होश को उपलब्ध होओगे जिसको फिर कोई बेहोशी छू नहीं सकती —

दीवानगी-ए-इश्क के बाद आ ही गया होश
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे!

पाँचवाँ प्रश्न : बुद्ध के शून्य में आप प्रेम क्योंकर जोड़ रहे हैं?

अकारण नहीं। यूँ ही नहीं। जानबूझ कर। क्योंकि प्रेम शून्य का फूल है। बुद्ध के कहने का ढंग नकारात्मक है। जरूरत थी। क्योंकि उपनिषदों ने विधा-

यक की बड़ी बात की, वेद विधायक के गीत गाते रहे। विधायक की चर्चा इतनी हुई कि विधायक शब्द अर्थहीन हो गये।

जब किन्हीं शब्दों का बहुत उपयोग किया जाए तो वे व्यर्थ हो जाते हैं। उनकी गहनता, उनकी गहराई नष्ट हो जाती है। उथले ओंठों पर शब्द भी उथले हो जाते हैं। उपनिषद् की विधायकता, ब्रह्म के गीत, पंडितों के द्वारा सब खराब हो गये। फिर ईश्वर की बात करनी दो कौड़ी की बात मालुम होने लगी। पंडित गाँव-गाँव, गली-कूचे-कूचे वही बात कर रहा था। किराये के आदमी ब्रह्मज्ञान फैला रहे थे। उपनिषद् जूठे हो गये थे।

बुद्ध ने स्वाद बदला इस देश का। उन्होंने नकार की भाषा दी। और बड़ा मजा ये है कि उस नकार की भाषा से उन्होंने बड़ी भारी क्रांति खड़ी कर दी। उस क्रांति में जो गुजर सके वही साबित उन्होंने किया कि उन्होंने उपनिषद् समझा था; जो न गुजर सके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वो केवल तोते थे। क्योंकि जिसने उपनिषद् को अनुभव से जाना था, वो तो तत्क्षण बुद्ध को समझ गया कि ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जिसने उपनिषद् के ब्रह्म को जाना — वो जानना तभी हो सकता है जब कोई भीतर के शून्य से गुजरा हो। शून्य के द्वार से जो न गुजरा वो ब्रह्म के मंदिर में कभी पहुँचा नहीं। इसलिए जो पहुँच गया था ब्रह्म के मंदिर में, जो सच में ब्राह्मण हो गया था, वो तो बुद्ध को तत्काल पहचान लिया। बुद्ध के शिष्यों में अधिकतम ब्राह्मण हैं। महाकाश्यप है जिससे झेन का जन्म हुआ। सारिपुत्र है। मोगलान है। सभी ब्राह्मण हैं, महाब्राह्मण है।

जिन्होंने थोड़ा भी जाना था, वो तो बुद्ध के चरणों में झुक गये; क्योंकि उपनिषद् से तो थोड़ा सा स्वाद मिला था : जीवित उपनिषद् मौजूद हुआ था, तो उन्होंने उपनिषद् की फिकिर छोड़ दी। जब जिंदा उपनिषद् मौजूद हो, जब ऋषि खुद लौट आए हों बुद्ध में, तो अब कौन किताबों की फिकिर करे! लेकिन जो पंडित थे, कोरे पंडित थे, पोथी-पंडित थे, कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किये थे, उपनिषद् कंठस्थ था लेकिन उपनिषद् का कोई स्वाद न लगा था, जिनको उपनिषद् की शराब का अनुभव न था — उन्होंने कहा, ये बुद्ध तो दुश्मन हैं! हम तो पूर्ण को मानते हैं, ये शून्य की बात कर रहा है! ये तो नष्ट कर देगा!

बुद्ध ने शून्य की बात करके बड़ी गजब की कसौटी पैदा कर दी : चुन लिए लोग। उस कसौटी पे जो कस गया, वो सही था; जो नहीं कसा, वो गलत था। हिंदू-धर्म में जो भी श्रेष्ठ था उन दिनों, वो बुद्ध के पास आ गया; कूड़ा-कर्कट रह गया बाहर।

लेकिन जो बात उपनिषद् के लिए हो गयी थी, वही बुद्ध के लिए हो गयी एक दिन। बुद्ध का शून्य भी धीरे-धीरे चर्चित होते-होते व्यर्थ हो गया। उसमें से पूर्ण

का भाव ही खो गया। वो निपट शून्य रह गया। वो केवल दरवाजा रह गया, भीतर कोई मंदिर नहीं। दरवाजे में से आरपार हो जाओ, लेकिन कहीं कुछ नहीं। शून्य केवल नकार रह गया। बुद्ध के लिए विधेय का द्वार था, लेकिन बौद्धों के लिए केवल नकार रह गया। बौद्ध पंडित पैदा हुए, उन्होंने कहा, हम उपनिषद् से अलग हैं। वेद के हम विरोधी हैं।

बुद्ध पंडित के विरोधी थे, वेद के नहीं। बुद्ध जन्मजात ब्राह्मण के विरोधी थे, अर्जित ब्राह्मणत्व के नहीं। बुद्ध ने ब्राह्मण की नयी परिभाषा की थी, ब्राह्मण का विरोध नहीं। बुद्ध ने वेद को नये अर्थ दिये थे, वेद का विरोध नहीं। बुद्ध स्वयं प्रमाण थे वेद और उपनिषद् के। उन्होंने पुनरुज्जीवित किया था सब, जो-जो खो गया था उसको फिर नया रंग, नयी रौनक दी थी। संगीत वही था, गीत नया था। लयबद्धता वही थी, लेकिन शब्द बदल दिये थे।

फिर वही हुआ, जो होना था। जैसे उपनिषद् पंडित के हाथ में पड़ गया था, ऐसे ही बुद्ध का शून्य भी पंडित के हाथ में पड़ गया। वो शून्य कोरा शाब्दिक था। उस शून्य में कुछ भी न था, कोई गहराई न थी। वो सिर्फ बकवास था। वो तर्कजाल था। बड़े तर्कजाल पैदा हुए बुद्ध के पीछे।

इसलिए मैं दोनों का प्रयोग एक साथ कर रहा हूँ। पूर्ण को भी पंडित नष्ट कर चुका, शून्य को भी नष्ट कर चुका — अब तो एक ही उपाय है कि हम दोनों का एक साथ उपयोग करें, शायद पंडित दोनों को एक साथ न पकड़ पाए। क्योंकि पंडित को लगेगा, ये तो विरोधाभासी है, संगति नहीं है। मेरी बात, पंडित को लगेगी विरोधाभासी है, 'कंट्राडिक्ट्री' है, 'इनकंसिस्टेंट' है। क्योंकि पंडित का अर्थ है, तर्क। वो कहेगा: या तो कहो पूर्ण, तो पक्का कि तुम उपनिषद्‌वादी हो; या कहो शून्य, तो पक्का कि तुम बुद्धवादी हो।

मैं कोई वादी नहीं हूँ। मैंने तो देखा कि शून्य का द्वार पूर्ण के मंदिर में पहुँचा देता है। और मैंने देखा कि पूर्ण के मंदिर में जिसे भी जाना हो, वो शून्य के द्वार के अतिरिक्त और कहीं से जा नहीं सकता। तो, मेरे लिए शून्य और पूर्ण में विरोध नहीं है। शून्य साधना है, पूर्ण साध्य है। दोनों को मैं एक साथ उपयोग कर रहा हूँ, ताकि पंडित की पकड़ मुझपे न बैठ सके। जहाँ-जहाँ संगति है वहाँ-वहाँ पंडित पकड़ बिठा लेता है। सिर्फ असंगत को पंडित नहीं पकड़ पाता। इसलिए कुछ चीजें हैं दुनिया में जो पंडित की पकड़ से बाहर रह गयी हैं — जैसे झेन पंडित की पकड़ के बाहर रह गया, क्योंकि असंगत है। पंडित लाख उपाय करे तो भी उसे झंझट होती है कि इसको बिठाए कैसे, तर्क में कैसे बिठाए!

तो, मैं जो तुमसे कह रहा हूँ वो झेन है। वो विरोधाभास है, 'पैराडॉक्स' है —

ताकि पंडित से बच सके। सिर्फ 'पैराडॉक्स' पंडित से बच सकता है, और कोई नहीं बच सकता। बुद्ध नहीं बच सके, उपनिषद् नहीं बच सके।

इसलिए मैं बुद्ध के शून्य की चर्चा कर रहा हूँ और प्रेम की भी साथ ही साथ। तुम्हें अड़चन होती होगी कि बुद्ध में कैसे प्रेम आ रहा है; मीरा में आना चाहिए था! घबड़ाओ मत, जब मीरा की चर्चा करूँगा, शून्य को ले ही आऊँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ, विरोधाभास ही केवल पंडित के जाल और पंडित की पकड़ से बच सकता है, और कोई उपाय नहीं है।

इसी भाँति का एक और प्रश्न है :

बुद्ध ने चार आर्य-सत्य कहे हैं — दुख है; दुख के कारण हैं; दुख-निरोध है; दुख-निरोध की अवस्था है। आपको सुन कर लगता है कि आप भी चार आर्य-सत्य कहते हैं — आनंद है जीवन, आनंद का उत्सव है जीवन; उत्सव को साधने के उपाय हैं; उत्सव की संभावना है; उत्सव की परम दशा है। दो बुद्धपुरुषों के आर्य-सत्यों में इतना विरोधाभास क्यों?

एक ही बात है। बुद्ध का ढंग नकार है। वो कहते हैं : दुख है, दुख को मिटा दो। जो बचेगा, उसकी वो बात नहीं करते। मैं तुमसे उसकी बात कर रहा हूँ जो बचेगा। उसकी भी बात कर रहा हूँ जो बचेगा।

दुख है — बिलकुल ठीक है। दुख को मिटा दो तो जो बचेगा वो आनंद है। दुख के कारण हैं — उनको हटा दो, उन कारणों को गिरा दो तो, सुख की बुनियाद पड़ जाएगी, आनंद की बुनियाद पड़ जाएगी।

दुख को मिटाने के साधन हैं, आनंद को पाने के साधन हैं — वो एक ही हैं। जो दुख को मिटाने के साधन हैं, वही आनंद को पाने के साधन हैं। जो बीमारी को मिटाने की औषधि है, वही स्वास्थ्य को पाने का उपाय है। जो अँधेरे को हटाने का ढंग है, वही प्रकाश को पाने की व्यवस्था है।

बुद्ध कहते हैं : दुख-निरोध की अवस्था है, निर्वाण है। पर दुख-निरोध का उपयोग करते हैं। ब्रह्मोपलब्धि, पूर्ण का आगमन — उसका वे उपयोग नहीं करते। उनकी मजबूरी थी। पंडितों ने खराब कर दिया था। उन्हें बहुत सावधान होके चलना पड़ा। एक-एक शब्द सोचके उपयोग करना पड़ा। मैं जानता हूँ उनकी अड़चन कितनी रही होगी। क्योंकि आनंद से भरे हुए व्यक्ति को, दुख है, दुख के कारण हैं, दुख दूर करने के उपाय है, दुख-निरोध की अवस्था है — कैसा मुश्किल पड़ा होगा! आनंद से लबालब, आनंद की बाढ़ आयी हो — उसको दुख ही दुख की चर्चा करनी पड़ी!

उपनिषद् दुख की चर्चा ही नहीं करते। वो कहते हैं: ब्रह्म है। दुख की कोई बात ही नहीं करते। बुद्ध को दुख ही दुख की बात करनी पड़ी। सुनके कई को तो लगा कि बुद्ध दुखवादी हैं। पश्चिम में यही भ्रांति फैल गयी कि बुद्ध निराशावादी हैं: दुख ही दुख की बात करते हैं। रुग्ण हैं थोड़े। बुद्ध से ज्यादा स्वस्थ आदमी कहाँ हुआ! लेकिन बुद्ध की मजबूरी थी। उनको निषेध का उपयोग करना पड़ा, क्योंकि जैसे ही वो विधेय का उपयोग करते, पंडित सिर हिलाने लगते, वो कहते, बिलकुल ठीक! जैसेकि वो जानते हैं।

बुद्ध ने जब दुख की बात की और दुख ही दुख की बात की, तो पंडित चौंका। उसने कहा, ये आदमी जान नहीं सकता। ये पंडित से बचने की व्यवस्था थी। ये — पंडित को पास नहीं आने दिया बुद्ध ने।

पंडित बीमारी है। वो मंदिर में आ जाए, मंदिर नष्ट हो जाता है। और वो पूरी कोशिश करता है आने की, जब तक कि द्वार पर ही विरोधाभास न मिल जाए।

मैं दोनों की बात कर रहा हूँ, क्योंकि मुझे लगता है कि ये एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। ये दो बातें है ही नहीं। तुम्हें दो बातें दिखायी पड़ती हैं, क्योंकि तुम दुख में खड़े हो। तुम्हें ये दिखायी ही नहीं पड़ता कि दुख से आनंद कैसे जुड़ सकता है। तुम अँधेरे में खड़े हो। तुम्हें ये दिखायी ही नही पड़ सकता कि अँधेरा केवल प्रकाश का अभाव है। अँधेरे से तुम प्रकाश को जोड़ ही नहीं पाते। कैसे जोड़ोगे? प्रकाश कभी तुमने देखा नही। लेकिन मैंने प्रकाश देखा है; और मैं तुमसे कहता हूँ कि अँधेरे का न हो जाना प्रकाश है; या, प्रकाश का हो जाना अँधेरे का न हो जाना है। ये दो चीजें नहीं हैं, विरोधाभास नहीं है।

अगर साध्य की पूछते हो तो आनंद, अगर साधन की पूछते हो तो दुख। अगर मंजिल की पूछते हो तो और बात होगी। अगर मार्ग की पूछते हो तो और बात होगी। और दोनों जरूरी हैं। मंजिल से भी ज्यादा जरूरी मार्ग की बात है। अगर कोई मुझसे कहे कि उपनिषद् और बुद्ध में चुनना है तो मैं किसको चुनूँगा — तुम्हारे लिए अगर चुनना हो तो बुद्ध को चुनूँगा, मेरे लिए अगर चुनना हो तो उपनिषद् को चुनूँगा। क्योंकि मैं जो कहना चाहता हूँ वो उपनिषद् ने कहा है। तुम्हें जहाँ पहुँचना है वो बुद्ध के मार्ग से ही चलके वहाँ पहुँच सकोगे।

अगर मंजिल पे पहुँचेवाले लोगों को चुनाव करना हो तो वो उपनिषद् को चुनेंगे, क्योंकि उपनिषद् में जो अभिव्यक्ति है वो मंजिल की है। मार्ग पर चलनेवालों को अगर चुनना हो तो बुद्ध ही सहारा हैं; क्योंकि अभी मार्ग की कठिनाइयाँ हैं। अभी स्वास्थ्य के गीत तुमसे गाये भी क्या जाएँगे! तुम बीमार हो! अभी प्रकाश के लिए

तुम कैसे नाचोगे ? अभी अँधेरे के सिवाय तुमने कुछ भी नहीं जाना। इसलिए बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा।

किसीने पूछा है कि बुद्ध के समय में और भी बड़े चिंतक थे, खुद जैन तीर्थंकर महावीर थे, प्रबुद्ध कात्यायन था, संजय बिल्लठीपुत्र था, मक्खली गोशाल था, अजित केशकंबल था — बड़े विचारक थे, बड़े उपलब्ध लोग थे — इनका प्रभाव क्यों नही पड़ा ?

बुद्ध का जैसा प्रभाव पड़ा किसीका भी न पड़ा। क्या मामला था ? उन सबने उपनिषद् की भाषा बोली। महावीर पूर्ण की बात करते रहे। पूर्ण की बात पिटी-पिटायी हो चुकी थी। पंडित उसे इतना दोहरा चुका था कि उसमें कुछ भी नया न था। उसका कोई प्रभाव न पड़ा।

बुद्ध ने नकार की बात की। पूरा पूरब बुद्ध से छा गया। बुद्ध पूरब के सूर्य हो गये। कुल कारण इतना था कि बुद्ध ने कहने का एक नया ढंग खोजा। और बुद्ध ने जो कहा वो मार्ग पे चलनेवाले के लिए उपयुक्त था। मंजिल पे पहुँच के तो तुम भी नाच लोगे, उपनिषद् के रहस्य अपने आप खुल जाएँगे, लेकिन मंजिल पे पहुँचोगे कैसे ?

बुद्ध ने केवल मार्ग की बात की। इसलिए वो कहते हैं : दुख है — इसे अनुभव करो। दुख के कारण हैं — इसे खोजो। दुख के कारण को मिटाने के उपाय हैं — मैं तुम्हें बताता हूँ और भरोसा रखो कि दुख के पार एक अवस्था है, क्योंकि मैं वहाँ पहुँच गया हूँ — दुख-निरोध है।

पूरा नकार है। बुद्ध ने अपने को चिकित्सक कहा है कि मैं एक चिकित्सक हूँ, एक वैद्य हूँ। मैं कोई विचारक नहीं हूँ। मैं केवल बीमारी का निदान करता हूँ, औषधि बताता हूँ। स्वास्थ्य के क्या गीत गाएँ तुमसे; तुम जब स्वस्थ हो जाओगे, खुद ही गा लेना।

लेकिन मैं दोनों बातें कर रहा हूँ; क्योंकि बुद्ध का नकार भी अब उतना ही धूल से भर गया जितना कभी उपनिषद् का विधेय था। बौद्ध पंडितों ने उसे भी खराब कर दिया। अब फिर से जरूरत है कि हम उस धूल को झाड़ें।

अगर मैं सिर्फ विधेय की बात करूँ तो लोग समझेंगे, मैं हिंदू हूँ। मैं हिंदू नहीं हूँ। अगर मैं सिर्फ नकार की बात करूँ तो लोग समझेंगे, मैं बौद्ध हूँ। मैं बौद्ध नहीं हूँ। मैं सिर्फ मैं ही हूँ। इसलिए मैं दोनों की बात कर रहा हूँ, ताकि तुम मुझे किसी कोटि में न रख पाओ।

और पंडित की सबसे बड़ी तकलीफ यही है, तर्क की सबसे बड़ी अड़चन यही है

कि जब तक कोटि न बने, तब तक उसकी पकड़ में कोई बात नहीं आती। जैसे ही कोटि बनी कि तर्क हिसाब-किताब जमा लेता है; फिर वो समझ लेता है कि बात क्या है। फिर कोई अड़चन नहीं रह जाती। उसके पास सब जमे हुए लेबिल लगे हैं, वो लेबिल लगा देता है। बस लेबिल लगाने की सुविधा मिली बुद्धि को कि बात गयी, खत्म हुई, समाप्त हुई, उसके प्राण निकल गये, वो नपुंसक हो गयी। जितनी देर तक हम बचा सकें लेबिल लगने से अपने को उतनी देर तक ही हम जीवित होते हैं, उतनी देर तक ही विचार में आग होती है, फिर राख हो जाती है।

आखिरी प्रश्न : आपका बोलना खुद किसी शेर-ओ-शायरी से कम नहीं, फिर उसमें ये और शेर-ओ-शायरी! ये मीठा मोड़ क्योंकर आया ?

कोई रहस्य नहीं है। बड़ी गैर-रहस्य की बात है। लेकिन पूछ लिया है इसलिए कह देना चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन बाहर जा रहा था। मैंने उससे कहा : बड़े मियाँ, तुम बाहर चले, मेरा क्या होगा ? तुम रहते हो, तुम रोज-रोज समझदारियाँ करते हो, नासमझों को समझाने में मैं उनका उपयोग कर लेता हूँ। तुम छुट्टी पे जा रहे हो! महावीर न हों, मूसा न हों, मुहम्मद न हों, मनु न हों — मेरा काम चल जाएगा। मुल्ला के बिना मेरा काम नहीं चलता।

मुल्ला ने कहा, घबड़ाएँ मत। ये मैंने बहुत-सी कविताएँ लिख रखी हैं — एक पोथी; ये छोड़ जाता हूँ, जब तक न आऊँ इनसे काम चला लेना।

तो जब तक मुल्ला नहीं आया तब तक ...।

आज इतना ही।

तथाता में है क्रांति

१ दिसंबर १९७५

फन्दनं चपलं चित्तं दूरक्खं दुन्निवारयं ।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो' व तेजनं ।। ३९ ।।
वारिजो' व थले खित्तो ओकमोकत-उब्भतो ।
परिफन्दतिदं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ।। ४० ।।
दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकाम निपातिनो ।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ।। ४१ ।।
दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं ।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ।। ४२ ।।
अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ।। ४३ ।।

जीवन दो भाँति जिया जा सकता है। एक मालिक की तरह। एक गुलाम की तरह। और गुलाम की तरह जो जीवन है, वह नाममात्र को ही जीवन है। उसे जीवन कहना भी गलत है। बस दिखायी पड़ता है जीवन जैसा, आभास होता है जीवन जैसा। जैसे एक सपना देखा हो। आशा में ही होता है गुलाम का जीवन। मिलेगा, मिलता कभी नहीं। आ रहा है, आता कभी नहीं। गुलाम का जीवन बस आता है, आता कभी नहीं।

गुलाम के जीवन का शास्त्र समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जो उसे न समझ पाया, वो मालिक के जीवन को निर्मित न कर पाएगा। दोनों के शास्त्र अलग हैं। दोनों की व्यवस्थाएँ अलग हैं। गुलाम के जीवन के शास्त्र का नाम ही संसार है। मालिक और मालिकियत के जीवन का नाम ही धर्म है। एस धम्मो सनंतनो। यही सनातन धर्म का सूत्र है।

मालिक से अर्थ है, ऐसे जीना जैसे जीवन अभी और यहीं है। कल पर छोड़कर नहीं, आशा में नहीं, यथार्थ में। मालिक के जीवन का अर्थ है, मन गुलाम हो, चेतना

मालिक हो। होश मालिक हो, वृत्तियां मालिक न हों। विचारों का उपयोग किया जाए, विचार तुम्हारा उपयोग न कर ले। विचारों को तुम काम में लगा सको, विचार तुम्हें काम में न लगा दें। लगाम हाथ में हो जीवन की। और जहाँ तुम जीवन को ले जाना चाहो, वहीं जीवन जाए। तुम्हें मन के पीछे घसिटना न पड़े।

गुलाम का जीवन बेहोश जीवन है। जैसे सारथी नशे में हो, लगाम ढीली पड़ी हो, घोड़ों की जहां मर्जी हो रथ को ले जाएँ। ऊबड़-खाबड़ में गिराएँ, कष्ट में डालें, मार्ग से भटकाएँ, लेकिन सारथी बेहोश हो।

गीता में कृष्ण सारथी हैं। अर्थ है कि जब चैतन्य हो जाए सारथी, तुम्हारे भीतर जो श्रेष्ठतम है जब उसके हाथ में लगाम आ जाए। बहुत बार अजीब सा लगता है कृष्ण को सारथी देखकर। अर्जुन ना-कुछ है अभी, वो रथ में बैठा है। कृष्ण सब कुछ हैं, वे सारथी बने हैं। पर प्रतीक बड़ा मधुर है। प्रतीक यही है कि तुम्हारे भीतर जो ना-कुछ है वो सारथी न रह जाए; तुम्हारे भीतर जो सब-कुछ है वही सारथी बन जाए।

तुम्हारी हालत उल्टी है। तुम्हारी गीता उल्टी है। अर्जुन सारथी बना बैठा है। कृष्ण रथ में बैठे हैं। ऐसे ऊपर से लगता है —— मालिकियत, क्योंकि कृष्ण रथ में बैठे हैं और अर्जुन सारथी है। ऊपर से लगता है, तुम मालिक हो। ऊपर से लगता है, तुम्हारी गीता ही सही है। लेकिन फिर से सोचना, व्यास की गीता ही सही है। अर्जुन रथ में होना चाहिए। कृष्ण सारथी होने चाहिए। मन रथ में बिठा दो, हर्जा नहीं है। लेकिन अर्जुन सारथी बने, तो एक मालिकियत पैदा होती है। इसलिए हमने इस देश में संन्यासी को स्वामी कहा है। स्वामी का अर्थ है, जिसने अपनी गीता को ठीक कर लिया। अर्जुन रथ में बैठ गया, कृष्ण सारथी हो गये, वही संन्यासी है। वही स्वामी है।

और स्वामी होना ही एकमात्र जीवन है। तब तुम जीते ही नहीं, तुम जीवन हो जाते हो। तुम महाजीवन हो जाते हो। सब बदल जाता है। कल तक जहाँ काँटे थे, वहाँ फूल खिल जाते हैं। और कल तक जो भटकाता था, वही तुम्हारा अनुचर हो जाता है। कल तक जो इंद्रियाँ केवल दुख में ले गयी थीं, वे तुम्हें महासुख में पहुँचाने लगती हैं। क्योंकि जिन इंद्रियों से तुमने संसार को पहचाना है, वे ही इंद्रियाँ तुम्हें परमात्मा के दर्शन दिलाने लगेंगी। उनको ही झलक मिलेगी।

यही आँखें —— ध्यान रखना, फिर से दोहराता हूँ —— यही आँखें उसे देखने लगेंगी। और इन्हीं आँखों ने पर्दा किया था। इन्हीं आँखों के कारण वो दिखायी न पड़ता था। इन आँखों को फोड़ मत लेना, जैसाकि बहुत से नासमझ तुम्हें समझाते रहे हैं। ये आँखें बड़े काम में आने को हैं, सिर्फ भीतर का इंतजाम बदलना है। जो मालिक है

असली में, उसे मालिक घोषित करना है। बस उतनी घोषणा काफी है। जो गुलाम है उसे गुलाम घोषित करना है, तुम्हारे भीतर गुलाम मालिक बनकर बैठ गया है, और मालिक को अपनी मालिकियत भूल गयी है। इसलिए आँखों से पदार्थ दिखायी पड़ता है, परमात्मा नहीं। कानों से शब्द सुनायी पड़ता है, निःशब्द नहीं। हाथों से केवल वही छुआ जा सकता है जो रूप है, आकार है, निराकार का स्पर्श नहीं होता। मैं तुमसे कहता हूँ जैसे ही तुम्हारे भीतर का इंतजाम बदलेगा, मालिक अपनी जगह लेगा, गुलाम अपनी जगह लेगा, चीजें व्यवस्थित होंगी, तुम्हारा शास्त्र शीर्षासन न करेगा, ठीक जैसा होना चाहिए वैसा हो जाएगा, तत्क्षण तुम पाओगे इन्हीं आँखों से निराकार की झलक मिलने लगी, पदार्थ से परमात्मा झाँकने लगा।

पदार्थ सिर्फ घूँघट है। वही प्रेमी वहाँ छिपा है। और इन्हीं कानों से तुम्हें शून्य का स्वर सुनायी पड़ने लगेगा। यही कान ओंकार के नाद को भी ग्रहण कर लेते हैं। कान की भूल नहीं है। आँख की भूल नहीं है। इंद्रियों ने नहीं भटकाया है, सारथी बेहोश है। घोड़ों ने नहीं भटकाया है। घोड़े भी क्या भटकाएँगे? और घोड़ों को जिम्मेवारी सौंपते तुम्हें शर्म भी नहीं आती। और तुम्हारे साधु-सन्यासी तुमसे कहे जाते हैं, घोड़ों ने भटकाया है। घोड़े क्या भटकाएँगे? और जिसको घोड़े भटका देते हों, वो पहुँच न पाएगा। जो घोड़ों को भी न सम्हाल सका, वो क्या सम्हालेगा? वो पहुँचने योग्य ही न था। उसकी कोई पात्रता ही न थी, जिसको घोड़ों ने भटका दिया।

नहीं, भटके तुम हो। लगाम तुम्हारी ढीली है। घोड़े तो बस घोड़े हैं। उनके पास कोई होश तो नहीं। जब तुम बेहोश हो, तो घोड़ों से होश की अपेक्षा रखते हो? जब तुम्हारा चैतन्य सोया हुआ है, तो इंद्रियों से तुम चैतन्य की अपेक्षा रखते हो? इंद्रियाँ तो तुम जैसे हो वैसी ही हो जाती हैं। इंद्रियाँ अनुचर हैं। जीवन का इंतजाम बदलना ही साधना है। और यही इंतजाम का आधार है कि मन मालिक न रह जाए, ध्यान मालिक बने।

इसी रफ्तारे-आवारा से भटकेगा यहाँ कब तक
अमीरे-कारवाँ बन जा गुबारे-कारवाँ कब तक

कबतक गुजरते हुए कारवाँ की धूल, पीछे उड़ती धूल, कब तक ऐसे भीड़ के पीछे उड़ती धूल का अनुगमन करता रहेगा? कब तक ऐसे चलेगा मन के पीछे, शरीर के पीछे, इंद्रियों के पीछे? कब तक क्षुद्र का अनुसरण होगा? 'अमीरे-कारवाँ बन जा'—अब वक्त आ गया कि मालिक बन जा। इस कारवाँ का पथप्रदर्शक बन जा, सारथी बन जा। बहुत दिन अर्जुन रह लिए, कृष्ण बनने का समय आ गया।

कृष्ण और अर्जुन दो नहीं हैं। एक ही व्यक्ति को जमाने के दो ढंग हैं। एक ही

चेतना के दो ढंग हैं, दो रूप हैं। रथ तो वही रहेगा, कुछ भी न बदलेगा, कृष्ण को भीतर बिठा दो, अर्जुन को सारथी बना दो, सब डगमगा जाएगा। कुछ तुमने जोड़ा नहीं, कुछ घटाया नहीं। बुद्ध ने कुछ जोड़ा थोड़े ही है। उतना ही है बुद्ध के पास जितना तुम्हारे पास है। रत्तीभर ज्यादा नहीं। कुछ घटाया थोड़े ही है। रत्तीभर कम नहीं। न कुछ छोड़ा है, न कुछ जोड़ा है, व्यवस्था बदली है। वीणा के तार अलग पड़े थे, वीणा पे कस दिये हैं। ये वीणा के तार ढीले थे, उन्हें कस दिया है। जो जहाँ होना चाहिए था, वहाँ रख दिया है। जो जहाँ नहीं होना चाहिए था, वहाँ से बदल दिया है। सब वही है बुद्ध में जो तुममें है। अंतर क्या है? संयोजन अलग है। और संयोजन के बदलते ही सब बदल जाता है। सब। तुम भरोसा भी नहीं कर सकते कि तुम्हारा ही संयोजन बदल के बुद्धत्व पैदा हो जाता है; कि तुम्हीं अर्जुन, तुम्हीं कृष्ण। अभी तुम भरोसा भी कैसे करो?

पहले शराब जीस्त थी
अब जीस्त है शराब

इतना ही फर्क है। 'पहले शराब जीस्त थी' — पहले नशा ही जिंदगी थी। 'अब जीस्त है शराब' — अब जिंदगी ही नशा है। पहले नशा जिंदगी थी, पहले शराब जिंदगी थी, अब जिंदगी शराब है।

कोई पिला रहा है पिये जा रहा हूं मैं

बस इतना ही फर्क है। पहले तुम पी रहे थे, कोई पिला न रहा था। और तब शराब जिंदगी मालूम होती थी, बेहोशी जिंदगी मालूम होती थी। अब, अब जिंदगी ही शराब है। अब जीवन का उत्सव है, आनंद है, और अब तुम नहीं पी रहे हो — 'कोई पिला रहा है पिये जा रहा हूँ मैं'।

संयोजन बदला कि अहंकार गया। कृष्ण रथ में बैठ जाएँ, अर्जुन सारथी बन जाए, अहंकार परिणाम होगा। अर्जुन रथ में बैठे, कृष्ण सारथी बनें, निरअहंकार परिणाम होगा। सारा गीता का संदेश इतना सा ही है कि अर्जुन, तू स्वयं को छोड़ दे, निर-अहंकार हो जा। तू मत पी अपने हाथ से — 'कोई पिला रहा है पिये जा रहा हूँ मैं'। परमात्मा जो करता है करने दे, तू निमित्त हो जा। जो निमित्त हो गया, वो मालिक हो गया। क्योंकि जो निमित्त हो गया, वो मालिक के साथ एक हो गया।

बुद्ध के ये सूत्र बहुत गलत तरह से समझे गये हैं, इसे पहले कह दूँ। क्योंकि जितने महासूत्र हैं आदमी उनको गलत ही समझ सकता है। आदमी के भीतर प्रविष्ट होते ही किरणें भी अंधकार हो जाती हैं। आदमी के भीतर प्रविष्ट होते ही सुगंध दुर्गंध हो जाती है। आदमी के भीतर समझ के हीरे भी नासमझी के कंकड़-पत्थर होके रह जाते हैं। बुद्ध ने ये सूत्र दिये हैं बड़े बहुमूल्य, लेकिन बुद्ध के पीछे चलनेवालों ने

गलत ढंग से पकड़ा है। जैसाकि सभी के पीछे चलनेवालों ने गलत ढंग से पकड़ा है। कुछ बात ऐसी बारीक है, और कुछ बात ऐसी भिन्न है आदमी से कि आदमी के हाथ में पड़ते ही भूल हो जाती है।

'चित्त क्षणिक है, चंचल है। इसे रोक रखना कठिन है। इसका निवारण कठिन है। ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार ऋजु, सरल, सीधा बनाता है, जिस प्रकार वाणकार वाण को।'

इन सूत्रों से लोगों ने समझा कि चित्त को दबाना है, कि चित्त को मिटाना है, कि चित्त से लड़ना है। बुद्ध केवल चित्त का स्वभाव समझा रहे हैं। बुद्ध कह रहे हैं, चित्त क्षणिक है, चंचल है। लड़ने की कोई बात नहीं कर रहे हैं। इतना ही कह रहे हैं कि चित्त का स्वभाव ऐसा है। तथ्य की घोषणा कर रहे हैं। लेकिन तुम्हारे मन में जैसे ही कभी कोई तुमसे कहता है चित्त क्षणिक है, जीवन क्षणभंगुर है, तुम तत्क्षण — क्षणभंगुरता को तो नहीं समझते — शाश्वत की खोज में लग जाते हो। वहीं भूल हो जाती है। और तुम्हारे महात्मागण जब भी तुमसे कहते हैं जीवन क्षणभंगुर, चित्त क्षणिक, तुम तत्क्षण सोचने लगते हो कैसे उसे पाएँ जो अक्षणिक है, जो शाश्वत है, सनातन है। बस वहीं भूल हो जाती है! शाश्वत को पाना नहीं है, क्षणिक को समझ लेना है।

जपान में एक बहुत बड़ा झेन कवि हुआ बासो। उसकी एक छोटी सी कविता है, एक हाइकू है। जिसका अर्थ बड़ा अद्भुत है। हाइकू है कि जिन्होंने जाना, वो वे ही लोग हैं जिन्होंने इंद्रधनुष को देखकर तत्क्षण न कहा कि जीवन क्षणभंगुर है, जिन्होंने पानी के बबूले को टूटते देखकर तत्क्षण न कहा जीवन क्षणभंगुर है। जिन्होंने ओस की बूँद को बिखरते या वाष्पीभूत होते देखकर तत्क्षण न कहा कि हम उदास हो गये, जीवन क्षणभंगुर है, उन्होंने ही जाना। ये बड़ी अजीब बात है। बुद्ध के बड़े विपरीत लगती है। बासो बुद्ध का भक्त है। पर बासो समझा।

जैसे ही तुमसे कोई कहता है जीवन क्षणभंगुर है, और तुम छोड़ने को राजी हो जाते हो। तुम जीवन को छोड़ने को राजी नहीं होते, तुम क्षणभंगुरता को छोड़ने को राजी होते हो। तुम्हारी वासना नहीं मिटती, तुम्हारी वासना और बढ़ गयी। तुम सनातन चाहते हो, शाश्वत चाहते हो। तुम कंकड़-पत्थर रखे थे, किसीने कहा ये कंकड़-पत्थर हैं — तुम अब तक हीरे समझे थे इसलिए पकड़े थे — किसीने कहा कंकड़-पत्थर हैं, तुम छोड़ने को राजी हो गये, क्योंकि अब असली हीरों की तलाश करनी है। हीरों का मोह नहीं गया। पहले इन्हें हीरा समझा था तो इन्हें पकड़ा था। अब कोई और हीरे हैं तो उन्हें पकड़ोगे। लेकिन तुम वही के वही हो।

बुद्ध जब कहते हैं मन क्षणिक है, चंचल है, जीवन क्षणभंगुर है, तो वो सिर्फ तथ्य

की घोषणा करते हैं। वो सिर्फ इतना ही कहते हैं, ऐसा है। इससे तुम वासना मत निकाल लेना, इससे तुम साधना मत निकाल लेना, इससे तुम अभिलाषा मत जगा लेना, इससे तुम आशा को पैदा मत कर लेना, इससे तुम भविष्य के सपने मत देखने लगना। और मजा ये है कि जो तथ्य को देख लेता है, वो शाश्वत को उपलब्ध हो जाता है। जैसे ही तुम्हें ये दिखायी पड़ गया कि मन क्षणिक है, कुछ करना थोड़े ही पड़ना है शाश्वत को पाने के लिए। मन क्षणिक है, ऐसे बोध में मन शांत हो जाता है।

इसे जरा थोड़ा गौर से समझना।

ऐसे बोध में कि मन क्षणिक है, पानी का बबूला है, अभी है अभी न रहा, भोर की तरैया है, डूबी-डूबी — अब डूबी, तब डूबी, कुछ करना थोड़े ही पड़ता है। ऐसे बोध में तुम जाग जाते हो, 'गेस्टॉल्ट' बदल जाता है। जीवन की पूरी देखने की व्यवस्था बदल जाती है। क्षणभंगुर के साथ जो तुमने आशा के सेतु बाँध रखे थे, वे टूट जाते हैं। शाश्वत को खोजना नहीं है, क्षणभंगुर से जागना है। जागते ही जो शेष रह जाता है, वही शाश्वत है। शाश्वत को कोई कभी पाने थोड़ी' जाता है। क्योंकि शाश्वत का तो अर्थ ही है कि जिसे कभी खोया नहीं। जो खो जाए वो क्या खाक शाश्वत है! हाँ, क्षणभंगुर में उलझ गये हैं, बस उलझाव चला जाए, शाश्वत मिला ही है।

लेकिन तुम क्या करते हो?

तुम क्षणभंगुर के उलझाव को शाश्वत का उलझाव बना लेते हो। तुम संसार की तरफ दौड़ते थे, किसीने चेताया; चेते तो तुम नहीं, क्योंकि चेतानेवाला कह रहा था: दौड़ो मत -- तुम संसार की तरफ दौड़ते थे, बुद्ध राह पर मिल गये, उन्होंने कहा कहाँ दौड़े जा रहे हो, वहाँ कुछ भी नहीं है — वो इतना ही चाहते थे कि तुम रुक जाओ, दौड़ो मत। तुमने उनकी बात सुन ली, लेकिन तुम्हारी वासना ने उनकी बात का अर्थ बदल लिया। तुमने कहा ठीक है। यहाँ अगर कुछ भी नहीं है, तो हम मोक्ष की तरफ दौड़ेंगे। लेकिन दौड़ेंगे हम जरूर।

दौड़ संसार है। रुक जाते तो मोक्ष मिल जाता। संसार की तरफ न दौड़े, मोक्ष की तरफ दौड़ने लगे। क्षणभंगुर को न पकड़ा तो शाश्वत को पकड़ने लगे। धन न खोजा तो धर्म को खोजने लगे। लेकिन खोज जारी रही। खोज के साथ तुम जारी रहे, खोज के साथ अहंकार जारी रहा; खोज के साथ तुम्हारी तंद्रा जारी रही, तुम्हारी नींद जारी रही। दिशाएँ बदल गयीं, पागलपन न बदला। पागल पूरब दौड़े कि पश्चिम, कोई फर्क पड़ता है? पागल दक्षिण दौड़े कि उत्तर, कोई फर्क पड़ता है? दौड़ है पागलपन।

ये तथ्य हैं। और इसलिए झेन में — जो बुद्ध-धर्म का सारभूत है — ऐसे उल्लेख हैं हजारों कि बुद्ध के वचन को पढ़ते-पढ़ते, सुनते-सुनते अनेक लोग समाधि को उपलब्ध हो गये हैं। दूसरे धर्मों के लोग ये बात समझ नहीं पाते हैं, कि ये कैसे होगा? सिर्फ सुनते-सुनते ?

बुद्ध का सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है -- भारत से संस्कृत के रूप खो गये हैं, चीनी और तिब्बती से उसका फिर से पुनर्आविष्कार हुआ — 'दि डायमंड सूत्रा'। बुद्ध उस सूत्र में सैकड़ों बार ये कहते हैं, कि जिसने इस सूत्र की चार पंक्तियाँ भी समझ ली, वो मुक्त हो गया। सैकड़ों बार — एक-दो बार नहीं — करीब-करीब हर पृष्ठ पर कहते हैं। कभी-कभी हैरानी भी होती है कि वो इतना क्यों इसपे जोर दे रहे हैं। बहुत बार उन्होंने उस सूत्र में कहा है, जिससे वो बोल रहे हैं, जिस भिक्षु से वो बात कर रहे हैं उससे वो कहते हैं, सुन, गंगा के किनारे जितने रेत के कण हैं, अगर प्रत्येक रेत का कण एक-एक गंगा हो जाए — तो उन सारी गंगाओं के किनारे कितने रेत के कण होंगे ? भिक्षु कहता है अनंत-अनंत होंगे, हिसाब लगाना मुश्किल है। बुद्ध कहते हैं, अगर कोई व्यक्ति उतना अनंत-अनंत पुण्य करे तो कितना पुण्य होगा ? वो भिक्षु कहता है बहुत-बहुत पुण्य होगा, उसका हिसाब तो बहुत मुश्किल है; बुद्ध कहते हैं, लेकिन जो इस शास्त्र की चार पंक्तियाँ भी समझ ले, उसके पुण्य के मुकाबले कुछ भी नहीं !

जो भी पढ़ेगा वो थोड़ा हैरान होगा कि चार पंक्तियाँ ? पूरा शास्त्र आधा घंटे में पढ़ लो, इससे बड़ा नहीं है। चार पंक्तियाँ जो पढ़ ले ? बुद्ध क्या कह रहे हैं ? बुद्ध ने एक नवीन दर्शन दिया है, वो है तथ्य को देख लेने का। बुद्ध ये कह रहे हैं, जो चार पंक्तियाँ भी पढ़ ले, जो मैं कह रहा हूँ उसके तथ्य को चार पंक्तियों में भी देख ले, फिर कुछ करने को शेष नहीं रह जाता; बात हो गयी। सत्य को सत्य की तरह देख लिया, असत्य को असत्य की तरह देख लिया, बात हो गयी। फिर पूछते हो तुम कि क्या करें, तो मतलब हुआ, समझे नहीं। समझ लिया तो करने को कुछ बचता नहीं है। क्योंकि करना ही नासमझी है।

वही अर्जुन पूछे चला जाता है कृष्ण से कि अगर मैं ऐसा करूँ तो क्या होगा ? और कृष्ण कहते हैं, तू करने की बात ही छोड़ दे, तू करने की बात उसपे छोड़ दे। तू कर ही मत, तेरे करने से सभी गड़बड़ होगा। तू उसे करने दे।

> पहले शराब जीस्त थी अब जीस्त है शराब
> कोई पिला रहा है पिये जा रहा हूँ मैं

बुद्ध कहते हैं जान लिया, समझ लिया, हो गया। करने की बात ही नासमझी से उठती है। क्योंकि तुम बोध हो, चैतन्य हो। चित्त क्षणिक है, चंचल है, यह कोई

सिद्धांत नहीं, यह केवल सत्य की उद्घोषणा है। इसे सुनो, कुछ करना नहीं है। इसे पहचानो, कुछ साधना नहीं है।

'चित्त क्षणिक है, चंचल है। इसे रोक रखना कठिन है। इसका निवारण कठिन है। ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार ऋजु, सरल, सीधा बनाता है जिस प्रकार वाणकार वाण को।'

अगर वाण तिरछा हो, आड़ा हो, तो निशाने पर नहीं पहुँचता। सीधा चाहिए, ऋजु चाहिए, सरल चाहिए, फिर पहुँच जाता है। तुम्हारा मन तिरछा है या सीधा, तुम्हारा मन जटिल है या सरल, तुम्हारा मन तुम्हारा मन है। तुम वाणकार हो, तुम्हारा मन तुम्हारे हाथ का वाण है। लेकिन तुमने कभी ख्याल किया कि तुम उसे जटिल किये चले जाते हो, तुम उसे उलझाए चले जाते हो। सीधे-सरल का क्या अर्थ है? सीधे-सरल का अर्थ है, जैसा मन हो उसे वैसा ही देख लेना। तत्क्षण मन सरल हो जाता है। यही है मन का दर्शन। कहो ध्यान, कहो अप्रमाद; या कोई और नाम दो। मन को, उसको जैसा है वैसा ही देख लेने से तत्क्षण सरल हो जाता है।

समझो कि तुम चोर हो, या झूठ बोलनेवाले हो ... अब एक झूठ बोलनेवाला आदमी है, वो मेरे पास आता है, वो कहता है कि मुझे सत्य बोलने की कला सिखा दें। ऐसे ही उलझा है—झूठ से उलझा है, अब एक और सत्य की झंझट भी लेना चाहता है। अब झूठ बोलनेवाले आदमी को सच बोलने की कला कैसे सिखायी जाए? क्योंकि उस कला को सीखने में भी वो झूठ बोलेगा। एक क्रोधी आदमी है, वो कहता है, मुझे अक्रोध सीखना है। अब क्रोधी आदमी को अक्रोध सीखना है। अब क्रोधी आदमी को अक्रोध कैसे सिखाया जाए? अगर उससे कहो घर में शांत होके बैठ जाना, तो वो बैठेगा कैसे? क्रोध ही उबलेगा। और अक्सर ऐसे क्रोधी अगर पूजा-पाठ, प्रार्थना करने लगते हैं, तो घर भर को मुसीबत आ जाती है। इससे तो बेहतर था कि वो नहीं करते थे। क्योंकि बच्चा अगर जरा शोरगुल कर दे तो उनका क्रोध उबल पड़ता है, कि ध्यान में बाधा पड़ गयी। या अगर पत्नी के हाथ से बर्तन गिर जाए तो उनका धर्म, ध्यान नष्ट हो गया। क्रोध उनका जाएगा कैसे? वो ध्यान के आधार पर भी क्रोध करेंगे।

हिंसक है कोई, पूछता है अहिंसक होना है। हिंसक चित्त कैसे अहिंसक होगा? वैसे ही जटिल था, अहिंसा और उपद्रव खड़ा कर देगी। तो वो तरकीबें खोज लेगा अहिंसक दिखने की, लेकिन हिंसक ही रहेगा। और पहले कम से कम हिंसा दिखायी पड़ती थी, अहिंसा में अगर ढक गयी तो फिर कभी भी दिखायी न पड़ेगी। काम-वासना से भरा हुआ आदमी, वो कहता है ब्रह्मचर्य साधना है। तुम अपने विपरीत जाने की चेष्टा करोगे, जटिल हो जाओगे।

बुद्ध क्या कहते हैं ? बुद्ध कहते हैं अगर क्रोधी हो, तो क्रोध के तथ्य को जानो, अक्रोधी होने की चेष्टा मत करना। क्रोधी हो, क्रोध को स्वीकार करो। कह दो सारे जगत को कि मैं क्रोधी हूँ। और उसे छिपाए मत फिरो, क्योंकि छिपाने से कहीं रोग मिटा है ! खोल दो उसे, शायद बह जाए। शायद नहीं, बह ही जाता है। अगर हिंसक हो तो स्वीकार कर लो कि मैं हिंसक हूँ। और अपने हिंसक होने की दीनता को अस्वीकार मत करो। कहीं अहिंसक होने की चेष्टा में यही तो नहीं कर रहे हो कि हिंसक होने को कैसे स्वीकार करें, तो अहिंसा से ढाँक लें। घाव है तो फूल ऊपर से चिपका दें, गंदगी है तो इत्र छिड़क दें, कहीं ऐसा तो नहीं है ? ऐसा ही है।

इसलिए तुम पाओगे कि कामुक ब्रह्मचारी हो जाते हैं। और उनके ब्रह्मचर्य से सिवाय कामवासना की दुर्गंध के कुछ भी नहीं उठता। क्रोधी शांत होके बैठने लगते हैं। लेकिन उनकी शांति में तुम पाओगे कि ज्वालामुखी उबल रहा है क्रोध का। संसारी संन्यासी हो जाते हैं और उनके संन्यास में सिवाय संसार के और कुछ भी नहीं है। मगर तुम भी धोखे में आ जाते हो। क्योंकि ऊपर से वे वेश बदल लेते हैं। ऊपर से उल्टा कर लेते हैं। भीतर लोभ है, ऊपर से दान करने लगते हैं।

लेकिन ध्यान रखना, लोभी जब दान करता है तब भी लोभ के लिए ही करता है। होगा लोभ परलोक का कि स्वर्ग में भँजा लेंगे। लिख दी हुंडी। हुंडियाँ निकाल रहा है वो। वो स्वर्ग में भंजाएगा। वो सोच रहा है क्या-क्या स्वर्ग में पाना है इसके बदले में ? और ऐसे लोभियों को धर्म में उत्सुक करने के लिए पंडित और पुरोहित मिल जाते हैं। वो कहते हैं यहाँ एक दोगे, करोड़ गुना पाओगे। थोड़ा हिसाब भी तो रखो। सौदा कर रहे हो ? ये सौदा भी बिलकुल बेईमानी का है। गंगा के किनारे पंडे बैठे हैं, वो कहते हैं, एक पैसा यहाँ दान दो, करोड़ गुना पाओगे। ये कोई सौदा हुआ ? ये तो जुए से भी ज्यादा झूठा मालूम पड़ता है। एक पैसा देने से कैसे करोड़ गुना पाओगे ? करोड़ गुने की आशा दी जा रही है, क्योंकि तुमसे एक पैसा भी छूटेगा नहीं सिवाय इसके। तुम्हारे लोभ को उकसाया जा रहा है। लोभी दान करता है। मंदिर बनवाता है, धर्मशाला बनवाता है। लेकिन ये सब लोभ का ही फैलाव है।

दान तो तभी संभव है जब लोभ मिट जाए। लोभ के रहते दान कैसे संभव है ? ब्रह्मचर्य तो तभी संभव है जब वासना खो जाए। वासना के रहते ब्रह्मचर्य कैसे संभव है ? ध्यान तो तभी संभव है जब मन चला जाए। मन के रहते ध्यान कैसे संभव है ? अगर मन के रहते ध्यान करोगे, तो मन से ही ध्यान करोगे। मन का ध्यान कैसे ध्यान होगा ? मन का अभाव ध्यान है।

इसलिए बुद्ध ने एक...एक अभिनव-शास्त्र जगत को दिया — सिर्फ जागके तथ्यों

को देखने का। बुद्ध ने नहीं सिखाया कि तुम विपरीत करने लगो। बुद्ध ने इतना ही सिखाया कि तुम जो हो उसे सरल कर लो, सीधा कर लो। उसके सीधे होने में ही हल है। तुम क्रोधी हो, क्रोध को जानो; छिपाओ मत। ढाँको मत, मुस्कराओ मत।

जीवन को झूठ से छिपाओ मत, प्रगट करो। और तुम चकित हो जाओगे —— अगर तुम अपने क्रोध को स्वीकार कर लो, अपनी घृणा को, ईर्ष्या को, द्वेष को, जलन को स्वीकार कर लो, तुम सरल होने लगोगे। तुम पाओगे, एक साधुता उतरने लगी। अहंकार अपने आप गिरने लगा। क्योंकि अहंकार तभी तक रह सकता है जब तक तुम धोखा दो। अहंकार धोखे का सार है। या सब धोखों का निचोड़ है। जितने तुमने धोखे दिये उतना ही बड़ा अहंकार है। क्योंकि तुमने बड़ी चालबाजी की, और तुमने दुनिया को बड़े धोखे में डाल दिया, तुम बड़े अकड़े हुए हो। लेकिन तुम उघाड़ दो सब।

जिसको जीसस ने 'कन्फेसन' कहा है: स्वीकार कर लो। और जीसस ने जिसको कहा है कि जिसने स्वीकार कर लिया वो मुक्त हो गया, उसको ही बुद्ध ने कहा है—बुद्ध 'कन्फेसन' शब्द का उपयोग नहीं कर सकते। क्योंकि परमात्मा की कोई जगह नहीं है बुद्ध के विचार में। किसके सामने करना है स्वीकार? अपने ही सामने स्वीकार कर लेना है। तथ्य की स्वीकृति में तथ्य के पार जाना है।

इस बहुमूल्य सूत्र का थोड़ा सा जीवन में उपयोग करोगे, तुम चकित हो जाओगे; तुम्हारे हाथ में कीमिया लग गयी, एक कुंजी लग गयी। तुम जो हो उसे स्वीकार कर लो। चोर हो चोर। झूठे हो झूठे। बेईमान हो बेईमान। क्या करोगे तुम? उस स्वीकृति में तुम पाओगे कि अचानक तुम जो थे वो बदलने लगा। वो नहीं बदलता था, क्योंकि तुम छिपाते थे। जैसे घाव को खोल दो खुली रोशनी में, सूरज की किरणें पड़ें, ताजा हवाएँ छुएँ, घाव भरने लगता है। ऐसे ही ये भीतर के घाव हैं। इन्हें तुम जगत के सामने खोल दो, ये भरने लगते हैं।

इस स्थिति को बुद्ध कहते हैं — मेधावी पुरुष, बुद्धिमान व्यक्ति, जिसके थोड़ी भी अक्ल है। बाकी ये जो उल्टे काम कर रहे हैं — क्रोधी अक्रोधी बनने की, हिंसक अहिंसक बनने की, ये मूढ़ हैं। मेधावी नहीं हैं। ये समय गवाँ रहे हैं। ये कभी कुछ न बन पाएँगे। ये मूल ही चूक गये। ये पहले कदम पर ही भूल हो गयी।

'मेधावी पुरुष उसी प्रकार ऋजु, सरल, सीधा बना लेता है अपने चित्त को, जिस प्रकार वाणकर वाण को।'

जिसकी तुम आकांक्षा करोगे, उससे ही तुम वंचित रहोगे। एस धम्मो सनंतनो। जिसको तुम स्वीकार कर लोगे, उससे ही तुम मुक्त हो जाओगे। जिसको तुम माँगोगे नहीं, वो तुम्हारे पीछे आने लगता है। और जिसको तुम माँगते हो, वो दूर हटता

चला जाता है। तुम्हारी माँग हटाती है दूर।

है हुसूले-आरज़ू का राज़ तर्के-आरज़ू
मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गयी दुनिया मुझे

जीवन में सफलता का राज, आकांक्षा की सफलता का राज यही है, कि आकांक्षा छोड़ दी।

है हुसूले-आरज़ू का राज़ तर्के-आरज़ू
मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गयी दुनिया मुझे

तुमने अगर अक्रोध को पाने की दौड़ छोड़ दी, तुम क्रोध को स्वीकार कर लिए—था, करोगे क्या, छिपाओगे कहाँ ? किससे छिपाना है ? छिपाके ले जाओगे कहाँ; अपने ही भीतर और समा जाएगा, और जड़ें गहरी हो जाएँगी। हिंसक थे, हिंसा स्वीकार कर लो, और तुम अचानक हैरान होओगे : हिंसा गयी और अहिंसा उपलब्ध हो गयी।

जिसको भी तुम पाने की दौड़ करोगे वही न मिलेगा। अहिंसक होना चाहोगे, अहिंसक न हो पाओगे। शांत होना चाहोगे, शांत न हो पाओगे। संन्यासी होना चाहोगे, संन्यासी न हो पाओगे। जो होना है, वो चाह से नहीं होता। चाह से चीजें दूर हटती जाती हैं। चाह बाधा है। तुम जो हो बस उसीके साथ राजी हो जाओ, तुम तथ्य से जरा भी न हटो, तुम भविष्य में जाओ ही मत, तुम वर्तमान को स्वीकार कर लो—'मैंने दुनिया छोड़ दी मिल गयी दुनिया मुझे'।

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम
अब हमें नफरत हुई वह बेकरार आने को है

तुम जिसके पीछे जाओगे, तुम्हारे पीछे जाने से ही तुम उसे अपने पीछे नहीं आने देते। तुम पीछे जाना बंद करो, तुम खड़े हो जाओ। और जो तुमने चाहा था, जो तुमने माँगा था, वो बरस जाएगा। लेकिन वो बरसता तभी है जब तुम्हारे भीतर भिखारी का पात्र नहीं रह जाता। माँगनेवाले का पात्र नहीं रह जाता। जब तुम सम्राट की तरह खड़े होते हो। इसको ही मैं मालिक होना कहता हूँ। तुम जो भी हो, वही होके तुम मालिक हो सकते हो। तुमने कुछ और होना चाहा तो तुम कैसे मालिक हो सकते हो ? तब तो माँग रहेगी और तुम भिखारी रहोगे।

आज, अभी, इसी क्षण तुम मालिक हो सकते हो। माँग छोड़ते ही आदमी मालिक हो जाता है। और थोड़ी' मालिक होने का कोई उपाय है ? तुम अगर मुझसे पूछो कैसे ? फिर तुम चूके। क्योंकि तुमने फिर माँग के लिए रास्ता बनाया। तुमने कहा कि ठीक कहते हैं, मालिक तो मैं भी होना चाहता हूँ। मैं तुमसे कहता हूँ, तुम हो सकते हो इसी क्षण। तुम हो, आँख भर खोलने की बात है।

तुम कहते हो कि होना तो मैं भी चाहता हूँ। जो तथ्य है, तुम उसे चाह बनाते हो। चाह बनाके तुम तथ्य को दूर हटाते हो। फिर तथ्य जितना दूर हटता जाता है, उतनी तुम ज्यादा चाह करते हो। जितनी ज्यादा तुम चाह करते हो, उतना तथ्य और दूर हट जाता है। क्योंकि चाह से तथ्य का कोई संबंध कैसे जुड़ेगा? तथ्य तो है। और चाह कहती है, होना चाहिए। इन दोनों में कहीं मेल नहीं होता।

बुद्ध का शास्त्र है कि तुम तथ्य को देखो। और जो है, उससे रत्तीभर यहाँ-वहाँ हटने की कोशिश मत करना। यही कृष्णमूर्ति का पूरा सार-संचय है, कि तुम जो हो उससे रत्तीभर यहाँ-वहाँ हटने की कोशिश मत करना। हो, वही हो। उससे भिन्न जाने की चेष्टा की कि भटके। उससे विपरीत जाने की चेष्टा की कि फिर तो तुमने अनंत दूरी पे कर दी मंजिल। स्वीकार में, तथाता में क्रांति है।

'जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गयी मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।'

ये उनकी उस दिन की भाषा है। इसको आज की भाषा में रखना पड़ेगा। जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गयी मछली तड़फड़ाती है। जलाशय यानी तथ्य, जो है। जो मछली का जीवन है, उससे निकालके उसे तट पे फेंक दिया। 'और जैसे मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है। मार का फंदा क्या है? आकांक्षा का। मार का फंदा क्या है? आशा का। मार का फंदा क्या है? कुछ होने की आकांक्षा और दौड़।

जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जब चालीस दिन के ध्यान के बाद वे परम स्थिति के करीब पहुँचने लगे, तो शैतान प्रगट हुआ। वो शैतान कोई और नहीं है, तुम्हारा मन है। जो मरते वक्त ऐसे ही भभक के जलता है जैसे बुझते वक्त दिया आखिरी लपट लेता है। मन का अर्थ है, वही जो अबतक तुमसे कहता था कुछ होना है...कुछ होना है। जो तुम्हें दौड़ाए रखता था। ध्यान की आखिरी घड़ी आने लगी जीसस की, मन मौजूद हुआ। जीसस की भाषा में शैतान, बुद्ध की भाषा में मार। जीसस से कहा, तुम्हे जो बनना हो मैं बना दूं। सारे संसार का सम्राट बना दूं। तीनों लोकों का सम्राट बना दूं। तुम बोलो, तुम्हें जो बनना हो मैं बना दूं। जीसस मुस्कुराए और उन्होंने कहा, तू पीछे हट। शैतान, पीछे हट! क्या मतलब है जीसस का? जीसस यह कह रहे हैं, अब तू और चकमे मत दे बनाने के, बनने के। अब तो मैं जो हूँ, पर्याप्त है। तू पीछे हट। तू मुझे राह दे।

बुद्ध जब परम घड़ी को पहुँचने लगे तो वही घटना है। मार मौजूद हुआ। मार यानी मन। और मन ने कहा, अभी मत छोड़ो आशा। क्योंकि उस सीमा — बुद्ध संसार

से तो छः साल पहले मुक्त हो गये थे, छः साल से वो मोक्ष की तलाश में लगे थे, और छः साल में थक गये। क्योंकि तलाश से कभी कुछ मिला ही नहीं है। बुद्ध को नहीं मिला, तुम्हें कैसे मिलेगा? तलाश तो भटकने का उपाय है, पहुँचने का नहीं—उस दिन वो थक गये तलाश से भी, मोक्ष भी व्यर्थ मालूम पड़ा। उन्होंने साँझ, जिस वृक्ष के नीचे थोड़ी देर बाद वो बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, अपना सिर टेक दिया और उन्होंने कहा, अब कुछ पाना नहीं है। मार उपस्थित हुआ, कहा, इतनी जल्दी आशा मत छोड़ो। अभी बहुत कुछ किया जा सकता है। अभी तुमने सब नहीं कर लिया है। अभी बहुत साधन शेष हैं। मैं तुम्हें बताता हूँ। लेकिन बुद्ध ने उसकी एक न सुनी। वो लेटे ही रहे। वो विश्राम में ही रहे। मार उन्हें पुनः न खींच पाया दौड़ में। मार ने सब तरह से चेष्टा की कि अभी मोक्ष को पाने का ये उपाय हो सकता है। सत्य को पाने का ये उपाय हो सकता है। वो उपेक्षा से देखते रहे।

जीसस ने तो इतना भी कहा था शैतान से, हट पीछे, बुद्ध ने उतना भी न कहा। क्योंकि हट पीछे में भी जीसस थोड़े तो हार गये। बुद्ध ने इतना भी न कहा। बौद्ध-शास्त्र कहते हैं, बुद्ध सुनते रहे। उपेक्षा से। इतना भी रस न लिया कि इनकार भी करें। इनकार में भी रस तो होता ही है। स्वीकार भी रस है, इनकार भी रस है। बुद्ध ने जीसस से भी बड़ी प्रौढ़ता का प्रदर्शन किया। उससे भी बड़ी प्रौढ़ता का सबूत दिया। बुद्ध सुनते रहे। मार थोड़ी बहुत देर चेष्टा किया, बड़ा उदास हुआ। ये आदमी कुछ बोलता ही नहीं। ये इतना भी नहीं कहता कि हट यहाँ से, मुझे डुबाने की कोशिश मत कर। अब मुझे और मत भटका। इतना भी बुद्ध कहते तो भी थोड़ा चेष्टा करने की जरूरत थी। लेकिन इतना भी न कहा।

कहते हैं मार उस रात विदा हो गया। इस आदमी से सब संबंध छूट गये। यही घड़ी है समाधि की। जब तुम मन के विपरीत भी नहीं। जब तुम मन से यह भी नहीं कहते, तू जा। तुम मन से यह भी नहीं कहते कि अब बंद भी हो, अब विचार न कर, अब मुझे शांत होने दे, इतना भी नहीं कहते, तभी तुम शांत हो जाते हो; क्योंकि फिर मन तुम्हारे ऊपर कोई कब्जा नहीं रख सकता। इतना भी बल मन का न रहा कि वो तुम्हें अशांत कर सके। इतना भी बल मन का न रहा कि वो तुम्हारे ध्यान में बाधा डाल सके। तुम मन के पार हो गये। उसी रात, सुबह भोर के तारे के साथ, आखिरी तारा डूबता था और बुद्ध परम प्रज्ञा को उपलब्ध हुए।

जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गयी मछली तड़फड़ाती है, ऐसे ही तुम तड़फड़ा रहे हो, चित्त तड़फड़ा रहा है। क्योंकि तथ्य और सत्य के जलाशय के बाहर आशा के तट पर पड़े हो। कुछ होना है, ऐसा भूत सवार है। जो हो उसके अतिरिक्त हो कैसे सकोगे कुछ? जो हो, वही हो सकते हो। उसके

बाहर, उसके पार कुछ भी नहीं है। लेकिन मन पर एक भूत सवार है, कुछ होना है। गरीब हे तो अमीर होना है। बीमार हैं तो स्वस्थ होना है। शरीरधारी हैं तो अशरीरधारी होना है। जमीन पर हैं तो स्वर्ग में होना है। संसार में हैं तो मोक्ष में होना है। कुछ होना है। 'बिकमिंग'। है से संबंध नहीं है, होने से संबंध है।

होना ही मार है। होना ही शैतान है। और होने के तट पर मछली जैसा तुम तड़फड़ाते हो। लेकिन तट छोड़ते नहीं। जितने तड़फड़ाते हो उतना सोचते हो, तड़फड़ाहट इसीलिए है कि अबतक हो नहीं पाया; जब हो जाऊंगा, तड़फड़ाहट मिट जाएगी। और दौड़ में लगते हो। तर्क की भ्रांति तुम्हें और तट की तरफ सरकाए ले जाती है। जबकि पास ही सागर है तथ्य का। उसमे उतरते ही मछली राजी हो जाती। उसमें उतरते ही मछली की सब बेचैनी खो जाती। इतने ही करीब, जैसे तट पर तड़फती मछली है, उससे भी ज्यादा करीब तुम्हारा सागर है।

'जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गयी मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।'

लेकिन हर तड़फड़ाहट इसी फंदे में उलझाए चली जाती है। क्योंकि तड़फड़ाहट में भी ये मार की भाषा का ही उपयोग करता है, समझ का नहीं। वहां भी वासना का ही उपयोग करता है। दुकान पर बैठे लोग दुखी है -- जो पाना था नहीं मिला। मंदिर में बैठे लोग दुखी हैं -- जो पाना था नहीं मिला।

जीसस के जीवन में उल्लेख है, वो एक गांव से गुजरे। उन्होंने कुछ लोगों को छाती पीटते, रोते देखा। पूछा कि क्या मामला है? किसलिए रो रहे हो? कौन सी दुर्घटना घट गयी? उन्होंने कहा कोई दुर्घटना नहीं घटी, हम नर्क के भय से घबड़ा रहे हैं।

कहाँ है नर्क?

मगर मन ने नर्क के भय खड़े कर दिये हैं, उनसे घबड़ा रहे हैं।

जीसस थोड़े आगे गये, उन्होंने कुछ और लोग देखे जो बड़े उदास बैठे थे, जैसा मंदिरों में लोग बैठे रहते हैं। बड़े गंभीर। जीसस ने पूछा, क्या हुआ तुम्हें? कौनसी मुसीबत आयी? कितने लंबे चेहरे बना लिए हैं? क्या हो गया? उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं, हम स्वर्ग की चिंता में चितातुर हैं -- स्वर्ग मिलेगा या नहीं?

जीसस और आगे बढ़े। उन्हें एक वृक्ष के नीचे कुछ लोग बड़े प्रमुदित, बड़े शांत बड़े आनंदित बैठे मिले। उन्होंने कहा, तुम्हारे जीवन में कौन सी रसधारा आ गयी? तुम इतने शांत, इतने प्रसन्न, इतने प्रफुल्लित क्यों हो? उन्होंने कहा, हमने स्वर्ग और नर्क का खयाल छोड़ दिया।

स्वर्ग है सुख, जो तुम पाना चाहते हो। नर्क है दुख, जिससे तुम बचना चाहते हो।

दानों भविष्य है। दोनों कामना में हैं। दोनों मार के फंदे हैं। जब तुम दोनों को ही छोड़ देते हो, अभी और यहीं जिसे मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, वो उपलब्ध हो जाता है।

निर्वाण तुम्हारा स्वभाव है। तुम जो हो उसमें ही तुम उसे पाओगे। होने की दौड़ में तुम उसे चूकते चले जाओगे।

मुलगना और जीना यह कोई जीने में जीना है
लगा दे आग अपने दिल में दीवाने धुआं कब तक

ये जो होने की आकांक्षा है, इससे आग नहीं पैदा होती, सिर्फ धुआं ही धुआं पैदा होता है। बुद्ध का वचन है कि वासना से भरा चित्त गीली लकड़ी की भांति है। उसमें आग लगाओ तो लपट नहीं निकलती, धुआं ही धुआं निकलता है। लकड़ी जब सूखी होती है तब उससे लपट निकलती है। जब तक वासना है तुम्हारी समझ में, तुम्हारे जीवन में आग न होगी। तुम्हारे जीवन में रोशनी और प्रकाश न होगा। धुआं ही धुआं होगा। अपने ही धुएं से तुम्हारी आंखें खराब हुई जा रही हैं। अपने ही धुएं से तुम देखने में असमर्थ हुए जा रहे हो, अंधे हुए जा रहे हो। अपने ही धुएं से तुम्हारी आंखें आंसुओं से भरी हैं, और जीवन का सत्य तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता है।

मुलगना और जीना यह कोई जीने में जीना है
लगा दे आग अपने दिल में दीवाने धुआं कब तक

लेकिन धुआं तब तक उठेगा ही जब तक कोई भी वासना का गीलापन तुम में रह गया है। लकड़ी जब तक गीली है, धुआं उठेगा। लकड़ी से धुआं नहीं उठता। गीलेपन से धुआं उठता है। लकड़ी में छिपे जल से धुआं उठता है। तुमसे धुआं नहीं उठ रहा है। तुम्हारे भीतर जो वासना की आर्द्रता है, गीलापन है, उससे धुआं उठ रहा है।

त्यागी बुद्ध ने उसको कहा है जो सूखी लकड़ी की भांति है। जिसने वासना का सारा ख्याल छोड़ दिया।

'जिसका निग्रह करना बहुत कठिन है और जो बहुत तरल है, हल्के स्वभाव का है और जो जहां चाहे वहां झट चला जाता है, ऐसे चित्त का दमन करना श्रेष्ठ है। दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।'

दमन शब्द को ठीक से समझ लेना। उस दिन इसके अर्थ बहुत अलग थे जब बुद्ध ने इसका उपयोग किया था। अब अर्थ बहुत अलग हैं। फ्रॉयड के बाद दमन शब्द के अर्थ बिलकुल दूसरे हो गये हैं। भाषा वही नहीं रह जाती, रोज बदल जाती है। भाषा तो प्रयोग पर निर्भर करती है। बुद्ध के समय में, पतंजलि के समय में दमन का अर्थ बड़ा और था। दमन का अर्थ था, मन में, जीवन में, तुम्हारे अंतर-

क्षण में, अगर तुम क्रोध कर रहे हो या तुम अशांत हो, बेचैन हो, तो तुम एक विशिष्ट मात्रा की ऊर्जा नष्ट कर रहे हो। स्वभावतः जब तुम क्रोध करोगे, थकोगे; क्योंकि ऊर्जा नष्ट होगी; जब तुम कामवासना से भरोगे, तब भी ऊर्जा नष्ट होगी। जब तुम उदास होओगे, दुखी होओगे, तब भी ऊर्जा नष्ट होगी।

एक बड़ी हैरानी की बात है कि सिर्फ शांति के क्षणों में ऊर्जा नष्ट नहीं होती, और आनंद के क्षणों में ऊर्जा बढ़ती है। नष्ट होना तो दूर, विकसित होती है। प्रमुदित होती है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, अप्रमाद में प्रमुदित होओ। दुख में घटती है। शांति में थिर रहती है। आनंद में बढ़ती है। और जब भी तुम कोई नकारात्मक, निषेधात्मक भाव में उलझते हो तब तुम्हारी ऊर्जा व्यर्थ जा रही है। तुममें छेद हो जाते हैं। जैसे घड़े में छेद हो और उसमें पानी भरके रख रहे हो; वो बहा जा रहा है!

बुद्ध या पतंजलि जब कहते हैं दमन — चित्त का दमन — तो वो यह नहीं कहते हैं कि चित्त में क्रोध को दबाना है। वो यह कहते हैं कि चित्त में जिन छिद्रों से ऊर्जा बहती है उन छिद्रों को बंद करना है। और जो ऊर्जा क्रोध में संलग्न होती है, उस ऊर्जा को जीवन की विधायक दिशाओं में संलग्न करना है। इसे कभी ख्याल कर के देखो। तुम्हारे मन में क्रोध उठा है। किसीने गाली दे दी, या किसीने अपमान कर दिया, या घर में किसीने तुम्हारी कोई बहुमूल्य चीज तोड़ दी और तुम क्रोधित हो गये हो। एक काम करो। जाके, घर के बाहर बगीचे में कुदाली लेके एकदो फिट का गड्ढा खोद डालो। और तुम बड़े हैरान होओगे कि गड्ढा खोदते-खोदते क्रोध तिरोहित हो गया। क्या हुआ? जो क्रोध तुम्हारे हाथों में आ गया था, जो किसीको मारने को उत्सुक हो गया था, वो ऊर्जा उपयोग कर ली गयी। या घर के दौड़के तीन चक्कर लगा आओ। और तुम पाओगे कि लौटके तुम हल्के हो गये। वो जो क्रोध उठा था, जा चुका।

ये तो क्रोध का रूपांतरण हुआ। इसको ही बुद्ध और महावीर और पतंजलि ने दमन कहा है। फ्रॉयड ने दमन कहा है -- तुम्हारे भीतर क्रोध उठा, उसको भीतर दबा लो, प्रगट मत करो। तो खतरनाक है। तो बहुत खतरनाक है। उससे तो बेहतर है तुम प्रगट कर दो। क्योंकि क्रोध अगर भीतर रह जाएगा, नासूर बनेगा। नासूर अगर सम्हालते रहे, सम्हालते रहे, ढोते रहे, तो आज नहीं कल कैंसर हो जाएगा।

जितनी मनुष्यता सभ्य होती चली जाती है, उतनी खतरनाक बीमारियों का फैलाव बढ़ता जाता है। कैंसर बड़ी नयी बीमारी है। वो बहुत सभ्य आदमी को ही हो सकती है। जंगलों में रहनेवाले लोगों को नहीं होती। आयुर्वेद में तो कुछ

रोगों को राजरोग कहा गया है — वो सिर्फ राजाओं को ही होते थे। क्षयरोग को राजरोग कहा है। वो हर किसीको नहीं होता था। उसके लिए बहुत सभ्यता का तल चाहिए, बहुत सुसंस्कारित जीवन चाहिए, जहाँ तुम अपने भावावेशों को सुगमता से प्रगट न कर सको, जहाँ तुम्हें झूठे भाव प्रगट करने पड़ें; जहाँ रोने की हालत हो वहाँ मुस्कराना पड़े, और जहाँ गर्दन मिटा देने की, तोड़ देने की इच्छा हो रही थी वहाँ धन्यवाद देना पड़े। तो तुम्हारे भीतर ये दबे हुए भाव धीरे-धीरे घाव बन जाएँगे।

फ्रॉयड का कहना बिलकुल सच है कि दमन खतरनाक है। लेकिन बुद्ध, महावीर और पतंजलि जिसको दमन कहते हैं वो खतरनाक नहीं है। वो किसी और ही बात को दमन कहते हैं। वो कहते हैं दमन रूपांतरण को। निषेध को विधेयक में बदल लेने को वो दमन कहते हैं। और उसी मन को वो कहते हैं सुख उपलब्ध होगा — दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है; वो लक्षण है। जिसको फ्रॉयड दमन कहता है, वो चित्त तो बड़ा दुखदायी हो जाता है, वो तो बड़े ही दुख से भर जाता है।

'दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है'।

तो ध्यान रखना, फ्रॉयड के अर्थों में दमन से बचना और बुद्ध के अर्थों में दमन को करना। क्रोध उठे तो तुम्हारे भीतर एक ऊर्जा उठी है, उसका कुछ उपयोग करो अन्यथा वो घातक हो जाएगी। अगर तुम दूसरे के ऊपर क्रोध को फेंकोगे तो दूसरे को नुकसान होगा; और क्रोध और क्रोध लाता है। वैर से वैर मिटता नहीं। उसका कोई अंत नहीं है। वो सिलसिला अंतहीन है। अगर तुम क्रोध को भीतर दबाओगे तो तुम्हारे भीतर घाव हो जाएगा, वो घाव भी खतरनाक है। वो तुम्हें रुग्णकर देगा। तुम्हारे जीवन की खुशी खो जाएगी।

तो न तो दूसरे पर क्रोध फेंको, न अपने भीतर क्रोध को दबाओ, क्रोध को रूपांतरित करो। घृणा उठे, क्रोध उठे, ईर्ष्या उठे, इन शक्तियों का सदुपयोग करो। मार्ग के पत्थर भी बुद्धिमान व्यक्ति मार्ग की सीढ़ियाँ बना लेते हैं। और तब तुम बड़े सुख को उपलब्ध होओगे। दो कारण से। एक तो क्रोध करके जो दुख उत्पन्न होता, वो नहीं होगा। क्योंकि तुमने किसीको गाली दे दी इससे कुछ सिलसिला अंत नहीं हो गया। वो दूसरा आदमी फिर गाली देने की प्रतीक्षा करेगा। अब उसके ऊपर क्रोध गिरा है, वो भी तो क्रोध करेगा। अगर तुमने क्रोध को दबा लिया तो तुम्हारे भीतर के स्रोत विषाक्त हो जाते हैं। क्रोध जहर है। तुम्हारे जीवन का सुख धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। तुम फिर प्रसन्न नहीं हो सकते। प्रसन्नता खो ही जाती है। तुम हँसोगे भी तो झूठ। ओंठों पे रहेगी हँसी; तुम्हारे प्राण तक उसका

कंपन न पहुंचेगा। तुम्हारे हृदय से न उठेगी। तुम्हारी आंखें कुछ और कहेंगी, तुम्हारे ओंठ कुछ और कहेंगे। तुम धीरे-धीरे टुकडे-टुकडे में टूट जाओगे।

तो न तो दूसरे पे क्रोध करने से तुम सुखी हो सकते हो. क्योंकि कोई दूसरे को दुखी करके कब सुखी हो पाया! और न तुम अपने भीतर क्रोध को दबाके सुखी हो सकते हो, क्योंकि वो क्रोध उबलने के लिए तैयार होगा, इकट्ठा होगा। और रोज-रोज तुम क्रोध को इकट्ठा करते चले जाओगे, भीतर भयंकर उत्पात हो जाएगा। किसी भी दिन तुमसे पागलपन प्रगट हो सकता है। किसी भी दिन तुम विक्षिप्त हो सकते हो। एक सीमा तक तुम बैठे रहोगे अपने ज्वालामुखी पर, लेकिन विस्फोट किसी न किसी दिन होगा। दोनों ही खतरनाक है।

रूपांतरण चाहिए।

क्रोध की ऊर्जा को विधेय में लगा दो। कुछ न करते बन सके, दौड़ आओ। क्रोध उठा है, नाच लो। तुम थोड़ा प्रयोग कर के देखो। जब क्रोध उठे तो नाचके देखो। जब क्रोध उठे तो एक गीत गाके देखो। जब क्रोध उठे तो घूमने निकल जाओ। जब क्रोध उठे तो किसी काम में लग जाओ, खाली मत बैठो। क्योंकि जो ऊर्जा है उसका उपयोग कर लो। और तुम पाओगे कि जल्दी ही तुम्हें एक सूत्र मिल गया, एक कुंजी मिल गयी — कि जीवन के सभी निषेधात्मक भाव उपयोग किये जा सकते है। राह के पत्थर सीढ़ियां बन सकते है।

जमीनो-आसमां से तंग है तो छोड दे उनको
मगर पहले नये पैदा जमीनो-आसमां कर ले

ध्यान रखना, जो गलत है उसे छोड़ने से पहले सही को पैदा कर लेना जरूरी है। नहीं तो गलत की जो ऊर्जा मुक्त होगी, वो कहां जाएगी? तुम मेरे पास आते हो कि क्रोध हमें छोडना है। लेकिन क्रोध में बहुत ऊर्जा सन्निविष्ट है। तुमने बहुत सी शक्ति क्रोध में लगायी है, काफी 'इन्वेस्ट' किया है क्रोध में। अगर आज क्रोध एकदम बंद हो जाएगा तो तुम्हारी ऊर्जा जो क्रोध से मुक्त होगी, उसका तुम क्या करोगे? वो तुम्हारे ऊपर बोझिल हो जाएगी। वो भार हो जाएगी। तुम्हारी छाती पे पत्थर हो जाएगी। 'जमीनो-आसमां से तंग है तो छोड दे उनको'। और जिस चीज से भी तंग हो उसे छोड़ना ही है। लेकिन एक बात ध्यान रखनी है —

मगर पहले नये पैदा जमीनो-आसमां कर ले

अगर ये जमीन और आसमां छोड़ने है तो दूसरे जमीन और आसमां भीतर पैदा कर ले, फिर इनको छोड़ देना। पैदा करना पहले जरूरी है। गलत को छोड़ने से ज्यादा, अंधेरे से लड़ने की बजाय, रोशनी को जला लेना जरूरी है।

गलत से मत लड़ो, ठीक में जागो। सम्यक् को उठाओ। ताकि तुम्हारी ऊर्जा

जो गलत से मुक्त हो, तो सम्यक्‌ की धारा में प्रवाहित हो जाए। अन्यथा उसकी बाढ़ तुम्हें डुबा देगी। उसकी बाढ़ के लिए तुम पहले से नहरें बना लो। ताकि उनको तुम अपने जीवन के खेतों तक पहुँचा सको; ताकि तुम्हारे दबे बीज अंकुरित हो सकें; ताकि तुम जीवन की फसल काट सको।

'दूरगामी, अकेला विचरनेवाला, अशरीरी, सूक्ष्म और गुहाशयी, इस चित्त को जो संयम करते हैं, वे ही मार के बंधन से मुक्त होते हैं।'

बंधन से मुक्त होने की उतनी चेष्टा मत करना, जितना संयम। संयम शब्द भी समझने जैसा है। इसका अर्थ 'कंट्रोल' नहीं होता, नियंत्रण नहीं होता। संयम का अर्थ होता है, संतुलन। ये शब्द विकृत हो गया है। गलत लोगों ने बहुत दिन तक इसकी गलत व्याख्या की है।

तुम जो आदमी नियंत्रण करता है उसको संयमी कहते हो। मैं उसे संयमी कहता हूँ जो संतुलन करता है। इन दोनों में बड़ा फर्क है। नियंत्रण करनेवाला दमन करता है, फ्रायड के अर्थों में। संतुलन करनेवाला दमन करता है, बुद्ध के अर्थों में। संतुलन करनेवाले को नियंत्रण नहीं करना पड़ता। नियंत्रण तो उसीको करना पड़ता है जिसके जीवन में संतुलन नहीं है। जिसके जीवन में डर है, कि अगर उसने संतुलन न रखा, नियंत्रण न रखा, तो चीजें हाथ के बाहर हो जाएँगी। जो डरा-डरा जीता है; तुम्हारे साधु-संन्यासी ऐसे ही जी रहे हैं — डरे-डरे, कँपे-कँपे, पूरे वक्त घबड़ाए हुए कि कहीं कोई भूल न हो जाए। ये तो भूल से बहुत ज्यादा संबंध हो गया। ये तो भूल से बड़ा भय हो गया। कहीं भूल न हो जाए!

जीवन की दिशा ठीक करने की तरफ होनी चाहिए, भूल से बचने की तरफ नहीं। ध्यान रखना, जो आदमी भूल से ही बच रहा है वो कहीं भी न पहुँच पाएगा। क्योंकि ये जो भूल से बहुत डर गया है, वो चल ही न सकेगा। उसे डर ही लगा रहेगा, कहीं भूल न हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि प्रेम में ईर्ष्या पैदा हो जाए तो वो प्रेम ही न करेगा; क्योंकि ईर्ष्या का भय है। किसीसे संबंध न बनाएगा कि कहीं संबंध में कहीं शत्रुता न आ जाए। शत्रुता का भय है; तो मित्रता से वंचित रह जाएगा। और अगर तुम शत्रु न भी बनाए और मित्र भी न बना सके, तो तुम्हारा जीवन एक रेगिस्तान होगा। तुम ईर्ष्या से बच गये, लेकिन साथ ही साथ प्रेम भी न कर पाए, तो तुम्हारा जीवन एक सूखा, रसहीन मरुस्थल होगा, जिसमें कोई मरुद्यान भी न होगा, जिसमें छाया की कोई जगह न होगी।

ईर्ष्या से बचना है, प्रेम से नहीं बच जाना है। इसलिए ध्यान प्रेम पर रखना। ध्यान, ईर्ष्या से मत डरे रहना, भूल से मत डरना। दुनिया में एक ही भूल है, और वो भूल से डरना है। क्योंकि वैसा आदमी फिर चल ही नहीं पाता, उठ ही नहीं

पाता। वो घबड़ा के बैठ जाता है। तो नियंत्रण तो कर लेता है, लेकिन जीवन के सत्य को उपलब्ध नहीं होता। संसार से तुम भाग सकते हो, लेकिन वो भावना अगर नियंत्रण का है तो तुम सांसारिक से भी नीचे उतर जाओगे। तुम्हारे जीवन में मरघट की शांति होगी, शिवानन्य की नहीं। तुम्हारे जीवन में रिक्तता का शून्य होगा, ध्यान का नहीं।

और खालीपन में और ध्यान में बड़ा फर्क है। मन की अनुपस्थिति में —' एब-सन्स ऑफ माइंड ' में — और मन के अनुपस्थित हो जाने में बड़ा फर्क है।

तो अगर तुम पीछे सिकुड़ गये, डर गये, तो ये हो सकता है कि तुम्हारे जीवन में गल्तियाँ न हों, लेकिन ठीक होना भी बंद हो जाएगा। ये बड़ा महँगा सौदा हुआ। गल्तियों के पीछे ठीक को गवाँ दिया। ये तो ऐसा हुआ, जैसे कहीं सोने में कूड़ा-करकट न हो इस डर से सोने को भी फेंक दिया। कूड़ा-करकट फेंकना जरूरी है, सोने को शुद्ध करना जरूरी है। लेकिन कूड़े-करकट का भय बहुत न समा जाए।

संयम का अर्थ है, जीवन संतुलित हो। संतुलन का अर्थ है, जीवन बोधपूर्वक हो, अप्रमाद का हो। तुम एक-एक कदम होशपूर्वक उठाओ, गिरने का डर मत रखो। गिरना भी पड़े तो घबड़ाने की बात नहीं है। सम्हलने की क्षमता पैदा करो। गिर पड़ो तो उठने की क्षमता पैदा करो। भूल हो जाए तो ठीक करने का बोध पैदा करो। लेकिन चलने से मत डर जाना। किनारे उतर के बैठ मत जाना कि रास्ते पे काँटे भी हैं, भूलें भी हैं, लुटेरे भी हैं — लूट लिए जाएँगे, भटक जाएँगे, इससे तो चलना ही ठीक नहीं।

भारत में यही हुआ।

बहुत से लोग रास्ते के किनारे उतर के बैठ गये, भारत मर गया। धार्मिक नहीं हुआ, सिर्फ मुर्दा हो गया। इससे तो पश्चिम के लोग बेहतर हैं। भूलें उन्होंने बहुत कीं — भूलों से भी क्या डरना! लेकिन जिंदा हैं। और जिंदा हैं तो कभी ठीक भी कर सकते हैं। मुर्दा हो जाना धार्मिक हो जाना नहीं है। धार्मिक हो जाना सोने से कचरे को जला डालना है। लेकिन कचरे के साथ, कचरे के डर से, सोने को फेंक देना नहीं।

तो पश्चिम के धार्मिक होने की संभावना है। लेकिन पूरब बिलकुल ही जड़ हो गया है। सत्य के साथ भी हमने सौभाग्य नहीं उपलब्ध किया। सत्य हमें बहुत बार उपलब्ध हुआ, बहुत बुद्धों से हमें उपलब्ध हुआ, लेकिन सत्य के हमने जो अर्थ निकाले उनने हमें संकुचित कर दिया, उनने हमें दायरे बना दिये — मुक्त नहीं किया, असीमा नहीं दी। असीम की हमने बात की उपनिषदों से लेके आज तक, लेकिन हर चीज ने सीमा दे दी।

संयम को नियंत्रण मत समझना। संयम को होश समझना।

'जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता है और जिसकी श्रद्धा डांवाडोल है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।'

अब मुझको करार तो सबको करार है
दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया

अब मुझे चैन मिल गयी, तो सबको चैन मिल गयी।

तुम्हारा संसार तुम्हारा ही प्रक्षेपण है। अगर तुम बेचैन हो, तो सारा संसार तुम्हें चारों तरफ बेचैन मालूम पड़ता है। अगर तुमने शराब पी ली है, और तुम्हारे पैर डगमगाते हैं, तो तुम्हें रास्ते के किनारे खड़े मकान भी डगमगाते दिखायी पड़ते हैं। रास्ते पे जो भी तुम्हें दिखायी पड़ता है, वो डगमगाता दिखायी पड़ता है। जिसका चित्त अस्थिर है, वो जिस संसार में जिएगा वो क्षणभंगुर होगा, चंचल होगा। संसार चंचल नहीं है। तुम्हारे मन के डांवाडोल होने के कारण सब डांवा-डोल दिखायी पड़ता है।

अब मुझको करार तो सबको करार है
दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया

तुम ठहरे कि सब ठहर गया। तुम रुके कि सब रुक गया। तुम चले कि सब चल पड़ता है। तुम्हारा संसार तुम्हारा ही फैलाव है। तुम ही हो तुम्हारे संसार। जिसका चित्त अस्थिर है, उसका सब अस्थिर होगा। जब भीतर की ज्योति ही डगमगा रही है तो तुम्हें सब डगमगाता दिखायी पड़ेगा। कभी तुमने खयाल किया, घर में दिया जल रहा हो और उसकी ज्योति डगमगाती हो, तो सब तरफ छायाएं डगमगाती हैं, दीवाल पर बनते हुए बिंब डगमगाते हैं — सब चीजें डगमगाती हैं। छाया ठहर जाएगी, अगर ज्योति ठहर जाए। और छाया को ठहराने की कोशिश में मत लग जाना। छाया को कोई नहीं ठहरा सकता। तुम कृपा करके ज्योति को ही ठहराना। लोग संसार से मुक्त होने में लग जाते हैं — कहते हैं, क्षणभंगुर है, चंचल है, आज है कल नहीं रहेगा। ये सब तुम्हारे भीतर के कारण है। तुम्हारा मन डांवा डोल है। तुम ठहरे कि सब ठहरा। तुम ठहरे कि जमाना ठहर गया।

'जो सद्धर्म को नहीं जानता है, जिसकी श्रद्धा डांवाडोल है'।

अब ये बड़े मजे की बात है। बुद्ध कह रहे हैं, जो सद्धर्म को नहीं जानता उसकी ही श्रद्धा डांवाडोल है। सारे धर्मों ने श्रद्धा को पहले रखा है, बुद्ध ने ज्ञान को पहले रखा है। वो कहते हैं, सद्धर्म को जानोगे तो श्रद्धा ठहरेगी। और धर्मों ने कहा है, श्रद्धा करोगे तो सद्धर्म को जानोगे। और धर्मों ने कहा है, मानोगे तो जानोगे। बुद्ध ने कहा है, जानोगे नहीं तो मानोगे कैसे ? जानोगे, तो ही मानोगे।

बुद्ध की बात इस सदी के लिए बहुत काम की हो सकती है। यह सदी बड़ी संदेह से भरी है। श्रद्धा की तो बात ही करनी फिजूल है। जो कर सकता है, उससे कहने की कोई जरूरत नहीं। जो नहीं कर सकते, उनसे कहो बार-बार कि श्रद्धा करो, व्यर्थ है। वो नहीं कर सकते, वो क्या करें ? तुम श्रद्धा की बात करो तो उससे भी उन्हें शक आता है। शक आ गया तो आ गया। हटाने का उपाय नहीं। और शक आ चुका है। ये सदी संदेह की सदी है।

इसलिए बुद्ध का नाम इस सदी में जितना मूल्यवान मालूम होता है, किसीका भी नहीं। उसका कारण यही है। जीसस या कृष्ण बहुत दूर मालूम पड़ते हैं। क्योंकि श्रद्धा से शुरुआत है। श्रद्धा ही नहीं जमती, तो शुरुआत ही नहीं होती। पहला कदम ही नहीं उठता। बुद्ध कहते हैं, श्रद्धा की फिकिर छोड़ो, जान लो सद्धर्म को, तथ्य को; और जानने का उपाय है-- थिर हो जाओ। बुद्ध ने ये कहा है कि ध्यान के लिए श्रद्धा आवश्यक नहीं है। ध्यान तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसलिए तुम ईश्वर को मानते हो, नहीं मानते हो, कुछ प्रयोजन नहीं। बुद्ध कहते हैं तुम ध्यान कर सकते हो।

ध्यान तुम करोगे, तुम भीतर थिर होने लगोगे उस थिरता के लिए किसी ईश्वर का आकाश में होना आवश्यक ही नहीं है। ईश्वर ने संसार बनाया या नहीं बनाया, इससे उस ध्यान के थिर होने का कोई लेना-देना नहीं है। ध्यान का थिर होना तो वैसे ही है जैसे ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाओ और पानी बन जाए। तो कोई वैज्ञानिक ये नहीं कहता कि पहले ईश्वर को मानो तब पानी बनेगा। ध्यान तो एक वैज्ञानिक प्रयोग है। तुम भीतर थिर होने की कला को सीख जाओ, सद्धर्म से परिचय होगा, परिचय से श्रद्धा होगी।

इसलिए बुद्ध जितने करीब हैं इस सदी के और कोई भी नहीं है। क्योंकि ये सदी संदेह की है; और बुद्ध ने श्रद्धा पर जोर नहीं दिया, बोध पर जोर दिया है।

'जो सद्धर्म को नहीं जानता और जिसकी श्रद्धा डाँवाडोल है, ... होगी ही ..., उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।' बुद्ध शर्तें नहीं दे रहे हैं, बुद्ध केवल तथ्य दे रहे हैं। बुद्ध कहते हैं, ये तथ्य हैं। सद्धर्म का बोध हो, श्रद्धा होगी। श्रद्धा हो, परिपूर्णता होगी। प्रज्ञा परिपूर्ण होगी। ऐसा न हो, तो प्रज्ञा परिपूर्ण न होगी। और जब तक प्रज्ञा परिपूर्ण न हो, जब तक तुम्हारा जानना परिपूर्ण न हो, तुम्हारा जीवन परिपूर्ण नहीं हो सकता।

जानने में ही छिपे हैं सारे स्रोत। क्योंकि मूलतः तुम ज्ञान हो। ज्ञान की शक्ति हो। मूलतः तुम बोध हो। इसीसे तो हमने बुद्ध को बुद्ध कहा। बोध के कारण। नाम तो उनका गौतम सिद्धार्थ था। लेकिन जब वे परम प्रज्ञा को और बोध को

उपलब्ध हुए, तो हमने उन्हें बुद्ध कहा। तुम्हारे भीतर भी बोध उतना ही छिपा है जितना उनके भीतर था। वो जग जाए तो तुम्हारे भीतर भी बुद्धत्व का आविर्भाव होगा। और जब तक ये न हो, तब तक चैन मत लेना। तब तक सब चैन झूठी है। सांत्वना मत कर लेना। तब तक सांत्वना संतोष नहीं है। तब तक तुम मार्ग में ही रुक गये। मंजिल के पहले ही किसी पड़ाव को मंजिल समझ लिया।

'जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता और जिसकी श्रद्धा डांवा-डोल है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।' और प्रज्ञा परिपूर्ण न हो, तो तुम अपूर्ण रहोगे। और तुम अपूर्ण रहो, तो अशांति रहेगी। और तुम अशांत रहो, तो दो ही उपाय हैं। एक, कि तुम शांति को खोजने निकलो। और दो, कि तुम अशांति को समझो।

अशांति को समझना बुद्ध का उपाय है। जिसने अशांति को समझ लिया, वो शांत हो जाता है। और जो शांति की तलाश में निकल गया, वो और नयी-नयी अशांतियाँ मोल ले लेता है।

जीवन को जीने के दो ढंग हैं। एक मालिक का और एक गुलाम का। गुलाम का ढंग भी कोई ढंग है! जीना हो तो मालिक होकर ही जीना। अन्यथा इस जीवन से मर जाना बेहतर है। कम से कम मर जाना सच तो होगा। ये जीवन तो बिलकुल झूठा है। सपना है। गुलाम के ढंग से तुमने जीके देख लिया, कुछ पाया नहीं। यद्यपि पाने ही पाने की तलाश रही। अब मालिक के ढंग से जीना देख लो। बस शास्त्र बदलना होगा, सूत्र बदलना होगा। इतना ही फर्क करना होगा। अब तक कल के लिए जीते थे, अब आज ही जियो। अब तक कुछ होने के लिए जीते थे, अब जो हो वैसे ही जियो। अब तक मूर्छा में जीते थे, अब जागकर जियो, होश से जियो।

और ध्यान रखना, प्रत्येक कदम होश का बुद्धत्व को करीब लाता है। प्रत्येक कदम होश का तुम्हारे भीतर बुद्धत्व के झरनों को सक्रिय करता है। मेघ किसी भी क्षण बरस सकता है। तुम जरा सयोजन बदलो, और सब तुम्हारे पास है, कुछ जोड़ना नहीं है। और कुछ तुम्हारे पास ऐसा नहीं है जिसे हटाना है। वीणा के तार ढीले हैं, टूटे हैं, जोड़ना है, व्यवस्थित कर देना है। अँगुलियाँ भी तुम्हारे पास हैं, वीणा भी तुम्हारे पास है। सिर्फ अँगुलियों का वीणा के तारों पर खेलने का संयोजन करना है। किसी भी क्षण संयम बैठ जाएगा, संगीत उत्पन्न हो सकता है।

आज इतना ही।

उठो . . . तलाश लाज़िम है

२ दिसम्बर १९७५

पहला प्रश्न : जीवन विरोधाभासी है, असंगतियों से भरा है। तो फिर तर्क, बुद्धि, व्यवस्था और अनुशासन का मार्ग बुद्ध ने क्यों बताया?
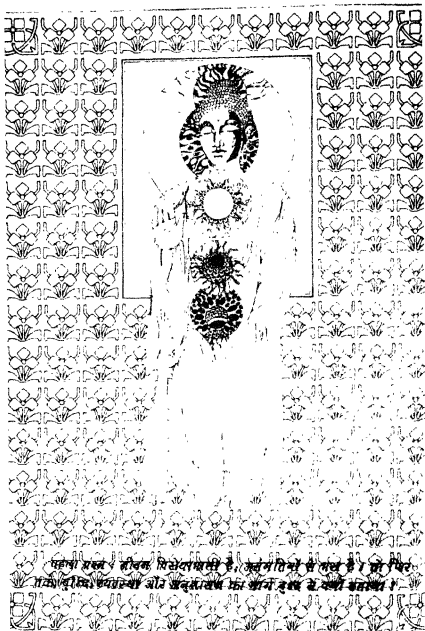
प्रश्न जीवन का नहीं है। प्रश्न तुम्हारे मन का है। जीवन को मोक्ष की तरफ नहीं जाना है। जीवन तो मोक्ष है। जीवन नहीं भटका है, जीवन नहीं भूला है। जीवन तो वहीं है जहाँ होना चाहिए। तुम भटके हो, तुम भूले हो। तुम्हारा मन तर्क की उलझन में है। और यात्रा तुम्हारे मन से शुरू होगी। कहाँ जाना है, ये सवाल नहीं है। कहाँ से शुरू करना है, यही सवाल है।

मंजिल की बात बुद्ध ने नहीं की। मंजिल की बात तुम समझ भी कैसे पाओगे? उसका तो स्वाद ही समझा सकेगा। उसमें तो डूबोगे, तो ही जान पाओगे। बुद्ध ने मार्ग की बात कही है। बुद्ध ने तुम जहाँ खड़े हो, तुम्हारा पहला कदम जहाँ पड़ेगा, उसकी बात कही है। इसलिए बुद्ध बुद्धि, विचार, अनुशासन, व्यवस्था की बात करते हैं।

नहीं कि उन्हें पता नहीं है कि जीवन कोई व्यवस्था नहीं मानता। जीवन कोई रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई गाड़ी नहीं है। जीवन परम स्वतंत्रता है। जीवन

के ऊपर कोई नियम नहीं है, कोई मर्यादा नहीं है। जीवन अमर्याद है। वहाँ न कुछ शुभ है, न अशुभ। जीवन में सर्वस्वीकार है। वहाँ अँधेरा भी और उजेला भी एक साथ स्वीकार है।

मनुष्य के मन का सवाल है। मनुष्य का मन विरोधाभासी बात को समझ ही नहीं पाता। और जिसको तुम समझ न पाओगे, उसे तुम जीवन में कैसे उतारोगे? जिसे तुम समझ न पाओगे, उससे तुम दूर ही रह जाओगे।

तो बुद्ध ने वही कहा जो तुम समझ सकते हो। बुद्ध ने सत्य नहीं कहा, बुद्ध ने वही कहा जो तुम समझ सकते हो। फिर जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे बुद्ध तुमसे वह भी कहेंगे जो तुम नहीं समझ सकते।

बुद्ध एक दिन गुजरते है एक राह से जंगल की ओर। पतझड़ के दिन हैं। सारा वन सूखे पत्तों से भरा है। और आनंद ने बुद्ध से पूछा है कि क्या आपने हमें सब बातें बता दीं जो आप जानते हैं? क्या आपने अपना पूरा सत्य हमारे सामने स्पष्ट किया? बुद्ध ने सूखे पत्तों से अपनी मुट्ठी भर ली और कहा आनंद, मैंने तुमसे उतना ही कहा है जितने सूखे पत्ते मेरी मुट्ठी में हैं। और उतना अनकहा छोड़ दिया है जितने सूखे पत्ते इस वन में हैं। वही कहा है जो तुम समझ सको। फिर जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे वह भी कहा जा सकेगा जो पहले समझा नहीं जा सकता था।

बुद्ध कदम-कदम बढ़े। आहिस्ता-आहिस्ता। तुम्हारी सामर्थ्य देखकर बढ़े हैं। बुद्ध ने तुम्हारी बूंद को सागर में डालना चाहा है।

ऐसे भी फकीर हुए हैं जिन्होंने सागर को बूँद में डाल दिया है। पर वो काम बुद्ध ने नहीं किया। उन्होंने बूंद को सागर में डाला है। सागर को बूँद में डालने में बूंद बहुत घबड़ा जाती है। उसके लिए बड़ा दिल चाहिए। उसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। उसके लिए दुस्साहस चाहिए। उसके लिए मरने की तैयारी चाहिए। बुद्ध ने तुम्हें रफ्ता-रफ्ता राजी किया है। एक-एक कदम तुम्हें करीब लाए हैं। इसलिए बुद्ध के विचार में एक अनुशासन है।

ऐसा अनुशासन तुम कबीर में न पाओगे। कबीर उलटवाँसी बोलते है। कबीर तुम्हारी फिकर नहीं करते। कबीर वहाँ से बोलते हैं जहाँ वो स्वयं हैं, जहाँ मेघ घिरे हैं अदृश्य के और अमृत की वर्षा हो रही है। जहाँ 'बिन घन परत फुहार'— जहाँ मेघ भी नहीं है और जहाँ अमृत की वर्षा हो रही है। बेबूझ बोलते हैं। तो कबीर को तो वे बहुत थोड़े से लोग समझ पाएंगे — जो उनके साथ खतरा लेने को राजी हैं। कबीर ने कहा है 'जो घर बारै आपना चलै हमारे संग'। जिसकी तैयारी हो घर में आग लगा देने की, वो हमारे साथ हो ले। किस घर की बात कर रहे हैं? वो तुम्हारा मन का घर, तुम्हारी बुद्धि की व्यवस्था, तुम्हारा तर्क, तुम्हारी समझ;

जो उस घर को जलाने को तैयार हो, कबीर कहते हैं, वो हमारे साथ हो ले।

बुद्ध कहते है घर को जलाने की भी जरूरत नहीं है। एक-एक कदम सही, इंच-इंच सही, धीरे-धीरे सही, बुद्ध तुम्हें फुसलाते हैं। इसलिए बुद्ध वहीं से शुरू करते हैं जहाँ तुम हो। उन्होंने उतना ही कहा है जो कोई भी तर्कनिष्ट व्यक्ति समझने में समर्थ हो जाएगा। इसलिए बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा सारे जगत पर। बुद्ध जैसा प्रभाव किसीका भी नहीं पड़ा।

अगर दुनिया में मुसलमान हैं, तो मुहम्मद के प्रभाव की वजह से कम, मुसलमानों की जबरदस्ती की वजह से ज्यादा। अगर दुनिया में ईसाई हैं, तो ईसा के प्रभाव से कम, ईसाइयों की व्यापारी-कुशलता के कारण ज्यादा। लेकिन अगर दुनिया में बौद्ध हैं, तो सिर्फ बुद्ध के कारण। न तो कोई जबरदस्ती की गयी है किसीको बदलने की, न कोई प्रलोभन दिया गया है। लेकिन बुद्ध की बात मौजूं पड़ी। जिसके पास भी थोड़ी समझ थी, उसको भी बुद्ध में रस आया।

थोड़ा सोचो; बुद्ध ईश्वर की बात नहीं करते। क्योंकि जो भी सोच-विचार करता है, उसे ईश्वर की बात में संदेह पैदा होता है। बुद्ध ने वो बात ही नहीं की। छोड़ो। उसको अनिवार्य न माना। बुद्ध आत्मा तक की बात नहीं करते, क्योंकि जो बहुत सोच-विचार करता है वो कहता है, ये मैं मान नहीं सकता कि शरीर के बाद बचूँगा। कौन बचेगा ? ये सब शरीर का ही खेल है, आज है, कल समाप्त हो जाएगा। किसीने कभी मर के लौटके कहा कि मैं बचा हूँ ? कभी किसीने खबर की ? ये सब यहीं की बातें हैं। मन को बहलाने के ख्याल हैं।

बुद्ध ने आत्मा की भी बात नहीं कही। बुद्ध ने कहा ये भी जाने दो। क्योंकि ये बातें ऐसी हैं प्रमाण देने का तो कोई उपाय नहीं। तुम जब जानोगे, तभी जानोगे; उसके पहले जानने की कोई सुविधा नहीं। और अगर तुम तर्कनिष्ठ हो, बहुत विचारशील हो, तो तुम मानने को राजी न होओगे। और बुद्ध कहते है, कोई ऐसी बात तुमसे कहना जिसे तुम इनकार करो तुम्हारे मार्ग पर बाधा बन जाएगी। वो इनकार ही तुम्हारे लिए रोक लेगा। बुद्ध कहते है, यह भी जाने दो।

बुद्ध कहते हैं कि हम इतना ही कहते है कि जीवन में दुख है, इसे तो इनकार न करोगे ? इसे तो इनकार करना मुश्किल है। जिसने थोड़ा भी सोचा-विचारा है, वो तो कभी इनकार नहीं कर सकता। इसे तो वही इनकार कर सकता है, जिसने सोचा ही विचारा न हो। लेकिन जिसने सोचा-विचारा ही न हो वो भी कैसे इनकार करेगा, क्योंकि इनकार के लिए सोचना-विचारना जरूरी है। जिसके मन में जरा सी भी प्रतिभा है, थोड़ी सी भी किरण है, जिसने जीवन के संबंध में जरा सा भी चिंतन-मनन किया है, वो भी देख लेगा। अंधा भी देख लेगा। जड़ से जड़ बुद्धि को

भी यह बात समझ में आ जाएगी, जीवन में दुख है। आँसुओं के सिवाय पाया भी क्या? इसे बुद्ध को सिद्ध न करना पड़ेगा, तुम्हारा जीवन ही सिद्ध कर रहा है। तुम्हारी कथा ही बता रही है। तुम्हारी भीगी आँखें कह रही हैं। तुम्हारे कँपते पैर कह रहे हैं।

तो बुद्ध ने कहा, जीवन में दुख है। ये कोई आध्यात्मिक सत्य नहीं है, ये तो जीवन का तथ्य है। इसे कौन कब इनकार कर पाया? और बुद्ध ने कहा, दुख है, तो अकारण तो कुछ भी नहीं होता, दुख के कारण होंगे। और बुद्ध ने कहा, दुख से तुम मुक्त होना चाहते हो कि नहीं होना चाहते! ईश्वर को नहीं पाना चाहते, समझ में आता है। कुछ सिरफिरों को छोड़के कौन ईश्वर को पाना चाहता है? कुछ पागलों को छोड़के कौन आत्मा की फिक्र कर रहा है। समझदार आदमी ऐसे उपद्रवों में नहीं पड़ते। ऐसी झंझटें मोल नहीं लेते। जिंदगी की झंझटें काफी है। अब आत्मा और परमात्मा और मोक्ष, इन उलझनों में कौन पड़े?

बुद्ध ने ये बातें ही नहीं कहीं। तुम इनकार कर सको, ऐसी बात बुद्ध ने कही ही नहीं। इसका उन्होंने बड़ा संयम रखा। उन जैसा संयमी बोलनेवाला नहीं हुआ है। उन्होंने एक शब्द न कहा जिसमे तुम कह सको, नहीं। उन्होंने तुम्हे नास्तिक होने की सुविधा न दी।

इसे थोड़ा समझना। लोगों ने बुद्ध को नास्तिक कहा है, और मैं तुमसे कहता हूँ, कि बुद्ध अकेले आदमी हैं पृथ्वी पर जिन्होंने तुम्हे नास्तिक होने की सुविधा नहीं दी। जिन्होंने तुमसे कहा ईश्वर है, उन्होंने तुम्हें इनकार करने को मजबूर करवा दिया। कहाँ है ईश्वर? जिन्होंने तुमसे कहा आत्मा है, उन्होंने तुम्हारे भीतर संदेह पैदा किया। बुद्ध ने वही कहा जिसपे तुम संदेह न कर सकोगे। बुद्ध ने आस्तिकता दी। हाँ ही कहने की सुविधा छोड़ी, न का उपाय न रखा।

बुद्ध बड़े कुशल हैं। उनकी कुशलता को जब समझोगे तो चकित हो जाओगे, कि जिसको तुमने नास्तिक समझा है उससे बड़ा आस्तिक पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ। और जितने लोगों को परमात्मा की तरफ बुद्ध ले गये, कोई भी नहीं ले जा सका। और परमात्मा की बात भी न की, हद की कुशलता है। चर्चा भी न चलायी। चर्चा तुम्हारी की, पहुँचाया परमात्मा तक। बात तुम्हारी उठायी, समझा-समझाया तुम्हें, सुलझाव में परमात्मा मिला। सुलझाया तुम्हें, सुलझाव में परमात्मा मिला। दुख काटा तुम्हारा, जो शेष बचा वही आनंद है। बंधन दिखाए, मोक्ष की बात न उठायी। कारागृह में जो बंद है जन्मों-जन्मों से उससे मोक्ष की बात करके क्यों ... क्यों उसे शर्मिंदा करते हो? और जो कारागृह में बहुत दिनों तक बंद रह गया है, उसे मोक्ष का खयाल भी नहीं रहा। उसे अपने पंख भी भूल गये हैं। आज तुम उसे अचानक

आकाश में छोड़ दो तो उड़ न सकेगा। क्योंकि उड़ने के लिए पहले उड़ने का भरोसा चाहिए। तड़फड़ा के गिर जाएगा।

तुमने कभी देखा। तोते को बहुत दिन तक रख लो पिंजड़े में, फिर किसी दिन खुला द्वार पाके भाग भी जाए, तो उड़ नहीं पाता। पंख वही हैं, उड़ने का भरोसा खो गया। हिम्मत खो गयी। ये याद ही न रही कि हम भी कभी आकाश में उड़ते थे, कि हमने भी कभी पंख फैलाए थे, और हमने भी कभी दूर की यात्रा की थी। वो बातें सपना हो गयीं। आज पक्का नहीं रहा ऐसा हुआ था, कि सिर्फ सपने में देखा है। वो बातें अफवाह जैसी हो गयी हैं। और इतने दिन तक कारागृह में रहने के बाद कारागृह की आदत हो जाती है। तो तोता तो थोड़े ही दिन रहा है, तुम तो जन्मों-जन्म रहे हो।

बुद्ध ने कहा तुमसे मोक्ष की बात करके तुम्हें शर्मिंदा करें! तुमसे मोक्ष की बात करके तुम्हें इनकार करने को मजबूर करें! क्योंकि ध्यान रखना, जो व्यक्ति बहुत दिन कारागृह मे रह गया है वो ये कहना शुरू कर देता है कि कहीं कोई मुक्ति है ही नही। ये उसकी आत्मरक्षा है। वो ये कह रहा है कि अगर मोक्ष है तो फिर मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ, मैं नपुंसक यहाँ क्यों पड़ा हूँ? अगर मोक्ष है तो मैं मुक्त क्यों नही हुआ हूँ? फिर सारी जिम्मेवारी अपने पे आती है।

लोग ईश्वर को इसलिए थोड़ी ' इनकार करते हैं कि ईश्वर नहीं है। या कि उन्हें पता है कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर को इनकार करते हैं, क्योंकि अगर ईश्वर है तो हम क्या कर रहे हैं! तो हमारा सारा जीवन व्यर्थ है। लोग मोक्ष को इसलिए इनकार करते हैं कि अगर मोक्ष है तो हम तो केवल अपने बंधनों का ही इंतजाम किये चले जा रहे हैं। तो हम मूढ़ हैं। अगर मोक्ष है, तो जिनको तुम सांसारिक रूप से समझदार कहते हो उनसे ज्यादा मूढ़ कोई भी नहीं। तो आदमी को अपनी रक्षा तो करनी पड़ती है। सबसे अच्छी रक्षा का उपाय है कि तुम कह दो, कहाँ है आकाश? कहाँ है मोक्ष? हम भी उड़ना जानते हैं, मगर आकाश ही नहीं है। हम भी परमात्मा को पा लेते, कोई बुद्धों ने ही पाया ऐसा नहीं। हम कुछ कमजोर नही हैं, हममें भी बल है, हमने भी पा लिया होता, लेकिन हो तभी न? है ही नहीं। ऐसा कहके तुम अपनी आत्मरक्षा कर लेते हो। तब तुम अपने कारागृह को घर समझ लेते हो।

जिस कारागृह में बहुत दिन रहे हो उसे कारागृह कहने की हिम्मत भी जुटानी मुश्किल हो जाती है। क्योंकि फिर उसमें रहोगे कैसे? अगर ईश्वर है, तो संसार में बेचैनी हो जाएगी खड़ी। अगर मोक्ष है, तो तुम्हारा घर तुम्हें काटने लगेगा, कारागृह हो जाएगा। तुम्हारे राग, आसक्ति के संबंध जहर मालूम होने लगेंगे। उचित

यही है कि तुम कह दो कि नहीं, न कोई मोक्ष है, न कोई परमात्मा है, ये सब जाल-साजों की बकवास है। कुछ सिरफिरों की बातचीत है। या कुछ चालबाजों की अटकल-बाजियाँ हैं। इस तरह तुम अपनी रक्षा कर लेते हो।

बुद्ध ने तुम्हें ये मौका न दिया। बुद्ध ने किसीको नास्तिक होने का मौका न दिया। बुद्ध के पास नास्तिक आए और आस्तिक हो गये। क्योंकि बुद्ध ने कहा, दुखी हो। इसको कौन इनकार करेगा? इसे तुम कैसे इनकार करोगे? ये तुम्हारे जीवन का सत्य है। और क्या तुम कहीं ऐसा आदमी पा सकते हो जो दुख से मुक्त न होना चाहता हो? मोक्ष न चाहता हो, लेकिन दुख से मुक्त तो सभी कोई होना चाहते है। पीड़ा है, बुद्ध ने कहा, काँटा छिदा है। बुद्ध ने कहा मैं चिकित्सक हूँ, मैं कोई दार्शनिक नहीं। लाओ मैं तुम्हारा कांटा निकाल दूं। कैसे इनकार करोगे इस आदमी को? ये शिक्षक की घोषणा ही नहीं कर रहा है कि मैं शिक्षक हूँ, या गुरु हूँ। ये तो इतना ही कह रहा है, सिर्फ एक चिकित्सक हूँ। और इस आदमी को देखके लोगों को भरोसा आया। क्योंकि इस आदमी के जीवन में दुख का कोई काँटा नहीं है। इस आदमी के जीवन में ऐसी परमशांति है, ऐसी विश्रांति है —सब लहरें खो गयी हैं पीड़ा की; एक अपूर्व उत्सव नितनूतन, प्रतिपल नया, अभी-अभी ताजा और जन्मा इस आदमी के पास अनुभव होता है —इस आदमी के पास एक हवा है, जिस हवा में आके ये दो बातें कर रहा है: अपनी हवा से खबर दे रहा है कि आनंद संभव है, और तुम्हारे दुख की तरफ इशारा कर रहा है कि तुम दुखी हो। दुख के कारण है। दुख के कारण को मिटाने का उपाय है।

तो बुद्ध का सारा चिंतन दुख पर खड़ा है। दुख है, दुख के कारण है, दुख के कारण को मिटाने के साधन हैं, और दुख से मुक्त होने की संभावना है। इस संभावना के वे स्वयं प्रतीक हैं। जिस स्वास्थ्य को वो तुम्हारे भीतर लाना चाहते है, उस स्वास्थ्य को वो तुम्हारे सामने मौजूद खड़ा किये हैं। तुम बुद्ध से ये न कह सकोगे कि चिकित्सक, पहले अपनी चिकित्सा कर। बुद्ध को देखने ही ये तो सवाल ही न उठेगा। और तुम बुद्ध से ये भी न कह सकोगे कि मैं दुखी नहीं हूँ। किस मुँह से कहोगे? और कहके तुम क्या पाओगे? सिर्फ गवाँओगे।

इसलिए बुद्ध ने तुम्हें देखकर व्यवस्था दी। और बुद्ध ये जानते हैं कि जिस दिन तुम्हारा दुख न होगा, जिस दिन तुम्हारी पीड़ा गिर जाएगी, तुम्हारी आँख के अंधकार का पर्दा कटेगा, तुम जागोगे, उस दिन तुम देख लोगे: मोक्ष है। जो दिखाया जा सकता हो, और जो दिखाने के अतिरिक्त और किसी तरह समझाया न जा सकता हो, उसे दिखाना ही चाहिए। उसकी बात करनी खतरनाक है। क्योंकि अक्सर लोग बातों में खो जाते हैं। कितने लोग बात के ही धार्मिक है। बातचीत ही करते

रहते हैं। ईश्वर चर्चा का एक विषय है। अनुभव का एक आयाम नहीं, जीवन को बदलने की एक आग नहीं, सिद्धांतों की राख है। शास्त्रों में लोग उलझे रहते हैं, बाल की खाल निकालते रहते हैं, उससे भी अहंकार को बड़ा रस आता है। बुद्ध ने शास्त्रों को इनकार कर दिया। बुद्ध ने कहा, ये पीछे तुम कर लेना। अभी तो उठो, अभी तो अपने जीवन के दुख को काट लो। बुद्ध ने ये कहा हफीज के शब्दों में—

उठो सनमकदेवालो तलाश लाजिम है

इधर ही लौट पड़ेंगे अगर खुदा न मिला

उठो, मंदिरोंवालो, जो तुम बैठ गये हो मंदिरों और मस्जिदों में, सनमकदेवालो! तलाश लाजिम है। 'इधर ही लौट पड़ेंगे अगर खुदा न मिला'।

थोड़ा दुख को मिटाने की कोशिश कर लो। अगर न मिटा, तो ये दुख तो है ही, फिर लौट पड़ेंगे। थोड़ा कारागृह के बाहर आओ, घबड़ाओ मत, अगर खुला आकाश न मिला, इधर ही लौट पड़ेंगे।

बुद्ध ने जिज्ञासा दी, आस्था नहीं। बुद्ध ने 'इंक्वायरी' दी, अन्वेषण दिया, आस्था नहीं। बुद्ध ने इतना ही कहा, ऐसे मत बैठे रहो। ऐसे बैठे तो कुछ न होगा। बैठे-बैठे तो कुछ न होगा। खोज लाजिम है। तुम दुखी हो, क्योंकि तुमने जीवन की सारी संभावनाएँ नहीं खोजीं। तुम दुखी हो, क्योंकि तुमने जन्म के साथ ही समझ लिया कि जीवन मिल गया। जन्म के साथ तो केवल संभावना मिलती है जीवन की, जीवन नहीं मिलता। जन्म के बाद जीवन खोजना पड़ता है। जो खोजता है उसे मिलता है। और जन्म के बाद जो बैठा-बैठा सोचता है कि मिल गया जीवन यही जीवन है, पैदा हो गये यही जीवन है, वो चूक जाता है।

तो बुद्ध ने ये नहीं कहा कि मैं तुमसे कहता हूँ कि ये मोक्ष, ये स्वातंत्र्य, ये आकाश, ये परमात्मा मिल ही जाएगा; ये मैं तुमसे नहीं कहता। मैं इतना ही कहता हूँ —

उठो सनमकदेवालो तलाश लाजिम है

— खोज जरूरी है।

इधर ही लौट पड़ेंगे अगर खुदा न मिला

और घबड़ाहट क्या है? ये घर तो फिर भी रहेगा। तुम्हारे मन की धारणाओं में फिर लौट आना, अगर निर्धारणा का कोई आकाश न मिले। लौट आना विचारों में, अगर ध्यान की कोई झलक न मिले। अगर शांत होने की सुविधा-सुराग न मिले, फिर अशांत हो जाना। कौनसी अड़चन है? अशांत होकर बहुत दिन देख लिया है। अशांति से कोई शांति तो मिली नहीं। बुद्ध कहते हैं, मैं भी तुम्हें एक झरोखे की खबर देता हूँ, थोड़ा इधर भी झांक लो — 'तलाश लाजिम है'।

बुद्ध ने खोज दी, श्रद्धा नहीं। इसे थोड़ा समझो। बुद्ध ने तुम्हें तुम्हारे जीवन पर

संदेह दिया, परमात्मा के जीवन पर श्रद्धा नही। ये दोनों एक ही बात है। अपने पे संदेह हो जाए, तो परमात्मा पर श्रद्धा आ ही जाती है। परमात्मा पे श्रद्धा आ जाए, तो अपने पे संदेह हो ही जाता है। तुम्हें अगर अपने अहंकार पे बहुत भरोसा है, तो परमात्मा पे श्रद्धा न होगी। तुम अगर अपने को बहुत समझदार समझ बैठे हो, तो फिर तुम्हे किसी मोक्ष, किसी आत्मा में भरोसा नही आ सकता। तुमने फिर अपने ज्ञान को आखिरी सीमा समझ ली। फिर विस्तार की जगह और सुविधा न रही। और ज्यादा जानने को तुम मान ही नही सकते, क्योंकि तुम ये नहीं मान सकते कि ऐसा भी कुछ है जो तुम नही जानते हो। जिसने अपने पर ऐसा अंधा भरोसा कर लिया, वही तो परमात्मा पर भरोसा नहीं कर पाता। जिसने इस तथा-कथित जीवन को जीवन समझ लिया, वही तो महाजीवन की तरफ जाने में असमर्थ हो जाता है, पंगु हो जाता है।

तो दो उपाय हैं। बुद्ध को छोडकर बाकी बुद्धपुरुषो ने परमात्मा की तरफ श्रद्धा जगायी। बुद्ध ने तुम्हारे जीवन के प्रति संदेह जगाया। बात वही है। किसीने कहा गिलास आधा भरा है। किसीने कहा गिलास आधा खाली है। बुद्ध ने कहा गिलास आधा खाली है। क्योंकि तुम खाली हो, भरे को तुम अभी समझ न पाओगे। और आधा गिलास खाली है ये समझ में आ जाए, तो जल्दी ही तुम आधा गिलास भरा है उसके करीब पहुँचने लगोगे। तुमसे ये कहना कि आधा गिलास भरा है, गलत होगा, क्योंकि तुम खाली मे जी रहे हो। नकार का तुम्हे पता है, रिक्तता का तुम्हें पता है, पूर्णता का तुम्हे कोई पता नही। इसलिए बुद्ध ने शून्य को अपना शास्त्र बना लिया।

बुद्ध ने तुम्हे देखा, तुम्हारी बीमारी को देखा, तुम्हारी नब्ज पर निदान किया। इसलिए बुद्ध से ज्यादा प्रभावी कोई भी नही हो सकता। क्योंकि मनुष्य के मन में बुद्ध को समझने में कोई अड़चन न आयी।

बुद्ध बहुत सीधे-साफ हैं। ऐसा नही कि जिंदगी मे जटिलता नही है, जिंदगी बड़ी जटिल है। लेकिन बुद्ध बड़े सीधे-साफ हैं। ऐसा समझो कि अगर तुम कबीर से पूछो, या महावीर से पूछो, या कृष्ण से पूछो, तो वे बात वहाँ की करते हैं — इतने दूर की, कि तुम्हारी आँखों में पास ही नहीं दिखायी पड़ता, उतना दूर तुम्हें कैसे दिखायी पड़ेगा! तो एक ही उपाय है, या तो तुम इनकार कर दो, जोकि ज्यादा ईमानदार है। इसलिए नास्तिक ज्यादा ईमानदार होते हैं बजाय आस्तिकों के। और या तुम्हे दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन तुम स्वीकार कर लो, क्योंकि जब महावीर को दिखायी पड़ता है, तो होगा ही। तो तुम भी हाँ में हाँ भरने लगो। और तुम कहो कि हाँ, मुझे भी दिखायी पड़ रहा है।

इसलिए जिनको तुम आस्तिक कहते हो वो बेईमान होते हैं। नास्तिक कम से कम सचाई तो स्वीकार करता है, कि मुझे नहीं दिखायी पड़ रहा है। हालाँकि वो कहता गलत ढंग से है। वो कहता है, ईश्वर नहीं है। उसे कहना चाहिए, मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है। क्योंकि तुम्हें दिखायी न पड़ता हो इसलिए जरूरी नहीं है कि न हो। बहुत सी चीजें आज नहीं दिखायी पड़तीं, कल दिखायी पड़ जाएँगी। और बहुत सी चीजें दिखायी आज पड़ सकती हैं, लेकिन तुम्हारी आँख बंद है।

नास्तिक के कहने में गलती हो सकती है। लेकिन ईमानदारी में झूठ नहीं है। नास्तिक यही कहना चाहता है कि मुझे दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन वो कहता है, नहीं, ईश्वर नहीं है। उसके कहने का ढंग अलग है। बात वो सही ही कहना चाहता है। आस्तिक बड़ी झूठी अवस्था में जीता है। आस्तिक को दिखायी नहीं पड़ता, वो ये भी नही कहता कि मुझे दिखायी नहीं पड़ता। वो ये भी नहीं कहता कि ईश्वर नही है। जो नहीं दिखायी पड़ता उसे स्वीकार कर लेता है, किसी और के भरोसे पर। और तब यात्रा बंद हो जाती है। क्योंकि जो तुमने जाना नही और मान लिया, तुम उसे खोजोगे क्यो ?

इसलिए बुद्ध ने कहा तलाश लाजिम है। खोज जरूरी है। ईश्वर है या नही, ये फिक्र छोड़ो। लेकिन ऐसे बैठे-बैठे जीवन का ढंग दुखपूर्ण है। निराशा से भरा है, मूर्छित है। जागो। और बुद्ध ने करोड़ों-करोड़ों लोगों को परमात्मा तक पहुँचा दिया।

इसलिए मैं कहता हूँ इस सदी में बुद्ध की भाषा बड़ी समसामयिक है। 'कंटेंप्रेरी' है। क्योंकि ये सदी बड़ी ईमानदार सदी है। इतनी ईमानदार सदी पहले कभी हुई नहीं। तुम्हें ये सुनके थोड़ी परेशानी होगी, तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि तुम कहोगे, ये सदी और ईमानदार! सब तरह के बेईमान दिखायी पड़ रहे हैं। लेकिन मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि इस सदी से ज्यादा ईमानदार सदी कभी नहीं हुई। आदमी अब वही मानेगा, जो जानेगा। अब तुम ये न कह सकोगे कि हमारे कहे से मान लो। अब तुम ये न कह सकोगे कि हम बुजुर्ग हैं, हम बड़े अनुभवी हैं, और हमने बाल ऐसे धूप में नहीं पकाए हैं, हम कहते हैं इसलिए मान लो। अब तुम्हारी इस तरह की बातें कोई भी न मानेगा। अब तो लोग कहते हैं नगद स्वीकार करेंगे, उधार नहीं। अब तो हम जानेंगे तभी स्वीकार करेंगे। ठीक है, तुमने जान लिया होगा। लेकिन तुम्हारा जानना तुम्हारा है, हमारा नहीं। हम भटकेंगे अँधेरे में भला, लेकिन हम उस प्रकाश को न मानेंगे जो हमने देखा नहीं।

इसलिए मैं कहता हूँ ये सदी बड़ी ईमानदार होने के कारण नास्तिक है, अधार्मिक है। पुरानी सदियाँ बेईमान थीं। लोग उन मंदिरों में झुके, जिनका उन्हें कोई अनुभव

न था। उनका झुकना औपचारिक रहा होगा। सर झुक गया होगा, हृदय न झुका होगा। और असली सवाल वही है कि हृदय झुके। वो ईश्वर को मानके झुक गये होंगे। लेकिन जिस ईश्वर को जाना नही है उसके सामने झुकोगे कैसे? कवायत हो जाएगी, शरीर झुक जायगा, तुम कैसे झुकोगे? उन्होने उस झुकने में से भी अकड़ निकाल ली होगी। वो और अहंकारी होके घर आ गये होंगे, कि मै रोज पूजा करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, रोज माला फेरता हूँ।

माला फेरनेवालों को तुम जानते ही हो। उन जैसे अहंकारी तुम कहीं न पाओगे। उनका अहंकार बड़ा धार्मिक अहकार है। उनके अहंकार पर रामनाम की चदरिया है। उनका अहंकार बड़ा पवित्र मालूम होता है, शुद्ध नहाया हुआ। पर है तो अहंकार ही। और जहर जितना शुद्ध होता है उतना ही खतरनाक हो जाता है।

नहीं, इस सदी ने साफ कर लिया है कि अब हम वही मानेंगे जो हम जानते हैं। ये सदी विज्ञान की है। तथ्य स्वीकार किये जाते है, सिद्धांत नही। और तथ्य भी अंधी आँखों से स्वीकार नही किये जाते है। सब तरफ से खोजबीन कर ली जाती है, जब असिद्ध करने का कोई उपाय नही रह जाता, तभी कोई चीज स्वीकार की जाती है। इसलिए ऐसा घटता है-- बर्ट्रेंड रसॅल जैसा व्यक्ति जो नास्तिक है, जीसस को श्रद्धा नही दे सकता, हालांकि ईसाई घर में पैदा हुआ है, सारे संस्कार ईसाई के है। लेकिन बर्ट्रेंड रसॅल ने एक किताब लिखी है -- 'व्हॉय आइ एम नाट ए क्रिश्चियन' -- मैं ईसाई क्यों नही हूं? ईसा पर बड़े शक उठाए। शक उठाए जा सकते हैं। क्योंकि ईसा की व्यवस्था में कोई तर्क नही है। ईसा कवि है। कहानियाँ कहने में कुशल है। विरोधाभासी है। उनके शब्द पहेलियाँ है। हां, जो खोज करेगा वो उन पहेलियों के आखिरी राज को खोल लेगा। लेकिन वो तो बड़ी खोज की बात है। और उस खोज में जीवन लग जाते है। लेकिन जो पहेली सीधा-सीधा देखेगा, वो इनकार कर देगा। रसॅल ने जीसस को इनकार कर दिया। लेकिन रसॅल ने कहा कि मैं नास्तिक हूँ, मगर बुद्ध को इनकार नहीं कर सकता। बुद्ध को इनकार कैसे करोगे, यही तो मैं कह रहा हूँ? रसॅल के मन में भी बुद्ध के प्रति वैसी ही श्रद्धा है, जैसी किसी भक्त के मन मे हो। इनकार करने की जगह नहीं छोड़ी इस आदमी ने। इस आदमी ने ऐसी बात ही नही कही जो तर्क की कसौटी पर खरी न उतरती हो।

बुद्ध वैज्ञानिक द्रष्टा हैं। बुद्ध को इस भाँति समझोगे तो तुम्हारे लिए बड़े कारगर हो सकते हैं। हालाँकि ध्यान रखना, जैसे-जैसे गहरे उतरोगे पानी में, जैसे-जैसे बुद्ध के फुसलावे में आ जाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि जितना तर्क पहले दिखायी पड़ता था वो पीछे नही है। मगर तब कौन चिंता करता है, अपना ही अनुभव शुरू हो

जाता है। फिर कौन प्रमाण माँगता है ? प्रमाण तो हम तभी माँगते हैं, जब अपना अनुभव नहीं होता। जब अपना ही अनुभव हो जाता है ...। मैं तुम्हें तर्क देता हूँ और तर्क से इतना ही तुम्हें राजी कर लेता हूँ कि तुम मेरी खिड़की पे आके खड़े हो जाओ, बस। फिर तो खिड़की से खुला आकाश तुम्हीं को दिखायी पड़ जाता है। फिर तुम मुझसे नहीं पूछते कि आप प्रमाण दें आकाश के होने का। मैं, तुम्हें अब प्रमाण देने का प्रश्न ही नहीं उठता है — न तुम माँगते हो, न मैं देता हूँ। और तुम मुझे धन्यवाद भी दोगे कि भला किया कि पहले मुझे तर्क से समझाके खिड़की तक ले आए। क्योंकि अगर तर्क से न समझाया होता तो मैं खिड़की तक आने को भी राजी नहीं होता। मैं एक कदम न चलता। अगर तुमने पहले ही इस आकाश की बात की होती जो मेरे लिए अनजाना है, अपरिचित है, तो मैं हिला ही न होता अपनी जगह से। तुमने भला किया आकाश की बात न की, खिड़की की बात की। असीम की बात न की, सीमा की बात की। तुमने भला किया आनंद की बात न की, दुख-निरोध की बात की। तुमने भला किया ध्यान की बात न की, विचार से मुक्त होने की बात की। तुमने भला किया श्रद्धा न मांगी, वो मैं दे न सकता, तुमने मेरे संदेह का ही उपयोग कर लिया। तुमने काँटे से काँटा निकाल दिया। भला किया।

इसलिए बुद्ध के प्रति कृतज्ञता अनुभव होगी। यद्यपि बुद्ध ने तुम्हें धोखा दिया। जीसस तुम्हे इतना धोखा नहीं दे रहे। वो बात वही कर रहे हैं जो है। जैसा आखिर में तुम पाओगे, जीसस ने पहले ही कह दिया। बुद्ध कुछ और कह रहे हैं। तुम्हे देखके कह रहे हैं। जैसा नहीं है वैसा कह रहे हैं। लेकिन तुम अनुग्रहीत अनुभव करोगे कि कृपा की, करुणा की कि इतना धोखा दिया; अन्यथा मैं खिड़की पे न आता।

तुम चकित होओगे अगर मैं तुमसे कहूँ, झेन फकीरों ने कहा भी है, झेन फकीर लिंची ने कहा है, बुद्ध से ज्यादा झूठ बोलनेवाला आदमी नहीं हुआ। लिंची रोज पूजा करता है बुद्ध की, सुबह से फूल चढाता है, आँसू बहाता है, लेकिन कहता है बुद्ध से झूठ बोलनेवाला आदमी नहीं। लिंची ने एक बार अपने शिष्यों से कहा कि ये बुद्ध के शास्त्रों को आग लगा दो, ये सब सरासर झूठ हैं। किसीने पूछा, लेकिन तुम रोज आँसू बहाते हो, रोज सुबह फूल चढ़ाते हो, और हमने तुम्हें घंटों बुद्ध की प्रतिमा के सामने भाव-विभोर देखा है। इन दोनों को हम कैसे जोड़ें ? ये दोनों बातें बड़ी असंगत हैं। लिंची ने कहा, उनकी करुणा के कारण वो झूठ बोले। उनके झूठ के कारण मैं वहाँ तक पहुँचा जहाँ सच का दर्शन हुआ। बुद्ध अगर सच ही बोलते तो मैं पहुँच न पाता।

सभी ज्ञानी बहुत उपाय करते है तुम्हें पहुँचाने के। वो सभी उपाय सही नहीं हैं। जैसे तुम घर में बैठे हो, तुम कभी बाहर नही गये, मैंने बाहर जाके देखा कि बड़े फूल खिले हैं, पक्षियों के अनूठे गीतों का राज्य है, सूरज निकला है, खुला मुक्त असीम आकाश है, सब तरफ रोशनी है, और तुम अँधेरे में दबे बैठे हो, और सर्दी में ठिठुर रहे हो; लेकिन तुम कभी बाहर नहीं गये, अब मैं तुम्हें कैसे बाहर ले जाऊँ? तुमसे कैसे कहूँ, तुम्हें कैसे खबर दूं बाहर के सूरज की, क्योंकि तुम्हारी भाषा में सूरज के लिए कोई पर्यायवाची नहीं है। तुम्हें कैसे बताऊँ फूलों के बाबत, क्योंकि तुम्हारी भाषा में फूलों के लिए कोई शब्द नहीं है। रंग तुमने जाने ही नहीं, रंगों का उत्सव तुम कैसे सुनोगे-समझोगे? तुमने सिर्फ दीवाल देखी है। उस दीवाल को तुमने अपनी जिंदगी समझी है। तुमसे कैसे कहूँ कि ऐसा भी आकाश है, जिसकी कोई सीमा नहीं? तुम कहोगे, हो चुकी बातें, लनतरानी है।

तुमने कहानी सुनी है कि एक मेढक सागर से आ गया था और एक कुएँ में उतर गया था। कुएँ के मेढक ने पूछा, मित्र कहाँ से आते हो? उसने कहा, सागर से आता हूँ। कुएँ के मित्र ने पूछा, सागर कितना बड़ा है? क्योंकि उस कुएँ के मेढक ने कुएँ से बड़ी कोई चीज कभी देखी न थी। उसीमें पैदा हुआ था, उसीमें बड़ा हुआ था। कभी कुएँ की दीवालों को पार करके बाहर गया भी न था। दीवालें बड़ी भी थी। और पार इससे बडा कुछ हो भी सकता है, इसे मानने का कोई कारण भी न था। कभी बाहर से भी कोई मेढक न आया था, जिसने खबर दी हो। सागर के मेढक ने कहा, बहुत बडा है। लेकिन बहुत से कहीं पता चलता है! कुएँ के मेढक को बहुत बड़े का क्या मतलब? कुएँ का मेढक! आधे कुएँ में छलाँग लगायी उसने और कहा, इतना बड़ा। आधा कुआँ, इतना बड़ा। उसने कहा नही —नही, बहुत बड़ा है। तो उसने पूरी छलाँग लगायी। कहा, इतना बड़ा? लेकिन अब उसे संदेह पैदा होने लगा। सागर के मेढक ने कहा, भाई! बहुत बड़ा है।

उसे भरोसा तो नहीं आया। लेकिन फिर भी उसने एक और आखिरी कोशिश की। उसने पूरा चक्कर कुएँ का दौड़के लगाया। कहा, इतना बड़ा? सागर के मेढक ने कहा, मै तुमसे कैसे कहूँ? बहुत बड़ा है। इस कुएँ से उसका कोई पैमाना नही। उसका कोई माप-जोख नहीं हो सकता। तो कुएँ के मेढक ने कहा, झूठ की भी एक सीमा होती है। किसी और को धोखा देना। हम ऐसे नासमझ नहीं हैं। तुम किसको मूढ़ बनाने चले हो? अपनी राह लो। इस कुएँ मे बड़ी चीज न कभी सुनी गयी, न देखी गयी। अपने माँ-बाप से, अपने पुरखों से भी मैंने इससे बड़ी चीज की कोई बात नहीं सुनी। वे तो बड़े अनुभवी थे, मै नया हो सकता हूँ। हम दर-पीढ़ी इस कुएँ में रहे हैं।

अगर मैं तुमसे बाहर की बात आके कहूँ तुम्हारे अंधकार-कक्ष में, तुम भरोसा न करोगे। इसीलिए तो नास्तिकता पैदा होती है। जब भी कोई परमात्मा में जाके लौटता है, और तुम्हें खबर देता है, और वो इतना लड़खड़ा गया होता है अनुभव से — वो इतना अवाक् और आश्चर्यचकित होके लौटता है कि उसकी भाषा के पैर डगमगा जाते हैं। अनुभव इतना बड़ा और शब्द इतने छोटे, शब्दों में अनुभव समाता नहीं। वो बोलता है, और बोलने की व्यर्थता दिखायी पड़ती है। वो हिचकिचाता है। वो कहता भी है, और कहते डरता भी है, कि जो भी कहेगा गलत होगा, और जो भी कहेगा वो सत्य के अनुकूल न होगा। क्योंकि भाषा तुम्हारी, अनुभव बाहर का। भाषा दीवालों की, अनुभव असीम का।

तो मैं क्या करूं तुम्हारे कमरे में आके? लिंची ठीक कहता है, बुद्ध झूठ बोले। बुद्ध ने चर्चा नहीं की फूलों की, बुद्ध ने चर्चा नहीं की पक्षियों के गीत की, बुद्ध ने चर्चा नहीं की झरनों के कलकल नाद की; बुद्ध ने सूरज की रोशनी की और किरणों के विराट जाल की कोई वात नहीं की। नहीं कि उनको पता नहीं था। उनसे ज्यादा किसको पता था?

उन्होंने बात कुछ और की। उन्होंने बात की तुम्हारी दीवालों की, उन्होंने बात की तुम्हारे अंधकार की, उन्होंने बात की तुम्हारी पीड़ा की, तुम्हारे दुख की; उन्होंने पहचाना कि तुम्हें बाहर ले जाने का क्या उपाय हो सकता है।

बाहर के दृश्य तुम्हें आकर्षित न कर सकेंगे। क्योंकि आकर्षण तभी होता है जब थोड़ा अनुभव हो। थोड़ा भी स्वाद लग जाए मिठास का, तो फिर तुम मिठाई के लिए आतुर हो जाते हो। लेकिन नमक ही नमक जीवन में जाना हो, कड़वाहट ही कड़वाहट भोगी हो, मिठास का सपना भी न आया हो कभी, क्योंकि सपना भी उसीका आता है जिसका जीवन में थोड़ा अनुभव हो, सपने भी जीवन का ही प्रतिफलन होते हैं।

तो बुद्ध ने तुमसे क्या कहा? बुद्ध ने कहा कि भागो, इस मकान में आग लगी है। आग लगी न थी। लिंची ठीक कहता है, बुद्ध झूठ बोले।

मगर लिंची रोज उनको धन्यवाद भी देता है कि तुम्हारी अनुकंपा कि तुम झूठ बोले, नहीं तो मैं भागता ही न। घर में आग लगी है! बुद्ध ने तुम्हें भयभीत कर दिया। तुम्हारे दुख के चित्र उभारे, तुम्हारे छुपे दुख को बाहर निकाला। तुमने जो दबा रखा है अपने भीतर अंधकार, उसको प्रगट किया। तुम्हारे दुख को इतना उभारा कि तुम घबड़ा गये, तुम भयभीत हो गये। और जब बुद्ध ने कहा इस घर में आग लगी है, तो तुम घबड़ाहट में भाग खड़े हुए। तुम भूल ही गये इनकार करना

कि बाहर तो है ही नहीं, जाएँ कहाँ ? जब घर में आग लगी हो तो कौन सोच-विचार की स्थिति में रह जाता है ? भाग खड़े हुए ।

अमरीका में एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था । एक सिनेमागृह में जब लोग आधा घंटा तक पिक्चर देखने में तल्लीन हो चुके थे, अचानक एक आदमी जोर से चिल्लाया — आग ! आग !! उस आदमी को बिठा रखा था एक मनोवैज्ञानिक ने । भगदड़ शुरू हो गयी । मैनेजर चिल्ला रहा है कि कहीं कोई आग नहीं है, लेकिन कोई सुनने को राजी नहीं । जब एक दफा भय पकड़ ले !

लोगों ने दरवाजे तोड़ डाले, कुर्सियाँ तोड़ डालीं, भीड़-भक्कम हो गयी । एक दूसरे के ऊपर भाग खड़े हुए । बच्चे गिर गये, दब गये । बामुश्किल कब्जा पाया जा सका । जब लोग बाहर आ गये, तभी उनको भरोसा आया कि किसीने मजाक कर दी । लेकिन एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था कि लोग शब्दों से कितने प्रभावित हो जाते हैं । आग ! बस काफी है । फिर तुम ये भी नहीं देखते कि आग है भी, या नहीं ।

बुद्ध ने तुम्हारे दुख को उभारा । बुद्ध चिल्लाए, आग ! तुम भाग खड़े हुए । उसी भागदौड में तुममें से कुछ बाहर निकल गये । निची उन्हीं में से है, जो बाहर निकल गया । अब वो कहता है खूब झूठ बोले ! कहीं आग न लगी थी । कहीं धुआँ भी न था, आग तो दूर । मगर उसी भय में बाहर आ गये । इसलिए चरणों में सिर रखता है कि न तुम चिल्लाते, न हम बाहर आते ।

मैं भी तुमसे न मालूम कितने-कितने ढंग के झूठ बोले जाता हूँ । जानता हूँ, सौभाग्यशाली होंगे तुममें वो, जो किसी दिन उन झूठों को पहचान लेंगे । लेकिन वो तुम तभी पहचान पाओगे जब तुम बाहर निकल चुके होओगे । तब तुम नाराज न होओगे । तुम अनुग्रहीत होओगे ।

बुद्ध ने तुम्हारी भाषा बोली । तुम्हें जगाना है, तुम्हारी भाषा बोलनी ही जरूरी है । बुद्ध अपनी भाषा तुमसे नहीं बोले । हाँ, बुद्ध के पास कोई बुद्धपुरुष होता तो उससे वो अपनी भाषा बोलते ।

एक सुबह वे फूल लेकर आए हैं । ऐसा कभी न हुआ था । कभी वे कुछ लेके न आए थे । और वो बैठ गये हैं बोलने के लिए, भीड़ सुनने को आतुर है । और वो फूल को देखे चले जाते हैं । धीरे-धीरे भीड़ बेचैन होने लगी, क्योंकि लोग सुनने को आए थे, और बुद्ध उस दिन दिखा रहे थे । जो लोग सुनने को आए हैं वो देखने को राजी नहीं होते । ये बड़े मजे की बात है । तुम अगर हीरे की बाबत सुनने आए हो, और मैं हीरा लेके भी बैठ जाऊँ तो भी तुम बेचैन होगे । क्योंकि तुम सुनने आए थे । तुम कानों का भरोसा करने आए थे । मैंने तुम्हारी आँखों को पुकारा,

तुम्हारी आँखें बंद हैं। हीरे की बात करूँ, तुम सुन लोगे। हीरा दिखाऊँ, तुम्हें दिखायी ही न पड़ेगा।

बुद्ध फूल लिए बैठे रहे। उस दिन बुद्ध ने एक परम उपदेश दिया, जैसा उन्होंने कभी न दिया था। उस दिन बुद्ध ने अपना बुद्धत्व सामने रख दिया। मगर देखने वाला चाहिए। सुननेवाले थे। आँख के अंधे थे, कान के कुशल थे।

तुम्हारे सब शास्त्र कान से आए हैं। सत्य आँख से आता है। सत्य प्रत्यक्ष है। सुनी हुई बात नहीं। सत्य कोई श्रुति नहीं है, न कोई स्मृति है। सत्य दर्शन है।

उस दिन बुद्ध बैठे रहे। लोग परेशान होने लगे। बुद्धत्व सामने हो, लोग परेशान होने लगे! अंधे रहे होंगे। घड़ी पे घड़ी बीतने लगी। और लोग सोचने लगे होंगे अब घर जाने की, कि ये मामला क्या है? और कोई कह भी न सका। बुद्ध से कहो भी क्या, कि आप ये क्या कर रहे हैं? बैठे क्यों हैं? बोलो कुछ। बोलो तो हम सुनें। शब्दों तक हमारी पहुँच है। किसीको ये न दिखायी पड़ा कि ये आदमी क्या दिखा रहा है।

फूल को बुद्ध देखते रहे। परमशून्य। एक विचार की तरंग भीतर नहीं। मौजूद, और मौजूद नहीं। उपस्थित और अनुपस्थित। विचार का कण भी नहीं। परम ध्यान की अवस्था। समाधि साकार। और हाथ में खिला फूल। प्रतीक पूरा था। ऐसी समाधि साकार हो, तो ऐसा जीवन का फूल खिल जाता है। कुछ और कहने को न था। अब और कहने को बचता भी क्या है? पर आँख के अंधे!

तुम्हीं सोचो। आज मैं बोलता न और फूल लेके आके बैठ गया होता! तुम इधर-उधर देखने लगते। तुम लक्ष्मी की तरफ देखते कि मामला क्या है? दिमाग खराब हो गया? तुम उठने की तैयारी करने लगते। तुम एक दूसरे की तरफ देखते कि अब क्या करना?

अब ऐसी बेचैनी की लहर सब तरफ फैलने लगी — उतने चैन के सामने भी लोग बेचैन हो गये, उतनी शांति के सामने लोग अशांत हो गये — तब एक बुद्ध का शिष्य महाकाश्यप: इसके पहले उसका नाम भी किसीने न सुना था, क्योंकि आँख वालों का अंधों से मेल नहीं होता। इसका नाम भी पहले किसीने नहीं सुना था, यह पहले मौके पर इसका नाम पता चला: जब लोगों को इतना बेचैन देखा तो वो खिलखिला के हँसने लगा। उस सन्नाटे में उसकी खिलखिलाहट ने और लोगों को चौंका दिया कि यहाँ एक ही पागल नहीं — ये बुद्ध तो दिमाग खराब मालूम होता है, एक ये भी आदमी पागल है। ये कोई हँसने का वक्त है? ये बुद्ध को क्या हो गया है? और ये महाकाश्यप क्यों हँसता है?

और बुद्ध ने आँख उठायी और महाकाश्यप को इशारा किया, और फूल उसे भेंट

कर दिया। और भीड़ से ये कहा, जो मैं शब्दों से तुम्हें दे सकता था, तुम्हें दिया। जो शब्दों से नहीं दिया जा सकता, वो महाकाश्यप को देता हूँ। एक यही समझ पाया। तुम सुननेवाले थे, एक यही देखनेवाला था।

यही कथा झेन के जन्म की कथा है। झेन शब्द आता है ध्यान से। जपान में जेन हो गया, चीन में चान हो गया, लेकिन मूलरूप है ध्यान। बुद्ध ने उस दिन ध्यान दे दिया। झेन फकीर कहते हैं — 'ट्रांसमिशन आउटसाइड स्क्रिप्चर'। शास्त्रों के बाहर दान। शास्त्रों से नहीं दिया उस दिन शब्द से नहीं दिया। महाकाश्यप को सीधा-सीधा दे दिया। शब्द डालकर न दिया। जैसे जलता हुआ अंगारा बिना राख के दे दिया। महाकाश्यप चुप हो रहा। चुप्पी में बात कह दी गयी। जो बुद्ध ने कहा था, कि मुट्ठी भर सूखे पत्ते, ऐसा ही मैंने तुमसे जो कहा है वो इतना ही है। और जो कहने को है, वो इतना है जितना इस विराट जंगल में सूखे पत्तों के ढेर।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ उस दिन उस फूल मे पूरा जंगल दे दिया। उस दिन कुछ बचाया नहीं। उस दिन सब दे दिया। उस दिन बुद्ध उँडल गये। उस दिन महाकाश्यप का पात्र पूरा भर गया। तब से झेन में ये व्यवस्था रही है कि गुरु उसी को अपना अधिकारी नियुक्त करता है, जो मौन में लेने को राजी हो जाता है। जो शब्द की जिद करता है, वो सुनता है, ठीक है। साधना है, ठीक है। लेकिन वो खोजता उसे है अपने उत्तराधिकारी की तरह जो शून्य में और मौन में लेने को राजी हो जाता है। जैसे बुद्ध ने उस दिन महाकाश्यप को फूल दिया। ऐसे ही मौन में।

तो ऐसा नहीं है कि बुद्ध ने जो कहा है वही सब है। वो तो शुरुआत है, वो तो बारहखड़ी है। उसका सहारा लेके आगे बढ़ जाना। वो तो ऐसा ही है जैसे हम स्कूल में बच्चों को सिखाते हैं 'ग' गणेश का — या अब सिखाते हैं 'ग' गधा का। क्योंकि अब धार्मिक बात तो सिखायी नहीं जा सकती। राज्य धर्मनिरपेक्ष है, तो गणेश की जगह गधा। गणेश लोगे तो मुसलमान नाराज हो जाएँ, कि जैन नाराज हो जाएँ! गधा 'सिक्यूलर' है, धर्मनिरपेक्ष है। वो सभी का है। 'ग' गणेश का। न तो 'ग' गणेश का है, न 'ग' गधे का है। 'ग' ग का है। लेकिन बच्चे को सिखाते हैं। फिर ऐसा थोड़ी' है कि वह सदा याद रखना है कि जब भी तुम कुछ पढ़ो तब बार-बार जब भी 'ग' आ जाए, तो कहो 'ग' गणेश का। तो पढ़ ही न पाओगे। पढ़ना ही मुश्किल हो जाएगा। जो साधन था वही बाधक हो जाएगा।

जो कहा है, वो तो ऐसा ही है — 'ग' गणेश का। तो पहली कक्षा के विद्यार्थी की बात है। लेकिन बुद्ध ने पहली कक्षा की बात कही, क्योंकि तुम वहीं खड़े हो। उन्होंने विश्वविद्यालय के आखिरी छोर की बात नहीं कही। वहाँ कभी तुम पहुँचोगे, तब देखा जाएगा। पर वहाँ पहुँच गये जब तुम, तो कहने की जरूरत नहीं रह

जाती, तुम खुद ही देखने में समर्थ हो जाते हो।

शुरुआत है शून्य से, अंत है देखने से। शुरुआत है संदेह से, अंत है श्रद्धा पर। संदेह को कैसे श्रद्धा तक पहुंचाया जाए, नास्तिकता को कैसे आस्तिकता तक पहुंचाया जाए, नहीं को कैसे हां में बदला जाए, यही बुद्ध की कीमिया है, यही बुद्ध-धर्म है। एस धम्मो सनंतनो।

दूसरा प्रश्न: कल आपने कहा कि मोक्ष, बुद्धत्व की आकांक्षा भी वासना का ही एक रूप है। और फिर कहा, जबतक बुद्धत्व प्राप्त न हो जाए तब तक चैन से मत बैठना। इस विरोधाभास को समझाएं।

मोक्ष की, बुद्धत्व की आकांक्षा भी बुद्धत्व में बाधा है। फिर मैंने तुमसे कहा, जबतक मोक्ष उपलब्ध न हो जाए तबतक तृप्त होके मत बैठ जाना। तबतक अभीप्सा करना, तबतक आकांक्षा करना। स्वभावतः विरोधाभास दिखायी पड़ता है। लेकिन मैं यही कह रहा हूं कि जब तक आकांक्षारहितता उपलब्ध न हो जाए तबतक आकांक्षारहितता की आकांक्षा करते रहना। ये विरोधाभास दिखायी पड़ता है, क्योंकि मैं दो तत्वों को जोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। तुम जहां हो उसको, और तुम जहां होने चाहिए उसको जोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। इसलिए विरोधाभास। जैसे कोई बच्चा पैदा हो, अभी जन्मा है, और हमें उसे मौत की खबर देनी हो। यद्यपि जो जन्म गया वो मरने लगा, लेकिन बच्चे को मृत्यु की बात समझानी बड़ी कठिन हो जाएगी। मृत्यु की बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। अभी तो जन्म ही हुआ है, और ये मौत की क्या बात है? और जन्म के साथ मौत को कैसे जोड़ो? बच्चे को विरोधाभासी लगेगी, लेकिन विरोधाभासी है नहीं। जन्म के साथ ही मौत की यात्रा शुरु हो गयी। जो जन्मा, वो मरने लगा।

जितने जल्दी मौत समझायी जा सके उतना ही अच्छा है। ताकि जन्म व्यर्थ न चला जाए। अगर जन्म के साथ ही मौत की समझ आ जाए तो जन्म और मृत्यु के बीच में बुद्धत्व उपलब्ध हो जाता है। तो आदमी जाग जाता है जन्म और मृत्यु दोनों से। जिस जन्म की मृत्यु होती है उन दोनों के बीच जीवन तो नहीं हो सकता; आभास होगा। तो जब जन्म की मृत्यु ही हो जाती है, तो इस जीवन का क्या भरोसा? तो फिर हम किसी और जीवन की खोज करें — किसी और जीवन की, जहां न जन्म हो, न मृत्यु।

समझें इस प्रश्न को अब।

यदि मैं तुमसे कहूं आकांक्षा न करो, तो तुम यात्रा ही शुरू न करोगे, जन्म ही न होगा। अगर मैं तुमसे ये कहूं कि आकांक्षा भी छूट जानी चाहिए, तो तुम कभी

पहुँचोगे नहीं। मोक्ष की आकांक्षा मोक्ष की यात्रा का पहला कदम है। और मोक्ष की आकांक्षा का त्याग मोक्ष की यात्रा का अंतिम कदम है। दोनों मुझे तुमसे कहने होंगे।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक हैं जो कहते हैं, जब आकांक्षा से बाधा ही पड़ती है तो क्या मोक्ष की आकांक्षा करना? फिर हम जैसे हैं वैसे ही भले हैं। इससे ये मत समझ लेना कि उन्होंने संसार की आकांक्षाएँ छोड़ दीं। उन्होंने सिर्फ मोक्ष की आकांक्षा न की। उन्होंने अपने को धोखा दे लिया। संसार की आकांक्षाएँ तो वे किये ही चले जाएँगे। क्योंकि संसार की आकांक्षाएँ तो तभी छूटती हैं जब कोई मोक्ष की आकांक्षा करता है। जब कोई मोक्ष की आकांक्षा पर सब दांव पे लगाता है, तब संसार की आकांक्षाएँ छूटती हैं। तब संसार की आकांक्षाओं में जो ऊर्जा संलग्न थी वो मुक्त होती है, मोक्ष की तरफ लगती है। लेकिन जो मोक्ष की तरफ की आकांक्षा किये चला जाता है, वो भी भटक जाता है। क्योंकि अंततः वह आकांक्षा भी बाधा बन जाएगी। एक दिन उसे भी छोड़ना है।

ऐसा समझो, रात हम दिया जलाते हैं। दिये की बाती और तेल, दिया जलना शुरू होता है। तो दिये की बाती पहले तो तेल को जलाती है। फिर जब तेल जल जाता है, तो दिये की बाती अपने को जला लेती है। सुबह न तेल बचता है, न बाती बचती है। तब समझो कि सुबह हुई। फिर भोर हुई।

तो पहले तो संसार की आकांक्षाओं का तुम तेल की तरह उपयोग करो, और मोक्ष की आकांक्षा का बाती की तरह। तो संसार की सारी आकांक्षाओं को जला दो मोक्ष की बाती जलाने में। तेल का उपयोग कर लो, ईंधन का उपयोग कर लो। सारी आकांक्षाएँ इकट्ठी कर लो संसार की, और मोक्ष की एक आकांक्षा पे समर्पित कर दो। झोंक दो सब। मगर ध्यान रखना, जिस दिन सब तेल चुक जाएगा, उस दिन ये बाती भी जल जानी चाहिए। नहीं तो सुबह न होगी। ये बाती कहीं बाधा न बन जाए।

तो एक तो सांसारिक लोग हैं, जो कभी मोक्ष की आकांक्षा ही नहीं करते। फिर दूसरे मंदिरों, मस्जिदों में बैठे हुए धार्मिक लोग हैं, जिन्होंने संसार की आकांक्षा छोड़ दी और परमात्मा की आकांक्षा पकड़ ली। अब उस आकांक्षा को नहीं छोड़ पा रहे हैं। ऐसा समझो कि कुछ तो ऐसे लोग हैं जो सीढ़ियों पर पैर ही नहीं रखते, ऊपर जाने की यात्रा ही शुरू नहीं होती। और कुछ ऐसे हैं जो सीढ़ियों को पकड़ के बैठ गये हैं। सीढ़ियाँ नहीं छोड़ते। जो सीढ़ियों के नीचे रह गया, वो भी ऊपर न पहुँच पाया; और जो सीढ़ियों पर रह गया, वो भी ऊपर न पहुँच पाया। मैं तुमसे कहता हूँ सीढ़ियाँ पकड़ो भी, छोड़ो भी।

मैंने सुना है, एक तीर्थयात्रियों की ट्रेन हरिद्वार जा रही थी। अमृतसर पे गाड़ी खड़ी थी। और एक आदमी को लोग जबरदस्ती घसीट के गाड़ी में रखना चाह रहे थे। लेकिन वो कह रहा था कि भाई, इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा? उन्होंने कहा, उतरना तो पड़ेगा। जब हरिद्वार पहुँच जाएगी, तो उतरना पड़ेगा। तो उस आदमी ने कहा — वो बड़ा तार्किक आदमी था — उसने कहा जब उतरना ही है तो चढ़ना क्या? ये तो विरोधाभासी है। चढ़ो भी, फिर उतरो भी। लेना-देना क्या है? हम चढ़ते ही नहीं। गाड़ी छूटने के करीब हो गयी है, सीटी बजने लगी है, और भाग-दौड़ मच रही है। आखिर उनके साथियों ने — जो उनके यात्री दल के साथी थे — उन्होंने उसको पकड़ा और वो चिल्लाता ही जा रहा है कि जब उतरना है तो चढ़ना क्या, मगर उन्होंने कहा कि अब इसकी सुनें, समझाने का समय भी नहीं, उसको चढ़ा दिया।

फिर वही झंझट हरिद्वार के स्टेशन पे मची। वो कहे कि उतरेंगे नहीं। क्योंकि, जब चढ़ ही गये तो चढ़ ही गये। अब उतर नहीं सकते। वो आदमी तार्किक था। वो कह रहा है कि विरोधाभासी काम मैं नहीं कर सकता हूँ। वो किसी विश्वविद्यालय में तर्क का प्रोफेसर होगा!

जब मैं तुमसे कहता हूँ, संसार की आकांक्षा छोड़ो — अमृतसर की स्टेशनपर; फिर तुमसे कहता हूँ अब जिस ट्रेन में चढ़ गये वो भी छोड़ो — हरिद्वार पर — परमात्मा का घर आ गया, हरिद्वार आ गया, उसका द्वार आ गया, अब यह ट्रेन छोड़ो। तुम्हें उस आदमी पे हँसी आती है। लेकिन अगर तुम अपने भीतर खोजोगे, उस आदमी को छिपा हुआ पाओगे।

> लूटे मजे उसीने तेरे इंतजार के
> जो हद्दे-इंतजार के आगे निकल गया

विरोधाभास है —

> लूटे मजे उसीने तेरे इंतजार के
> जो हद्दे-इंतजार के आगे निकल गया

और धर्म की सारी भाषा विरोधाभासी है। होगी ही। क्योंकि धर्म यात्रा का प्रारंभ भी है और अंत भी। वो जन्म भी है और मृत्यु भी। और वो दोनों के पार भी है। इसलिए जल्दी विरोधाभासों में मत उलझ जाना। और उनको हल करने की कोशिश मत करना, समझने की कोशिश करना। तब तुम पाओगे, दोनों की जरूरत है। जो सीढ़ी चढ़ाती है, वही रोक भी लेती है। अगर तुमने बहुत विरोधाभास देखे तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम एक तो कर लोगे, फिर दूसरा करने में अटकोगे। तुमने अगर ये कहा, अगर ये सुन लिया कि परमात्मा याद करने से मिलता

है, और तुम कभी हद्दे-इंतजार के आगे न गये, तो कभी परमात्मा न मिलेगा। राम-राम जपते रहोगे, तोता रटंत रहेगी। कंठ में रहेगा, हृदय तक न जाएगा। क्योंकि जो हृदय में चला गया, उसकी कहीं याद करनी पड़ती है? याद होती रहती है, करनी नहीं पड़ती। होती रहती है कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि दो याद के बीच भी खाली जगह कहां? सातत्य बना रहता है। तब हद्दे-इंतजार।

और ऐसी घड़ी जब घटती है, तो ऐसा नहीं है कि जब तुम विरोधाभास की सीमा के पार निकलते हो, और जब तुम 'पैराडॉक्स' और विरोधाभास का अतिक्रमण करते हो, तो ऐसा नहीं है कि तुम ही परम आनंद को उपलब्ध होते हो, तुम्हारे साथ सारा अस्तित्व उत्सव मनाता है। क्योंकि तुम्हारे साथ सारा अस्तित्व भी अतिक्रमण करता है। एक सीमा और पार हुई।

जब अपने नफ्स पर इंसान फतह पाता है
जो गीत गाती है फितरत किसी को क्या मालूम

'जो गीत गाती है फितरत किसीको क्या मालूम'! जब सारी प्रकृति गीत गाती है, जब सारा अस्तित्व तुम्हारे उत्सव में सम्मिलित हो जाता है—क्योंकि तुम अलग-थलग नहीं हो, तुममें अस्तित्व ने कुछ दाँव पर लगाया है, तुम अस्तित्व के दाँव हो, पासे हो, परमात्मा ने तुम्हारे ऊपर बड़ा दाँव लगाया है, और बड़ी आशा रखी है। जिस दिन तुम उपलब्ध होते हो, तुम ही नहीं नाचते परमात्मा भी नाचता है। तुम ही अकेले नाचे तो क्या नाच! परमात्मा भी खुश होता है। सारा अस्तित्व खुश होता है। एक फतह और मिली। एक विजय-यात्रा का चरण पूरा हुआ।

जब अपने नफ्स पर इंसान फतह पाता है
जो गीत गाती है फितरत किसीको क्या मालूम

तो बड़ा चुप है गीत। इसलिए किसीको क्या मालूम! वो बड़ा मौन है। वो उन्हींको दिखायी पड़ता है जिन्हें अदृश्य दिखायी पड़ने लगा। वो उन्हींको सुनायी पड़ता है जो सन्नाटे को भी सुन लेते हैं। वो उन्हींको स्पर्श हो पाता है जो अरूप का भी स्पर्श कर लेते हैं। निराकार से जिनकी चर्चा होने लगी। 'जो गीत गाती है फितरत किसीको क्या मालूम!'

तीसरा प्रश्न: आकांक्षा मिटकर अभीप्सा बन जाती है। अभीप्सा की समाप्ति पर क्या कुछ बचता है? स्पष्ट करें।

आकांक्षा यानी संसार की आकांक्षाएं। आकांक्षा यानी आकांक्षाएं। एक नहीं अनेक। संसार अर्थात् अनेक। जब आकांक्षा मिटकर अभीप्सा बनती है—अभीप्सा यानी आकांक्षा, आकांक्षाएं नहीं। एक की आकांक्षा का नाम अभीप्सा, अनेक की

अभीप्सा का नाम आकांक्षा। जब सारी आकांक्षाओं की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं और एक सत्य पर, परमात्मा पर, या मोक्ष पर, या स्वयं पर, निर्वाण पर, कैवल्य पर केंद्रित हो जाती हैं, तो अभीप्सा। आकांक्षा और आकांक्षाओं का जाल जब संग्रहीभूत हो जाता है, तो अभीप्सा पैदा होती है। किरणें जब इकट्ठी हो जाती हैं, तो आग पैदा होती है। किरणें अनेक, आग एक।

यहाँ तक तो समझ में बात आ जाती है कि आदमी धन को चाहता है, पद को चाहता है, पत्नी को चाहता है, बेटे को चाहता है, भाई को चाहता है, जीवन चाहता है, लंबी उम्र चाहता है। ये सब चाहत, ये सब चाहतें इकट्ठी हो जाती हैं और आदमी सिर्फ परमात्मा को चाहता है — यहाँ तक भी समझ में आ जाता है; क्योंकि बहुत आकांक्षाएँ जिसने की हैं वो इसकी भी कल्पना तो कम से कम कर ही सकता है कि सभी आकांक्षाएँ इकट्ठी हो गयीं, सभी छोटे नदी-नाले गिर गये एक ही गंगा में और गंगा बहने लगी सागर की तरफ। लेकिन जब आकांक्षा के बाद अभीप्सा भी खो जाती है तब क्या बचता है? नदी-नाले खो जाते हैं गंगा में; फिर जब गंगा खो जाती है सागर में, तो क्या बचता है? सागर बचता है। गंगा नहीं बचती।

अब इसे तुम समझो।

पहले तुम्हारी आकाक्षाएँ खो जाएँगी, तुम बचोगे। फिर तुम भी खो जाओगे, परमात्मा बचेगा। जबतक तुम आकाक्षाओं में भटके हुए हो, तबतक तुम तीन-तेरह हो, टुकड़े-टुकड़े हो। जब तुम्हारी सारी आकांक्षाएँ अभीप्सा बन जाएँगी, तुम एक हो जाओगे, तुम योग को उपलब्ध हो जाओगे। योग यानी जुड़ जाओगे। सांसारिक आदमी खंड-खंड है, एक भीड़ है। एक मजमा है। धार्मिक आदमी भीड़ नहीं है, एक एकांत है। धार्मिक आदमी इकट्ठा है। योग को उपलब्ध हुआ है। सारी आकांक्षाएँ सिकोड़ लीं उसने। लेकिन अभी है। अभी होना भर मात्र बाधा बची। अभी तुम हो — अभीप्सा में — और परमात्मा है। यद्यपि तुम एक हो गये हो, लेकिन परमात्मा अभी दूसरा है, पराया है।

इसे थोड़ा समझो।

सांसारिक आदमी भीड़ है। अनेक है। धार्मिक आदमी एक हो गया, इकट्ठा हो गया। 'इंटीग्रेटेड', योगस्थ। लेकिन अभी परमात्मा बाकी है। तो द्वैत बचा। सांसारिक आदमी अनेकत्व में जीता है, धार्मिक आदमी द्वैत में। भक्त बचा, भगवान बचा। खोजी बचा, सत्य बचा। सागर बचा, गंगा बची। अब भक्त को अपने को भी डुबा देना है, ताकि भगवान ही बचे, ताकि सागर ही बचे। गंगा को अपने को भी खोना है। अनेक हो एक, फिर एक शून्य, तब कौन बचेगा? तब सागर बचता

है, जो सदा से था। तुम नहीं थे तब भी था। वही बचेगा। जहां से तुम आए थे वहीं तुम लौट जाओगे। जो तुम्हारे होने के पहले था, वही तुम्हारे बाद होने के बचेगा।

मरने के बाद आए है ऐ राहबर जहाँ
मेरा कयास है कि चले थे यहीं से हम

वर्तुल पूरा हो जाता है। जन्म के पहले तुम जहां थे, मरने के बाद वही पहुँच जाते हो। थोड़ा सोचो; गंगा सागर मे गिरती है, गगा सागर से ही आयी थी — सूरज की किरणो पर चढ़ा था सागर का जल, सीढ़ियां बनायी थीं सूरज की किरणों की, फिर बादल घनीभूत हुए थे आकाश में, फिर बादल बरसे थे हिमालय पर, बरसे थे मैदानो में, हजारो नदी-नालों में बहे थे गंगा की तरफ — गंगोत्री से बही थी गंगा, मेघ से आयी थी, मेघ सागर से आए थे; फिर चली वापिस, फिर सागर मे खो जाएगी।

मरने के बाद आए हैं ऐ राहबर जहाँ
मेरा कयास है कि चले थे यही से हम

वही बचेगा, जो तुम्हारे होने के पहले था। उसे सत्य कहो ...। तुम एक लहर हो। सागर तुम्हारे पहले भी था। लहरें खो जाएँगी, सो जाएँगी, सागर फिर भी होगा। और ध्यान रखना, सागर बिना लहरों के हो सकता है, लहर बिना सागर के नहीं हो सकती। कभी सागर में लहरे होती है, कभी नहीं भी होतीं। जब लहरें होती हैं, उसको हम सृष्टि कहते है। अगर सारी लहरों को सोचें, तो सृष्टि और प्रलय। अगर एक-एक लहर का हिसाब करे, तो जन्म और मृत्यु। जब लहर नहीं होती, तो मृत्यु। जब लहर होती है, तो जन्म। लेकिन जब लहर मिट जाती है तब क्या सच मे ही मिट जाती है? यही सवाल है गहरा। लहर सच में मिट जाती है? आकार मिटता होगा, जो लहर मे था। जो लहर में वस्तुत: था, वो तो कैसे मिटेगा? जो था, वो तो नहीं मिटता, वो तो सागर में फिर भी होता है। बड़ा होकर होता है, विराट होकर होता है।

तुम रहोगे। तुम जैसे नहीं। तुम रहोगे। बूँद जैसे नहीं। तुम रहोगे। सीमित नहीं। पता-ठिकाना न रहेगा, नाम-रूप न रहेगा। लेकिन जो भी तुम्हारे भीतर घनीभूत है इस क्षण, वो बचेगा, विराट होकर बचेगा। तुम मिटोगे, लेकिन मिटना मौत नहीं है। तुम मिटोगे, मिटना ही होना है।

आखिरी प्रश्न: पिछले एक प्रश्नोत्तर में आपने समर्पण और भक्ति में भीतर होश, बाहर बेहोशी कही है, और ध्यानी और ज्ञानी को भीतर से बेहोशी और बाहर से

होश कहा है। यह ध्यानी को किस तरह की भीतर की बेहोशी होती है ? और बाहर फिर वह किस चीज का होश रखता है, किस तरह से होश रखता है, जबकि भीतर बेहोशी रहती है ? क्या मेरे सुनने या समझने में कहीं गलती हो रही है ? कृपया फिर से ठीक से समझा के कहें।

नहीं, सुनने में कोई गलती नहीं हुई। समझने में गलती हो रही है। क्योंकि समझ विरोधाभास को नहीं समझ पाती। सुन तो लोगे; कितनी ही विरोधाभासी बात कहूँ, सुन तो लोगे। और ये भी समझ लोगे कि विरोधाभासी है, और ये भी समझ लोगे कि सुन लिया, लेकिन फिर भी समझ न पाओगे। क्योंकि जिसको तुम समझ कहते हो वो विरोधाभास को समझ ही नहीं सकती। इसीलिए तो विरोधाभास कहती है। मैं फिर से दोहरा देता हूँ, बात बड़ी सीधी है। जटिल मालूम होती है, क्योंकि बुद्धि सीधी-सीधी बात को नहीं पकड़ पाती।

एक तो है भक्त, प्रेमी। वो नाचता है। तुम उसकी बेहोशी को — जब मैं कहता हूँ बेहोशी, तो मेरा मतलब है उसकी मस्ती — तुम उसके जाम को छलकते बाहर से भी देख लेते हो। मदिरा बही जा रही है। मीरा के नाच में, चैतन्य के भजन में, कुछ भीतर जाके खोजना न होगा। उसकी मस्ती बाहर है। मौजे-दरिया, लहरों में है। फूलों में है। अंधे को भी समझ आ जाएगी। बहरे को भी सुनायी पड़ जाएगी। नाचती हुई है, गीत गाती हुई है। अभिव्यक्त है। ये जो मस्ती है, ये मस्ती तभी संभव है जब भीतर होश हो। नहीं तो ये मस्ती पागलपन हो जाएगी।

पागल और भक्त में फर्क क्या है ? यही। पागल भी नाचता है, मुस्कराता है, गीत गाता है, लेकिन तुम पहचान लोगे। उसकी आँखों में जरा झाँकके देखना — उसमे बेहोशी तो है, लेकिन भीतर होश का दिया नहीं। भक्त बेहोश भी है और होश का दिया भी सम्हाले है। नाचता भी है, लेकिन दिये की लौ नही कँपती भीतर। बाहर नाच चलता है, भीतर सब ठहरा है — अकंप। तभी तो पागल और परमात्मा के दीवाने का फर्क है। तो तुम्हें कभी-कभी परमात्मा का दीवाना भी पागल लगगा, क्योंकि पागल और परमात्मा के दीवाने में बाहर तो एक ही जैसी घटना घटती है। और कभी-कभी पागल भी तुम्हें परमात्मा का दीवाना लगेगा।

लेकिन इसका मतलब यही हुआ कि तुम जरा भीतर न गये। बाहर से ही बाहर लौट आए। बाहर-बाहर देखके लौट आए। जरा भीतर उतरो। जरा दो-चार सीढ़ियाँ भीतर जाओ। जरा पागल के नाच में और दीवान-ए-परमात्मा की मस्ती के नाच में जरा गौर करो। स्वाद भिन्न है, रंग-ढंग बड़ा भिन्न है। अलग-अलग अंदाज हैं। लेकिन थोड़ा गौर से देखोगे तो। ऐसे ही राह से चलते हुए देखके गुजर गये तो भ्रांति हो सकती है। ऊपर से दोनों एक जैसे लगते हैं। पागल सिर्फ पागल

है। बेहोश है। भक्त सिर्फ बेहोश नहीं है। बेहोशी भी है, और कुछ होश भी है। बेहोशी के भीतर होश का दिया जल रहा है। यही विरोधाभास समझ में नहीं आता।

फिर एक और विरोधाभास, तो चीजें जटिल हो जाती हैं।

ये तो भक्त हुआ, फिर ध्यानी हैं। ये तो मीरा हुई, फिर बुद्ध हैं। बुद्ध के बाहर तो कंपन भी न मिलेगा। वो मौजें-दरिया नहीं है, शांत झील है। वो फूल के रंग जैसे बाहर दिखायी पड़ते ऐसे नहीं हैं। वो ऐसे हैं जैसे बीज में फूल छिपा हो। हजार-हजार रंग भीतर दबाके बैठे हैं। स्वर हैं बहुत, लेकिन ऐसे जैसे वीणा में सोए हों, किसीने छेड़े न हों। तो बाहर बिलकुल सन्नाटा है।

तुम बुद्ध के बाहर होश पाओगे, मीरा के बाहर तुम मस्ती पाओगे। बुद्ध के बाहर तुम परम होश पाओगे। वहाँ जरा भी कंपन न होगा। और जैसे मीरा के बेहोशी में भीतर होश है, ऐसा ही बुद्ध के बाहर के होश में भीतर बेहोशी होगी, क्योंकि दोनों साथ होने ही चाहिए, तभी परिपूर्णता होती है। अगर सिर्फ बाहर का होश ही हो और भीतर बेहोशी न हो, तो ये तो तुम साधारण त्यागी विरक्त में पा लोगे। इसके लिए बुद्ध तक जाने की जरूरत नहीं। यही तो बुद्धों में और बुद्धों का अनु-सरण करनेवालों में फर्क है। बुद्ध में और पाखंडी में यह फर्क है।

मीरा और पागल में जैसे फर्क है, बुद्ध और पाखंडी में वैसे फर्क है। पाखंडी को देखके अगर ऊपर-ऊपर से आ गये तो धोखा हो जाएगा। बगुले को देखा है खड़ा? कैसा बुद्ध जैसा खड़ा रहता है। इसीलिए तो 'बगुला भगत' शब्द हो गया। देखो, कैसा भगत मालूम पड़ता है! एक टाँग पे खड़ा रहता है। कौन योगी इतनी देर इस तरह खड़ा रहता है? लेकिन नजर मछली पे टिकी रहती है।

तो तुम्हें ऐसे लोग मिल जाएँगे -- काफी है उनकी संख्या — क्योंकि सरल है बगुला बन जाना, बहुत आसान है। लेकिन उनकी नजर मछली पे लगी रहेगी। योगी बैठा हो भला आँख बंद किये, हो सकता है नजर तुम्हारी जेब पे लगी हो। बाहर से तो कोई भी साध ले सकता है आसन, प्राणायाम, नियम, मर्यादा। सवाल है भीतर का। ये निष्कंपता बाहर की तो है नहीं, अन्यथा सर्कस की है।

ये निष्कंपता अगर बाहर ही बाहर है और भीतर कंपन चल रहा है, और भीतर आपाधापी मची है, और भीतर चिंतन और विचार चल रहा है और वासनाएँ दौड़ रही हैं, और भीतर कोई परमात्मा को पा लेने की मस्ती नहीं बज रही है, और भीतर कोई गीत की गुनगुन नहीं है, भीतर कोई नाच नहीं चल रहा है ... ऐसा समझो बुद्ध और मीरा बिलकुल एक जैसे हैं। फर्क इतना ही है कि जो मीरा के बाहर है, वो बुद्ध के भीतर है। जो मीरा के भीतर है, वो बुद्ध के बाहर है। एक

सिक्का सीधा रखा है, एक सिक्का उल्टा रखा है। सिक्के दोनों एक हैं। जो भीतर जाएगा वही पहचान पाएगा। और इसलिए मैं कहता हूँ कि मुझे दोनों रास्ते स्वीकार हैं।

तुम अगर बुद्ध के अनुयायियों से मीरा की बात कहोगे, वो कहेंगे, कहाँ की अज्ञानी स्त्री की बात उठाते हो? जैनों से जाके कहो, महावीर के अनुयायियों से कहो मीरा की बात, वो कहेंगे कि आसक्ति, राग? कृष्ण का भी हुआ तो क्या! मोह? कहीं बुद्धपुरुष नाचते हैं? ये तो सांसारिकों की बात है। और कहीं बुद्धपुरुष ऐसा रोते हैं, याद करते हैं, ऐसा इंतजार करते हैं? कहीं बुद्धपुरुष ऐसा कहते हैं कि सेज सजा के रखी है, तुम कब आओगे? न, जैन कहेंगे ये तो अज्ञानी है मीरा।

जैन तो कृष्ण को भी ज्ञानी नहीं मान सकते। वो बाँसुरी बाधा डालती है। ज्ञानी के ओठों पर बाँसुरी जचती नहीं। करके देखलो कोशिश, किसी जैन-मंदिर में जाके महावीर के मुँह पे बाँसुरी रख आओ, वो पुलिस में रिपोर्ट कर देंगे तुम्हारी, कि तुमने हमारे भगवान बिगाड़ दिये। ये दुष्कर्म होगा वहाँ! ये दुर्घटना मानी जाएगी! यहाँ तुम बाँसुरी जैन-मंदिर में लेके आए कैसे? और महावीर के ओंठ पे रखने की हिम्मत कैसे की?

अनुयायियो के साथ बड़ा खतरा है। वो ऐसे ही हो जाते हैं जैसे घोड़ों की आँखों पे पट्टियाँ बँधी होती हैं — बस एक तरफ दिखायी पड़ता है। ताँगे मे जुते घोड़े देखे? बस वैसे ही अनुयायी होते है। बस एक तरफ दिखायी पड़ता है। जीवन का विस्तार खो जाता है। संप्रदाय का यही अर्थ है।

धर्म तो बहु आयामी है। संप्रदाय एक आयामी है। 'वन डायमेन्शनल' है। बस उन्होंने बुद्ध को देखा, समझा कि बात खतम हो गयी। बुद्ध बहुत खूब हैं, लेकिन बुद्ध होने के और भी बहुत ढंग हैं। जिंदगी बड़ी अनंत आयामी है। परमात्मा किसी पर चुक नहीं जाता। हजार-हजार रंगों में, हजार-हजार फूलों मे, हजार-हजार ढगों में अस्तित्व खिलता है और नाचता है।

मगर दो बड़े बुनियादी ढंग हैं। एक ध्यान का, और एक प्रेम का। मीरा प्रेम से पहुँची। जो प्रेम से पहुँचेगा, उसकी मस्ती बाहर नाचती हुई होगी, और भीतर ध्यान होगा। भीतर मौन होगा, सन्नाटा होगा। मीरा को भीतर काटोगे, तो तुम बुद्ध को पाओगे वहाँ। और मैं तुमसे कहता हूँ, अगर बुद्ध की भी तुम खोजबीन करो और भीतर उतर जाओ, तो तुम वहाँ मीरा को नाचती हुई पाओगे। इसके अतिरिक्त हो नहीं सकता। क्योंकि जब तक ध्यान मस्ती न बने, और जब तक मस्ती ध्यान न बने, तब तक अधूरा रह जाता है सब।

इसलिए कभी ये मत सोचना कि जिस ढंग से तुमने पाया, वही एक ढंग है। और

कभी दूसरे के ढंग को नकार से मत देखना। और कभी दूसरे के ढंग को निंदा से मत देखना, क्योंकि वो अहंकार की चालबाजियां हैं। सदा ध्यान रखना, हजार-हजार ढंग से पाया जा सकता है। बहुत हैं रास्ते उसके। बहुत हैं द्वार उसके मंदिर के। तुम जिस द्वार से आए, भला। और भी द्वार हैं। और, दो प्रमुख-द्वार हैं। होने ही चाहिए। क्योंकि स्त्री और पुरुष दो व्यक्तित्व के मूल ढंग है।

स्त्री यानी प्रेम। पुरुष यानी ध्यान। पुरुष अकेला होके उसे पाता है। स्त्री उसके साथ होके उसे पाती है। पुरुष सब भांति अपने को शून्य करके उसे पाता है। स्त्री सब भांति अपने को उससे भरके पाती है। मगर जब मैं स्त्री और पुरुष कह रहा हूं, तो मेरा मतलब शारीरिक नहीं है। बहुत पुरुष हैं जिनके पास प्रेम का हृदय है, वो प्रेम से ही पाएंगे। बहुत स्त्रियां हैं जिनके पास ध्यान की क्षमता है, वो ध्यान से पाएंगी।

मगर ये बात तुम सदा ही ध्यान रखना कि जो तुम बाहर पाओगे, उससे विपरीत तुम भीतर पाओगे। क्योंकि विपरीत से जुड़के ही सत्य निर्मित होता है। सत्य विरोधाभासी है। सत्य 'पैराडॉक्स' है।

आज इतना ही।

अंतर्बाती को उकसाना ही ध्यान

३ दिसंबर १९७५

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।
पुञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ३४ ॥

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा ।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥ ३५ ॥

अचिरं वत' यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं' व कलिङ्गरं ॥ ३६ ॥

दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे ॥ ३७ ॥

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका ।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥ ३८ ॥

दुनिया है तहलके में तो परवा न कीजिए
यह दिल है रूहे अस्र का मसकन बचाइए
दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया
एक शमा आंधियों में है रोशन बचाइए

संसार बदलता है, फिर भी बदलता नहीं। संसार की मुसीबतें तो बनी ही रहती हैं। वहां तो तूफान और आंधी चलते ही रहेंगे। अगर किसीने ऐसा सोचा कि जब संसार बदल जाएगा तब मैं बदलूंगा, तो समझो कि उसने न बदलने की कसम खा ली। तो समझो कि उसकी बदलाहट कभी हो न सकेगी। उसने फिर तय ही कर लिया कि बदलना नहीं है, और बहाना खोज लिया।

बहुत लोगों ने बहाने खोज रखे हैं। वे कहते है, संसार ठीक हालत में नहीं है, हम ठीक होना भी चाहें तो कैसे हो सकेंगे? अंधे हैं ऐसे लोग; क्योंकि संसार कभी ठीक नहीं हुआ, फिर भी व्यक्तियों के जीवन में फूल खिले हैं। कोई बुद्ध रोशन हुआ, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट सुगंध को उपलब्ध हुए। संसार तो चलता ही रहा है। ऐसे ही चलता रहेगा। संसार के बदलने की प्रतीक्षा मत करना। अन्यथा तुम

बैठे रहोगे प्रतीक्षा करते, अँधेरे में ही जियोगे, अंधेरे में ही मरोगे। और संसार तो सदा है। तुम अभी हो, कल विदा हो जाओगे।

इसलिए एक बात ख्याल में रख लेनी, बदलना है स्वयं को। और कितने ही तूफान हों, कितनी ही आँधियाँ हों, भीतर एक ऐसा दिया है कि उसकी शमा जलायी जा सकती है। और कितना ही अंधकार हो बाहर, भीतर एक मंदिर है जो रोशन हो सकता है।

तुम बाहर के अँधेरे से मत परेशान होना। उतनी ही चिंता और उतना ही श्रम भीतर की ज्योति को जलाने में लगा देना। और बड़े आश्चर्य की तो बात यही है कि जब भीतर प्रकाश होता है, जब तुम्हारी आँखों के भीतर प्रकाश होता है, तो बाहर अंधकार मिट जाता है। कम से कम तुम्हारे लिए मिट जाता है। तुम एक और दूसरे ही जगत में जीने लगते हो। और हर व्यक्ति परमात्मा की धरोहर है। कुछ है, जो तुम पूरा करोगे तो ही मनुष्य कहलाने के अधिकारी हो सकोगे।

एक अवसर है जीवन, जहाँ कुछ सिद्ध करना है। जहाँ सिद्ध करना है कि हम बीज ही न रह जाएंगे, अंकुरित होंगे, खिलेंगे, फूल बनेंगे। सिद्ध करना है कि हम संभावना ही न रह जाएंगे, सत्य बनेंगे। सिद्ध करना है कि हम केवल एक आकांक्षा ही न होंगे कुछ होने की, हमारे भीतर होना प्रगट होगा। उस प्रागट्य का नाम ही बुद्धत्व है।

दुनिया है तहलके में तो परवा न कीजिए
यह दिल है रूहे अस्र का मसकन बचाइए

ये जो भीतर हृदय है, जिसे बुद्ध ने चित्त कहा, जिसे महावीर, उपनिषद् और वेद आत्मा कहते हैं, ये अस्तित्व का मंदिर है। ...'रूहे अस्र का मसकन बचाइए, दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया'। अँधेरे की उतनी चिंता मत करिए। अँधेरे ने कब किसी रोशनी को बुझाया? अँधेरा कितना ही बड़ा हो, एक छोटे से टिम-टिमाते दिये को भी नहीं बुझा सकता। अँधेरे से कभी अंधेर नहीं हुआ है। 'दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया'।

'एक शमा आँधियों में है रोशन बचाइए'। वो जो भीतर ज्योति जल रही है जीवन की, वो जो तुम्हारे भीतर जागा हुआ है, वो जो तुम्हारा चैतन्य है, बस उसको जिसने बचा लिया। उसे जिसने खो दिया, वो सब भी बचा ले तो उसने कुछ भी बचाया नहीं। फिर तुम सम्राट हो जाओ, तो भी भिखारी रहोगे। और, भीतर की ज्योति बचा लो तो तुम चाहे राह के भिखारी रहो, तुम्हारे साम्राज्य को कोई छीन नहीं सकेगा।

(सम्राट होने का एक ही ढंग है, भीतर की संपदा को उपलब्ध हो जाना।) स्वामी

होने का एक ही ढंग है, भीतर के दिये के साथ जुड़ जाना, एक हो जाना। और वह जो भीतर का दिया है, चाहता है प्रतिपल उसकी बाती को सम्हालो, उकसाओ। उस बाती के उकसाने का नाम ही ध्यान है। बाहर के अंधेरे पर जिन्होंने ध्यान दिया, वे ही अधार्मिक हो जाते हैं। और जिन्होंने भीतर के दिये पर ध्यान दिया, वे ही धार्मिक हो जाते हैं। मंदिर-मस्जिदों में जाने से कुछ भी न होगा। मंदिर तुम्हारा भीतर है। प्रत्येक व्यक्ति अपना मंदिर लेकर पैदा हुआ है। कहाँ खोजते हो मंदिर को? पत्थरों में नहीं है। तुम्हारे भीतर जो परमात्मा की छोटी सी लौ है, वो जो होश का दिया है, वहीं है।

ये बुद्ध के सूत्र उस अप्रमाद के दिये को हम कैसे उकसाएँ उसके ही सूत्र हैं। इन सूत्रों से दुनिया में क्रांति नहीं हो सकती, क्योंकि समझदार दुनिया में क्रांति की बात करते ही नहीं। वो कभी हुई नहीं। वो कभी होगी भी नहीं। समझदार तो भीतर की क्रांति की बात करते हैं, जो सदा संभव है। हुई भी है। आज भी होती है। कल भी होती रहेगी। असंभव की चेष्टा करना मूढ़ता है। और असंभव की चेष्टा में जो संभव था वो भी खो जाता है। जो मिल सकता था वो भी नहीं मिल पाता उसकी चेष्टा में जोकि मिल ही नहीं सकता। संभव की चेष्टा ही समझ का सबूत है। असंभव की चेष्टा ही मूढ़तापूर्ण जीवन है।

बुद्ध ने कहा है, ' जिसके चित्त में राग नहीं है, और इसलिए जिसके चित्त में द्वेष नहीं है, जो पाप-पुण्य से मुक्त है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं। '

तुम तो भगवान को भी खोजते हो तो भय के कारण। और भय से कहीं भगवान मिलेगा? हाँ, भगवान मिल जाता है तो भय खो जाता है। भगवान और भय साथ-साथ नहीं हो सकते। ये तो ऐसे ही है जैसे अंधेरा और प्रकाश साथ-साथ रखने की कोशिश करो। तुम्हारी प्रार्थनाएँ भी भय से अविर्भूत होती हैं। इसलिए व्यर्थ है। दो कौड़ी का भी उनका मूल्य नहीं है। तुम मंदिर में झुकते भी हो तो कँपते हुए झुकते हो। ये प्रेम का स्पंदन नहीं है, ये भय का कंपन है।

बड़ा फर्क है दोनों में।

जब प्रेम उतरता है हृदय में, तब भी सब कँप जाता है। लेकिन प्रेम की पुलक! कहाँ प्रेम की पुलक कहाँ भय का घबड़ाना, कँपना! ध्यान रखना, प्रेम की भी एक ऊष्मा है और बुखार की भी। और प्रेम में भी एक गरमाहट घेर लेती है और बुखार में भी। दोनों को एक मत समझ लेना। भय में भी आदमी झुकता है, प्रेम में भी। दोनों को एक मत समझ लेना। भयभीत भी प्रार्थना करने लगता है, प्रेम से भरा भी। लेकिन भयभीत की प्रार्थना अपने भीतर घृणा को छिपाए होती है। क्योंकि जिससे हम भय करते हैं उससे प्रेम हो नहीं सकता।

इसलिए जितने भी तुमसे कहा है, भगवान से भय करो, उनने तुम्हारे अधार्मिक होने की बुनियाद रख दी। मैं तुमसे कहता हूँ, सारी दुनिया से भय करना, भगवान से भर नहीं। क्योंकि जिससे भय हो गया, उससे फिर प्रेम के, आनंद के संबंध जुड़ते ही नहीं। फिर तो जहर घुल गया कुएँ में। फिर तो पहले से ही तुम विषाक्त हो गये। फिर तुम्हारी प्रार्थना में धुआं होगा, प्रेम की लपट न होगी। फिर तुम्हारी प्रार्थना से दुर्गंध उठ सकती है। और तुम धूप और अगरबत्तियों से उसे छिपा न सकोगे। फिर तुम फूलों से उसे ढांक न सकोगे। फिर तुम लाख उपाय करो, सब उपाय ऊपर-ऊपर रह जाएंगे। थोड़ा सोचो कि जब भीतर-भीतर भय हो तो कैसे प्रार्थना पैदा हो सकती है?

इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। अभी तो प्रार्थना ही पैदा नहीं हुई तो परमात्मा की क्या बात करनी? अभी आँख ही नहीं खुली तो रोशनी की क्या चर्चा करनी? अभी चलने के योग्य ही तुम नहीं हुए हो, घुटने से सरकते हो, अभी नाचने की बात क्या करनी? प्रार्थना पैदा हो, तो परमात्मा। लेकिन प्रार्थना तभी पैदा होती है जब अभय — 'फियरलेसनेस'।

यहाँ एक बात और समझ लेनी जरूरी है। अभय का अर्थ निर्भय मत समझ लेना। ये बारीक भेद हैं और बड़े बुनियादी हैं। निर्भय और अभय में बड़ा फर्क है। जमीन आसमान का फर्क है। शब्दकोश में तो दोनों का एक ही अर्थ लिखा है। जीवन के कोश में दोनों के अर्थ बड़े भिन्न हैं। निर्भय का अर्थ है जो भीतर तो भयभीत है, लेकिन बाहर से जिसने किसी तरह इंतजाम कर लिया। जो भीतर तो कँपता है, लेकिन बाहर नहीं कँपता। जिसने न कँपने का अभ्यास कर लिया है। बाहर तक कंपन को आने नहीं देता। जिनको तुम बहादुर कहते हो, वो इतने ही कायर होते हैं जितने कायर। कायर डर के बैठ जाता है, बहादुर डर के बैठता नहीं, चलता चला जाता है। कायर अपने भय को मान लेता है, बहादुर अपने भय को इनकार किये जाता है, लेकिन भयभीत तो है ही। अभय की अवस्था बड़ी भिन्न है। न वहाँ भय है, न वहाँ निर्भयता है। जब भय ही न रहा, तो निर्भय कोई कैसे होगा? अभय का अर्थ है, भय और निर्भय दोनों ही जहाँ खो जाते हैं। जहाँ वो बात ही नहीं रह जाती।

इस अवस्था को बुद्ध और महावीर दोनों ने भगवत्ता की तरफ पहला कदम कहा है। कौन आदमी अभय को उपलब्ध होगा? कौन से चित्त में अभय आता है? जिस चित्त में राग नहीं, उस चित्त में द्वेष भी नहीं होता। स्वभावतः। क्योंकि राग से ही द्वेष पैदा होता है। तुमने ख्याल किया, किसीको तुम सीधा-सीधा शत्रु नहीं बना सकते। पहले मित्र बनाना पड़ता है। एकदम से किसीको शत्रु बनाओगे भी

तो कैसे बनाओगे ? शत्रु सीधा नहीं होता, सीधा पैदा नहीं होता, मित्र के पीछे आता है। द्वेष सीधे पैदा नहीं होता, राग के पीछे आता है। घृणा सीधे पैदा नहीं होती, जिसे तुम प्रेम कहते हो उसीके पीछे आती है। तो शत्रु किसीको बनाना हो तो पहले मित्र बनाना पड़ता है। और द्वेष किसीसे करना हो तो पहले राग करना पड़ता है। किसीको दूर हटाना हो तो पहले पास लेना पड़ता है। ऐसी अनूठी दुनिया है। ऐसी उलटी दुनिया है।

द्वेष से तो तुम बचना भी चाहते हो। लेकिन जिसने राग किया, वो द्वेष से न बच सकेगा। जब तुमने व्यक्ति को स्वीकार कर लिया, तो उसकी छाया कहाँ जाएगी? वो भी तुम्हारे घर आएगी। तुम ये न कह सकोगे मेहमान से कि छाया बाहर ही छोड़ दो, हमने केवल तुम्हें ही बुलाया है। छाया तो साथ ही रहेगी। द्वेष राग की छाया है। वैराग्य राग की छाया है।

इसलिए तो मैं तुमसे कहता हूँ असली वैरागी वैरागी नहीं होता। असली वैरागी तो राग से मुक्त हो गया। इसलिए महावीर-बुद्ध ने उसे नया ही नाम दिया है, उसे वीतराग कहा है। तीन शब्द हुए — राग, वैराग्य, वीतरागता। राग का अर्थ है संबंध किसी से, और ऐसी आशा कि संबंध से सुख मिलेगा। राग सुख का सपना है। किसी दूसरे से सुख मिलेगा, इसकी आकांक्षा है। द्वेष, किसी दूसरे से दुख मिल रहा है इसका अनुभव है। मित्रता किसीको अपना मानने की आकांक्षा है। शत्रुता, कोई अपना सिद्ध न हुआ, पराया सिद्ध हुआ, इसका बोध है। मित्रता एक स्वप्न है, शत्रुता स्वप्न का टूट जाना है। राग अँधेरे में टटोलना है, द्वार की आकांक्षा में। लेकिन जब द्वार नहीं मिलता और दीवाल मिलती है, तो द्वेष पैदा हो जाता है। द्वार अँधेरे में है ही नहीं, टटोलने से न मिलेगा। द्वार टटोलने में नहीं है। द्वार जागने में है।

तो बुद्ध कहते हैं, जिसके चित्त में राग नहीं है। राग का अर्थ है, जिसने ये ख्याल छोड़ दिया कि दूसरे से सुख मिलेगा। जो जाग गया, और जिसने समझा कि सुख किसीसे भी नहीं मिल सकता। एक ही भ्रांति है, कहो इसे संसार, कि दूसरे से सुख मिल सकता है। पत्नी से, या पिता से, या भाई से, या बेटे से, या मित्र से, या धन से, या मकान से, या पद से, दूसरे से सुख मिल सकता है — तो राग पैदा होता है। स्वाभाविक, जिससे सुख मिल सकता है उसे हम गवाँना न चाहेंगे। जिससे सुख मिल सकता है उसे हम बचाना चाहेंगे। जिससे सुख मिल सकता है वो कहीं दूर न चला जाए, कहीं कोई और उसपे कब्जा न कर ले। तो पत्नी डरी है कि पति कहीं किसी और स्त्री की तरफ न देख ले। पति डरा है कि पत्नी कहीं किसी और में उत्सुक न हो जाए। क्योंकि इसीसे तो सुख की आशा है। वो सुख कहीं और कोई दूसरा न ले ले।

लेकिन सुख कभी किसी दूसरे से मिला है ? किसीने भी कभी कहा कि दूसरे से सुख मिला है ? आशा ... और आशा ... और आशा ... । आशा कभी मरती नहीं । किसने तुम्हें आश्वासन दिया है कि दूसरे से सुख मिल सकेगा ? और दूसरा जब तुम्हारे पास आता है, तो ध्यान रखना, वो अपने सुख की तलाश में तुम्हारे पास आया है। तुम अपने सुख की तलाश में उसके पास गये हो । न उसको प्रयोजन है, तुम्हारे सुख से, न तुमको प्रयोजन है उसके सुख से । मिलेगा कैसे, प्रयोजन ही नही है ? पत्नी तुम्हारे पास है, इसलिए नहीं कि तुम्हें सुख दे । तुम पत्नी के पास हो, इसलिए नहीं कि तुम उसे सुख दो ।

उपनिषद् कहते हैं, कौन पत्नी को पत्नी के लिए प्रेम करता है ? पत्नी के लिए कोई प्रेम नहीं करता, अपने लिए प्रेम करता है। कौन पति को पति के लिए प्रेम करता है ? अपने लिए प्रेम करता है । सुख की आकांक्षा अपने लिए है । और इस-लिए अगर ऐसा भी हो जाए कि तुम्हे लगे कि दूसरे को दुख देके सुख मिलेगा, तो भी तुम तैयार हो । और यही होता है । सोचते हैं दूसरे से सुख मिलेगा, लेकिन हम भी दूसरे को दुख ही दे पाते हैं और दूसरा भी हमें दुख दे पाता है ।

जिसने इस सत्य को देख लिया वो संन्यस्त हो गया । संन्यास का क्या अर्थ है ? जिसने इस सत्य को देख लिया कि दूसरे से सुख न मिलेगा, उसने अपनी दिशा मोड़ ली । वो भीतर घर की तलाश में लग गया । अपने भीतर खोजने लगा, कि बाहर तो सुख न मिलेगा अब भीतर खोज लूं । शायद जो बाहर नही है वो भीतर हो । और जिन्होंने भी भीतर झांका, वो कभी खाली हाथ वापिस न लौटे । उनके प्राण भर गये । उनके प्राण इतने भर गये कि उन्हें खुद ही न मिला, उन्होंने लुटाया भी, उन्होंने बाँटा भी । कुछ ऐसा खजाना मिला कि बाँटने से बढ़ता गया । कबीर ने कहा है, 'दोनों हाथ उलीचिए' । जब सुख मिल जाए तो दोनों हाथ उलीचिए । क्योंकि जितना उलीचो उतना ही बढ़ता चला जाता है । जैसे कुएँ से पानी खींचते जाओ, झरने और नया पानी ले आते हैं । पुराना चला जाता है, नया आ जाता है।

जिसको सुख मिल गया उसे ये राज भी पता चल गया कि बाँटो । क्योंकि अगर सम्हालोगे तो पुराना ही सम्हला रहेगा, नया-नया न आ सकेगा । लुटाओ, ताकि तुम रोज नये होते चले जाओ। छोटा से छोटा कुआँ भी छोटा थोड़ी ' है । अनंत सागर से जुड़ा है । भीतर से झरनों के रास्ते हैं । इधर खाली करो, उधर भरता चला जाता है ।

तुम आत्मा ही थोड़ी' हो, परमात्मा भी हो । तुम छोटे कुएँ ही थोड़ी' हो, सागर भी हो । सागर ही छोटे से कुएँ में से झाँक रहा है । छोटा कुआँ एक खिड़की है, जिससे सागर झांका । तुम भी एक खिड़की हो, जिससे परमात्मा झाँका । एक बार

अपनी सुख आ जाए, एक बार ये खयाल आ जाए कि मेरा सुख मुझमें है, तो राग समाप्त हो जाता है।

'जिसके चित्त में राग नहीं' — अर्थात् जिसने जान लिया कि सुख मेरा भीतर है। इसलिए जिसके चित्त में द्वेष भी नहीं है। स्वभावतः, जब दूसरे से सुख मिलता ही नहीं, तो कैसी शिकायत, कैसा शिकवा कि दूसरे से दुख मिला? ये बात ही फिजूल हो गयी। सुख का खयाल था तो ही दुख का खयाल बनता था। जिससे तुम जितनी ज्यादा अपेक्षा रखते हो उससे उतना ही दुख मिलता है।

लोग मुझसे पूछते हैं कि पति-पत्नी एक दूसरे के कारण इतने दुखी क्यों होते हैं? तो मैं उनसे कहता हूँ, वो संबंध ऐसा है जहाँ सबसे ज्यादा अपेक्षा है, इसलिए। जितनी अपेक्षा, उतनी मात्रा में दुख होगा। क्योंकि उतनी असफलता हाथ लगेगी। राह पर चलता आदमी अचानक तुम्हारे पास से गुजर जाता है, उससे दुख नहीं मिलता। मिलने का कोई कारण नहीं, अजनबी है। अपेक्षा ही कभी नहीं की थी। और अगर अजनबी मुस्कुरा के देख ले, तो अच्छा लगता है। तुम्हारी पत्नी मुस्कुरा के देखे, पति मुस्कुरा के देखे, तो भी कुछ अच्छा नहीं लगता। लगता है जरूर कोई जालसाजी होगी। पत्नी मुस्कुरा रही है! मतलब कहीं बाजार में साड़ी देख आयी? या कहीं गहने देख लिए? या कोई नया उपद्रव है? क्योंकि सस्ता नहीं है मुस्कुराना, कोई मुफ्त नहीं मुस्कुराता। जहाँ संबंध है वहाँ तो लोग मतलब से मुस्कुराते हैं। पति अगर आज ज्यादा प्रसन्न घर आ गया है, फूल ले आया है, मिठाइयाँ ले आया है, तो पत्नी संदिग्ध हो जाती है, कि जरूर कुछ ... जरूर कुछ दाल में काला है। किसी स्त्री को बहुत गौर से देख लिया होगा, प्रायश्चित्त कर रहा है। नहीं तो कभी घर कोई मिठाइयाँ लेके आता है!

जिनसे जितनी अपेक्षा है उनसे उतना ही दुख मिलता है। जितनी अपेक्षा है, उतनी ही टूटती है। जितना बड़ा भवन बनाओगे ताश के पत्तों का, उतनी ही पीड़ा होगी। क्योंकि गिरेगा। उतना श्रम, उतनी शक्ति, उतनी अभीप्साओं के इंद्रधनुष, सब टूट जाएँगे। सब जमीन पर रौंदे हुए पड़े होंगे, उतनी ही पीड़ा होगी। अजनबी से दुख नहीं मिलता। अपरिचित से दुख नहीं मिलता। क्योंकि अपेक्षा जरूरी है। लेकिन अगर तुम अपेक्षा ही छोड़ दो तो तुम्हें क्या कोई दुख दे सकेगा? इसे बहुत सोचना। इस पर मनन करना, ध्यान करना। अगर तुम अपेक्षा छोड़ दो, कोई माँग न रहे — क्योंकि तुम जान गये कि मिलना किसीसे कुछ भी नहीं है — तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे जीवन से दुख विसर्जित हो गया। अब कोई दुख नहीं देता।

सुख न माँगो तो कोई दुख नहीं देता। तब तो बड़ी अभूतपूर्व घटना घटती है। तुम सुख नहीं माँगते, कोई दुख नहीं देता। न बाहर से सुख आता है, न दुख आता

है। पहली बार तुम अपने में रमना शुरू होते हो। क्योंकि अब बाहर नजर रखने को कोई जरूरत ही न रही। जहाँ से कुछ मिलना ही नहीं है, जहाँ खदान थी ही नहीं, सिर्फ धोखा था, आभास था, तुम आँख बंद कर लेते हो। इसलिए बुद्धपुरुषों की आँख बंद है। वो जो बंद आँख है ध्यान करते बुद्ध की, या महावीर की, वो इस बात की खबर है केवल कि अब बाहर देखने योग्य कुछ भी न रहा। जब पाने योग्य न रहा, तो देखने योग्य क्या रहा? देखते थे, क्योंकि पाना था। पाने का रस लगा था, तो गौर से देखते थे। जो पाना हो, वही आदमी देखता है। जब पाने की भ्रांति ही टूट गयी तो आदमी आँख बंद कर लेता है। बंद कर लेता है कहना ठीक नहीं, आँख बंद हो जाती है। पलक अपने आप बंद हो जाती है। फिर आँख को व्यर्थ ही दुखाना क्या? फिर आँख को व्यर्थ ही खोलके परेशान क्या करना? और ये जो दृष्टि पर पलक का गिर जाना है, यही भीतर दृष्टि का पैदा हो जाना है।

'जिसके चित्त में राग नहीं और इसलिए जिसके चित्त में द्वेष नहीं, जो पाप-पुण्य से मुक्त है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं'।

पाप और पुण्य, वे भी बाहर से ही जुड़े हैं, जैसे सुख और दुख। इसे थोड़ा समझना। ये और भी सूक्ष्म, और भी जटिल है। ये तो बहुत लोग तुम्हें समझाते मिल जाएँगे कि सुख-दुख बाहर से मिलते नहीं, सिर्फ तुम्हारे ख्याल में हैं। लेकिन जो लोग तुम्हें समझाते हैं बाहर से सुख न मिलेगा, और इसलिए बाहर से दुख भी नहीं मिलता, वे भी तुमसे कहते हैं, पुण्य करो, पाप न करो। शायद वे भी समझे नहीं। क्योंकि समझे होते तो दूसरी बात भी बाहर से ही जुड़ी है। क्या है दूसरी बात? वो पहली का ही दूसरा पहलू है।

पहला है, दूसरे से मुझे सुख मिल सकता है। मिलता है दुख। इसलिए राग बाँधता हूँ और द्वेष फलता है। बोता राग के बीज हूँ, फसल द्वेष की काटता हूँ। चाहता हूँ राग, हाथ में आता है द्वेष। तड़फड़ाता हूँ। जैसे बुद्ध ने कहा कोई मछली को सागर के बाहर कर दे। तट पे तड़फड़ाए। ऐसा आदमी तड़फड़ाता है।

फिर पाप-पुण्य क्या है?

पाप-पुण्य इसका ही दूसरा पहलू है। पुण्य का अर्थ है, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूँ। पाप का अर्थ है, मैं दूसरे को दुख दे सकता हूँ। तब तुम्हे समझ में आ जाएगा। दूसरे से सुख मिल सकता है ये, और मैं दूसरे को सुख दे सकता हूँ ये, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हुए। दूसरा मुझे दुख देता है ये, और मैं दूसरे को दुख दे सकता हूँ ये भी, उसी बात का पहलू हुआ।

इसलिए बुद्ध ने इस सूत्र में बड़ी महिमापूर्ण बात कही है। कहा है कि जिसके चित्त में न राग रहा, न द्वेष। जो पाप-पुण्य से मुक्त है। क्योंकि जब यही समझ में

आ गया कि कोई मुझे सुख नहीं दे सकता, तो यह भ्रांति अब कौन पालेगा कि मैं किसीको सुख दे सकता हूं ? तो कैसा पुण्य ? फिर ये भ्रांति भी कौन पालेगा कि मैंने किसीको पाप किया, किसी को दुख दिया। ये भ्रांति भी गयी। सुख-दुख के जाते ही, राग-द्वेष के जाते ही पाप-पुण्य भी चला जाता है। पाप-पुण्य सुख-दुख के ही सूक्ष्म रूप हैं। इसलिए तो धर्मगुरु तुमसे कहते हैं कि जो पुण्य करेगा वो स्वर्ग जाएगा। स्वर्ग यानी सुख। तुमने चाहे इसे कभी ठीक-ठीक न देखा हो। और धर्म-गुरु कहते हैं, जो पाप करेगा वो नर्क जाएगा। नर्क यानी दुख। अगर पुण्य का परिणाम स्वर्ग है और पाप का परिणाम नर्क है, तो एक बात साफ है कि पाप-पुण्य सुख-दुख से ही जुड़े हैं। जब सुख-दुख ही खो गया, तो पाप-पुण्य भी खो जाते हैं।

ध्यान रखना, दुनिया में दो तरह के भयभीत लोग हैं। जिनको तुम अधार्मिक कहते हो, वो डरे हैं कि कहीं दूसरा दुख न दे दे। और जिनको तुम धार्मिक कहते हो, वो डरे हैं कि कहीं मुझसे किसी दूसरे को दुख न हो जाए। जिनको तुम अधार्मिक कहते हो, वो डरे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि मैं दूसरे से सुख लेने में चूक जाऊं। और जिनको तुम धार्मिक कहते हो, वो डरे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि मैं दूसरे को सुख देने से चूक जाऊं। तो तुम्हारे धार्मिक और अधार्मिक भिन्न नहीं हैं। एक दूसरे की तरफ पीठ किये खड़े होंगे। लेकिन एक ही तल पर खड़े हैं। तल का कोई भेद नहीं है। कोई तुम्हारा धार्मिक अधार्मिक से ऊंचे तल पर नहीं है, किसी और दूसरी दुनिया में नहीं है।

हो दौरेगम कि अहदे खुशी दोनों एक हैं
दोनों गुजस्तनी हैं खिजां क्या बहार क्या

चाहे पतझड़ हो, चाहे वसंत, दोनों ही क्षणभंगुर हैं। दोनों अभी हैं, अभी नहीं हो जाएंगे। दोनों पानी के बुलबुले हैं। दोनों ही क्षणभंगुर हैं। दोनों में कुछ चुनने जैसा नहीं है। क्योंकि अगर तुमने बहार को चुना, तो ध्यान रखना, अगर तुमने वसंत को चुना तो पतझड़ को भी चुन लिया। फिर वसंत में अगर सुख माना, तो पतझड़ में दुख कौन मानेगा ?

एक महिला मेरे पास लायी गयी। रोती थी, छाती पीटती थी, पति उसके चल बसे। वो कहने लगी मुझे किसी तरह सांत्वना दें, समझाएं। किसी तरह मुझे मेरे दुख के बाहर निकालें। मैंने उससे कहा सुख तूने लिया। माना कि सुख था, अब दुख कौन भोगेगा ? तू बहुत होशियारी की बात कर रही है। पति के होने का सुख, तू कभी मेरे पास नहीं आयी कि मुझे इस सुख से बचाएं। जगाएं, ये मैं सुख में डूबी जा रही हूं। तू कभी आयी ही नहीं इस रास्ते पर।

लोग जब दुख में होते हैं तभी मंदिर की तरफ जाते हैं। और जो सुख में जाता

है, वही समझ पाता है। दुख में जाके तुम समझ न पाओगे। क्योंकि दुख छाया है, मूल नहीं। मूल तो जा चुका, छाया गुजर रही है। छाया को कैसे रोका जा सकता है?

मैंने उस महिला को कहा, तू रो ही ले, अब दुख को भी भोग ही ले। क्योंकि भ्रांति दुख की नहीं है, भ्रांति सुख की है। सुख मिल सकता है, तो फिर दुख भी मिलेगा। वसंत से मोह लगाया, तो पतझड़ में रोओगे। जवानी में खुश हुए, बुढ़ापे में रोओगे। पद में प्रसन्न हुए, तो फिर पद खोकर कोई दूसरा रोएगा तुम्हारे लिए? मुस्कुराए तुम, तो आँसू भी तुम्हें ढालने पड़ेंगे। और दोनों एक जैसे हैं ऐसा जिसने जान लिया, क्योंकि दोनों का स्वभाव क्षणभंगुर है, पानी के बबूले जैसे हैं ...।

ध्यान रखना, ये जानना सुख में होना चाहिए, दुख में नहीं। दुख में तो बहुत पुकारते हैं परमात्मा को, और फिर सोचते हैं शायद उस तक आवाज नहीं पहुँचती। दुख में पुकारने की बात ही गलत है। जब तुमने सुख में न पुकारा, तो तुम गलत मौके पे पुकार रहे हो। जब तुम्हारे पास कंठ था और तुम पुकार सकते थे, तब न पुकारा; अब जब कंठ अवरुद्ध हो गया है तब पुकार रहे हो! अब पुकार निकलती ही नहीं। ऐसा नहीं है कि परमात्मा नहीं सुनता है। दुख में पुकार निकलती ही नहीं। दुख तो अनिवार्य हो गया।

अगर सुख में न जागे, और सुख को गुजर जाने दिया, तो अब छाया को भी गुजर जाने दो। मेरे देखे, जो सुख में जागता है वही जागता है। जो दुख में जागने की कोशिश करता है वो तो साधारण कोशिश है, सभी करते हैं। हर आदमी दुख से मुक्त होना चाहता है। ऐसा आदमी तुम पा सकते हो जो दुख से मुक्त नहीं होना चाहता? लेकिन इसमें सफलता नहीं मिलती, नहीं तो सभी लोग मुक्त हो गये होते (लेकिन जो सुख से मुक्त होना चाहता है, वो तत्क्षण मुक्त हो जाता है। लेकिन सुख से कोई मुक्त नहीं होना चाहता। यही आदमी की विडंबना है)

दुख से तुम मुक्त होना चाहते हो, लेकिन वहाँ से मार्ग नहीं। सुख से तुम मुक्त होना नहीं चाहते, वहाँ से मार्ग है। दीवाल से तुम निकलना चाहते हो, द्वार से तुम निकलना नहीं चाहते। जब दीवाल सामने आ जाती है, तब तुम सिर पीटने लगते हो कि मुझे बाहर निकलने दो। जब द्वार सामने आता है, तब तुम कहते हो अभी जल्दी क्या है? आने दो दीवाल को, फिर निकलेंगे।

ध्यान रखना, जो सुख में संन्यासी हुआ, वही हुआ। '*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*'। उन्होंने ही छोड़ा जिन्होंने भोग में छोड़ा। पत्नी मर गयी, इसलिए तुम संन्यासी हो गये। दिवाला निकल गया, इसलिए संन्यासी हो गये। नौकरी न लगी, इसलिए संन्यासी हो गये। चुनाव हार गये, इसलिए संन्यासी हो गये। तो तुम्हारा संन्यास

हारे हुए का संन्यास है। उस संन्यास में कोई प्राण नहीं। लोग कहते हैं, 'हारे को हरिनाम'। हारे को हरिनाम? हारे हुए को तो कोई हरि का नाम नहीं हो सकता।

जीत में स्मरण रखना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि जीत बड़ी बेहोशी लाती है। जीत में तो तुम ऐसे अकड़ जाते हो कि अगर परमात्मा खुद भी आए, तो तुम कहो फिर कभी आना, आगे बढ़ो, अभी फुर्सत नहीं। और मैं तुमसे कहता हूँ परमात्मा आया है, क्योंकि जीत में द्वार सामने होता है। लेकिन तुम अंधे होते हो।

'जिसके चित्त में राग नहीं और इसलिए जिसके चित्त में द्वेष नहीं, जो पाप-पुण्य से मुक्त है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं।'

भय क्यों पैदा होता है? भय दो कारण से पैदा होता है। जो तुम चाहते हो, कहीं ऐसा न हो कि न मिले। तो भय पैदा होता है। या, जो तुम्हारे पास है, कहीं ऐसा न हो कि खो जाए, तो भय पैदा होता है। लेकिन जाग्रत पुरुष को पता चलता है कि तुम्हारे पास केवल तुम ही हो, और कुछ भी नहीं। और जो तुम हो, उसको खोने का कोई उपाय नहीं। उसे न चोर ले जा सकते हैं, न डाकू छीन सकते हैं। 'नैनं छिंदंति शस्त्राणि — उसे शस्त्र छेद नहीं पाते — नैनं दहति पावकः — उसे आग जलाती नहीं'। जाग्रत को पता चलता है कि जो मैं हूँ वह तो शाश्वत, सनातन है। उसकी कोई मृत्यु नहीं।

सोया कँपता है। डरता है कि कहीं कोई मुझसे छीन न ले।

दो दिन पहले एक युवती ने मुझे आके कहा कि मैं सदा डरती रहती हूँ कि जो मेरे पास है, कहीं छिन न जाए। मैंने उससे पूछा कि तू पहले मुझे ये बता, क्या तेरे पास है? उसने कहा अब जब आप पूछते हो तो बड़ी मुश्किल होती है, है तो कुछ भी नहीं। फिर डर किस बात का है? क्या है तुम्हारे पास जो खो जाएगा? धन? और जो तुम सोचते हो तुम्हारे पास है और खो सकता है, क्या तुम उसे बचा सकोगे?

तुम कल पड़े रह जाओगे। स्वाँस नहीं आएगी-जाएगी, मक्खियाँ उड़ेंगी तुम्हारे चेहरे पर — तुम उड़ा भी न सकोगे — धन यहीं का यहीं पड़ा रह जाएगा। धन तुम्हारा है? तुम नहीं थे तब भी यहीं था, तुम नहीं होओगे तब भी यहीं होगा। और ध्यान रखना, धन रोएगा नहीं कि तुम खो गये। मालिक खो गया और धन रोए। धन को पता ही नहीं कि तुम भी मालिक थे। तुमने ही मान रखा था। तुम्हारी मान्यता ऐसी ही है जैसे मैंने सुना है —

एक हाथी एक छोटे से नदी के पुल पे से गुजरता था और एक मक्खी उस हाथी के सिर पे बैठी थी। जब पुल कँपने लगा, और उस मक्खी ने कहा देखो, हमारे वजन से पुल कँपा जा रहा है। हमारे वजन से! उसने हाथी से कहा बेटे, हमारे वजन से पुल कँप रहा है। हाथी ने कहा कि मुझे अब तक पता ही न था कि तू भी

ऊपर बैठी है। आदमी? कहते हैं छिपकलियाँ, उनको कभी निमंत्रण मिल जाता है उनकी जात-बिरादरी में तो जाती नहीं, वो कहती हैं महल गिर जाएगा, सम्हाले हुए हैं। छिपकली चली जाएगी तो महल गिर जाएगा!

तुम्हारी भ्रांति है कि तुम्हारे पास कुछ है। तुम्हारी मालिकियत झूठी है। हां, जो तुम्हारे पास है वो तुम्हारे पास है। उसे न कभी किसीने छीना है, न छीन सकेगा। असलियत में संपदा की परिभाषा यही है कि जो छीनी न जा सके। जो छीनी जा सके वो तो विपदा है, संपदा नहीं है। वो संपत्ति नहीं है, विपत्ति है।

तो दो डर हैं आदमी जिनसे कँपता रहता है। कहीं मेरा छिन न जाए। स्वभावतः तुमने जो तुम्हारा नहीं है उसको मान लिया मेरा, इसलिए भय है। वो छिनेगा ही। सिकंदर भी न रोक पाएगा, नेपोलियन भी न रोक पाएगा, कोई भी न रोक पाएगा। वो छिनेगा ही। वो तुम्हारा कभी था ही नहीं। तुमने नाहक ही अपना दावा कर दिया था। तुम्हारा दावा झूठा था, इसलिए तुम भयभीत हो रहे हो। और जो तुम्हारा है, वो कभी छिनेगा नहीं। लेकिन उसकी तरफ तुम्हारी नजर नहीं है। जो अपना नहीं है, उसको मानके बैठे हो। और जो अपना है, उसे त्याग कर बैठे हो। संसार का यही अर्थ है। संपदा का त्याग और विपदा का भोग। संसार का यही अर्थ है, जो अपना नहीं है उसकी घोषणा कि मेरा है, और जो अपना है उसका विस्मरण।

जिसको स्वयं का स्मरण आ गया वो निर्भय हो जाता है। निर्भय नहीं अभय हो जाता है। वो भय से मुक्त हो जाता है। जो तुम्हारा नहीं है उसने ही तो तुम्हें भिखारी बना दिया है। माँग रहे हो, हाथ फैलाए हो। और कितनी ही भिक्षा मिलती जाए, मन भरता नहीं। मन भरना जानता ही नहीं।

बुद्ध कहते हैं, मन की आकांक्षा दुष्पूर है, वासना दुष्पूर है, वो कभी भरती नहीं।

एक सम्राट के द्वार पर एक भिखारी खड़ा था। और सम्राट ने कहा कि क्या चाहता है? उस भिखारी ने कहा कुछ ज्यादा नहीं चाहता, ये मेरा भिक्षापात्र भर दिया जाए। छोटा सा पात्र था। सम्राट ने मजाक में ही कह दिया कि अब जब ये भिखारी सामने ही खड़ा है, और पात्र भरवाना है, और छोटा सा पात्र है, तो क्या अन्न के दानों से भरना, स्वर्ण अशर्फियों से भर दिया जाए।

मुश्किल में पड़ गया। स्वर्ण अशर्फियाँ भरी गयीं, सम्राट भी हैरान हुआ, वे स्वर्ण अशर्फियाँ खो गयीं। पात्र खाली का खाली रहा। लेकिन जिद पकड़ गयी सम्राट को भी कि ये भिखारी, ये क्या मुझे हराने आया है। वो बड़ा सम्राट था, उसके खजाने बड़े भरपूर थे। उसने कहा कि चाहे सारा साम्राज्य लुट जाए, लेकिन इस भिखारी से थोड़े ही हारूँगा! उसने डलवायीं अशर्फियाँ। लेकिन धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर कँपने लगे। क्योंकि डालते गये और वो खोती गयीं। आखिर वो घबड़ा गया।

फकीरों ने कहा कि ये तो सब लुट जाएगा। और ये पात्र कोई साधारण पात्र नहीं मालूम होता। ये तो कोई जादू का मामला है। ये आदमी तो कोई शैतान है। उस भिखारी ने कहा मैं सिर्फ आदमी हूँ, शैतान नहीं। और ये पात्र आदमी के हृदय से बनाया है। हृदय कब भरता है? ये भी नहीं भरता। इसमें कुछ शैतानियत नहीं है, सिर्फ मनुष्यता है।

कहते हैं सम्राट उतरा सिंहासन से, उस भिखारी के पैर छुए और उसने कहा कि मुझे एक बात समझ में आ गयी — न तेरा पात्र भरता है, न मेरा भरा है। तेरे पात्र में भी ये सब स्वर्ण अशर्फियाँ खो गयीं, और मेरे पात्र में भी खो गयी थीं, लेकिन तूने मुझे जगा दिया। बस अब इसको भरने की कोई जरूरत न रही। अब इस पात्र को ही फेंक देना है। जो भरता ही नहीं उस पात्र को क्या ढोना!

लेकिन आदमी माँगे चला जाता है, जो उसका नहीं है। और चाहे कितनी ही बेइज्जती से मिले, बेशर्मी से मिले, माँगे चला जाता है। भिखारी बड़े बेशर्म होते हैं। तुम उनसे कहते चले जाते हो, हटो, आगे जाओ, वो जिद्द बाँधके खड़े रहते हैं। बड़े हठधर्मी होते हैं। हठयोगी। भिखमंगा मन ही बड़ा जिद्दी है। बड़ी बेशर्मी से माँगे चला जाता है।

पिलादे ओक से साकी जो मुझसे नफरत है
प्याला गर नहीं देता शराब तो दे

ओक से ही पी लेंगे। 'प्याला गर नहीं देता ... न दे ... शराब तो दे'। माँगे चले जाते हैं। कोई लज्जा भी नहीं है। पात्र कभी भरता नहीं। कितने जन्मों से तुमने माँगा है! कब जागोगे? कितनी बेइज्जती से माँगा है! कितने धक्के-मुक्के खाए हैं! कितनी बार निकाले गये हो महफिल से! फिर भी खड़े हो।

पिलादे ओक से साकी जो मुझसे नफरत है
प्याला गर नहीं देता न दे शराब तो दे

संसार में आदमी कितनी बेइज्जती झेल लेता है। कितनी बेशर्मी से माँगे चला जाता है। और एक बात नहीं देखता कि इतना माँग लिया कुछ भरता नहीं; पात्र खाली का खाली है। कितना माँग लिया, कुछ भरता नहीं, दुष्पूर है। जिस दिन ये दिखायी पड़ जाता है उसी दिन तुम पात्र छोड़ देते हो। उसी क्षण अभय उत्पन्न हो जाता है।

अभय उन्हींको उत्पन्न होता है जिन्होंने ये सत्य देख लिया कि जो तुम्हारा है वो तुम्हारा है, माँगने की जरूरत नहीं। तुम उसके मालिक हो ही। और जो तुम्हारा नहीं है, कितना ही माँगो, कितना ही इकट्ठा करो, तुम मालिक उसके हो न पाओगे। जिसके तुम मालिक हो, परमात्मा ने तुम्हें उसका मालिक बनाया ही है। और जिसके

तुम मालिक नहीं हो, उसका तुम्हें मालिक बनाया नहीं। इस व्यवस्था में तुम कोई हेरफेर न कर पाओगे। ये व्यवस्था शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो।

और जिसके जीवन में अभय आ गया, बुद्ध कहते हैं, उसके जीवन में सब आ गया। वो परमात्मा स्वयं हो गया। जहां अभय आ गया, वहां उठती है प्रार्थना, वहां उठता है परमात्मा। लेकिन उसकी बुद्ध बात नहीं करते, वो बात करने की नहीं है। वो चुपचाप समझ लेने की है। वो आंख से आंख में डाल देने की है। वो इशारे-इशारे में समझ लेने की है, जोर से कहने में मजा बिगड जाता है। वो बात चुप्पी में कहने की है। इसलिए बुद्ध उसकी बात नही करते। वो मूल बात कह देते हैं, आधार रख देते हैं; फिर वो कहते हैं, बीज डाल दिया फिर तो वो अपने से ही अंकुर बन जाता है।

'इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान। इस चित्त को नगर के समान दृढ़ ठहरा। प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध कर। जीत के लाभ की रक्षा कर। और उसमें आसक्त न हो।'

'इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान'। शरीर घडा ही है। तुम भीतर भरे हो घड़े के, तुम घड़े नहीं हो। जैसे घड़े में जल भरा है। या और भी ठीक होगा, जैसे खाली घड़ा रखा है और घडे में आकाश भरा है। घड़े को तोड़ दो, आकाश नहीं टूटता। घडा टूट जाता है, आकाश जहाँ था वही होता है। घड़ा टूट जाता है, सीमा मिट जाती है। जो सीमा में बँधा था वो असीम के साथ एक हो जाता है। घटाकाश। आकाश के साथ एक हो जाता है।

शरीर घडा है। मिट्टी का है। मिट्टी से बना है, मिट्टी मे ही गिर जाएगा। और जिसने यह समझ लिया कि मैं शरीर हूं, वही भ्रांति में पड़ गया। सारी भ्रांति की शुरुआत इस बात से होती है कि मैं शरीर हूँ। तुमने अपने वस्त्रों को अपना होना समझ लिया। तुमने अपने घर को अपना होना समझ लिया। ठहरे हो थोड़ी देर को, पड़ाव है मंजिल नहीं, सुबह हुई और यात्रीदल चल पडेगा। थोड़ा जागकर इसे देखो।

> मामूर-ए-फनां की कोताहियाँ तो देखो
> एक मौत का भी दिन है दो दिन की जिंदगी मे

बड़ी कंजूसी है। बडी संकीर्णता है।

> मामूर-ए-फनां की कोताहियाँ तो देखो
> एक मौत का भी दिन है दो दिन की जिंदगी मे

कुल दो दिन की जिंदगी है। उसमें भी एक मौत का दिन निकल जाता है। एक दिन की जिंदगी है और कैसे इठलाते हो! कैसे अकड़े जाते हो! कैसे भूल जाते हो

कि मौत द्वार पर खड़ी है। शरीर मिट्टी है और मिट्टी में गिर जाएगा।

'इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान'। बुद्ध यह नहीं कहते कि मान। बुद्ध कहते हैं, जान। बुद्ध का सारा जोर बोध पर है। वो ये नहीं कहते कि मैं कहता हूं इसलिए मान ले कि शरीर घड़े की तरह है। वो कहते हैं तू खुद ही जान। थोड़ा आंख बंद कर और पहचान, तू घड़े से अलग है।

ध्यान रखना, जिस चीज के भी हम द्रष्टा हो सकते हैं, उससे हम अलग हैं। जिसके हम द्रष्टा न हो सकें, जिसको दृश्य न बनाया जा सके, वही हम हैं। आंख बंद करो और शरीर को तुम अलग देख सकते हो। हाथ टूट जाता है, तुम नहीं टूटते। तुम लाख कहो कि मैं टूट गया, बात गलत मालूम होगी। खुद ही गलत मालूम होगी। हाथ टूट गया, पैर टूट गया, आंख चली गयी, तुम नहीं चले गये। भूख लगती है, शरीर को लगती है। तुम्हें नहीं लगती। हालांकि तुम कहे चले जाते हो कि मुझे भूख लगी है। प्यास लगती है, शरीर को लगती है। फिर जलधार चली जाती है, तृप्ति हो जाती है, शरीर को होती है।

सब तृप्तियां, सब अतृप्तियां शरीर की हैं। सब आना-जाना शरीर का है। बनना-मिटना शरीर का है। तुम न कभी आते, न कभी जाते। घड़े बनते रहते हैं, मिटते जाते हैं। भीतर का आकाश शाश्वत है। उसे कोई घड़ा कभी छू पाया! उस पर कभी धूल जमी! बादल बनते हैं, बिखर जाते हैं। आकाश पर कोई रेखा छूटती है! तुम पर भी नहीं छूटी। तुम्हारा क्वांरापन सदा क्वांरा है। वो कभी गंदा नहीं हुआ। इस भीतर के सत्य के प्रति जरा आंख बाहर से बंद करो और जागो।

बुद्ध कहते हैं, इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान। सिद्धांत की तरह मत मान लेना कि ठीक है। क्योंकि तुमने बहुत बार सुना है, महात्मागण समझाते रहते हैं शरीर अनित्य है, क्षण भर का बुलबुला है, तुमने भी सुन-सुन के याद कर ली है बात। याद करने से कुछ भी न होगा। जानना पड़ेगा। क्योंकि जानने से मुक्ति आती है। ज्ञान रूपांतरित करता है।

इस चित्त को इस तरह ठहरा ले जैसेकि कोई नगर चट्टान पे बसा हो, या किसी नगर का किला पहाड़ की चट्टान पर बना हो — अडिग चट्टान पे बना हो। इस चित्त को नगरकोट के समान दृढ़ ठहरा ले। सारी कला इतनी ही है कि मन न कंपे, अकंप हो जाए। क्योंकि जब तक मन कंपता है तब तक दृष्टि नहीं होती। जब तक मन कंपता है तब तक तुम देखोगे कैसे? जिससे देखते थे वही कंप रहा है। ऐसा समझो कि तुम एक चश्मा लगाए हुए हो, और चश्मा कंप रहा है। चश्मा कंप रहा है, जैसेकि हवा में पंखा कंप रहा हो। कोई पत्ता कंप रहा हो तूफान में, ऐसा तुम्हारा

चश्मा कँप रहा है। तुम कैसे देख पाओगे? दृष्टि असंभव हो जाएगी। चश्मा ठहरा हुआ होना चाहिए।

मन कँपता हो, तो तुम सत्य को न जान पाओगे। मन के कँपने के कारण सत्य तुम्हें संसार जैसा दिखायी पड़ा है। जो एक है, वो अनेक जैसा दिखायी पड़ रहा है, क्योंकि मन कँप रहा है। जैसेकि रात चाँद है, पूरा चाँद है आकाश में, और झील नीचे कँप रही है लहरों से, तो हजार टुकड़े हो जाते हैं चाँद के, प्रतिबिंब नहीं बनता। पूरे झील पे चाँदी फैल जाती है, लेकिन चाँद का प्रतिबिंब नहीं बनता। हजार टुकड़े हो जाते हैं। फिर झील ठहर गयी, लहर नहीं कंपती, सब मौन हो गया, सन्नाटा हो गया, झील दर्पण बन गयी, अब चाँद एक बनने लगा। अनेक दिखायी पड़ रहा है, अनेक है नहीं। अनेक दिखायी पड़ रहा है कँपते हुए मन के कारण।

मैंने सुना है, एक रात मुल्ला नसरुद्दीन घर आया। शराब ज्यादा पी गया है। हाथ में चाबी लेके ताले में डालता है, नहीं जाती—हाथ कँप रहा है। पुलिस का आदमी द्वार पर खड़ा है। वो बड़ी देर तक देखता रहा, फिर उसने कहा कि नसरुद्दीन, मैं कुछ सहायता करूँ? लाओ चाबी मुझे दो, मैं खोल दूँ। नसरुद्दीन ने कहा, चाबी की तुम फिकर न करो, जरा इस कँपते मकान को तुम पकड़ लो, चाबी तो मैं खुद ही डाल दूँगा।

जब आदमी के भीतर शराब में सब कँप रहा हो, तो उसे ऐसा नहीं लगता कि मैं कँप रहा हूँ; उसे लगता है ये मकान कँप रहा है। तुमने कभी शराब पी? भंग पीके कभी चले रास्ते पर? जरूर चलके देखना चाहिए, एक दफा अनुभव करने जैसा है। उससे तुम्हें पूरे जीवन के अनुभव का पता चल जाएगा कि ऐसा ही संसार है। इसमें तुम नशे में चल रहे हो। तुम कँप रहे हो, कुछ भी नहीं कँप रहा है। तुम खंड-खंड हो गये हो, बाहर तो जो है वो अखंड है। तुम अनेक टुकड़ों में बँट गये हो, बाहर तो एक दर्पण टूट गया है। तो बहुत चित्र दिखायी पड़ रहे हैं। जो है वो एक है। बुद्ध कहते हैं चित्त ठहर जाए, अकंप हो जाए, जैसे दिये की लौ ठहर जाए, कोई हवा कँपाए न।

'प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध कर, जीत कर लाभ की रक्षा कर, पर उसमें आसक्त न हो।'

ये बड़ी कठिन बात है। कठिनतम, साधक के लिए। क्योंकि इसमें विरोधाभास है। बुद्ध कहते हैं, आकांक्षा कर, लेकिन आसक्त मत हो। सत्य की आकांक्षा करनी होगी। और सत्य को जीतने की भी यात्रा करनी होगी। विजय को सुरक्षित करना होगा, नहीं तो खो जाएगी हाथ से विजय। ऐसे बैठे-ठाले नहीं मिल जाती है। बड़ा उद्यम, बड़ा उद्योग, बड़ा श्रम, बड़ी साधना, बड़ी तपश्चर्या। जीत के लाभ की रक्षा

कर; और जो छोटी-मोटी जीत मिले उसको बचाना, रक्षा करना, भूल मत जाना, नहीं तो जो कमाया है वो भी खो जाता है।

तो ध्यान सतत करना होगा, जब तक समाधि उपलब्ध न हो जाए। अगर एक दिन की भी गाफिलता की, एक दिन की भी भूल-चूक की, तो जो कमाया था वो खोने लगता है। ध्यान तो ऐसा ही है जैसेकि कोई साइकिल पर सवार आदमी पैडल मारता है। वो सोचे कि अब तो चल पड़ी है साइकिल, अब क्या पैडल मारना। पैडल मारना बंद कर दे तो ज्यादा देर साइकिल न चलेगी। चढ़ाव होगा तब तो फौरन ही गिर जाएगी। उतार होगा तो शायद थोड़ी दूर चली जाए, लेकिन कितनी दूर जाएगी? ज्यादा दूर नहीं जा सकती। सतत पैडल मारने होंगे, जबतक कि मंजिल ही न आ जाए।

ध्यान रोज करना होगा। जो-जो कमाया है ध्यान से, उसकी रक्षा करनी होगी। जीत के लाभ की रक्षा कर। वो जो-जो हाथ में आ जाए उसको तो बचाना। जितना थोड़ा सा चित्त साफ हो जाए, ऐसा मत सोचना कि अब क्या करना है सफाई। वो फिर गदा हो जाएगा। जब तक कि परिपूर्ण अवस्था न आ जाए समाधि की तब तक श्रम जारी रखना होगा। हाँ, समाधि फलित हो जाए, फिर कोई श्रम का सवाल नहीं। समाधि उपलब्ध हो जाए, फिर तो तुम उस जगह पहुँच गये जहाँ कोई चीज तुम्हें कलुषित नहीं कर सकती। मंजिल पे पहुँच गये। फिर तो साइकिल को चलाना ही नहीं, उतर ही जाना है। फिर तो जो पैडल मारे वो नासमझ। क्योंकि वो फिर मंजिल के इधर-उधर हो जाएगा। एक ऐसी घड़ी आती है जहाँ उतर जाना है, जहाँ रुक जाना है, जहाँ यात्रा ठहर जाएगी। लेकिन उस घड़ी के पहले तो श्रम जारी रखना। और जो भी छोटी-मोटी विजय मिल जाए, उसको सम्हालना है। संपदा को बचाना है।

'प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध कर'। वही एक हथियार है आदमी के पास। होश का, प्रज्ञा का। उसीके साथ वासना से लड़ा जा सकता है। और कोई हथियार काम न आएगा। जबरदस्ती से लड़ोगे, हारोगे। दबाओगे, टूटोगे। वासना को किसी तरह छिपाओगे, छिपेगी नहीं। आज नहीं कल फूट पड़ेगी। विस्फोट होगा, पागल हो जाओगे। विक्षिप्त हो जाओगे, विमुक्त नहीं। एक ही उपाय है, जिससे भी लड़ना हो होश से लड़ना। होश को ही एकमात्र अस्त्र बना लेना। अगर क्रोध है, तो क्रोध के प्रति जागना। अगर काम है, तो काम पर ध्यान करना। होश से भरके देखना, क्या है काम की वृत्ति।

और तुम चकित होओगे, इन सारी वृत्तियों का अस्तित्व निद्रा में है। प्रमाद में है। जैसे दिया जलने पर अंधेरा खो जाता है, ऐसे ही होश के आने पर ये वृत्तियाँ

खो जाती हैं। मार, शैतान, काम -- कुछ भी नाम दो — तुम्हारी मूर्छा का ही नाम है।

'अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित होकर व्यर्थ काठ की भाँति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।' बुद्ध कहते हैं, जब तुम जागके देखोगे, परम आनंद का अनुभव होगा। भीतर एक उद्घोष होगा — 'अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना रहित होकर व्यर्थ काठ की भाँति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।'

यह शरीर तुम नहीं। और जिस दिन तुम अपने शरीर को व्यर्थ काठ की भाँति पड़ा हुआ देख लोगे, उसी दिन तुम शरीर के पार हो गये। अतिक्रमण हुआ। शरीर मौत है। शरीर रोग है। शरीर उपाधि है। जो शरीर से मुक्त हुआ, वो निरुपाधिक हो गया।

शरीर से मुक्त होने का क्या अर्थ है? शरीर से मुक्त होने का अर्थ है, इस बात की प्रतीति गहन हो जाए, सघन हो जाए; ये लकीर फिर मिटाए न मिटे, ये बोध फिर दबाए न दबे। ये बोध सतत हो जाए; जागने में, सोने में ये अनुभव होता रहे कि तुम शरीर में हो, शरीर ही नहीं।

'जितनी हानि द्वेषी द्वेषी की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई गलत मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।'

दुश्मन से मत डरो, बुद्ध कहते हैं, वह तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा? डरो अपने चित्त से। शत्रु-शत्रु की इतनी हानि नहीं करता — नहीं कर सकता — जितना तुम्हारा चित्त गलत दिशा में जाता हुआ तुम्हारी हानि करता है। बुद्ध ने कहा है, तुम्हारा ठीक दिशा में जाता चित्त ही मित्र है। और तुम्हारा गलत दिशा में जाता चित्त ही शत्रु है। तुम अपने ही चित्त से सावधान हो जाओ। तुम अपने ही चित्त का सदुपयोग कर लो, सम्यक् उपयोग कर लो, फिर तुम्हारी कोई हानि नहीं करता। अगर कोई दूसरा भी तुम्हारी हानि कर पाता है, तो सिर्फ इसीलिए कि तुम्हारा चित्त गलत दिशा में जा रहा था, नहीं तो कोई तुम्हारी हानि नहीं कर सकता। ठीक दिशा में जाते चित्त की हानि असंभव है। इसलिए असली सवाल उसी भीतर के दुर्ग को उपलब्ध कर लेना है।

'जितनी हानि द्वेषी द्वेषी की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई गलत मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।'

क्या है गलत मार्ग? स्वयं को न देखकर शेष सब दिशाओं में भटकते रहना। भीतर न खोजकर, और सब जगह खोजना। अपने में न झांककर सब जगह झांकना। अपने घर न आना, और हर घर के सामने भीख माँगना गलत मार्ग है। और ऐसे तुम चलते ही रहे हो —

चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक राहरौ के साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं

ये चित्त तुम्हारा हरेक के साथ हो जाता है । कोई भी यात्री मिल जाता है, उसीके साथ हो जाता है। कोई स्त्री मिल गयी, कोई पुरुष मिल गया, कोई पद मिल गया, कोई धन मिल गया, कोई यश मिल गया, चल पड़ा । थोड़ी दूर चलता है, फिर हाथ खाली पाके फिर किसी दूसरे के साथ चलने लगता है। राह पर चलते अजनबियों के साथ हो लेता है। अभी अपने मार्गदर्शक को पहचानता नहीं है।

'चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक राहरौ के साथ'। जो मिल गया उसीके साथ हो लेता है। अपना कोई होश नहीं। 'पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं'। अभी कौन मार्गदर्शक है, कौन गुरु है, इसे मैं पहचानता नहीं । बुद्ध ने कहा है, तुम्हारा होश ही तुम्हारा गुरु है। कभी आँख लुभा लेती है, रूप की तरफ चल पड़ता है। कभी कान लुभा लेता है, संगीत की तरफ चल पड़ता है। कभी जीभ लुभा लेती है, स्वाद की तरफ चल पड़ता है।

'चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक राहरौ के साथ'। पर हाथ कभी भरते नहीं, प्राण कभी तृप्त होते नहीं। सोचकर कि ये ठीक नहीं, फिर किसी और के साथ चल पड़ते हैं। मगर एक बात याद नहीं आती —'पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं'। कौन है जिसके पीछे चलूँ (होश, जाग्रति, ध्यान, उसके पीछे चलो तो ही पहुँच पाओगे । क्योंकि उसका जिसने साथ पकड़ लिया वो अपने घर लौट आता है, वो अपने स्रोत पर आ जाता है। गंगा गंगोत्री वापिस आ जाती है)

'जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे बंधु-बांधव नहीं कर सकते, उससे अधिक भलाई सही मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।'

और कोई मित्र नहीं, और कोई सगा-साथी नहीं है। और कोई संगी संग करने योग्य नहीं है। एक ही साथ खोज लेने योग्य है, अपने बोध का साथ। फिर तुम वीराने में भी रहो, रेगिस्तान में भी रहो, तो भी अकेले नहीं हो। और अभी तुम भरी दुनिया में हो और बिलकुल अकेले हो। चारों तरफ भीड़-भाड़ है, बड़ा शोरगुल है, पर तुम बिलकुल अकेले हो। कौन है तुम्हारा साथ ? मौत आएगी, कौन तुम्हारे साथ जा सकेगा ? लोग मरघट तक पहुँचा आएँगे। उससे आगे फिर कोई तुम्हारे साथ जाने को नहीं है। फिर तुम्हें कहना ही पड़ेगा, मन से कहो, बेमन से कहो—

शुक्रिया ऐ कब्र तक पहुँचानेवाले शुक्रिया
अब अकेले ही चले जाएँगे हम
—इस मंजिल से हम ...
अब अकेले ही चले जाएँगे इस मंजिल से हम

फिर चाहे मन से कहो, चाहे बेमन से कहो; कहो, चाहे न कहो; मौत के बाद अकेले हो जाओगे। थोड़ा सोचो, जो मौत में काम न पड़े वो जीवन में साथ थे। जो मौत में भी साथ न हो सका, वो जीवन में साथ कैसे हो सकता है? धोखा था, एक भ्रांति थी। मन को भुला लिया था, मना लिया था, समझा लिया था। डर लगता था अकेले में। अकेले होने में बेचैनी होती थी। चारों तरफ एक सपना बसा लिया था। अपनी ही कल्पनाओं का जाल बुन लिया था। अपने अकेलेपन को भुलाने के लिए मान बैठे थे कि साथ है। लेकिन कोई किसीके साथ नहीं। कोई किसीके संग नहीं। अकेले हम आते हैं और अकेले हम जाते हैं। और अकेले हम यहां हैं, क्योंकि दो अकेलेपन के बीच में कहां साथ हो सकता है?

जन्म के पहले अकेले, मौत के बाद अकेले, ये थोड़ी सी दूर पर राह मिलती है, इस राह पर बड़ी भीड़ चलती है, तुम ये मत सोचना तुम्हारे साथ चल रही है। सब अकेले-अकेले चल रहे हैं। कितनी ही बड़ी भीड़ चल रही हो, सब अकेले-अकेले चल रहे हैं। इसको जिसने जान लिया, इसको जिसने समझ लिया, वो फिर अपना साथ खोजता है। क्योंकि वही मौत के बाद भी साथ होगा। फिर वो अपना साथ खोजता है। वो कभी न छूटेगा।

अपना साथ खोजना ही ध्यान है। दूसरे का साथ खोजना ही विचार है। इसलिए विचार में सदा दूसरे की याद बनी रहती है। तुम्हारे सब विचार दूसरे की याद हैं। अगर तुम ध्यान करो — विचार पर विचार करो बैठकर — तो तुम पाओगे तुम्हारे विचारों में तुम करते क्या हो? तुम्हारे विचारों में तुम दूसरों की याद करते हो। बाहर से साथ न हों, तो भीतर से साथ हैं।

एक युवा संन्यस्त होने एक गुरु के पास पहुंचा। निर्जन मंदिर में उसने प्रवेश किया। गुरु ने उसके चारों तरफ देखा और कहा कि किसलिए आए हो? उस युवक ने कहा कि सब छोड़कर आया हूं, तुम्हारे चरणों में, परमात्मा को खोजना है। उस गुरु ने कहा, पहले ये भीड़-भाड़ जो तुम साथ ले आए हो बाहर ही छोड़ आओ। उस युवक ने चौंक के चारों तरफ देखा, वहां तो कोई भी न था। भीड़-भाड़ का नाम ही न था, वो अकेले ही खड़ा था। उसने कहा, आप भी कैसी बात करते हैं, मैं बिल्कुल अकेला हूं। तब तो उस युवक को थोड़ा शक हुआ कि मैं किसी पागल के पास तो नहीं आ गया।

उस गुरु ने कहा, वो मुझे भी दिखायी पड़ता है। आंख बंद करके देखो, वहां भीड़-भाड़ है। उसने आंख बंद की, जिस पत्नी को वो रोते हुए छोड़ आया है, वो दिखायी पड़ी। जिन मित्रों को गांव के बाहर बिदा मांग आया है, वो खड़े हुए दिखायी पड़े। बजार, दुकान, संबंधी, तब उसे समझ आया कि भीड़ तो साथ है।

विचार बाहर की भीड़ के प्रतिबिंब हैं। विचार, जो तुम्हारे साथ नहीं हैं उनको साथ मान लेने की कल्पना है। ध्यान में तुम बिलकुल अकेले हो; या अपने ही साथ हो, बस।

'जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे बंधु-बांधव नहीं कर सकते उससे अधिक भलाई सही मार्ग पर लगा चित्त करता है।'

सही मार्ग से क्या मतलब ? अपनी तरफ लौटना। जिसको पतंजलि ने प्रत्याहार कहा है। भीतर की तरफ लौटना। जिसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है। अपनी तरफ आता हुआ। जिसको जीसस ने कहा है, लौटो, क्योंकि परमात्मा का राज्य बिलकुल हाथ के करीब है। वापस आ जाओ।

ये वापसी, ये लौटना ध्यान है। ये लौटना ही चित्त का ठीक लगना है। तुम चित्त के ठीक लगने से यह मत समझ लेना कि अच्छी-अच्छी बातों में लगा है। फिल्म की नहीं सोचता, स्वर्ग की सोचता है। स्वर्ग भी फिल्म है। अच्छी-अच्छी बातों में लगा है। दुकान की नहीं सोचता, मंदिर की सोचता है। मंदिर भी दुकान है। अच्छी-अच्छी बातों में लगा है। ये मत समझ लेना मतलब कि पाप की नहीं सोचता, पुण्य की सोचता है। पुण्य भी पाप है। अच्छी-अच्छी बातों का तुम मतलब मत समझ लेना कि राम-राम जपता है। मरा-मरा जपो कि राम-राम जपो, सब बराबर है। दूसरे की याद, पर का चिंतन! फिर वो मंदिर का हो कि दुकान का, राम का हो कि रहीम का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

ठीक दिशा में लगे चित्त का अर्थ है, अपनी दिशा में लौटना। वहाँ विचार छूटते जाते हैं। धीरे-धीरे तुम ही रह जाते हो, तुम्हारा अकेला होना रह जाता है। शुद्ध। मात्र तुम। इतना शुद्ध कि मैं का भाव भी नहीं उठता। क्योंकि मैं का भाव भी एक विचार है। अहंकार भी नहीं उठता, क्योंकि अहंकार भी एक विचार है। जब और सब छूट जाते हैं, उन्हींके साथ वो भी छूट जाता है। जिस मुकाम पे तुम 'तू' को छोड़ आते हो, वहीं 'मैं' भी छूट जाता है। जहाँ तुम दूसरों को छोड़ आते हो, वहीं तुम भी छूट जाते हो। फिर जो शेष रह जाता है, फिर जो शेष रह जाता है शुद्धतम, जबतक उसको न पा लो तबतक जिंदगी गलत दिशा में लगी है।

ये जिंदगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर
जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूँ मैं

जबतक इस जगह न आ जाओ तब तक सारी जिंदगी एक गुनाह है, एक पाप है। तब तक तुम कितना ही अपने को समझाओ, कितना ही अपने को ठहराओ, तुम कँपते ही रहोगे भय से। तब तक तुम कितना ही समझाओ, तुम धोखा दे न पाओगे। तुम्हारी हर सांत्वना के नीचे से खाई झांकती ही रहेगी भय की, घबड़ाहट

की। मृत्यु तुम्हारे पास ही खड़ी रहेगी। तुम्हारी जिंदगी को जिंदगी मानके तुम धोखा न दे पाओगे। और तुम कितना ही पुण्य करो, जब तक तुम स्वयं की सत्ता में नहीं प्रविष्ट हो गये हो —

ये जिंदगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर

वही परमात्मा है। वही तुम्हारा होना है। तुमसे भी मुक्त, वही परमात्मा है। जहाँ घड़ा छूट गया और कोरा आकाश रह गया। नया, फिर भी सनातन। सदा का, फिर भी सदा नया और ताजा।

ये जिंदगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर
जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूँ मैं

और जबतक तुम उस जगह नहीं पहुँच जाते तबतक तुम अनुभव करते ही रहोगे कि कोई पाप हुआ जा रहा है। कुछ भूल हुई जा रही है। पैर कहीं गलत पड़े जा रहे हैं। लाख सँभालो, तुम सँभल न पाओगे। एक ही सँभलना है, और वो सँभलना है धीरे-धीरे अपनी तरफ सरकना। उस भीतरी बिंदु पर पहुँच जाना है, जिसके आगे और कुछ भी नहीं। जिसके पार बस विराट आकाश है।

इसे बुद्ध ने शुद्धता कहा है। इस शुद्धता में जो प्रविष्ट हो गया उसने ही निर्वाण पा लिया। उसने ही वह पा लिया जिसे पाने के लिए जीवन है। और जब तक ऐसा न हो जाए तब तक गुनगुनाते ही रहना भीतर, गुनगुनाते ही रहना —

ये जिंदगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर
जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूँ मैं

(इसे याद रखना तब तक। भूल मत जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी पड़ाव पर ही सोए रह जाओ। कहीं ऐसा न हो कि तुम भूल ही जाओ कि जीवन जागने का एक अवसर था। ये पाठशाला है। इससे उत्तीर्ण होना है। यहाँ घर बसा के बैठ नहीं जाना है।)

आज इतना ही।

अनंत छिपा है क्षण में

४ दिसंबर १९७५

पहला प्रश्न : आप श्रद्धा, प्रेम, आनंद की चर्चा करते हैं, लेकिन आप शक्ति के बारे में क्यों नहीं समझाते? आजकल मुझमें अज्ञात शक्ति का आविर्भाव हो रहा है। यह क्या है और इस स्थिति में मुझे क्या रुख लेना चाहिए?

शक्ति की बात करनी जरूरी ही नहीं। जब शक्ति का आविर्भाव हो तो प्रेम में उसे बाँटो, आनंद में उसे ढालो। उसे दोनों हाथ उलीचो।

शक्ति के आविर्भाव के बाद अगर उलीचा न, अगर बाँटा न, अगर औरों को साझीदार न बनाया, अगर प्रेम के गीत न गाए, उत्सव पैदा न किया जीवन में, तो शक्ति बोझ बन जाएगी। तो शक्ति पत्थर की तरह छाती पे बैठ जाएगी। फिर शक्ति से समस्या उठेगी।

गरीबी की ही समस्याएँ नहीं हैं संसार में, अमीरी की बड़ी समस्याएँ हैं। लेकिन अमीर की सबसे बड़ी समस्या यह है कि जो धन उसे मिल गया, उसका क्या करे ? पर ये भी कोई समस्या है ? उसे बाँटो, उसे लुटाओ। बहुत हैं जिनके पास नहीं है, उन्हें दो। कठिनाई इसलिए खड़ी होती है कि हमने जीवन में केवल माँगने की कला सीखी है। और जब हम सम्राट बनते हैं, तो अड़चन आ जाती है। माँगने की कला का अभ्यास, फिर अचानक जब हम सम्राट बन जाते हैं परमात्मा के प्रसाद से, उतरती है अपरिसीम ऊर्जा, तब भी हम माँगना ही जानते हैं, देना नहीं जानते --

हमारे जीने का सारा ढंग माँगना सिखाता है — फिर जब परमात्मा हम पर बरसता है तो बाँटने की हमारे पास कोई कला नहीं होती, आदत नहीं होती, अभ्यास नहीं होता, इसलिए अड़चन आती है। यही तो कठिनाई है।

मेरे पास बहुत अमीर लोग आ जाते हैं। वो कहते हैं, बड़ी अड़चन है; धन तो है, क्या करें? अड़चन क्या है? अड़चन यही है कि आदत गरीबी की है, आदत भिखारी की है। अड़चन यही है। जिंदगी भर माँगा — कमाना सीखा। बाँटना तो कभी सीखा नहीं — सीखते भी कैसे? था नहीं तो बाँटते क्या? जो नहीं था उसको माँगा, इकट्ठा किया, जोड़ा, सँजोया, सारा जीवन इकट्ठा करने की आदत बन गयी। फिर मिला; अब देने को हाथ नहीं खुलते, बढ़ते नहीं, यही अड़चन है। ये अड़चन समझ ली तो हल हो गयी। कुछ करना थोड़ी ' है।

शक्ति मिल गयी, अविर्भाव हुआ, यही तो सारे ध्यान की चेष्टा है। और तुम पूछते हो कि आप श्रद्धा, प्रेम, आनंद की बात करते हैं, शक्ति के बारे में क्यों नहीं समझाते? वही तो मैं शक्ति के बारे में समझा रहा हूँ कि जब शक्ति उठे, तो आनंद बनाना। नहीं तो मुश्किल खड़ी होगी। जब शक्ति उठे तो नाचना। फिर साधारण चलने से काम न बनेगा, दौड़ना। फिर ऐसे ही उठना-बैठना काफी न होगा। अपूर्व नृत्य जब तक जीवन में न होगा तब तक बोझ मालूम होगा। जितनी बड़ी शक्ति, उतनी बड़ी जिम्मेवारी उतरती है। जितना ज्यादा तुम्हारे पास है, अगर तुम उसे फैला न सके तो बोझ हो जाएगा।

शक्ति की समस्या नहीं है, फैलाना सीखो। इसलिए तो प्रेम की बात करता हूँ, शक्ति की बात नहीं करता। जिनके पास शक्ति नहीं है, उन्हें शक्ति के संबंध में क्या समझाना? जिनके पास है, उन्हे शक्ति के संबध में क्या समझाना? जिनके पास नहीं है, उन्हें शक्ति कैसे पैदा की जाए — कैसे ध्यान, साधना, तपश्चर्या, अभ्यास, योग, तंत्र, कैसे शक्ति पैदा की जाए, यह समझाना जरूरी है। फिर जिनके पास शक्ति आ जाए, द्वार खुल जाए परमात्मा का और बरसने लगे उसकी ऊर्जा, उन्हें शक्ति के संबंध मे क्या समझाना? जब शक्ति सामने ही खड़ी है तो अब उसके संबंध में क्या बात करनी? उन्हें समझाना है प्रेम, आनद, उन्मय। इसलिए प्रत्येक ध्यान पर मेरा जोर रहा है कि तुम उसे उत्सव मे पूरा करना। कहीं ऐसा न हो कि ध्यान करने का तो अभ्यास हो जाए, और बाँटने का अभ्यास न हो।

बहुत लोग दीनता से मरे हैं, बहुत लोग साम्राज्य से मर गये हैं। बहुत से लोग इसलिए दुखी हैं कि उनके पास नहीं है, फिर बहुत से लोग इसलिए दुखी हो जाते है कि उनके पास है, अब क्या करे? और जीवन का जो रसायन है, वो देखता है कि तुमने अपनी ऊर्जा का क्या उपयोग किया? उसे संचित किये चले गये? कृप-

णता की ? इकट्ठा किया ? तो जिससे महा आनंद फलित हो सकता था उससे सिर्फ नर्क ही निर्मित होगा।

तुमने कभी खयाल किया, मीरा ने कुंडलिनी की बात नहीं की। बचेगी कहाँ कुंडलिनी ? नाच में बह जाती है। योगी करते हैं बात, क्योंकि बाँटना नहीं जानते। कुंडलिनी का अर्थ क्या है ? ऊर्जा उठी है और बह नहीं पा रही है। तो भीतर भरी मालूम पड़ती है। लेकिन मीरा में कहाँ बचेगी ? भरने के पहले लुटाना आता है। आती भी नहीं कि बाँट देती है। गीत बना लेती है, नाच ढाल लेती है। उत्सव में रूपांतरित हो जाती है। इसलिए मीरा ने कुंडलिनी की बात नहीं की। चैतन्य ने कुंडलिनी की बात नहीं की। तुम चकित होओगे, भक्तों ने बात ही नहीं की कुंड लिनी की।

क्या भक्तों को कभी कुंडलिनी का अनुभव नहीं हुआ है ? एक महत्वपूर्ण सवाल है कि क्या भक्तों ने कुंडलिनी को नहीं जाना ? जाना, लेकिन इकट्ठा नहीं किया। इसलिए कभी समस्या न बनी। कृपण के लिए धन समस्या हो जाती है। दाता के लिए कोई समस्या है ? दाता तो आनंदित होता है कि इतने दिन तक बाँटने की इतनी आकांक्षा थी, अब पूरी हुई जाती है।

मोहतसिब तस्बीह के दानों पे ये गिनता रहा

रसाध्यक्ष, जीवन का जो उत्सव जाँच रहा है, देख रहा है, वो माला के दानों पर गिनता रहा —

मोहतसिब तस्बीह के दानों पे ये गिनता रहा

किनने पी किनने न पी किन-किन के आगे जाम था

शक्ति का अर्थ है, तुम्हारे आगे जाम है, अब पी लो। मत पूछो कि जाम का क्या करें ? सामने प्याली भरी है। पियो और पिलाओ। उत्सव बनो।

यहूदियों की अद्भुत किताब तालमुद कहती है, परमात्मा तुमसे यह न पूछेगा तुमने कौन-कौन सी भूलें की ? परमात्मा तुमसे यही पूछेगा कि तुमने आनंद के कौन-कौन से अवसर गवाँए ? तुमसे ये न पूछेगा, तुमने कौन-कौन से पाप किये ? ये बात मुझे बड़ी जँचती है। परमात्मा और पाप का हिसाब रखे, बात ही ठीक नहीं। परमात्मा और पापों का हिसाब रखे ! परमात्मा न हुआ तुम्हारा प्राइवेट सेक्रेटरी हो गया। कोई पुलिस का इंस्पेक्टर हो गया। कोई अदालत का मजिस्ट्रेट हो गया। परमात्मा न हुआ कोई आलोचक हो गया, कोई निंदक हो गया। परमात्मा की इतनी बड़ी आँखों में तुम्हारे पाप दिखायी पड़ेंगे, तुम्हारी भूलें दिखायी पड़ेंगी ?

नहीं, तालमुद ठीक कहता है, परमात्मा पूछेगा कि इतने सुख के अवसर दिये उनको गवाँया क्यों ? इतने नाचने के मौके थे, तुम बैठे क्यों रहे ? इतने कंजूस क्यों

थे ? इतने कृपण क्यों थे ? मैंने तुम्हें इतना दिया था, तुमने उसे बाँटा होता । तुमने उसे बहाया होता । तुम एक बंद सरोवर की तरह क्यों रहे ? तुम बहती हुई सरिता क्यों न बने ? तुम कृपण वृक्ष की तरह रहे कि जिसने फूलों को न खिलने दिया कि कहीं सुगंध बँट न जाए ! तुम एक खदान की तरह रहे जो अपने हीरों को दबाये रही, कहीं सूरज की रोशनी न लग जाए !

परमात्मा ने तुम्हारे सामने जीवन की प्याली भरके रख दी है । और एक बात समझ लेना कि तुम जितना इस प्याली पर दूसरों को निमंत्रित करोगे, उतनी ये प्याली भरती चली जाएगी । तुम इसे खाली ही न करोगे, तो ये बोझ भी हो जाएगी और परमात्मा भरे कैसे इसे — और कैसे भरे ? ये भरी हुई रखी है । तुम इसे उलीचो, खाली करो । तुम पर बोझ भी न होगी और परमात्मा को और भरने का मौका दो । जिसने एक आनंद की घड़ी का उपयोग कर लिया उसके जीवन में दस आनंद की घड़ियाँ उपलब्ध हो जाती हैं । जो एक बार नाचा, दस बार नाचने की क्षमता उसे उपलब्ध हो जाती है ।

लेकिन ये बड़ी कठिन बात है। तुम कहते जरूर हो आनंद चाहते है, लेकिन तुम्हे आनंद के स्वभाव का कुछ पता नही । तुम्हे आनंद भी मिल जाए तो तुम उससे भी दुख पाओगे। तुम ऐसे अभ्यासी हो गये हो दुख के । दुख का स्वभाव है सिकुड़ना, आनंद का स्वभाव है फैलना। इसलिए जब कोई दुख में होता है तो एकांत चाहता है। बंद कमरा करके पड़ा रहता है अपने बिस्तर पे सिर को ढाँक के । न किसीसे मिलना चाहता है, न किसीसे जुलना चाहता है । चाहता है मर ही जाऊँ । कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेता है कोई । सिर्फ इसीलिए कि अब क्या मिलने को रहा ?

लेकिन जब तुम आनदित होते हो, तब तुम मित्रों को बुलाना चाहते हो। मित्रों से मिलना चाहते हो। तुम चाहते हो किसीसे बाँटो, किसीको तुम्हारा गीत सुनाओ, कोई तुम्हारे फूल की गंध से आनंदित हो । तुम किसीको भोज पर आमंत्रित करते हो । तुम मेहमानो को बुला आते हो, आमंत्रण दे आते हो ।

मेरे एक प्रोफेसर थे । उनका मुझसे बड़ा लगाव था । लेकिन वो मुझे घर बुलाने में डरते थे, क्योंकि शराब पीने की उन्हें आदत थी । और कहीं ऐसा न हो कि मुझे पता चल जाए । कहीं ऐसा न हो कि मेरे मन में उनकी जो प्रतिष्ठा है, वो गिर जाए । वो इससे बड़े भयभीत थे, बड़े डरे हुए थे । बहुत भले आदमी थे ।

पर एक बार ऐसा हुआ कि मैं बीमार पड़ा और उन्हें मुझे हॉस्टल से घर ले जाना पड़ा । तो कोई दो महीने मैं उनके घर पर था । बड़ी मुश्किल हो गयी । वो पिय कैसे ? पाँच-दस दिन के बाद तो भारी होने लगा मामला । मैंने उनसे पूछा कि

आप कुछ परेशान हैं, मुझे कह ही दें। अगर आप ज्यादा परेशान हैं, या कोई अड़चन है मेरे होने से यहाँ, तो मैं चला जाऊँ वापिस। उन्होंने कहा कि नहीं। पर मैं अपनी परेशानी कहे देता हूँ कि मुझे पीने की आदत है। तो मैंने कहा, ये भी कोई बात हुई! आप पी लेते, लुक-छिप के पी लेते, इतना बड़ा बँगला है। उन्होंने कहा यही तो मुश्किल है, कि जब भी कोई पीता है — असली पीनेवाला — अकेले में नहीं पी सकता। चार-दस मित्रों को न बुलाऊँ तो पी नहीं सकता। अकेले में भी क्या पीना! उन्होंने कहा, पीना कोई दुख थोड़ी' है, पीना एक उत्सव है।

वो बात मुझे याद रह गयी (जब जीवन की साधारण मदिरा को भी लोग बाँटके पीते हैं, तो जब तुम्हारी प्याली में परमात्मा भर जाए, और तुम न बाँटो! जब शराबी भी इतना जानते हैं कि अकेले पीने में कोई मजा नहीं, जब तक चार संगी-साथी न हों तो पीना क्या! जब शराबी भी इतने होशपूर्ण हैं कि चार को बाँटके पीते हैं, तो होशवालों का क्या कहना!)

बाँटो। शक्ति का अविर्भाव हुआ है, लुटाओ। और ये भी मत पूछो किसको दे रहे हो, क्योंकि ये भी कंजूसों की भाषा है। पात्र की चिंता वही करता है जो कंजूस है। वो पूछता है किसको देना? पात्र है कि नहीं? दो पैसा देता है, तो सोचता है कि ये आदमी दो पैसे का क्या करेगा? ये भी कोई देना हुआ, अगर हिसाब पहले रखा कि ये क्या करेगा? ये तो देना न हुआ, ये तो इंतजाम पहले ही न देने का कर लिया। ये तो तुमने इस आदमी को न दिया, सोच-विचार के दिया।

मेरे एक मित्र थे, बड़े हिंदी के साहित्यकार थे। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष थे। और भारतीय संसद के सबसे पुराने सदस्य थे — पचास साल तक वो एम.पी. रहे। उनका जुगलकिशोर बिड़ला से बहुत निकट संबंध था। मेरे काम में उन्हें रस था। वो कहने लगे कि मेरा संबंध है बिड़ला से, अगर वो उत्सुक हो जाएँ आपके काम में तो बड़ी सहायता मिल सकती है। तो हम दोनों को मिलाया।

बिड़ला मुझसे बातचीत किये। उत्सुक हुए। कहने लगे, जितना आपको चाहिए मैं दूँगा। और जिस समय चाहिए, तब दूँगा। सिर्फ एक बात मुझे पक्की हो जानी चाहिए कि जो मैं दूँगा, उसका उपयोग क्या होगा? मैंने कहा, बात ही खतम करो। ये अपने से न बनेगा, ये सौदा नहीं हो सकता। अगर यही पूछना है कि आप जो देंगे उसका मैं क्या करूँगा, अपने पास रखो। ये कोई देना हुआ? अगर बेशर्त देते हो, कि मैं तुम्हारे सामने ही यहाँ सड़क पे लुटाके चला जाऊँ, तो तुम मुझसे पूछ न सकोगे कि ये क्या किया? क्योंकि देने के बाद अगर तुम पूछ सको, तो तुमने दिया ही नहीं। और देने के पहले ही अगर तुम पूछने का इंतजाम कर लो, और पहले ही शर्त बाँध लो, तो तुम किसी और को देना। ये शर्तबंद बात मुझसे न बनेगी।

वो बात टूट गयी। आगे चलने का कोई उपाय न रहा। लोग देते भी हैं — अब बिड़ला जैसा धनपति भी हो, वो भी देता है तो शर्त रखके देता है कि क्या काम आएगा? किस काम में लाएँगे? तो वो मुझे नहीं देता, अपने ही काम को देता है। उल्टे मुझे भी सेवा में संलग्न कर रहा है। ये देना न हुआ, मुझे मुफ्त में खरीद लेना हुआ।

मैंने कहा मुझे देख लो, मुझे समझ लो, मुझे दो। फिर शेष मुझपे छोड़ दो। फिर मैं जो करूँगा करूँगा। उसके संबंध में कोई बात फिर न उठेगी।

पात्र अपात्र की क्या चिंता करनी? फूल खिलता है तो इसकी थोड़ी 'फिकिर करता है कि कोई पास से आ रहा है वो सुगंध का ज्ञाता है, कि अमीर है या गरीब है, कि सौंदर्य का उपासक है या नहीं। फूल इसकी थोड़ी' फिकिर करता है (फूल खिलता है तो सुगंध को लुटा देता है हवाओं में। राह से कोई न भी गुजरता हो, निर्जन हो राह, तो भी लुटा देता है। जब बादल भरते हैं तो इसकी थोड़ी' फिकिर करते है, कहाँ बरस रहे हैं! भराव से बरसते है। इतना ज्यादा है कि बरसना ही पड़ेगा। तो पहाड़ पे भी बरस जाते हैं, जहाँ पानी की कोई जरूरत नहीं। झीलों पर भी बरसते हैं, जहाँ पानी भरा ही हुआ है। ये थोड़ी' सवाल है कि कहाँ बरसना? बरसना)

अगर तुम जीवन को देखोगे तो बेशर्त पाओगे। वहाँ उत्सव बेशर्त है। वहाँ नाच अहर्निश चल रहा है। किसीके लिए चल रहा है, ऐसा भी नहीं है। ज्यादा है। परमात्मा इतना अतिशय है, इतना अतिरेक से है कि क्या करे अगर न लुटे, न बरसे?

जब तुम्हारे जीवन में शक्ति का अविर्भाव मालूम हो, जब तुम्हे लगे कि बादल भर गया — मेघ भरपूर है, जब तुम्हें लगे कि शक्ति तुम्हारे भीतर उठी है, तो समस्या बनेगी। नाचना, गाना। पागल की तरह उत्सव मनाना। शक्ति विलीन हो जाएगी। और ऐसा नहीं है कि तुम पीछे शक्तिहीन हो जाओगे। शक्ति को बाँटकर ही कोई वस्तुतः शक्तिशाली होना है। क्योंकि तब उसे पता चलता है झरने अनंत हैं। जितना बाँटो उतना बढ़ता जाता है।

मोहतसिब तस्वीह के दानों पे ये गिनता रहा

ध्यान रखना, रसाध्यक्ष बैठा है। माला फेर रहा है। वो माला के दानों पर गिन रहा है —

किनने पी किनने न पी किन-किन के आगे जाम था

और एक ही पाप है जीवन में, और वो पाप है बिना उत्सव के बिदा हो जाना। बिना नाचे, बिना गीत गाये बिदा हो जाना। तुम्हारा गीत अगर अनगाया रह गया,

तुम्हारा बीज अगर अनफूटा रह गया, तुम जो लेके आए थे वो गंध कभी दसों दिशाओं में न फैली, तो परमात्मा तुमसे जरूर पूछेगा। इसलिए जब शक्ति उठती है, तो सवाल उठता है कि अब क्या करें? हिसाब मत लगाओ। बेहिसाब लुटाओ। सभी पात्र हैं, क्योंकि सभी पात्रों में वही छिपा है। हर आँख से वही देखेगा नाच, और हर कान से वही सुनेगा गीत। हर नासारंध्र से सुवास उसीको मिलेगी।

एक बौद्ध साध्वी थी। उसके पास सोने की छोटी सी बुद्ध की प्रतिमा थी। स्वर्ण की। वो इतना उसे प्रेम करती थी, और जैसेकि साधारणत: कृपण मन होता है कि वो अपनी धूप भी जलाती तो हवाओं में यहाँ-वहाँ न फैलने देती, उसे वापिस धक्के दे-दे कर अपने छोटे से बुद्ध को ही पहुँचा देती। फूल भी चढ़ाती तो भी डरी रहती कि गंध कहीं यहाँ-वहाँ न उड़ जाए।

फिर एक बड़ी मुसीबत हुई एक रात। वो एक मंदिर में ठहरी। चीन में एक बहुत प्राचीन मंदिर है। हजार बुद्धों का मंदिर है। वहाँ हजार बुद्ध की प्रतिमाएँ है। वो डरी। और सभी प्रतिमाएँ बुद्ध की हैं, तो भी डर! वो डरी, यहाँ अगर मैंने धूप जलायी, अगरबत्तियाँ जलायीं, फूल चढ़ाए, तो ये धुआँ तो कोई मेरे बुद्ध पे नहीं रुका रहेगा। यहाँ-वहाँ जाएगा। दूसरे बुद्धों पे पहुँचेगा। बुद्ध भी दूसरे! जिनकी प्रतिमा वो रखे है उन्हीं की प्रतिमाएँ वो भी हैं। तालाब है, सरोवर है, सागर है, लेकिन चाँद का प्रतिबिंब अलग कितना ही हो, एक ही चाँद का है। तो उसने एक बाँस की पोंगरी बना ली, और धूप जलायी और बाँस की पोंगरी में से धूप को अपने बुद्ध की नाक तक पहुँचाया। सोने की बुद्ध की प्रतिमा का मुँह काला हो गया।

वो बड़ी दुखी हुई। वो सुबह मंदिर के प्रधान भिक्षु के पास गयी और उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गयी। इसे कैसे साफ करूँ? वो प्रधान हँसने लगा। उसने कहा पागल, तेरे सत्संग में तेरे बुद्ध का चेहरा तक काला हो गया।

गलत साथ करो, ये मुसीबत होती है। इतनी भी क्या कृपणता! ये सभी प्रतिमाएँ उन्हीं की हैं। इतनी भी क्या कंजूसी! अगर थोड़ा धुआँ दूसरों के पास भी पहुँच गया होता, तो कुछ हर्ज हुआ जाता था? लेकिन मेरे बुद्ध! ये सभी प्रतिमाएँ बुद्धों की ही है। हर आँख से वही झाँका है। हर पत्थर में वही सोया है। तुम इसकी फिकिर ही मत करो। तुम्हारे जीवन में आनंद भरे : प्रेम दो, संगीत दो, नाचो; बाँटो। इसीकी तो प्रतीक्षा रही है कि कब वो क्षण आएगा जब हम बाँट सकेंगे। अब पात्र अपात्र का भी भेद छोड़ो। वो सब नासमझी के भेद हैं।

इसलिए शक्ति के संबंध में कुछ बोलता नहीं हूँ। क्योंकि जो मैं बोल रहा हूँ अगर समझ में आया, तो शक्ति कभी समस्या न बनेगी। इसलिए भी शक्ति के संबंध में नहीं बोलता हूँ, क्योंकि वो शब्द जरा खतरनाक है। शांति के संबंध में बोलता हूँ,

शक्ति के संबंध में नहीं बोलता। क्योंकि शक्ति अहंकार की आकांक्षा है। शक्ति शब्द सुनके ही तुम्हारे भीतर अहंकार अँगड़ाई लेने लगता है। अहंकार कहता है, ठीक, शक्ति तो चाहिए। इसीलिए तो तुम धन माँगते हो, ताकि धन से शक्ति मिलेगी। पद माँगते हो, क्योंकि पद पे रहोगे तो शक्तिशाली रहोगे। यश माँगते हो, पुण्य माँगते हो, लेकिन सबके पीछे शक्ति माँगते हो। योग और तंत्र में भी खोजते हो, शक्ति ही खोजते हो।

शक्ति की पूजा तो संसार में चल ही रही है। इसलिए मैं शक्ति की बात नहीं करता, क्योंकि धर्म के नाम पर भी अगर तुम शक्ति की ही खोज करोगे, तो वो अहंकार की ही खोज रहेगी। और जब तक अहंकार है तब तक शक्ति उपलब्ध नहीं होती। ऐसा सनातन नियम है। एस धम्मो सनंतनो।

जब तुम शक्ति की चिंता ही छोड़ देते हो और शांति की तलाश करते हो—शांति की तलाश में अहंकार को विसर्जित करना होगा, क्योंकि वही तो अशांति का स्रोत है — और जब अहंकार विसर्जित हो जाता है, द्वार से पत्थर हट जाता है। शांति तो मिलती है। शांति तो मूलधन है और शक्ति तो ब्याज की तरह उपलब्ध हो जाती है। शांति को खोजो, शक्ति अपने से मिल जाती है। शक्ति को खोजो, शक्ति तो मिलेगी ही नहीं, शांति भी खो जाएगी।

इसलिए शक्ति का खोजी हमेशा अशांत होगा, परेशान होगा। वो अहंकार की ही दौड़ है। नाम बदल गये, वेश बदल गया, दौड़ वही है। कौन चाहता है शक्ति? वो अहंकार। चाहता है कोई चमत्कार मिल जाए, रिद्धि-सिद्धि, शक्ति मिल जाए, तो दुनिया को दिखा दूँ कि मैं कौन हूँ।

इसलिए जहाँ तुम शक्ति की खोज करते हो, जान लेना कि वो धर्म की दिशा नहीं है, अधर्म की दिशा है। तुम्हारे चमत्कारी, तुम्हारे रिद्धि-सिद्धि वाले लोग, सब तुम्हारे ही बाजार के हिस्से हैं। उनसे धर्म का कोई लेना-देना नहीं। वे तुम्हें प्रभावित करते हैं क्योंकि जो तुम्हारी आकांक्षा है, लगता है उन्हें उपलब्ध हो गया। जो तुम चाहते थे कि हाथ से ताबीज निकल जाएँ, घड़ियाँ निकल जाएँ, उनके हाथ से निकल रही हैं। तुम चमत्कृत होते हो, कि धन्य है! उनके पीछे चल पड़ते हो कि जो इनको मिल गया है, किसी न किसी दिन इनकी कृपा से हमको भी मिल जाएगा।

लेकिन घड़ियाँ निकाल भी लोगे तो क्या निकाला? जहाँ परमात्मा निकल सकता था वहाँ स्विस घड़ियाँ निकाल रहे हो। जहाँ शाश्वत का आनंद मिल सकता था वहाँ राख निकाल रहे हो। जहाँ परमात्मा की विभूती उपलब्ध हो सकती थी, वहाँ राख नाम की विभूती निकाल रहे हो। मदारीगिरी है। अहंकार की मदारीगिरी है। लेकिन अहंकार की वही आकांक्षा है।

शक्ति की मैं बात नहीं करता, क्योंकि तुम तत्क्षण उत्सुक हो जाओगे उसमें कि कैसे शक्ति मिले, बताएँ। उसमें अहंकार तो मिटता नहीं, अहंकार और भरता हुआ मालूम पड़ता है। तो मैं तुम्हें मिटाता नहीं फिर, मैं तुम्हें सजाने लगता हूँ।

यही तो अड़चन है मेरे साथ। मैं तुम्हें सजाने को उत्सुक नहीं हूँ, तुम्हें मिटाने को उत्सुक हूँ। क्योंकि तुम जबतक न मरो, तबतक परमात्मा तुममें अविर्भूत नहीं हो सकता। तुम जगह खाली करो। तुम सिंहासन पर बैठे हो। तुम जगह से हटो, सिंहासन रिक्त हो, तो ही उसका अवतरण हो सकता है। जैसे ही तुम शांत होओगे, अहंकार सिंहासन से उतरेगा, तुम पाओगे शक्ति उतरनी शुरू हो गयी। और ये शक्ति, बात ही और है जो शांत चित्त में उतरती है! क्योंकि अब अहंकार रहा नहीं जो इसका दुरुपयोग कर लेता। अब वहाँ कोई दुरुपयोग करनेवाला न बचा।

इसलिए जानके ही उन शब्दों का उपयोग नहीं करता हूँ जिससे तुम्हारे अहंकार को थोड़ी सी भी खुजलाहट हो सकती है। तुम तो तैयार ही बैठे हो खुजाने को। जरा सा इशारा मिल जाए कि तुम खुजा डालोगे। तुम तो खाज के पुराने शिकार हो। तुम्हें जरा से इशारे की जरूरत है कि तुम्हारी आकांक्षा के घोड़े दौड़ पड़ेंगे। तुम लगामें छोड़ दोगे।

नहीं, मैं शांति की बात करता हूँ। मै मृत्यु की बात करता हूँ, निर्वाण की बात करता हूँ, शून्य होने की बात करता हूँ, क्योंकि मुझे पता है कि तुम जब शून्य होओगे तो पूर्ण तो अपने आप चला आता है। उसको चर्चा के बाहर छोड़ो। चर्चा से नहीं आता, शून्य से आता है।

शक्ति की बात ही मत करो। वो तो शांत होते मिल ही जाती है। वो तो शांत हुए आदमी का अधिकार है।

जब मिल जाए, तो तुम क्या करोगे, इसलिए मैं आनंद, उत्सव और प्रेम की बात करता हूँ। तुम जैसे हो अभी प्रेम कर ही नहीं सकते। अभी तो तुम्हारा प्रेम धोखा है। तुम जैसे हो आनंदित हो ही नहीं सकते। अभी तो आनंद केवल मुँह पर पोता गया झूठा रंग-रोगन है। अभी तुम जैसे हो हँस ही नहीं सकते। अभी तुम्हारी हँसी ऊपर से चिपकायी गयी है, मुखौटा है।

किसीने पूछा है —

दूसरा प्रश्न: कल आपने कहा कि दूसरा कभी किसीको खुश नहीं कर सकता है। मगर प्रेमी के साथ प्रेम में डूब जाने में जो सुख, आनंद और अहोभाव अनुभव होता है, वह क्या है?

हो नहीं सकता। जल्दी मत कर लेना निर्णय की। जरा बड़े-बूढ़ों से पूछना।

ये मुक्ति ने पूछा है। अभी प्रेम के मकान के बाहर ही चक्कर लगा रही है।

जरा बड़े-बूढ़ों से पूछना, वो कहते हैं --

जब तक मिले न थे जुदाई का था मलाल
अब ये मलाल है कि तमन्ना निकल गयी

जब तक मिले न थे, तब तक दूर होने की पीड़ा थी। अब जब मिल गये, तो पास होने की आकांक्षा भी निकल गयी। अब ये दुख है कि अब कैसे हटें, कैसे भागें?

जल्दी मत करना। अभी जिसको तुम प्रेम, आनंद, अहोभाव कह रहे हो वो सब शब्द है सुने हुए। अभी प्रेम जाना कहाँ? क्योंकि तुम जैसे हो उसमें प्रेम फलित ही नही हो सकता। प्रेम कोई ऐसा थोड़ी ' है कि तुम कैसे ही हो और फलित हो जाए। प्रेम जन्म के साथ थोड़ी' मिलता है। अर्जन है। उपलब्धि है, साधना है। सिद्धि है।

यही तो परेशानी है। सारी दुनिया में हर आदमी यही सोच रहा है कि जन्म के साथ ही हम प्रेम करने की योग्यता लेकर आए हैं। धन कमाने की तुम थोड़ी बहुत कोशिश भी करते हो, लेकिन प्रेम कमाने की तो कोई भी कोशिश नही करता। क्योंकि हर एक माने बैठा है कि प्रेम तो है ही। बस प्रेमी मिल जाए, काम शुरू। जिसको तुम प्रेमी कहते हो, उसे भी प्रेम का कोई पता नहीं है। दूर की ध्वनि भी नही सुनी है। न तुम्हे पता है।

जिसको तुम प्रेम समझ रहे हो वो सिर्फ मन की वासना है। जिसको तुम प्रेम समझ रहे हो -- दूसरे के साथ होने का आनद — वो केवल अपने साथ तुम्हें कोई आनद नही मिलता, अपने साथ तुम परेशान हो जाते हो, अपने साथ ऊब और बोरियत पैदा होती है, दूसरे के साथ थोड़ी देर को अपने को भूल जाते हो, उसीको तुम दूसरे के साथ मिला आनंद कह रहे हो। दूसरे के साथ तुम्हारा जो होना है, वो अपने साथ न होने का उपाय है। वो एक नशा है, इससे ज्यादा नहीं। उतनी देर को तुम अपने को भूल जाते हो, दूसरा भी अपने को भूल जाता है। ये आत्म विस्मरण है, आनंद नही। मूर्छा है, अहोभाव इत्यादि कुछ भी नहीं है। मेरी बातें सुन-सुनके तुम्हें अच्छे-अच्छे शब्द कठस्थ हो जाएँगे। इनको तुम हर कहीं मत लगाने लगना।

'कल आपने कहा कि कोई दूसरा कभी किसीको खुश नही कर सकता'। निश्चित मैंने कहा है। और कोई कभी नही कर सका है। लेकिन किसी भी युवा को समझाना मुश्किल है। क्योंकि जो युवक समझदार है, वो तो समय के पहले प्रौढ़ हो गया। कभी कोई शंकराचार्य, कभी कोई बुद्ध समय के पहले समझ पाते हैं। अधिक लोग तो समय भी बीत जाता है — जवानी भी बीत जाती है, बुढ़ापा भी बीतने लगता है, मौत द्वार पे आ जाती है -- तब तक भी नहीं समझ पाते।

समझ का कोई संबंध तुम्हारे जीवन की होश की तीव्रता से है। अभी जिसको तुम सोचते हो कि प्रेमी के साथ प्रेम में डूब जाने में — अभी तुम अपने में नहीं डूबे, दूसरे में कैसे डूबोगे — जो अपने में नहीं डूब सका वो दूसरे में कैसे डूब सकेगा; अभी तुम अपने भीतर ही जाना नहीं जानते, दूसरे के भीतर क्या खाक जाओगे! बातचीत है। अच्छे-अच्छे शब्द हैं। सभी जवान अच्छे-अच्छे शब्दों में अपने को झुठलाते हैं, भुलाते हैं। जवानी में अगर किसीसे कहो कि ये प्रेम वगैरह कुछ भी नहीं है, तो न तो ये सुनायी पड़ती है बात — सुनायी भी पड़ जाए तो समझ में नहीं आती — क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को एक भ्रांति है कि दूसरे को न हुआ होगा, लेकिन मुझे तो होगा, हो रहा है। अभी यात्रा का पहला ही कदम है। जरा बात पूरी हो जाने दो। जरा ठहरो, जल्दी निर्णय मत करो। जिन्होंने जाना है जीवन का ये दौर, जो इससे गुजरे हैं, उनसे पूछो —

सुलगती आग दहकता खयाल तपता बदन
कहाँ पे छोड गया कारवाँ बहारों का

वो जिसको वसंत समझा था, बहार समझी थी, वो कहाँ छोड़ गयी?

सुलगती आग दहकता खयाल तपता बदन

एक रुग्ण दशा। एक बुखार। सब धूल-धूल। सब इंद्रधनुष टूटे हुए। सब सपनों के भवन गिर गये। और एक सुलगती आग, कि जीवन हाथ से व्यर्थ ही गया। लेकिन जब तुम सपनों में खोए हो, तब बड़ा मुश्किल है ये बताना कि ये सपना है। उसके लिए जागना जरूरी है।

प्रेम अर्जित किया जाता है। और जिसने प्रार्थना नहीं की, वो कभी प्रेम नहीं कर पाया। इसलिए प्रार्थना को मैं प्रेम की पहली शर्त बनाता हूँ। जिसने ध्यान नहीं किया, वो कभी प्रेम नहीं कर पाता। क्योंकि जो अपने में नहीं गया, वो दूसरे में तो जा ही नहीं सकता। और जो अपने में गया, वो दूसरे में तो पहुँच ही गया। क्योंकि अपने में जाके पता चलता है, दूसरा है ही नहीं। दूसरे का ख्याल ही अज्ञान का ख्याल है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र के साथ बैठा था। और उसने अपने बेटे को कहा कि जा और तलघरे से शराब की बोतल ले आ। वो बेटा गया, वो वापिस लौटके आया। उस बेटे को थोड़ा कम दिखायी पड़ता है। और उसकी आँखों में एक तरह की बीमारी है कि एक चीज दो दिखायी पड़ती है। उसने लौटके कहा कि दोनों बोतल ले आऊँ या एक लाऊँ?

नसरुद्दीन थोड़ा परेशान हुआ, क्योंकि बोतल तो एक ही है। अब अगर मेहमान के सामने कहे एक ही ले आओ, तो मेहमान कहेगा ये भी क्या कंजूसी! अगर कहे

दो ही ले आओ, तो ये दो लाएगा कहां से ? वहां एक ही है। और मेहमान के सामने अगर ये कहे कि इस बेटे को एक चीज दो दिखायी पड़ती है तो नाहक की बदनामी होगी। फिर इसकी शादी भी करनी है। तो उसने कहा ऐसा कर, एक तू ले आ और एक को फोड़ आ — बाएँ तरफ की फोड़ देना, दाएँ तरफ की ले आना, क्योंकि बाएँ तरफ की बेकार है। ऐसा उसने रास्ता निकाला।

बेटा गया। उसने बाएँ तरफ की फोड़ दी, लेकिन दाएँ तरफ कुछ था थोड़ी' ! एक ही बोतल थी, वो फूट गयी। बाएँ तरफ और दाएँ तरफ ऐसी कोई दो बोतलें थोड़ी' थीं। बोतल एक ही थी। दो दिखायी पड़ती थीं। वो बोतल फूट गयी, शराब बह गयी, वो बड़ा परेशान हुआ। उसने लौटके कहा कि बड़ी भूल हो गयी, वो बोतल एक ही थी, वो तो फूट गयी।

मैं तुमसे कहता हूँ, जहाँ तुम्हें दो दिखायी पड़ रहे हैं, वहाँ एक ही है। तुम्हें दो दिखायी पड़ रहे है, क्योंकि तुमने अभी एक को देखने की कला नहीं सीखी। प्रेम है एक को देखने की कला। लेकिन उस कला में उतरना हो तो पहले अपने ही भीतर की सीढ़ियों पे उतरना होगा। क्योंकि वही तुम्हारे निकट है।

भीतर जाओ, अपने को जानो। आत्मज्ञान से ही तुम्हें पता चलेगा मैं और तू झूठी बोतलें थे, जो दिखायी पड़ रहे थे। नजर साफ न थी, अँधेरा था, धुँधलका था, बीमारी थी — एक के दो दिखायी पड़ रहे थे। भ्रम था। भीतर उतर के तुम पाओगे, जिसको तुमने अबतक दूसरा जाना था वो भी तुम्ही हो। दूसरे को जब तुम छूते हो, तब तुम अपने ही कान को जरा हाथ घुमाके छूते हो, बस। वो तुम्हीं हो। जरा चक्कर लगाके छूते हो। जिस दिन ये दिखायी पड़ेगा, उस दिन प्रेम। उसके पहले जिसे प्रेम कहते हो, कृपा करके उसे प्रेम मत कहो।

प्रेम शब्द बड़ा बहुमूल्य है। उसे खराब मत करो। प्रेम शब्द बड़ा पवित्र है। उसे अज्ञान का हिस्सा मत बनाओ। उसे अंधकार से मत भरो। प्रेम शब्द बड़ा रोशन है। वो अँधेरे में जलती एक शमा है। प्रेम शब्द एक मंदिर है। जब तक तुम्हें मंदिर में जाना न आ जाए तब तक हर किसी जगह को मंदिर मत कहना। क्योंकि अगर हर किसी जगह को मंदिर कहा, तो धीरे-धीरे मंदिर को तुम पहचानना ही भूल जाओगे। और तब मंदिर को भी तुम हर कोई जगह समझ लोगे।

जिसे तुम अभी प्रेम कहते वो केवल कामवासना है। उसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है। शरीर के हॉरमोन काम कर रहे हैं, तुम्हारा कुछ भी नहीं है। स्त्री के शरीर से कुछ हॉरमोन निकाल लो, पुरुष की इच्छा समाप्त हो जाती है। पुरुष के शरीर से कुछ हॉरमोन निकाल लो, स्त्री की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। तुम्हारा इसमें क्या लेना-देना है ? केमिस्ट्री है। थोड़ा रसायनशास्त्र है। अगर ज्यादा हॉरमोन डाल

दिये जाएँ पुरुष के शरीर में, तो वो दिवाना हो जाता है, पागल हो जाता है एकदम। मजनूँ के शरीर में थोड़े ज्यादा हॉरमोन रहे होंगे, और कुछ मामला नहीं है। जिसको तुम प्रेम की दीवानगी कहते हो, वो रसायनशास्त्र से ठीक की जा सकती है। और जिसको तुम प्रेम की सुस्ती कहते हो, वो इंजेक्शन से बढ़ायी जा सकती है और तुममें त्वरा आ सकती है और तुम पागल हो सकते हो।

इसे तुम प्रेम मत कहना, ये सिर्फ कामवासना है। और इसमें तुम जो प्रेम, अहोभाव और आनंद की बातें कर रहे हो, जरा होश से करना, नहीं तो बातों के कारण बहुत दुख पाओगे। क्योंकि जब कोई स्वर भीतर से आता न मालूम पड़ेगा अहोभाव का, तो फिर बड़ा 'फ्रस्ट्रेशन', बड़ा विषाद होता है। वो विषाद कामवासना के कारण नहीं होता, वो तुम्हारी जो अपेक्षा थी उसीके कारण होता है, कामवासना का क्या कसूर है? हाथ मे एक पैसा लिए बैठे थे और रुपया समझा था, जब हाथ खोला, मुट्ठी खोली तो पाया कि पैसा है। तो पैसा थोड़ी 'तुम्हें कष्ट दे रहा है। पैसा तो तब भी पैसा था। पहले भी पैसा था, अब भी पैसा है, पैसा पैसा है। तुमने रुपया समझा था, तो तुम पीड़ित होते हो, तुम दुखी होते हो, तुम रोते-चिल्लाते हो कि य धोखा हो गया। तुमने जिसे प्रेम समझा है वो पैसा भी नहीं है, कंकड़-पत्थर है।

जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूँ वो किसी और ही दूसरे जगत का हीरा है। उसके लिए तुम्हें तैयार होना होगा। तुम जैसे हो वैसे ही वो नहीं घटेगा। तुम्हें अपने को बड़ा परिष्कार करना होगा। तुम्हें अपने को बड़ा साधना होगा। तब कहीं वो स्वर तुम्हारे भीतर पैदा हो सकता है।

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को जिंदगी में एक नशे का दौर होता है। कामवासना का दौर होता है। तब काम ही राम मालूम पड़ता है। जिस दिन ये बोध बदलता है और काम काम दिखायी पड़ता है, उसी दिन तुम्हारी जिंदगी में पहली दफे राम की खोज शुरू होती है।

तो धन्यभागी हैं वे, जिन्होंने जान लिया कि ये प्रेम व्यर्थ है। धन्यभागी हैं वे, जिन्होंने जान लिया कि ये अहोभाव केवल मन की आकांक्षा थी, कहीं है नहीं। कहीं बाहर नहीं था, सपना था देखा। जिनके सपने टूट गये, आशाएँ टूट गयीं, धन्यभागी हैं वे, क्योंकि उनके जीवन में एक नई खोज शुरू होती है। उस खोज के मार्ग पर ही कभी तुम्हें प्रेम मिलेगा। प्रेम परमात्मा का ही दूसरा नाम है। इससे कम प्रेम की परिभाषा नहीं।

तीसरा प्रश्न : क्या प्रयास व साधना विधि है और तथाता मंजिल है? या तथाता ही विधि और मंजिल दोनों है?

इतने हिसाब में क्यों पड़ने हो ? ये हिसाब कहाँ ले जाएगा ? हिसाब ही करते रहोगे या चलोगे भी ?

क्या मंजिल है, क्या मार्ग है, इसको सोचते ही रहोगे ? तो एक बात पक्की है, कितना ही सोचो, सोचने से कोई मार्ग तय नहीं होता, और न सोचने से कोई मंजिल करीब आती है । सोचने-विचारने वाला धीरे-धीरे चलने में असमर्थ हो जाता है । चलना तो चलने से आता है, होना होने से आता है ।

नामों की चिंता में बहुत मत पड़ो । दोनों बातें कही जा सकती हैं । प्रेम ही मार्ग है, प्रेम ही मंजिल है । ये भी कहा जा सकता है कि प्रेम मार्ग, परमात्मा मंजिल है । पर कोई फर्क नहीं है इन बातों में । जिस तरह से तुम्हारा मन चलने को राजी हो उसी तरह मान लो । क्योंकि मेरी फिकर इतनी है कि तुम चलो । तुम्हें अगर इसमें ही सकून मिलता है, शांति मिलती है कि प्रेम मार्ग, परमात्मा मंजिल; योग मार्ग, मोक्ष मंजिल; प्रयास, विधि मार्ग, तथाता मंजिल; ऐसा समझ लो, कोई अड़चन नहीं है । मगर कृपा करके चलो । जो तर्कनिष्ठ हैं उन्हें यही मानना उचित होगा । क्योंकि तर्क कहता है मंजिल और मार्ग अलग-अलग । जो तर्क की बहुत चिंता नहीं करते, और जो जीवन को बिना तर्क के देखने में समर्थ हैं — वैसी सामर्थ्य बहुत कम लोगों में होती है — लेकिन अगर हो तो उनको दिखायी पड़ेगा कि मार्ग और मंजिल एक ही है । क्योंकि मार्ग तभी पहुँचा सकता है मंजिल तक जब मंजिल से जुड़ा हो । नहीं तो पहुँचाएगा कैसे ? अगर अलग-अलग हो तो पहुँचाएगा कैसे ? तब तो दोनों के बीच फासला होगा । छलाँग न लग सकेगी । दूरी होगी ।

वही मार्ग पहुँचा सकता है जो मंजिल से जुड़ा हो । और अगर जुड़ा ही है तो फिर क्या फर्क करना । कहाँ तय करोगे कि कहाँ मार्ग समाप्त हुआ, कहाँ मंजिल शुरू हुई ? इसलिए महावीर का बड़ा अद्भुत वचन है कि जो चल पड़ा वो पहुँच ही गया । जरूरी नहीं है । तुम जैसे चलनेवाले हों तो बीच में ही बैठ जाएँगे कि लो, महावीर को गलत सिद्ध किये देते हैं । लेकिन महावीर के कहने में बड़ा सार है — जो चल पड़ा वो पहुँच ही गया । क्योंकि जब तुम चले, पहला कदम भी उठाया, तो पहला कदम भी तो मंजिल को ही छू रहा है । कितनी ही दूर हो, लेकिन एक कदम कम हो गयी, पास आ गयी ।

लाओत्सू ने कहा है, एक-एक कदम चलके हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है । तो ऐसा थोड़ी ' है कि यात्रा तभी पूरी होती है जब पूरी होती है । जब तुम चले तब भी पूरी होनी शुरू हो जाती है । इंच-इंच चलते हो, कदम-कदम चलते हो, बूँद-बूँद चलते हो । सागर चुक जाता है एक-एक बूँद से ।

तुम्हारे ऊपर निर्भर है । अगर बहुत तर्कनिष्ठ मन है और तुम ऐसा मानना चाहो

कि मार्ग अलग, मंजिल अलग, ऐसा मान लो। अगर दृष्टि साफ-सुथरी है, तर्क के ऊपर देख सकते हो और विरोधाभास से कोई अड़चन नहीं आती, तो मार्ग ही मंजिल है, ऐसा मान लो। दोनों बातें सही हैं। क्योंकि दोनों बातें एक ही सत्य को देखने के दो ढंग हैं।

मार्ग अलग है मंजिल से, क्योंकि मार्ग पहुँचाएगा और मंजिल वो है जब तुम पहुँच गये। मार्ग वो है जब तुम चलोगे, मंजिल वो है जब तुम पहुँच गये और चलने की कोई जरूरत न रही -- अलग-अलग हैं। दोनों एक भी हैं। क्योंकि पहला कदम पड़ा कि मंजिल पास आने लगी। मार्ग छुआ नहीं कि मंजिल भी छू ली — कितनी ही दूर सही! किरण को जब तुम छूते हो, सूरज को भी छू लिया, क्योंकि किरण सूरज का ही फैला हुआ हाथ है। तुमने मेरे हाथ को छुआ तो मुझे छुआ या नहीं? हाथ मेरा दो फीट लंबा है कि दो हजार फीट लंबा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? कि दस करोड़ मील लंबा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? किरण सूरज का हाथ है। किरण को छू लिया, सूरज को छू लिया। यात्रा शुरू हो गयी।

एक बात पर ही मेरा जोर है कि तुम बैठे मत रहो। क्योंकि विचार करने की एक हानि है कि विचारक सिर पे हाथ लगाके बैठ जाता है, सोचने लगता है। कुछ करो। करने से रास्ता तय होगा, चलने से। कई बार मैं देखता हूँ, बहुत लोगों को, वो विचार ही करते रहते हैं। समय खोता जाता है। कभी-कभी बूढ़े लोग मेरे पास आ जाते हैं, वो अभी भी विचार कर रहे हैं कि ईश्वर ने दुनिया बनायी या नहीं! तुम अब कब तक ये विचार करते रहोगे? बनायी हो तो, न बनायी हो तो। जीवन को जानने के लिए कुछ करो। ईश्वर हो तो, न हो तो। तुम होने के लिए — स्वयं होने के लिए — कुछ करो। ये सारी चिंताएँ, ये सारी समस्याएँ अर्थहीन हैं। कितनी ही सार्थक मालूम पड़ें, सार्थक नहीं हैं। और कितनी ही बुद्धिमानीपूर्ण मालूम पड़ें, बुद्धिमानीपूर्ण नहीं हैं।

बेखुदी में हम तो तेरा दर समझकर झुक गये
अब खुदा मालूम वो काबा था या बुतखाना था

वो मंदिर था या मस्जिद थी ये परमात्मा पर ही छोड़ देते हैं। हम तो झुक गये। 'बेखुदी में हम तो तेरा दर समझ कर झुक गये' — हमने तो अपनी विनम्रता में, अपने निरअहंकार में सिर झुका दिया। 'अब खुदा मालूम वो काबा था या बुतखाना था'। अब ये खुदा सोचले कि मस्जिद थी, मंदिर था, कि काशी थी, कि काबा था। यह चिंता साधक की नहीं है, यह चिंता पंडित की है कि कहाँ झुके?

जरा फर्क समझना, बारीक है और नाजुक है। समझ में आ जाए तो बड़ा क्रांतिकारी है।

पंडित पूछता है, कहां झुके ? साधक पूछता है, झुके ? पंडित का जोर है, कहां। पंडित पूछता है किस चीज के सामने झुके ? काबा था कि काशी ? कौन था जिसके सामने झुके ? साधक पूछता है, झुके ? साधक को चिंता ही है, झुकाव आया, नम्रता आयी, झुकने की कला आयी। इससे क्या फर्क पड़ता है कहां झुके ? झुक गये। जो झुक गया उसने पा लिया। इससे कोई भी संबंध नहीं कि वो कहां झुका। मस्जिद में झुका तो पा लिया, मंदिर में झुका तो पा लिया। झुकने से पाया। मंदिर से नहीं पाया, मस्जिद मे नहीं पाया। मंदिर-मस्जिदों से कहीं कोई पाता है! झुकने से पाता है।

और जो सोचके झुका कि कहाँ झुक रहा हूँ, वो झुका ही नहीं। कही कोई सोचके झुका है! सोच-विचार करके तो कोई झुकता ही नहीं, झुकने से बचता है। अगर तुम बिलकुल निर्णय करके झुके कि हाँ, ये परमात्मा है, अब झुकना है — सब तरह से तय कर लिया कि ये परमात्मा है, फिर झुके -- तो तुम झुके नहीं। क्योंकि तुम्हारा निर्णय और तुम्हारा झुकना। तुम अपने ही निर्णय के सामने झुके। तुम परमात्मा के सामने न झुके, तुम अपने निर्णय के सामने झुके।

साधक झुकता है। झुकने का अर्थ है, निर्णय छोड़ता है। साधक कहता है, मैं कौन हूँ, मैं कैसे जान पाऊँगा, मेरी हैसियत क्या ? मेरी सामर्थ्य क्या ? साधक कहता है कि मैं कुछ हूँ नहीं। इस न होने के बोध में से झुकने का फूल खिलता है। इस न होने में से समर्पण आता है। इस न होने में से झुकना आ जाता है। ऐसा कहना ठीक नही है कि साधक झुकता है। ऐसा कहना ज्यादा ठीक है कि साधक पाता है कि झुकना हो रहा है। देखता है तो पाता है, अकड़ की कोई जगह तो नहीं, कोई सुविधा नहीं — अकड़ का कोई उपाय नहीं। अकड का उपाय नही पाता, इसलिए झुकना घटने लगता है। तुम अगर झुकते भी हो, तो तुम्हीं झुकते हो। तुम्हीं झुके तो क्या खाक झुके! अगर झुकने में भी तुम रहे, तो झुकना न हुआ।

बेखुदी में हम तो तेरा दर समझ के झुक गये
अब खुदा मालूम वो काबा था या बुतखाना था

मार्ग और मंजिल एक है, कि अलग-अलग, खुदा मालूम। तुम चलो। और जिस बहाने से चल सको उसी बहाने को मान लो। सब बहाने बराबर हैं। इसीलिए तो मैं सभी धर्मों की चर्चा करता हूँ। कोई धर्म किसीसे कम-ज्यादा नहीं है। सब बहाने हैं। खूंटियाँ हैं मकान में, किसी पे भी टाँग दो अपने कपड़े। कृपा करो, टाँगो। खूंटियों का बहुत हिसाब मत रखो कि लाल पे टाँगेंगे, कि हरी पे टाँगेंगे। हरी होगी इस्लाम की खूंटी, लाल होगी हिंदुओं की खूंटी। तुम टाँगो। क्योंकि धार्मिक को टाँगने से मतलब है, खूंटियों से मतलब नहीं।

खुदा मालूम कि वो काबा था या बुतखाना था

ये तुम परमात्मा पे छोड़ दो। ये सब बड़े हिसाब उसीपे छोड़ दो। तुम तो एक छोटा सा काम कर लो, तुम चलो। लेकिन लोग बड़े हिसाब में लगे हैं, बड़ी चिंतना करते हैं, बड़ा विचार करते हैं। बड़ी होशियारी में लगे हैं, कि जब सब तय हो जाएगा बौद्धिक रूप से, और हम पूरी तरह से आश्वस्त हो जाएँगे, तब। तो तुम कभी न चलोगे। तुम जिंदगी भर जिंदगी का सपना देखोगे। तुम जिंदगी भर जीने का विचार करोगे, जी न पाओगे। तैयारी करोगे, लेकिन कभी तुम जा न पाओगे यात्रा पर। बोरिया-बिस्तर बाँधोगे, खोलोगे, बाँधोगे, खोलोगे; रेल्वे स्टेशन पे जाके ट्रेन कब, कहाँ जाती है इसका पता लगाओगे; 'टाइम-टेबल' का अध्ययन करोगे — तुम्हारे वेद, तुम्हारे कुरान 'टाइम-टेबल' हैं, ज्यादा कुछ भी नहीं — उनका बैठके तुम अध्ययन करते रहो, 'टाइम-टेबल' से कहीं कोई यात्रा हुई है! कुछ लोगों को मैं देखता था, जब मैं सफर में होता था, वो बैठे हैं अपने 'टाइम-टेबल' का ही अध्ययन कर रहे हैं। वेदपाठी कहना चाहिए। ज्ञानी, पंडित। 'टाइम-टेबल' का अध्ययन कर रहे हैं। उसीको उलट रहे हैं।

नक्शों को रखे बैठे रहोगे। नक्शों से कभी किसीने यात्रा की है? मैं तुमसे कहता हूँ, अगर यात्रा पर न जाना हो तो नक्शे का अध्ययन करना बहुत जरूरी है। मैं तुमसे कहता हूँ, अगर यात्रा से बचना हो तो नक्शों को पकड़ रखना बहुत जरूरी है। क्योंकि मन उलझा रहता है नक्शों में। और नक्शे बहुत प्रकार के हैं, नाना रंग-रूप के हैं।

बुद्ध ने क्या कहा है इसकी फिक्र मत करो। महावीर ने क्या कहा है इसकी चिंता मत करो। कृष्ण ने क्या कहा है इसका हिसाब मत रखो। बुद्ध क्या हैं, महावीर क्या हैं, कृष्ण क्या हैं — उनके होने पे थोड़ी नजर लाओ और तुम भी होने में लग जाओ। ये सब बाल की खाल हैं कि कौन विधि है और कौनसा पहुँचना; कौनसा मार्ग, कौनसी मंजिल। बाल को खाल मत निकालो। बहुत तर्कशास्त्री हैं। उनको तुम छोड़ दे सकते हो। और एक बात ध्यान रखना, अंत में तुम पाओगे कि जो चले वो पहुँच गये और जो सोचते रहे वो खो गये। साधक एक कदम की चिंता करता है। एक कदम चल लेता है फिर दूसरे की चिंता करता है।

चीन में कहानी है कि एक आदमी वर्षों तक सोचता था कि पास में एक पहाड़ पर तीर्थस्थान था वहाँ जाना है। लेकिन —कोई तीन-चार घंटे की यात्रा थी, दस-पंद्रह मील का फासला था—वर्षों तक सोचता रहा, पास ही था, नीचे घाटी में ही रहता था, हजारों यात्री वहाँ से गुजरते थे, लेकिन वो सोचता था पास ही तो हूँ, कभी भी चला जाऊंगा।

बूढ़ा हो गया। तब एक दिन एक यात्री ने उससे पूछा कि भई, तुम भी कभी

गये हो? उसने कहा कि मैं सोचता ही रहा, सोचा इतना पास हूँ, कभी भी चला जाऊँगा। लेकिन अब देर हो गयी, अब मुझे जाना ही चाहिए। उठा, उसने दुकान बंद की। सांझ हो रही थी। पत्नी ने पूछा कहाँ जाते हो? उसने कहा मैं, अब तो ये मरने का वक्त आ गया, और मैं यही सोचता रहा इतने पास है, कभी भी चला जाऊँगा, और में इन यात्रियों को ही जो तीर्थयात्रा पर जाते हैं सौदा-सामान बेचता रहा। जिंदगी मेरी यात्रियों के ही साथ बीती -- आने-जाने वालों के साथ, वो खबरें लाते, मंदिर के शिखरों की चर्चा करते, शांति की चर्चा करते, पहाड़ के सौंदर्य की बात करते, और मैं सोचता कि कभी भी चला जाऊँगा, पास ही तो है। दूर-दूर के लोग यात्रा कर गये, मैं पास रहा रह गया। मैं जाता हूँ।

कभी यात्रा पे गया न था। सिर्फ यात्रा की बातें सुनी थीं। सामान बाँधा, तैयारी की रात भर -- पता था कि तीन बजे रात निकल जाना चाहिए, ताकि सुबह-सुबह ठंढे-ठंढे पहुँच जाए। लालटेन जलायी। क्योंकि देखा था कि यात्री बोरिया-बिस्तर भी रखते हैं, लालटेन भी लेके जाते हैं। लालटेन लेके गाँव के बाहर पहुँचा तब उसे एक बात ख्याल आयी कि लालटेन का प्रकाश तो चार कदम से ज्यादा पडता नही। पंद्रह मील का फासला है। चार कदम तक पड़नेवाली रोशनी साथ है। ये पद्रह मील की यात्रा कैसे पूरी होगी? घबड़ा के बैठ गया। हिसाब लगाया। दुकानदार था, हिसाब-किताब जानता था। चार कदम पड़ती है रोशनी, पद्रह मील का फ़ासला है। इतनी सी रोशनी से कहीं जाना हो सकता है? घबड़ा गया। हिसाब बहुतों को घबड़ा देता है।

अगर तुम परमात्मा का हिसाब लगाओगे, घबड़ा जाओगे। कितना फासला है! कहाँ तुम, कहाँ परमात्मा! कहाँ तुम, कहाँ मोक्ष! कहाँ तुम्हारा कारागृह और कहाँ मुक्ति का आकाश! बहुत दूर है। तुम घबड़ा जाओगे, पैर कँप जाएँगे। बैठ जाओगे, आश्वासन खो जाएगा, भरोसा टूट जाएगा। पहुँच सकते हो, ये बात ही मन में समाएगी न।

उसके पैर डगमगा गये। वो बैठ गया। कभी गया न था, कभी चला न था, यात्रा न की थी। सिर्फ लोगों को देखा था -- आते-जाते। उनकी नकल कर रहा था, तो लालटेन भी ले आया था, सामान भी ले आया था। कहते हैं पास से फिर एक यात्री गुजरा और उसने पूछा कि तुम यहाँ क्या कर रहे हो? उस आदमी ने कहा मैं बड़ी मुसीबत में हूँ। इतनी सी रोशनी से इतने दूर का रास्ता! पद्रह मील का अंधकार, चार कदम पड़नेवाली रोशनी! हिसाब तो करो! उस आदमी ने कहा, हिसाब-किताब की जरूरत नहीं। उठो और चलो। मैं कोई गणित नहीं जानता, लेकिन इस रास्ते पर बहुत बार आया-गया हूँ। और तुम्हारी लालटेन तो मेरी लालटेन से बड़ी

है। तुम मेरी लालटेन देखो — वो बहुत छोटी सी लालटेन लिए हुए था, जिससे एक कदम मुश्किल से रोशनी पड़ती थी — इससे भी यात्रा हो जाती है। क्योंकि जब तुम एक कदम चल लेते हो, तो आगे एक कदम फिर रोशन हो जाता है। फिर एक कदम चल लेते हो, फिर एक कदम रोशन हो जाता है।

जिनको चलना है, हिसाब उनके लिए नहीं है। जिनको नहीं चलना है, हिसाब उनकी तरकीब है। जिनको चलना है, वो चल पड़ते हैं। छोटी सी रोशनी पहुँचा देती है। जिनको नहीं चलना है, वो बड़े अंधकार का हिसाब लगाते हैं। वो अंधकार घबड़ा देता है। पैर डगमगा जाते हैं।

साधक बनो, ज्ञानी नहीं। साधक बिना बने जो ज्ञान आ जाता है, वो कूड़ा-करकट है। साधक बनके जो आता है, वो बात ही और है। महावीर ठीक कहते हैं, जो चल पड़ा वो पहुँच गया; वो ज्ञानी की बात है। उस ज्ञानी की जो चला है, पहुँचा है।

महावीर के पास उनका खुद का दामाद उनका शिष्य हो गया था। लेकिन, उसे बड़ी अड़चन होती थी। भारत में तो दामाद का ससुर पैर छूता है। तो महावीर को पैर छूना चाहिए दामाद का। मगर जब उसने दीक्षा ले ली और उनका शिष्य हो गया, तो उसको पैर छूना पड़ता था। और फिर महावीर की बातों में उसे कई ऐसी बातें दिखायी पड़ने लगीं जो असंगत हैं। ये बात उनमें एक बात थी। तो उसने एक विरोध का झंडा खड़ा कर दिया। उसने महावीर के पाँच सौ शिष्यों को भड़का लिया। और उसने कहा ये तो बकवास है ये कहना कि जो चलता है वह पहुँच गया। महावीर कहते थे अगर तुमने दरी बिछाने के लिए खोली — खोलना शुरू की कि खुल गयी। अब ये बात तो बड़ी गहरी थी। मगर बुद्धू बुद्धिमानों के हाथ में पड़ जाए तो बड़ा खतरा। उसने कहा इसको तो मैं प्रमाण दे सकता हूँ कि ये बात बिलकुल गलत है। वो एक दरी ले आया लपेट के। उसने कहा कि यह लो, हम खोल दिये — जरा सी खोल दी और फिर रुक गया। महावीर कहते हैं खोली कि खुल गयी। कहाँ खुली? उससे पाँच सौ आदमियों को भड़का लिया, महावीर के शिष्यों को। कभी-कभी पंडित भी शिष्यों को भड़का लेते है, क्योंकि पंडित की बात ज्यादा तर्कपूर्ण होती है। वो ज्यादा बुद्धि को जँचती है। बात तो जँचेगी। ये क्या बात है? खोलने से कहीं खुलती है, बीच में भी रुक सकती है। चलने से कहीं कोई पहुँचता है, बीच में भी तो रुक सकता है।

महावीर करुणा के आँसू गिराए होंगे, लेकिन क्या कर सकते थे? सिद्ध तो वो भी नहीं कर सकते थे वे। करुणा के आँसू गिराए होंगे, क्योंकि उन्हें पता है कि जो एक कदम भी सत्य की तरफ चल पड़ा, वो कभी नहीं रुकता है — मगर अब इसको

समझाएँ कैसे — क्योंकि सत्य का आकर्षण ऐसा है। तुम जो नहीं चले हो उनको खींच रहा है, जो चल पड़ा वो फिर कभी नहीं रुकता है। नहीं जो चले हैं वो भी खिंचे जा रहे हैं, तो जो चल पड़ा है वो कहीं रुकनेवाला है? जिसने जरा सा भी स्वाद ले लिया सत्य का फिर सब स्वाद व्यर्थ हो जाते हैं। जो सत्य की तरफ जरा सा झुक गया, सत्य की ऊर्जा, सत्य का आकर्षण चुंबक की तरह खींच लेता है। ये तो ऐसे ही है जैसेकि हमने छत से एक पत्थर छोड़ दिया जमीन की तरफ। महावीर यह कह रहे हैं कि पत्थर छोड़ दिया कि पहुँच गया।

अगर मैं होता तो महावीर के दामाद को ले गया होता छत पे। दरी न खुलवायी होती, क्योंकि दरी की बात मैं न करता — वो मैं भी समझता हूँ कि वो झंझट हो जाएगी दरी में तो। एक पत्थर छोड़ देता और कहता, छूट गया — पहुँच गया। क्योंकि बीच में रुकेगा कैसे? गुरुत्वाकर्षण है। हाँ, जब तक छत पर ही रखा हुआ है तब तक गुरुत्वाकर्षण कुछ भी नहीं कर सकता। जरा डगा दो। इसलिए मैं कहता हूँ सत्य ऐसा है जैसे छत से कोई छलाँग लगा ले। तुम एक कदम उठाओ, बाकी फिर अपने से हो जाएँगे। तुम्हें दूसरा कदम उठाना ही न पड़ेगा। क्योंकि जमीन का गुरुत्वाकर्षण कर लेगा शेष काम।

महावीर ठीक कहते थे। लेकिन महावीर कोई तार्किक नहीं हैं। महावीर हार गये, ऐसा लगता है। रोए होंगे करुणा से कि ये पागल खुद भी पागल है और ये पाँच सौ और पागलों को अपने साथ लिए जा रहा है।

महावीर जानते हैं कि जो एक कदम चल गया वो मंजिल पे पहुँच गया। कृष्णमूर्ति ने पहली किताब लिखी है — 'दें फॅर्स्ट एण्ड लास्ट फ्रीडम', उस किताब का नाम है, पहली और आखिरी मुक्ति। क्योंकि पहले कदम पर ही आखिरी घट जाती है। वही महावीर कह रहे थे कि एक कदम उठा लिया कि मंजिल आ गयी। जिन्होंने भी पहला कदम उठा लिया उनकी मंजिल आ गयी।

अब तुम पूछते हो कि मंजिल क्या और मार्ग क्या? चाहो, दो कर लो; चाहो, एक कर लो; असलियत तो यही है कि मार्ग ही मंजिल है। क्योंकि एक कदम उठाते ही पहुँचना हो जाता है। तुम अगर नहीं पहुंचे, तो ये मत सोचना कि हमने कदम तो बहुत उठाए, चूँकि मंजिल दूर है इसलिए नहीं पहुँच पा रहे। तुमने पहला कदम ही नहीं उठाया। इसलिए अटके हो।

मगर अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है ये मानने में — कि मैंने पहला कदम ही नहीं उठाया? ये बात हो गलत लगती है। कदम तो हमने बहुत उठाए, मार्ग लंबा है, मंजिल दूर है, इसलिए नहीं पहुँच रहे हैं। अहंकार को उसमें सुविधा है कि मंजिल दूर है इसलिए नहीं पहुँच रहे हैं। मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने पहला कदम ही नहीं

उठाया। अन्यथा तुम्हें कोई रोक सकता है? जिसने उठाया पहला कदम, वो पहुँच गया। पहले कदम पर ही पहुँचना हो जाता है। तुम उठाओ भर कदम और मंजिल आ जाती है। लेकिन बैठे-बैठे हिसाब मत करो। काफी हिसाब कर लिए हो।

तथाता मार्ग भी है, मंजिल भी। तथाता का अर्थ क्या होता है? तथाता का अर्थ है — सर्वस्वीकार का भाव। अहंकार संघर्ष है। अहंकार कहता है, ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए। अहंकार कहता है, यह रहा ठीक, वह रहा गलत। अहंकार चुनाव करता है, भेद करता है, बाँटता है — खंड-खंड करता है। तथाता का अर्थ है — सर्वस्वीकार। 'टोटल अक्सेप्टेंन्स'। जैसा है, जो है, राजी हैं। अहंकार है परिपूर्ण विरोध। तथाता है परिपूर्ण स्वीकार। अहंकार है प्रतिरोध, 'रेसिस्टेंन्स'। तथाता है राजी होना। अहंकार है नहीं, तथाता है हाँ। अस्तित्व जो कहे, हाँ। तब तो पहले ही कदम पे मंजिल हो जाएगी। ऐसी घड़ी में तो क्रांति घट जाती है, रूपांतरण हो जाता है। फिर बचा क्या पाने को, जब तुमने सब स्वीकार कर लिया? लड़ाई कहाँ रही? फिर तुम तैरते नहीं, अस्तित्व की धारा तुम्हें ले चलती है सागर की तरफ।

रामकृष्ण ने कहा है, दो ढंग हैं यात्रा करने के। एक है पतवार लेके नाव चलाना। वो अहंकार का ढंग है। बड़ा थकाता है, और ज्यादा दूर पहुँचाता भी नहीं। दूसरा रास्ता है पतवार छोड़ो, पाल खोलो, हवाएं ले जाएंगी। तुम हवाओं के सहारे चल पड़ो।

एहसान न खुदा का उठाए मेरी बला
कश्ती खुदा पे छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ

कौन चिंता करे मांझी की? 'एहसान न खुदा का उठाए मेरी बला' — अब ये मांझी का और कौन एहसान उठाए? 'कश्ती खुदा पे छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ' — लंगर भी तोड़ देता हूँ, कश्ती भी उसपे छोड़ देता हूँ। ये है तथाता। अब वो जहाँ ले जाए। अब अगर मझधार में डुबा दे, तो वही किनारा है। अब डूबना भी उबरना है। स्वीकार में फासला कहाँ? अब न पहुँचना भी पहुँचना है। स्वीकार में फासला कहाँ? अब होना और न होना बराबर है। अब मंजिल और मार्ग एक है। अब बीज और वृक्ष एक है। अब सृष्टि और प्रलय एक है। क्योंकि वो सारे भेद बीच में अहंकार खड़ा होके करता था। सारे भेद अहंकार के हैं। अभेद निर-अहंकार का है।

एहसान न खुदा का उठाए मेरी बला
कश्ती खुदा पे छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ

ऐसी मनोदशा परमावस्था है। और ऐसी परम अवस्था में साधन साध्य का कोई

भेद नहीं। सृष्टि, स्रष्टा का कोई भेद नहीं। जीवन, मृत्यु का कोई भेद नहीं। एक के ही अलग-अलग चेहरे है।

फिर तुम जहाँ हो वहीं मंजिल है। फिर कहीं और जाने को भी नहीं है। जाना भी अहंकार का ही ख्याल है। पहुंचने की आकांक्षा भी अहंकार की ही दौड़ है। वो भी महत्वाकांक्षा ही है।

चौथा प्रश्न क्या क्षणभंगुरता का बोध ही जीवन में क्षण-क्षण जीने की कला बन जाता है?

निश्चित ही!

जैसे-जैसे ही तुम जागोगे और देखोगे कि एक क्षण के अतिरिक्त हाथ में कोई दूसरा क्षण नहीं है — दो क्षण किसीके पास एक साथ नहीं होते। एक क्षण आता है, जाता है, तब दूसरा आता है — एक ही क्षण हाथ में है।

सारे जीवन की कला यही है कि इस एक क्षण में कैसे जी लो। कैसे ये एक क्षण ही तुम्हारा पूरा जीवन हो जाए। कैसे इस एक क्षण की इतनी गहराई में उतर जाओ कि ये क्षण शाश्वत और सनातन मालूम हो। एक क्षण से दूसरे क्षण पर जाना साधारण जीवन का ढंग है। और एक क्षण की गहराई में उतर जाना असाधारण जीवन का ढंग है।

सांसारिक जीवन का अर्थ है, इस क्षण को अगले क्षण के लिए कुर्बान करो, फिर उसको और अगले के लिए कुर्बान करना। आज को कल के लिए निछावर करो, कल को फिर और परसों के लिए निछावर करना। सांसारिक जीवन एक सतत स्थगन, एक 'पोसपोनमेंट' है। सन्यास का जीवन, इस क्षण को पूरा जी लो परम अनुग्रह के भाव से। परमात्मा ने यह क्षण दिया, इसे पूरा पी लो। इस क्षण की प्याली में से एक बूंद भी अनपियी न छूट जाए, तुम इसे पूरा ही गटक जाओ, तो तुम तैयार ही रहे हो दूसरे क्षण को पीने के लिए। जितना तुम पियोगे उतनी तैयारी हो जाएगी। ये प्यास कुछ ऐसी है कि पीने से बढ़ती है। ये रस कुछ ऐसा है कि जितना तुम इसमें डुबोगे उतनी ही डूबने की क्षमता आती जाएगी।

क्षणभंगुरता का बोध अगर तुम्हें आ जाए कि एक ही क्षण पास है, तो दूसरा कोई क्षण पास नहीं — हो सकता है यही क्षण आखिरी हो। तो फिर तुम कल पर न छोड सकोगे। आज जिओगे, यहीं जिओगे। तुम ये न कहोगे कि कल पे छोड़ते हैं, कल जी लेंगे। कल कर लेंगे प्रेम, कल कर लेंगे उत्सव, कल कर लेंगे आनंद। तुममें फिर ये सुविधा न रहेगी। आज ही है उत्सव, आज ही है पूजा, आज ही है प्रेम। आज के पार कुछ भी नहीं।

क्षणभंगुर का अगर इतना स्पष्ट बोध हो जाए कि जीवन क्षण-क्षण बीता जा रहा है, चूका जा रहा है, तो तुम क्षण की शाश्वतता में उतरने में समर्थ हो जाओगे। एक क्षण भी अपनी गहराई में सनातन है, शाश्वत है। ऐसे समझो कि एक आदमी किसी झील पे तैरता है — ऊपर-ऊपर, एक लहर से दूसरी लहर। और एक दूसरा है गोताखोर, जो झील में एक ही लहर में गोता मारता है और गहरे उतर जाता है। सांसारिक आदमी एक लहर से दूसरी लहर पे चलता रहता है। सतह पर ही तैरता है। सतह पर सतह ही हाथ लगती है। गहराई में जो जाता है उसे गहराई के खजाने हाथ लगते हैं। किसीने कभी लहरों पर मोती पाए ? मोती गहराई में हैं।

जीवन का असली अर्थ क्षण की गहराई में छिपा है। तो ये तो ठीक है कि जीवन को क्षणभंगुर मानो — है ही; होने का सवाल नहीं, जानो। ये भी ठीक है कि एक क्षण से ज्यादा तुम्हें कुछ मिला नहीं। लेकिन इससे उदास होके मत बैठ जाना। ये तो कहा ही इसलिए था ताकि झूठी दौड़ बंद हो जाए। ये तो कहा ही इसलिए था ताकि गलत आयाम में तुम न चलो। ये तो तुम्हें पुकारने को कहा था कि गहराई में उतर आओ।

बुद्ध जब कहते हैं, जीवन क्षणभंगुर है, तो वो ये नहीं कह रहे हैं कि इसे छोड़के तुम उदास होके बैठ जाओ। वो यही कह रहे हैं कि तुम्हारे होने का जो ढंग है अबतक, वो गलत है। उसे छोड़ दो, मैं तुम्हें एक और नये होने का ढंग बताता हूँ।

साधारण आदमी तो क्षणभंगुर जीवन की सतह पर जीता है। इसी क्षणभंगुर सतह पर वो अपने स्वर्ग और नर्कों की भी कामना करता है, अपने आनेवाले भविष्य-जन्मों की भी कल्पना करता है — यहीं, इसी आयाम में। वो कभी नीचे झाँककर नहीं देखता कि सतह की गहराई मे कितना अनंत छिपा है।

एक-एक क्षण में अनंत का वास है। और एक-एक कण में विराट है। लेकिन वो कण को कण की तरह देखता है, क्षण को क्षण की तरह देखता है। और क्षण की वजह से — इतना छोटा क्षण जो कैसे पाएँगे — वो आगे की योजनाएँ बनाता है कि कल जिएँगे और ये भूल ही जाता है, कल भी क्षण ही हाथ में होगा। जब भी होगा क्षण ही हाथ में होगा। ज्यादा कभी हाथ में न होगा। जब ये जीवन चूक जाता है, तो वो अगले जीवन की कल्पना करता है कि फिर जन्म के बाद होगा जीवन। लेकिन तुम वही कल्पना करोगे, उसीकी आकांक्षा करोगे जो तुमने जाना है।

गालिब की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं —

> क्यों न फिरदौस को दोजख में मिलालें या रब
>
> सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

गालिब कह रहा है कि नर्क को ही जाना है हमने तो, स्वर्ग को तो जाना नहीं।

और, जिनको हमने जाना है उनने भी नर्क को ही जाना है। 'क्यों न फिरदौस को दोजख में मिलालें या रब'। तो हम स्वर्ग को भी नर्क में क्यों न मिला लें? 'सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही'। स्वर्ग होगा भी छोटा नर्क के मुकाबले, क्योंकि अधिक लोग नर्क में जी रहे हैं। स्वर्ग में तो कभी कोई जीता है। इस थोड़ी सी जगह को भी और अलग क्यों छोड़ रखा है।

क्यों न फिरदौस को दोजख में मिलालें या रब
सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

इसको क्यों अलग छोड़ रखा है? ये पंक्तियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं। ये साधारण आदमी के मन की खबर है। तुम्हें अगर स्वर्ग भी मिले तो तुम उसे अपने नर्क में जोड़ लेना चाहोगे, और तुम करोगे भी क्या? मैंने देखा है, तुम्हें धन भी मिल जाए तो तुम उसे अपनी गरीबी में जोड़ लेते हो, और तुम करोगे भी क्या? तुम्हें आनंद का अवसर भी मिल जाए तो तुम उसे भी अपने दुख में जोड़ लेते हो, तुम और करोगे भी क्या? तुम्हें अगर चार दिन जिंदगी के और मिल जाएँ तो तुम उन्हें इसी जिंदगी में जोड़ लोगे, और तुम करोगे भी क्या? आदमी सत्तर साल जीता है, सात सौ साल जिए तो तुम सोचते हो कोई क्रांति हो जाएगी! बस ऐसे ही जिएगा। और सुस्त होके जीने लगेगा। ऐसे ही जिएगा। सत्तर साल में अभी नहीं जीता तो सात सौ साल में तो और भी स्थगित करने लगेगा कि जल्दी क्या है?

क्यों न फिरदौस को दोजख में मिलालें या रब
सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

तुम जो हो उसीमें वो जोड़ोगे भविष्य को भी। तुम स्वर्ग को भी अपने नर्क में ही जोड़ लोगे। तुम अपने अधर्म में ही धर्म को भी जोड़ लेते हो, तुम अपनी दुकान में ही मंदिर को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी बीमारी में अपने स्वास्थ्य को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी मूर्छा में अमूर्छा की बातों को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी अशांति में अपने ध्यान को भी जोड़ लेते हो। रूपांतरण नहीं हो पाता।

नर्क में स्वर्ग को नहीं जोड़ना है। नर्क को मिटाना है, ताकि स्वर्ग हो सके। नर्क को छोड़ना है, ताकि स्वर्ग हो सके।

क्षणभंगुर जीवन है, ये सत्य है। इसके तुम तीन अर्थ ले सकते हो। एक — क्षण-भंगुर है, इसलिए जल्दी करो। भोगो, कहीं भोग छूट न जाए। सांसारिक आदमी वही कहता है — खाओ, पिओ, मौज करो, जिंदगी जा रही है। फिर धार्मिक आदमी है, वो कहता है: जिंदगी जा रही है, खाओ, पिओ, मौज करो इसमें मत गवाँओ। कुछ कमाई कर लो, जो आगे काम आए स्वर्ग में, मोक्ष में। ये दोनों गलत हैं।

फिर एक तीसरा आदमी है जिसको मैं जागा हुआ पुरुष कहता हूँ, बुद्धपुरुष कहता हूँ, वो कहता है — जीवन क्षणभंगुर है, इसलिए कल पर तो कुछ भी नहीं छोड़ा जा सकता। स्वर्ग और भविष्य की कल्पनाएँ नासमझियाँ हैं। इसलिए बुद्ध ने स्वर्गों की बात नहीं की। फिर वो ये कहता है कि जब जीवन क्षणभंगुर है तो सतह पर ही खाने-पीने और मौज में भी उसे गवाँना व्यर्थ है। तो थोड़ा हम भीतर उतरें, क्षण को खोलें, कौन जाने क्षण केवल द्वार हो जिसके बाहर ही हम जीवन को गवाँए दे रहे हैं। क्षण को खोलना ही ध्यान है।

महावीर ने तो ध्यान को सामायिक कहा। क्योंकि सामायिक का अर्थ है समय को खोल लेने की कला। क्षण में खोलके उतर जाना। द्वार तो छोटा ही होता है, महल बहुत बड़ा है। तुम द्वार के कारण महल को छोटा मत समझ लेना। द्वार तो छोटा ही होता है। द्वार के बड़े होने की जरूरत नहीं। तुम निकल जाओ इतना काफी है। इतना मैं तुमसे कहता हूँ, क्षण का द्वार इतना बड़ा है कि तुम उससे मजे से निकल सकते हो। इससे ज्यादा की जरूरत भी नहीं। क्षण के पार शाश्वत तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम एक द्वार से दूसरे द्वार पर भाग रहे हो। कुछ द्वार-द्वार भीख माँगते फिर रहे हैं, वो सांसारिक लोग। कुछ हैं जो उदास होके बैठ गये हैं द्वार के बाहर, सिर लटका लिया है कि जीवन बेकार है। इन दो से बचना।

एक तीसरा आदमी भी है, जिसने क्षण की कुंजी खोज ली। वही अमूर्छा है, अप्रमाद है। और क्षण का द्वार खोल लिया। क्षण का द्वार खोलते ही शाश्वत का द्वार खुल जाता है। अनंत छिपा है क्षण में, विराट छिपा है कण में।

आखिरी प्रश्न : आनंद की दशा में क्या बस फूल ही फूल हैं, काँटे क्या एक भी नहीं ?

प्रश्न थोड़ा कठिन है। कठिन इसलिए है कि आनंद के मार्ग पर न तो फूल हैं और न काँटे। काँटे तुम्हारे देखने में होते हैं। फूल भी तुम्हारे देखने में होते हैं। काँटे और फूल बाहर नहीं हैं। काँटे और फूल तुम्हें मिलते नहीं हैं बाहर, तुम्हारे देखने से जनमते हैं। गलत देखने से काँटे दिखायी पड़ते हैं। ठीक देखने से फूल दिखायी पड़ते हैं। तुम वही देख लेते हो जो तुम्हारी दृष्टि है। दृष्टि ही सृष्टि है, इसे स्मरण रखो।

बड़ी प्राचीन कथा है कि रामदास राम की कथा कह रहे हैं। कथा इतनी प्रीतिकर है, राम की कहानी इतनी प्रीतिकर है कि हनुमान भी सुनने आने लगे। हनुमान ने तो खुद ही आँखों से देखी थी सारी कहानी। लेकिन फिर भी कहते है, रामदास ने ऐसी कही कि हनुमान को भी आना पड़ा। खबर मिली तो वो सुनने आने लगे। बड़ी अद्भुत थी। छिपे-छिपे भीड़ में बैठ के सुनते थे।

पर एक दिन खड़े हो गये, खयाल ही न रहा कि छुप के सुनना है, छुप के ही आना

है। क्योंकि रामदास कुछ बात कहे जो हनुमान को जँची नहीं, गलत थी, क्योंकि हनुमान मौजूद थे। और ये आदमी तो हजारों साल बाद कह रहा है। तो उन्होंने कहा कि देखो, इसको सुधार कर लो।

रामदास ने कहा कि जब हनुमान लंका गये और अशोक-वाटिका में गये, और उन्होंने सीता को वहाँ बंद देखा, तो वहाँ चारों तरफ सफेद फूल खिले थे। हनुमान ने कहा, ये बात गलत है, तुम इसमें सुधार कर लो। फूल लाल थे, सफेद नहीं थे। रामदास ने कहा, तुम बैठो, बीच में बोलने की जरूरत नहीं है। तुम हो कौन ? फूल सफेद थे।

तब तो हनुमान को अपना रूप बताना पड़ा। हनुमान ही हैं ! भूल ही गये सब शिष्टाचार। कहा कि मैं खुद हनुमान हूँ। प्रगट हो गये। और कहा कि अब तो सुधार करोगे ? तुम हजारों साल बाद कहानी कह रहे हो। तुम वहाँ थे नहीं मौजूद। मैं चश्मदीद गवाह हूँ। मैं खुद हनुमान हूं, जिसकी तुम कहानी कह रहे हो। मैंने फूल लाल देखे थे, सुधार कर लो।

मगर रामदास जिद्दी। रामदास ने कहा, होओगे तुम हनुमान, मगर फूल सफेद थे। इसमें फर्क नहीं हो सकता। बात यहाँ तक बढ़ गयी कि कहते हैं राम के दरबार में दोनों को ले जाया गया, कि अब राम ही निर्णय करें कि अब ये क्या मामला होगा, कैसे बात हल होगी, क्योंकि हनुमान खुद आँखों देखी बात कह रहा है कि फूल लाल थे। और रामदास फिर भी जिद किए जा रहे हैं कि फूल सफेद थे।

राम ने हनुमान से कहा कि तुम माफी माँग लो। रामदास ठीक ही कहते हैं। फूल सफेद थे। हनुमान तो हैरान हो गये। उन्होंने कहा ये तो हद हो गयी, ये तो कोई सीमा के बाहर बात हो गयी। मैंने खुद देखे, तुम भी वहाँ नहीं थे। और न ये रामदास थे और न तुम थे। तुमने निर्णय माँगा यही भूल हो गयी। मैं अकेला वहाँ मौजूद था। सीता से पूछ लिया जाए, वो मौजूद थी। सीता को पूछा गया। सीता ने कहा, हनुमान, तुम क्षमा माँग लो, फूल सफेद थे। संत झूठ नहीं कह सकते। होना मौजूद न होना सवाल नहीं है। अब रामदास ने जो कह दिया वो ठीक ही है। फूल सफेद ही थे। मुझे दुख होता है कि तुम्हें गलत होना पड़ रहा है, तुम्हीं अकेले एकमात्र गवाह हो। मैं भी थी, फूल सफेद ही थे। शानदार !

उसने कहा, ये तो कोई षड्यंत्र मालूम होता है। कोई साजिश मालूम पड़ती है। मुझे भलीभाँति याद है।

राम ने कहा तुम ठीक कहते हो, तुम्हें फूल लाल दिखायी पड़े थे, क्योंकि तुम क्रोध से भरे थे। आँखों में खून था। जब आँखों में खून हो, क्रोध हो, तो सफेद फूल कैसे दिखायी पड़ सकते हैं ?

जब मैंने इस कहानी को पढ़ा तो मेरा मन हुआ, इसमें थोड़ा और जोड़ दिया जाए। क्योंकि फूल वहाँ थे ही नहीं। अगर हनुमान की आँखों में खून था इसलिए लाल दिखायी पड़े, तो ये रामदास के मन में एक शुभ्रता है जिसकी वजह से सफेद दिखायी पड़ रहे हैं। फूल वहाँ थे नहीं। मैं तुमसे कहता हूँ राम भी गलत थे, सीता भी गलत हैं, रामदास भी गलत हैं। फूल बाहर नहीं हैं। तुम्हारी आँख में ही खिलते हैं। काँटे भी बाहर नहीं हैं। तुम्हारी आँख में ही बनते हैं, निर्मित होते हैं। तुम्हें वही दिखायी पड़ जाता है जो तुम देख सकते हो।

अब तुम पूछते हो, आनंद की दशा में क्या बस फूल ही फूल हैं? न तुम्हें आनंद की दशा का पता है, न तुमने कभी फूल देखे। काँटे क्या एक भी नहीं? अब तुम्हें पता ही नहीं तुम क्या पूछ रहे हो। जिसके भीतर आनंद का आविर्भाव हुआ है, उसके बाहर सिर्फ आनंद ही आनंद होता है, फूल ही फूल होते हैं। क्योंकि जो तुम्हारे भीतर है वही तुम्हारे बाहर छा जाता है। तुम्हारा भीतर ही फैल के बाहर छा जाता है। तुम्हारा भीतर ही बाहर हो जाता है। तुम जैसे हो वैसा ही सारा अस्तित्व हो जाता है।

बुद्ध के साथ सारा अस्तित्व बुद्ध हो जाता है। मीरा के साथ सारा अस्तित्व मीरा हो जाता है। मीरा नाचती है तो सारा अस्तित्व नाचता है। बुद्ध चुप होते हैं तो सारा अस्तित्व चुप हो जाता है। तुम दुख से भरे हो, तो सारा अस्तित्व दुख से भरा है। तुमने कभी खयाल भी किया होगा, तुम परेशान हो, दुखी हो, चाँद को देखते हो उदास मालूम होता है। उसी रात तुम्हारे ही पड़ोस में कोई प्रसन्न है, आनंदित है, उसी चाँद को देखता है और लगता है आनंद बरस रहा है।

तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारा संसार है। और, मोक्ष का अर्थ है, सारी दृष्टि का खो जाना। न सफेद, न लाल। जब कोई भी दृष्टि नहीं रह जाती तुम्हारी, तब तुम्हें वो दिखायी पड़ता है, जो है। उसको परमात्मा कहो, निर्वाण कहो। साधु को भी जो दिखायी पड़ता है वो है नहीं, असाधु को भी जो दिखायी पड़ता है वो है नहीं। शैतान को जो दिखायी पड़ता है वो है नहीं, संत को जो दिखायी पड़ता है वो है नहीं। जो है, वो तो तभी दिखायी पड़ता है जब तुम्हारी कोई भी दृष्टि नहीं होती। तब तुम कुछ भी नहीं जोड़ते।

इसलिए बुद्ध ने तो उस परमदशा में आनंद भी है ऐसा नहीं कहा। क्योंकि वो भी दृष्टि है। फूल हैं, ऐसा भी नहीं कहा। काँटे हैं, ऐसा भी नहीं कहा। क्योंकि काँटे तुम्हारी दुख की दृष्टि से पैदा होते थे, आनंद तुम्हारे आनंद की दृष्टि से पैदा हो रहा है। काँटों में भी तुम थे, फूलों में भी तुम हो। एक ऐसी भी घड़ी है निर्वाण की जब तुम होते ही नहीं; तब एक परमशून्य है। इसलिए बुद्ध ने कहा, निर्वाण,

परमशून्यता। जहां कुछ भी नहीं है। जहां वही दिखायी पड़ता है, जो है। अब उसे कहने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि उसे कांटा कहो तो गलत होगा, फूल कहो तो गलत होगा, दुख कहो तो गलत होगा।

तो तीन दशाएं हैं। एक दुख की दशा है। तब तुम्हें चारों तरफ कांटे दिखायी पड़ते हैं। फूल केवल तुम्हारे सपने में होते हैं। कांटा चुभता है वस्तुतः और फूल केवल आशा में होता है। ये एक दशा। फिर एक आनंद की दशा है, जब चारों तरफ फूल होते हैं। कांटे सब खो गये होते हैं, कहीं कोई कांटा नहीं दिखायी पड़ता। लेकिन, कांटा संभावना में छिपा होता है। क्योंकि फूल अगर है, तो कांटा कहीं संभावना में छिपा होगा। फिर एक तीसरी परमदशा है। न कांटे हैं, न फूल हैं। उस परमदशा को ही आनंद कहो। वो सुख के पार, दुख के पार। कांटे के पार, फूल के पार।

आज इतना ही।

केवल शिष्य जीतेगा

५ दिमबर १९७५
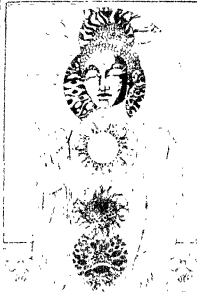
को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ।। ३९ ।।
सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ।। ४० ।।
फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ।। ४१ ।।
पुप्फानि हेव पचिनन्तं ब्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चु आदाय गच्छति ।। ४२ ।।
यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ।। ४३ ।।

चलने को चल रहा हूँ पर इसकी खबर नहीं
मैं हूँ सफर में या मेरी मंजिल सफर में है

जीवन यदि चलने से ही पूरा हो जाता, तो सभी मंजिल पर पहुँच गये होते।

क्योंकि चलते तो सभी हैं। चलते ही नहीं, दौड़ते हैं। सारा जीवन चुका डालते हैं उसी दौड़ में, पर पहुँचता कभी कोई एकाध है। करोड़ों में। सदियों में।

ये चलना कैसा, जो पहुँचाता नहीं? ये जीना कैसा, जिससे जीवन का स्वाद आता नहीं? ये होने का कैसा ढंग है? न होने के बराबर। भटकना कहो इसे, चलना कहना ठीक नहीं। जब पहुँचना ही न होता हो, तो चलना कहना उचित नहीं है। मार्ग वही है जो मंजिल पर पहुँचा दे। चलने से ही कोई मार्ग नहीं होता, मंजिल तक पहुँचने से मार्ग होता है।

पहुँचते केवल वे ही हैं, जो जागकर चलते हैं। चलने में जिन्होंने जागने का गुण भी जोड़ लिया, उनका भटकाव बंद हो जाता है। और बड़े आश्चर्य की बात तो

यही है कि जिन्होंने जागने को जोड़ दिया चलने में, उन्हें चलना भी नहीं पड़ता और पहुँच जाते हैं। क्योंकि जागना ही मंजिल है।

तो दो ढंग से जी सकते हो तुम। एक तो चलने का ही जीवन है, चलते रहने का। केवल थकान लगती है हाथ। राह की धूल लगती है हाथ। आदमी गिर जाता है आखीर में — कब्र में, मुंह के बल। उसे ही मंजिल मान लो, तब बात और !

एक और ढंग है चलने का — होशपूर्वक, जागकर। पैरों का उतना सवाल नहीं है जितना आँखों का सवाल है। शक्ति का उतना सवाल नहीं है जितना शांति का सवाल है। नशे-नशे में, सोए-सोए कितना ही चलो, पहुँचोगे नहीं।

ये चलना तो कोल्हू के बैल जैसा है। आँखें बंद हैं कोल्हू के बैल की, चलना चला जाता है। एक ही लकीर पर वर्तुलाकार घूमता रहता है। अपने जीवन को थोड़ा विचारो, कहीं तुम्हारा जीवन भी तो वर्तुलाकार नहीं घूम रहा है ? जो कल किया था वही आज कर रहे हो। जो आज कर रहे हो वही कल भी करोगे। कहीं तो तोड़ो इस वर्तुल को। कभी तो बाहर आओ इस घेरे के।

पुनरुक्ति जीवन नहीं है। ये केवल आहिस्ता-आहिस्ता मरने का नाम है। जीवन तो प्रतिपल नया है। मौत पुनरुक्ति है। इसे तुम परिभाषा समझो। अगर तुम वही दोहरा रहे हो, जो तुम पहले भी करते रहे हो, तो तुम जी नहीं रहे हो। तुम जीने का सिर्फ बहाना कर रहे हो। सिर्फ थोथी मुद्राएँ हैं, जीवन नहीं। तुम जीने का नाटक कर रहे हो। जीना इतना सस्ता नहीं है। रोज सुबह उठते हो, फिर वही शुरू हो जाता है। रोज साँझ सोते हो, फिर वही अंत हो जाता है।

कहीं से तोड़ो इस परिधि को। और इस परिधि को तोड़ने का एक ही उपाय है, जो बुद्धपुरुषों ने कहा है — आँख खोलो। कोल्हू का बैल चल पाता है एक ही चक्कर में, क्योंकि उसकी आँखे बंद कर दी गयी हैं। उसे दिखायी नहीं पड़ता। तुम्हारी आँखें भी बंद है —

> चलने को चल रहा हूँ पर इसकी खबर नहीं
> मैं हूँ सफर मे या मेरी मंजिल सफर में है

इतना भी पता नहीं है कि ये जिंदगी ही मंजिल है, या ये जिंदगी कहीं पहुँचाती है। ये बस होना काफी है, या इस होने से और एक बड़े होने का द्वार खुलने को है। मैं पर्याप्त हूँ, या केवल एक शुरुआत हूँ। मैं अंत हूँ, या प्रारंभ हूँ। मैं बीज हूँ, या वृक्ष हूँ। तुम जो हो, अगर वो पर्याप्त होता तो तुम आनंदित होते। क्योंकि जहाँ भी पर्याप्त हो जाता है, वहीं संतोष, परितृप्ति आ जाती है। जहाँ पर्याप्त हुए, वहीं परितोष आ जाता है।

तुम पर्याप्त तो नहीं हो, ये तुम्हारी बेचैनी कहे देती है। तुम्हारे आँख की उदासी

कहे आती है। तुम्हारे प्राणों का दुख भरा स्वर गुनगुनाए जाता है — तुम पर्याप्त नहीं हो। कुछ खो रहा है। कुछ चूका जा रहा है। कुछ होना चाहिए जो नहीं है। उसकी रिक्त जगह तुम अनुभव करते हो। वही तो जीवन का संताप है। तो फिर ऐसे ही अगर रहे और इसीको दोहराते रहे, तब तो वह रिक्त जगह कभी भी न भरेगी। तुम्हारा घर खाली रह जाएगा। जिसकी तुम प्रतीक्षा करते हो, वो कभी आएगा नहीं। जागकर देखना जरूरी है।

असली सवाल, कहाँ जा रहे हो यह नहीं है। असली सवाल, किस मार्ग से जा रहे हो, यह भी नहीं है। असली सवाल यही है कि जो जा रहा है, वो कौन है? जिसने अपने को पहचाना, उसके कदम ठीक पड़ने लगे। अपनी पहचान से ही ठीक कदमों का जन्म होता है। जिसने अपने को न पहचाना, तो कितने ही शास्त्र और कितने ही नक्शे और कितने ही सिद्धांत लेके चलता रहे, उसके पैर गलत ही पड़ते रहेंगे। वो तो एक ऐसा शराबी है, जो नक्शा लेके चल रहा है। शराबी के खुद के पैर ही ठीक नहीं पड़ रहे हैं। शराबी के हाथ नक्शे का क्या उपयोग है? तुम्हारे हाथ में शास्त्रों का कोई उपयोग नहीं। तुम्हारे साथ शास्त्र भी कँपेगा, डगमगाएगा। शास्त्र तुम्हें न ठहरा पाएगा, तुम्हारे कारण शास्त्र भी डगमगाएगा। तुम ठहर जाओ, शास्त्र की जरूरत ही नहीं। तुम्हारे ठहरने से ही शास्त्र का जन्म होता है। दृष्टि उपलब्ध होती है, दर्शन होता है। बुद्ध के ये सारे वचन सब तरफ से एक ही दिशा की तरफ इंगित करते हैं कि जागो। प्रमाद में मत डूबे रहो, अप्रमाद तुम्हारे जीवन का आधार बने, आधारशिला बने।

पूछते हैं बुद्ध, 'कौन इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा?' कौन? 'कौन कुशल पुरुष फूल की भाँति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा?' कौन?

तुम तो कैसे चुनोगे, जैसे तुम हो। चुनना तो तुम भी चाहते हो। काँटों से कौन बचना नहीं चाहता? फूलों को कौन आलिंगन नहीं कर लेना चाहता? सुख की आकांक्षा किसकी नहीं है? दुख से दूर हटने का भाव किसके मन में नहीं उठता? लेकिन बुद्ध पूछते हैं, कौन जीतेगा? कौन उपलब्ध होगा फूलों से भरे धर्मपथ को? तुम जैसे हो वैसे न हो सकोगे। तुम सोए हो। तुम्हें खबर ही नहीं तुम कौन हो। फूल और काँटे का भेद तो तुम कैसे करोगे? सार-असार को तुम कैसे अलग करोगे? सार्थक-व्यर्थ को तुम कैसे छाँटोगे? तुम सोए हो। तुम्हारे स्वप्नों में अगर तुमने फूल और काँटे अलग भी कर लिए, तो जागके तुम पाओगे दोनों खो गये। सपने के फूल और सपने के काँटों में कोई फर्क नहीं।

इसलिए असली सवाल तुम्हारे जागने का है। उसके बाद ही निर्णय हो सकेगा। नींद में तुम मंदिर जाओ कि मस्जिद, सब बेकार। कुरान पढ़ो कि वेद, सब व्यर्थ।

नींद में तुम बुद्धपुरुषों को सुनते रहो, कुछ हल न होगा। तुम्हें जागना पड़ेगा। क्योंकि जागकर ही तुम सुनोगे तभी तुम समझ सकोगे। सुन लेना समझने के लिए काफी नहीं है। नींद अगर भीतर घिरी हो, तो तुम्हारे कान सुनते भी रहेंगे और तुम ये मानते भी रहोगे कि मैं सुन रहा हूँ, फिर भी तुमने कुछ सुना नहीं। तुम बहरे के बहरे रह गये। अंधे के अंधे रहे। तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति उससे पैदा न हो सकेगी।

'कौन इस पृथ्वी और देवताओ सहित इस यमलोक को जीतेगा? कौन कुशल पुरुष फूल की भाँति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा?'

'शिष्य — शैक्ष — इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा। कुशल शैक्ष — कुशल शिष्य — फूल की भाँति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा।'

शिष्य को समझना होगा। बुद्ध का जोर शिष्य पर उतना ही है, जितना नानक का था। इसलिए नानक का पूरा धर्म ही 'सिक्ख धर्म' कहलाया। शिष्य का धर्म। सिक्ख यानी शिष्य। सारा धर्म ही सीखने की कला है। तुम सोचते भी हो बहुत बार कि तुम सीखने को तैयार हो, लेकिन मुश्किल से कभी मुझे कोई व्यक्ति मिलता है जो सीखने को तैयार है। क्योंकि सीखने की शर्तें ही पूरी नहीं हो पाती।

सीखने की पहली शर्त तो ये समझना है कि तुम जानते नहीं हो। अगर तुम्हें जरा सी भी भ्रांति है कि तुम जानते ही हो, तो तुम सीखोगे कैसे? सीखने के लिए जानना जरूरी है कि मैं अज्ञानी हूँ। ज्ञान को निमंत्रण देने के लिए ये बुनियादी शर्त है। इसके पहले कि तुम पुकारो ज्ञान को, इसके पहले कि तुम अपना द्वार खोलो उसके लिए, तुम्हें बड़ी गहन विनम्रता में ये स्वीकार कर लेना होगा कि मैं नही जानता हूं। इसलिए पंडित शिष्य नही हो पाते। और दुनिया जितनी ही जानकार होती जाती है उतना ही शिष्यत्व खोता चला जाता है।

पंडित जान ही नहीं सकता। ये बड़ी विरोधाभासी बात मालूम पड़ती है। क्योंकि हम तो सोचते है, पंडित जानता है। पंडित अकेला है जो नहीं जान सकता। अज्ञानी जान ले भला, पंडित के जानने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि पंडित तो मानके बैठा है कि मैं जानता ही हूँ। उसे वेद कंठस्थ हैं। उसे उपनिषदों के वचन याद हैं। उसे बुद्धपुरुषों की गाथाएँ शब्दशः स्मरण में हैं। उसकी स्मृति भरी-पूरी है। और उसे भरोसा है कि मैं जानता हूँ। वो कभी भी जान न पाएगा। क्योंकि जगह चाहिए। तुम पहले से भरे हो। खाली होना जरूरी है।

कौन है शिष्य?

जिसे ये बात समझ में आ गयी कि अबतक मैंने कुछ जाना नहीं। तुम्हें भी कभी-कभी ये बात समझ में आती है, लेकिन तुम्हें इस तरह समझ में आती है कि सब न

जाना हो, थोड़ा तो मैंने जाना है । वहीं धोखा हो जाता है । एक बात तुम्हें कह दूं, या तो जानना पूरा होता है, या बिलकुल नहीं होता । थोड़ा-थोड़ा नहीं होता । या तो तुम जीते हो, या मरते हो । या तो मरे, या जिंदा । तुम ऐसा नहीं होते कि थोड़े-थोड़े जिंदा । या तो तुम जागे, या सोए । थोड़े-थोड़े जागे, थोड़े-थोड़े सोए, ऐसा होता ही नहीं । अगर तुम थोड़े भी जागे हो, तो तुम पूरे जागे हो । जानने के खंड नहीं किये जा सकते । ज्ञान के खंड नहीं किये जा सकते । यहीं पांडित्य और बुद्धत्व का फर्क है । पांडित्य के खंड किये जा सकते हैं । तुम पहली परीक्षा पास कर ली, दूसरी कर ली, तीसरी कर ली, बड़े पंडित होते चले गये । एक शास्त्र जाना, दूसरा जाना, तीसरा जाना, मात्रा बढ़ती चली गयी । पांडित्य मात्रा में है, 'क्वांटिटी' में है । बुद्धत्व 'क्वालिटी' में है । मात्रा में नहीं, गुण में । बुद्धत्व होने का एक ढंग है । मात्र जानकारी की संख्या नहीं, जागने की एक प्रक्रिया ।

इसे थोड़ा सोचो ।

सुबह जब तुम जाग जाते हो, क्या तुम यह कह सकते हो अभी मैं थोड़ा-थोड़ा जागा हूं । कौन कहेगा ? इतना जानने के लिए भी कि मैं थोड़ा-थोड़ा जागा हूं, पूरा जागना जरूरी है । जागने की मात्राएँ नही होतीं । रात जब तुम सो जाते हो, क्या तुम कह सकते हो कि मैं थोड़ा-थोड़ा सोया हूं ? अगर तुम कहने को भी मौजूद हो, तो तुम सोए नहीं, तुम जागे हो ।

न तो जागना बाँटा जा सकता है, न सोना बाँटा जा सकता है । न जीवन बाँटा जा सकता, न मौत बाँटी जा सकती । पांडित्य बाँटा जा सकता है । जो बाँटा जा सकता है, उसे तुम ज्ञान मत समझना । जो नहीं बाँटा जा सकता, जो उतरता है पूरा उतरता है, नहीं उतरता बिलकुल नहीं उतरता, उसे ही तुम ज्ञान समझना ।

मेरे पास लोग आते हैं, उनको अगर मैं कहता हूं कि पहले तुम ये जानने का भाव छोड़ दो । वो कहते हैं कि इसीलिए तो हम आपके पास आए हैं । जो थोड़ा बहुत जानते हैं, उससे कुछ सार नहीं हुआ; और जानने की इच्छा है । उनको वो जो खयाल है थोड़ा बहुत जानने का, वही बाधा बनेगा । वो उन्हें शिष्य न बनने देगा । वो विद्यार्थी बन जाएँगे, शिष्य न बन सकेंगे ।

विद्यार्थी वो है जो थोड़ा जानता है, थोड़ा और जानने को उत्सुक है । विद्यार्थी यानी जिज्ञासु । जानकारी की खोज में निकला । शिष्य विद्यार्थी नहीं है, सत्यार्थी है । शिष्य जानकारी की खोज में नहीं निकला है, जानने की कला की खोज में निकला है । शिष्य का ध्यान जो जाना जाता है उसपर नहीं है, जो जानेगा उसपर है । विद्यार्थी 'आब्जेक्टिव' है । बाहर उसकी नजर है । शिष्य 'सब्जेक्टिव' है । भीतर उसकी नजर है । वो ये कह रहा है कि पहले तो मैं जाग जाऊँ, फिर जानना तो गौण

बात है। जाग गया तो जहां मेरी नजर पड़ेगी, वहीं ज्ञान पैदा हो जाएगा। जहां देखूंगा, वहीं झरने उपलब्ध हो जाएंगे ज्ञान के। पर मेरे भीतर जागना हो जाए।

विद्यार्थी सोया है और संग्रह कर रहा है। सोए लोग ही संग्रह करते हैं, जागों ने संग्रह नहीं किया। न धन का, न ज्ञान का, न यश का, न पद का। सोया आदमी संग्रह करता है। सोया आदमी मात्रा की भाषा में सोचता है।

कौन जीतेगा ? बड़ा अजीब उत्तर देते हैं बुद्ध : शिष्य जीतेगा। कोई योद्धा नहीं। और शिष्य के होने की पहली शर्त यह है कि जिसने अपनी हार स्वीकार कर ली हो। जिसने ये कहा हो कि मैं अब तक जान नहीं पाया। चला बहुत, पहुँचा नहीं। सोचा बहुत, समझा नहीं। सुना बहुत, सुन नहीं पाया। देखा बहुत, भ्रांति रही, क्योंकि देखने वाला सोया था। जो हार गया है आकर, जिसने गुरु के चरणों पे सिर रख दिया और कहा कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ, जिसने अपने सिर के साथ अपनी जानकारी भी सब गुरु के चरणों पर रख दी, वही सीखने को कुशल हुआ, सीखने में सफल हुआ। सीखने की क्षमता उसे उपलब्ध हुई। जिसने जाना कि मैं नहीं जानता हूँ, वही शिष्य है। कठिन है। क्योंकि अहंकार कहता है कि मैं और नहीं जानता ! पूरा न जानता होऊँ, थोड़ा तो जानता हूँ। सब न जान लिया हो, पर बहुत जान लिया है।

बुद्ध के पास एक महापंडित आया, सारीपुत्र। वो बड़ा ज्ञानी था। उसे सारे वेद कंठस्थ थे। उसके खुद पांच हजार शिष्य थे — शिष्य नहीं, विद्यार्थी कहने चाहिए। लेकिन वो समझता था कि शिष्य है, क्योंकि वो समझता था मैं ज्ञानी हूँ।

जब वो बुद्ध के पास आया और उसने बहुत से सवाल उठाए, तो बुद्ध ने कहा ये सब सवाल पांडित्य के हैं। ये सवाल शास्त्रों से पैदा हुए हैं। ये तेरे भीतर नहीं पैदा हो रहे है, सारीपुत्र ! ये सवाल तेरे नहीं हैं, ये सवाल उधार है। तूने किताबे पढ़ी हैं। किताबों से सवाल पैदा हो गये हैं। अगर ये किताबें तूने न पढी होती, तो ये सवाल पैदा न होते। अगर तूने दूसरी किताबें पढ़ी होतीं, तो दूसरे सवाल पैदा होते। ये सवाल तेरी जिंदगी के भीतर से नहीं आते, ये तेरे अंतस्तल से नहीं उठे, ये अस्तित्वगत नहीं, बौद्धिक हैं।

सारीपुत्र अगर सिर्फ पंडित ही होता, तो नाराज होके चला गया होता। उसने आँखें झुकायीं, उसने सोचा। उसने देखा कि बुद्ध जो कह रहे हैं उसमें तथ्य कितना है ? और तथ्य पाया। उसने सिर उनके चरणों पे रख दिया। उसने कहा कि मैं अपने सवाल वापिस ले लेता हूँ। ठीक कहते हैं आप, ये सवाल मेरे नहीं है। अब तक मैं इन्हें अपना मानता रहा। और जब सवाल ही अपना न हो, तो जवाब अपना कैसे

मिलेगा। जब सवाल ही अभी अपने अंतरतम से नहीं उठा है, तो जवाब अंतरतम तक कैसे जाएगा?

एक तो जिज्ञासा है जो बुद्धि की खुजलाहट जैसी है। कुतूहल जैसी है। पूछ लिया, चलते-चलते। कोई जीवन दाँव पे नहीं लगा है। और एक जिज्ञासा है जिसको हमने मुमुक्षा कहा है। जीवन दाँव पर लगा है। ये कोई सवाल ऐसा ही नहीं है, कि चलते-चलते पूछ लिया। इसके उत्तर पर निर्भर करेगा जीवन का सारा ढंग। इसके उत्तर पर निर्भर करेगा कि मैं जीऊँ या मरूँ? इसके उत्तर पर निर्भर करेगा कि जीवन जीने योग्य है या व्यर्थ है? जहाँ सब दाँव पर लगा है।

सारीपुत्र ने कहा, अब मैं तभी पूछूंगा जब मेरे अंतरतम का प्रश्न आएगा। मुझे शास्त्रों से मुक्त करें, भगवान्! बुद्ध ने कहा, तू समझ गया, तू मुक्त हो गया। शास्त्र थोड़ी, तुझे पकड़े हुए हैं, तूने ही पकड़ा था। तू समझ गया, तूने छोड़ दिया। सारीपुत्र को बुद्ध ने शिष्य की तरह स्वीकार कर लिया।

कहते हैं सारीपुत्र ने फिर कभी सवाल न पूछे, वर्षों तक। और बुद्ध ने एक दिन सारीपुत्र को पूछा कि तू पूछता नहीं। तू जब आया था, बड़े सवाल लेकर आया था। वो सवाल तो तुझसे छीन लिए गये थे। तूने कहा था, अब जब मेरा सवाल उठेगा, तब पूछूंगा। तूने पूछा नहीं। सारीपुत्र ने कहा, अचंभा है। पराये सवाल थे, बहुत थे। उत्तर भी बहुत मिल गये थे, फिर भी उत्तर मिलता नही था। क्योंकि अपना सवाल न था। प्राणों की कोई हूक न थी, कोई प्यास न थी। जैसे बिन प्यासे आदमी को पानी पिलाए जाओ। उल्टी हो सकती है, तृप्ति थोड़ी, होगी। फिर उनको छोड़ दिया तो बड़ी हैरानी हुई। प्रश्न उठा ही नहीं और उत्तर मिल गया।

जिसने अपने भीतर उतरने की थोड़ी सी भी शुरुआत की, उसके प्रश्न खोते चले जाते है। अंतरतम में खड़े होकर, जहाँ से प्रश्न उठना चाहिए वहीं से जवाब उठ आता है। हर अस्तित्वगत प्रश्न अपना उत्तर अपने भीतर लिए है। प्रश्न तो बीज है। उसी बीज से फूटता है अंकुर, उत्तर प्रगट हो जाते हैं। तुम्हें तुम्हारे जीवन की समस्या मालूम पड़ती है समस्या की तरह, क्योंकि वो समस्या भी तुमने उधार ही बना ली है। किसी और ने तुमसे कह दिया है। और किसी और की मानके तुम चल भी पड़े हो। किसी और ने तुम्हें समझा दिया है कि तुम बहुत प्यासे हो, पानी को खोजो।

मेरे पास लोग आते हैं, वो कहते हैं ईश्वर को खोजना है। मैं उनकी तरफ देखता हूँ — किसलिए खोजना है, ईश्वर ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? जरूरी खोजना है? निश्चित ही खोजना है? जीवन को दाँव पे लगाने की तैयारी? वो कहते हैं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं। अगर मिल जाए — वैसे तो हमें पक्का भी नहीं कि है भी या नहीं। मैं उनसे पूछता हूँ, तुम्हें ठीक-ठीक पक्का है कि तुम खोजने ही निकले हो?

वो कहते हैं, वो भी कुछ साफ नहीं, धुंधला-धुंधला है। किसलिए खोज रहे हो ईश्वर को? सुन लिया है शब्द। शब्द पकड़ा गया मन में। कोई और लोग भी खोज रहे हैं, तुम भी खोजने निकल पड़े हो।

नहीं, ऐसे खोज नहीं होती सत्य की। शिष्य होने से खोज होती है। पहले तो उधार ज्ञान छोड़ देना जरूरी है। उधार ज्ञान छोड़ते ही तुम ऐसे शांत और पवित्र हो जाते हो, क्वाँरापन उतर आता है, सारी गंदगी हट जाती है।

'कौन जीतेगा? कौन कुशल पुरुष फूल की भाँति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा?'

'शिष्य इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा।' मृत्यु को भी जीत लेगा। लेकिन जीतने की कला है, जानने की भ्रांति को छोड़ देना। पांडित्य को छोड़ते ही जीवन अपने रंग खोलने शुरू कर देता है। पांडित्य जैसे आँखों से बँधे पत्थर हैं, जिनकी वजह से पलकें खुल नहीं पातीं, बोझिल हो गयी हैं। पांडित्य के हटते ही तुम फिर छोटे बच्चे की भाँति हो जाते हो।

शिष्य यानी फिर से तुम्हारा बालपन लौटा। जैसे छोटा बच्चा देखता है जगत को, बिना जानकारी के। गुलाब के फूल को छोटा बच्चा भी देखता है, तुम भी देखते हो। तुम जब देखते हो तब तुम्हारे भीतर एक शब्द बनता है — गुलाब का फूल। या एक शब्द बनता है कि — हाँ, सुदर है। या तुलना उठती है कि — पहले देखे थे फूल, उतना ही सुंदर है, ज्यादा है, या कम है। बात खतम हो जाती है। थोड़े से शब्दों के शोरगुल में जीवित फूल खो जाता है।

एक छोटा बच्चा भी गुलाब के फूल को देखता है। अभी उसे पता ही नहीं कि ये गुलाब है, कि कमल है, कि चमेली, कि जूही। अभी नाम उसे याद नही। अभी ज्ञान की उसपर कृपा नहीं हुई। अभी शिक्षकों ने उसे बिगाड़ा नहीं। अभी सौभाग्यशाली है, शिक्षा का जहर उसपे गिरा नही। अभी वो सिर्फ देखता है। अभी तुलना भी नहीं उठती। क्योंकि तुलना के लिए भी नाम सीख लेना जरूरी है। अतीत में उसने फूल देखे होंगे, उनको फूल भी नहीं कह सकता। रंगों का एक जागता हुआ अनुभव था। रंग भी नहीं कह सकता। शब्द तो उसके पास नहीं है। सीधा फूल को देखता है, बीच में कोई दीवाल खड़ी नहीं होती, कोई शब्द जाल नही बनता, कोई तुलना नहीं उठती। सीधे फूल से हृदय से हृदय का मिलन होता है। फूल के साथ एक तादात्म्य बनता है। फूल में डूबता है, फूल उसमें डूबता है। छोटा बच्चा एक डुबकी लगा लेता है फूल के अस्तित्व में। फूल अपने सारे सौंदर्य को उसके चारों तरफ बिखरा देता है। अपनी सारी सुगंध लुटा देता है। छोटे बच्चे का जो अनुभव है गुलाब के फूल के पास, वो तुम लाख तरसो, तबतक तुम्हें न हो सकेगा जबतक तुम फिर से बच्चे न हो जाओ।

जीसस ने कहा है, मेरे प्रभु के राज्य के वे ही अधिकारी होंगे जो छोटे बच्चों की भाँति हैं। छोटे-छोटे बच्चों की भाँति सरल हैं।

शिष्य का यही अर्थ है कि जो फिर से सीखने को तैयार है। जो कहता है अब तक जो सीखा था, बेकार पाया। अब मैं फिर से द्वार पर खड़ा हूँ अपने हृदय की झोली को भरने को। अब कूड़ा-करकट से नहीं भरना है। अब जानकारी से नही भरना है। अब होश को माँगने आया हूँ।

विद्यार्थी ज्ञान माँगने आता है, शिष्य होश माँगने आता है। विद्यार्थी कहता है, और जानकारी चाहिए। शिष्य कहता है, जानकारी को क्या करेंगे, अभी जानने-वाला ही मौजूद नहीं, जाननेवाला चाहिए।

'कुशल शिष्य फूल की भाँति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा।'

और जिसने जीवन का थोड़ा सा भी स्वाद लेना शुरू कर दिया, जिसके भीतर होश की किरण पैदा हुई, होश का चिराग जला, अब उसे दिखायी पड़ने लगेगा—कहाँ काँटे हैं, कहाँ फूल हैं। तुम्हें लोग समझाते हैं, बुरा काम मत करो। तुम्हें लोग समझाते हैं, पाप मत करो। तुम्हें लोग समझाते हैं, अनीति मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो। मैं तुम्हें नहीं समझाता। मैं तुम्हें समझाता हूँ, चिराग को जलाओ। अन्यथा पहचानेगा कौन कि क्या अनीति है, क्या नीति है? कौन जानेगा—कहाँ काँटे हैं, कहाँ फूल हैं? तुम अभी मौजूद ही नहीं हो। रास्ता कहाँ है, भटकाव कहाँ है, तुम कैसे जानोगे? तुम अगर दूसरों की मानके चलते भी रहे तो तुम ऐसे ही होओगे, जैसे अंधा अंधों को चलाता रहे। न उन्हें पता है, न उनके आगे जो अंधे खड़े हैं उन्हें पता है। अंधों की एक कतार लगी है। वेद और शास्त्रों के ज्ञाताओं की कतार लगी है। और अंधे एक दूसरे को पकड़े हुए चले जा रहे हैं।

किस बात को तुम कहते हो नीति? किस बात को तुम कहते हो धर्म? कैसे तुम जानते हो? तुम्हारे पास कसौटी क्या है? तुम कैसे पहचानते हो क्या सोना है क्या पीतल है? दोनों पीले दिखायी पड़ते हैं। हाँ, दूसरे कहते है ये सोना है, तो मान लेते हो। दूसरों की कबतक मानते रहोगे? दूसरों की मान-मान के तो ऐसी गति हुई है, ऐसी दुर्गति हुई है।

धर्म कहता है, दूसरों की नहीं माननी है, अपने भीतर उसको जगाना है, जिसके द्वारा जानना शुरू हो जाता है और मानने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। चिराग जलाओ, ताकि तुम्हें खुद ही दिखायी पड़ने लगे — कहाँ गलत है, कहाँ सही है।

मैंने सुना है, दो युवक एक फकीर के पास आए। उसमें से एक बहुत दुखी था। बड़ा बेचैन था। दूसरा ऐसा कुछ खास बेचैन नहीं था, प्रतीत होता था मित्र के साथ चला आया है। पहले ने कहा, हम बड़े परेशान हैं। हमसे बड़े भयंकार पाप हो गये

हैं, उनसे छुटकारे का और प्रायश्चित्त का कोई मार्ग बताओ। उस फकीर ने पहले से पूछा कि तू अपने पापों के संबंध में कुछ बोल। तो उसने कहा, ज्यादा मैंने पाप नहीं किये, मगर एक बहुत जघन्य अपराध किया है। और उसका बोझ मेरी छाती पर एक चट्टान की तरह रखा है। दया करो, किसी तरह यह बोझ मेरा उतर जाए। मैं पछता रहा हूँ, भूल हो गयी। लेकिन अब क्या करूँ, जो हो गया हो गया। वो रोने लगा, आँख से उसकी आँसू गिरने लगे।

उस फकीर ने कहा दूसरे से कि तेरा क्या पाप है? दूसरे ने मुस्कुराते हुए कहा, ऐसा कुछ खास नहीं। कोई बड़े पाप मैंने नहीं किये हैं। ऐसे ही छोटे-छोटे, जिनका कोई हिसाब भी नहीं, और कोई उनसे मैं दबा भी नहीं जा रहा हूँ। मित्र आता था, इसलिए मैं भी साथ चला आया। और अगर इसके बड़ों से छुटकारा मिल सकता है, तो मेरे छोटे-छोटे पापों का भी आशीर्वाद दो कि छुटकारा हो जाए।

उस फकीर ने कहा ऐसा करो, तुम दोनों बाहर जाओ। और उस पहले युवक से कहा कि तू अपने पाप की दृष्टि से उतने ही वजन का एक पत्थर उठा ला। और दूसरे से कहा कि तू भी, तूने जो छोटे-छोटे पाप किये हैं कंकड़-पत्थर उसी हिसाब की संख्या से भर ला। पहला तो एक बड़ी चट्टान उठाके लाया। पसीने से तरबतर हो गया, उसे लाना भी मुश्किल था, हाँफने लगा। दूसरा झोली भर लाया, छोटे-छोटे कंकड-पत्थर बीन के।

जब वे अंदर आ गये, उस फकीर ने कहा अब तुम एक काम करो। जिस जगह से तुम ये बडा पत्थर उठा लाए हो, वहीं रख आओ। और उस दूसरे से भी कहा कि तू ये जो छोटे-छोटे ककड-पत्थर बीन लाया, जहाँ-जहाँ से उठाए हैं वहीं-वहीं वापिस रख आ। उसने कहा, ये तो झंझट हो गयी। जिसने बडा पाप किया है ये तो खैर रख आएगा, मैं कहाँ रखने जाऊँगा? अब तो याद भी करना मुश्किल है कि कौन सा पत्थर मैंने कहाँ से उठाया था। सैकड़ों कंकड़-पत्थर बीन लाया हूँ।

उस फकीर ने कहा पाप बड़ा भी हो, लेकिन अगर उसकी पीड़ा हो, तो प्रायश्चित्त का उपाय है। पाप छोटा भी हो और उसकी पीड़ा न हो, तो प्रायश्चित्त का उपाय नहीं है। और जो तुम्हारे पत्थर के संबंध में तुम्हारी स्थिति है, वही तुम्हारे पापों के संबंध में भी स्थिति है। जिसका दिया जला हुआ है, वो न तो बड़े करता है, न छोटे करता है। जिनके दिये जले हुए नहीं हैं, वो बड़े करने से भला डरते हों, छोटे-छोटे तो मजे से करते रहते हैं। छोटे-छोटे का तो पता ही कहाँ चलता है! तुमने किसी आदमी से जरा सा झूठ बोल दिया, कई बार तो तुम्हें फिर जीवन में कभी याद भी नहीं आता उसका। लेकिन वो सब इकट्ठा होता चला जाता है। छोटे-छोटे पत्थर इकट्ठे होके भी बड़ी-बड़ी चट्टानों से ज्यादा बोझिल हो सकते है।

असली सवाल छोटे और बड़े का नहीं है। और जिन्होंने जागके देखा है, उनका तो कहना ये है कि पाप छोटे-बड़े होते ही नहीं। पाप यानी पाप। छोटा-बड़ा कैसे ? एक आदमी ने दो पैसे की चोरी की। क्या छोटा पाप है ? और एक आदमी ने दो लाख की चोरी की। क्या बड़ा पाप है ?

थोड़ा सोचो। चोरी चोरी है। दो पैसे की भी उतनी ही चोरी है, जितनी दो लाख की। चोर होना बराबर है। दो लाख से ज्यादा का नहीं होता, दो पैसे से कम का नही होता। चोर होने की भावदशा बस काफी है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। दो लाख और दो पैसे का भेद बाजार में है। लेकिन दो लाख और दो पैसे की चोरी का भेद धर्म में नहीं हो सकता। चोरी यानी चोरी। लेकिन ये तो उसे दिखायी पड़ेगा जिसका भीतर का दिया जल रहा है। फिर पाप पाप है। बड़ा-छोटा नहीं है। पुण्य पुण्य है। छोटा-बड़ा नही है। लेकिन जबतक तुम दूसरों के पीछे चल रहे हो, जबतक तुम जानकारी को ही जीवन मानके चल रहे हो, और पांडित्य से तुम्हारे जीवन को मार्गदर्शन मिलता है, तबतक तुम ऐसे ही भटकते रहोगे।

शिष्य वही है जिसने अपने को जगाने की तैयारी शुरू की। शिष्य वही है जिसके लिए पांडित्य व्यर्थ दिखायी पड़ गया और अब जो बुद्धत्व को खोजने निकला है। और जैसे ही तुम्हारे जीवन में ये क्रांति घटित होती है, शिष्यत्व की संभावना बढ़ती है, बड़े अंतर पड़ने शुरू हो जाते हैं। तब तुम और ही ढंग से उठते हो। तब तुम और ही ढग से सोचते हो। तब जीवन की सारी प्रक्रियाओं का एक ही केंद्र हो जाता है कि कैसे जागूँ ? कैसे ये नींद टूटे ? कैसे ये कटघरा पुनरुक्ति का मिटे और मैं बाहर आ जाऊँ ? तब तुम्हारा सारा उपक्रम एक ही दिशा में समर्पित हो जाता है।

शिष्य का जीवन एक समर्पित जीवन है। उसके जीवन में एक ही अभीप्सा है, सब द्वारों पे वो एक ही उपलब्धि के लिए चेष्टा करता है, द्वार खटखटाता है कि मैं कैसे जाग जाऊँ ? और जिसके जीवन में ऐसी अभीप्सा पैदा हो जाती है कि मैं कैसे जाग जाऊँ, उसे कौन रोक सकेगा जागने से ? उसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती। वो जाग ही जाएगा। आज चाहे जागने की आकांक्षा बड़ी मद्धिम मालूम पड़ती हो, लेकिन बूंद-बूंद गिरके जैसे चट्टान टूट जाती है, ऐसी बूंद-बूंद आकांक्षा जागने की तंद्रा को तोड़ देती है। तंद्रा कितनी ही प्राचीन हो और कितनी ही मजबूत हो, इससे कोई भेद नहीं पड़ता।

'इस शरीर को फेन के समान जान; इसकी मरीचिका के समान प्रकृति को पहचान; मार के पुष्प-जाल को काट; यमराज की दृष्टि से बचकर आगे बढ़।'

तुम जहां बैठे हो वहां कुछ पाया तो नहीं, फिर किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो ? तुम जहां बैठे हो वहां कुछ भी तो अनुभव नहीं हुआ, अब तुम राह क्या देख रहे हो ?

न कोई वादा न कोई यकीं न कोई उम्मीद
मगर हमें तो तेरा इंतजार करना था

न तो किसीने कोई वादा किया है वहाँ मिलने का, न तुम्हें यकीन है कि कोई मिलने वाला है, न तुम्हें कोई उम्मीद है, क्योंकि जीवन भर वहीं बैठ-बैठ के तुम थक गये हो — नाउम्मीद हो गये हो —— लेकिन फिर भी इंतजार किये जा रहे हो। कितनी बार तुमने क्रोध किया है, कितनी बार लोभ किया है, कितनी बार मोह किया है, कितनी बार राग किया है, पाया कुछ ? गाँठ गठियाया कुछ ? मुट्ठी बाँधे बैठे हो, मुट्ठी के भीतर कोई संपदा इकट्ठी हुई ?

न कोई वादा न कोई यकीं न कोई उम्मीद
मगर हमें तो तेरा इंतजार करना था

कैसी जिद पकड के बैठ गये हो इंतजार करने की। किसका इंतजार कर रहे हो? इस राह से कोई गुजरता ही नहीं। तुम जिस राह पर बैठे हो, वो किसीकी भी रहगुजर नहीं।

बुद्ध कहते हैं, 'इस जीवन की मृगमरीचिका के समान प्रकृति को पहचान।' प्यासे को मरुस्थल में भी पानी दिखायी पड़ जाता है। वो मृगमरीचिका है। है नहीं वहाँ कही पानी। प्यास की कल्पना से ही दिखायी पड़ जाता है। प्यास बहुत सघन हो, तो जहाँ नहीं है वहाँ भी तुम आरोपित कर लेते हो। तुमने भी इसे अनुभव किया होगा। तुम्हारे भीतर जो चीज बहुत ज्यादा सघन होकर पीड़ा दे रही है, जिसे तुम खोज रहे हो, वो दिखायी पड़ने लगती है। कभी तुम किसीकी राह देख रहे हो घर के अंदर बैठे, कोई प्रियजन आ रहा है, कोई मित्र आ रहा है, प्रेयसी या प्रेमी आ रहा है, पत्ता भी खड़कता है तो ऐसा लगता है कि उसके पैर की आवाज सुनायी पड़ गयी। फिर उठके देखते हो। पोस्टमैन द्वार पर आके खड़ा हो जाता है, तो समझते हो कि प्रेमी आ गया। प्रसन्न होकर, धड़कती छाती से द्वार खोलते हो। कोई नहीं भी आता, न पत्ता खड़कता है, न पोस्टमैन आता है, न द्वार से निकलता है, तो तुम कल्पना करने लगते हो कि शायद आवाज सुनी, शायद किसीने द्वार खटखटाया, या कोई पगध्वनि सुनायी पड़ी सीढ़ियों पर चढ़ती हुई। भागकर पहुँचते हो, कोई भी नहीं है। 'न कोई वादा न कोई यकीं न कोई उम्मीद'।

अगर तुम कल्पना किये चले जाते हो। मृगमरीचिका का अर्थ है, जहाँ नहीं है वहाँ देख लेना। और जो व्यक्ति वहाँ देख रहा हो जहाँ नहीं है, वो वहाँ देखने से वंचित रह जाएगा जहाँ है। तो मृगमरीचिका जीवन के आत्यंतिक सत्य को देखने में बाधा बन जाती है। तुम दौड़ते रहते हो उस तरफ जहाँ नहीं है। और तुम उस तरफ देखते ही नहीं लौटके जहाँ है।

जिसे तुम खोज रहे हो, वो तुम्हारे भीतर छुपा है। जिसे तुम पाने निकले हो, उसे तुमने कभी खोया ही नहीं। उसे तुम लेकर ही आए थे। परमात्मा किसीको दरिद्र भेजता ही नहीं। सम्राट के अलावा वो किसीको कुछ और बनाता ही नहीं। फिर भिखमंगे तुम बन जाते हो, वो तुम्हारी ही कुशलता है। वो तुम्हारी ही कला है। तुम्हारी मौज। परमात्मा तुम्हें इतनी स्वतंत्रता देता है कि तुम अगर भिखमंगे भी होना चाहो तो उसमें भी बाधा नहीं डालता।

'इस शरीर को फेन के समान जान'।

शिष्य को कह रहे है ये बात बुद्ध, विद्यार्थी को नहीं। विद्यार्थी से बुद्धों का कोई मिलना ही नहीं होता। केवल शिष्यों से। जो वस्तुतः आतुर हैं, और जिनका जीवन एक लपट बन गया है — एक खोज, और जो सब कुर्बान करने को राजी हैं। जिन्हें जीवन में ऐसी कोई बात दिखायी ही नही पड़ती जिसके लिए रुके रहने की कोई जरूरत हो। जो अज्ञात की तरफ जाने को तत्पर हैं। जो ज्ञान को छोड़कर अज्ञान को स्वीकार किये हैं, केवल वे ही ज्ञात से मुक्त होते हैं और अज्ञात में उनका प्रवेश होता है। उनसे ही बुद्ध कह रहे हैं, 'इस शरीर को फेन के समान जान'।

समुद्र के तट पर तुमने फेन को इकट्ठे होते देखा है। कितना सुंदर मालूम होता है! दूर से अगर देखा हो तो बड़ा आकर्षक लगता है। कभी सूर्य की किरणें उससे गुजरती हों तो इंद्रधनुष फैल जाते हैं फेन में। पास आओ, पानी के बबूले हैं। वो शुभ्रता, वो चाँद जैसी सफेदी, या चमेली के फूल जैसी जो बाढ़ आ गयी थी, वो कुछ भी नही मालूम पड़ती। फिर हाथ में, मुट्ठी में लेके फेन को देखा है? बबूले भी खो जाते हैं।

जिंदगी आदमी की बस ऐसी ही है। फेन की भाँति। दूर से देखोगे, बड़ी सुंदर; पास आओगे, सब खो जाता है। दूर-दूर रहोगे, बड़े सुंदर इंद्रधनुष दिखायी पड़ते रहेंगे; पास आओगे, हाथ में कुछ भी नहीं आता।

'सुनते हैं चमन को माली ने फूलों का कफन पहनाया है'

दूर से फूल दिखायी पड़ते हैं, पास आओ कफन हो जाता है। जिसको तुम जिंदगी कहते हो दूर से जिंदगी मालूम होती है, पास आओ, मौत हो जाती है।

'सुनते हैं चमन को माली ने फूलों का कफन पहनाया है'

चारों तरफ जहाँ-जहाँ तुम्हें फूल दिखायी पड़ें, जरा गौर से पास जाना, हर फूल में छिपा हुआ काँटा तुम पाओगे। हर फूल चुभेगा। हाँ, दूर से ही देखते रहो तो भ्रांति बनी रहती है। पास जाने से भ्रांतियाँ टूट जाती हैं। दूर के ढोल सुहावने मालूम होते हैं। दूर से सभी चीजें सुंदर मालूम होती हैं। तुमने कभी ख्याल किया, दिनमें चीजें उतनी सुंदर नही मालूम पड़तीं जितनी रात की चाँदनी में मालूम पड़ती हैं।

चाँदनी एक तिलिस्म फैला देती है, क्योंकि चाँदनी एक धुँधलका दे देती है। वैसे ही आँखें नहीं हैं, वैसे ही अंधापन है, चाँदनी और आँखों को धुएँ से भर देती है। जो चीजें दिन में साधारण दिखायी पड़ती हैं, वे भी रात में सुंदर होके दिखायी पड़ने लगती हैं। जितना तुम्हारी आँखों में धुंद होता है, उतना ही जीवन का फेन बहुमूल्य मालूम होने लगता है। हीरे-जवाहरात दिखायी पड़ने लगते हैं।

लो आओ मैं बताऊँ तिलिस्मे-जहाँ का राज
जो कुछ है सब खयाल की मुट्ठी में बंद है

जितने दूर रहो, उतना ही वस्तुओं से संपर्क नहीं होता, सिर्फ खयालों से संपर्क होता है। जितने पास आओ, जीवन का यथार्थ दिखायी पड़ता है, खयाल टूटने लगते हैं। और जिसने भी जीवन का यथार्थ देखा, वो घबडा गया। वो भयभीत हो गया। क्योंकि वहाँ जीवन के घर में छिपी मौत पायी, फूल में छिपे काँटे पाए। सुंदर सपनों के पीछे सिवाय पत्थरों के कुछ भी नहीं था।

पानी की झाग थी, कि मरुस्थल में देखे गये जल के झरने थे। दूर से बडे मन-मोहक थे, पास आके थे ही नहीं। और ये सभी को अनुभव होता है, लेकिन फिर भी तुम न मालूम किसका इंतजार कर रहे हो? न किसीने वादा किया है, न तुम्हे भरोसा है कि कोई आएगा -- उम्मीद भी नहीं है -- मगर शायद तुम सोचते हो, और करें भी क्या? अगर इंतजार न करें, तो और करें भी क्या?

बुद्धपुरुष तुम्हे बुलाते हैं कि तुम गलत राह पर बैठे हो और जिसकी तुम प्रतीक्षा करते हो वो वहाँ से गुजरता ही नहीं। और भी राहें हैं। प्रतीक्षा करने के लिए और भी प्रतीक्षालय हैं। अगर प्रतीक्षा ही करनी है तो थोडा भीतर की तरफ चलो। जितने तुम बाहर गये हो उतने ही तुमने झाग और फेन के बुलबुले पाए हैं। थोडे भीतर की तरफ आओ और तुम पाओगे उतना ही यथार्थ प्रगट होने लगा। जितने तुम भीतर आओगे उतना सत्य, जितने तुम बाहर जाओगे उतना असत्य। जिस दिन तुम बिलकुल अपने केंद्र पर खड़े हो जाओगे, उस दिन सत्य अपने पूरे राज खोल देता है। उस दिन सारे पर्दे, सारे घूंघट उठ जाते हैं।

'इस शरीर को फेन के समान जान; और इसकी मरीचिका के समान प्रकृति को पहचान; मार के पुष्पजाल को काट।'

बुद्ध कहते हैं, वासना ने बड़े फूलों का जाल फैलाया है। 'मार के पुष्पजाल को काट'।

'सुनते हैं चमन को माली ने फूलों का कफन पहनाया है'

मार का पुष्पजाल। उन फूलों के पीछे कुछ भी नहीं है। धोखे की टट्टी है। पीछे कुछ भी नहीं है। सारा सौंदर्य पर्दे में है। खाली घूंघट है, भीतर कोई चेहरा

नहीं है। लेकिन घूंघट को जबतक तुम खोलोगे न और भीतर की रिक्तता का पता न चलेगा, तबतक तुम जागोगे न। कई बार तुमने घूंघट भी खोल लिए हैं। एक घूंघट के भीतर तुमने कोई न पाया, तो भी तुम्हें समझ नहीं आती। तब तुम दूसरा घूंघट खोलने में लग जाते हो। एक मुट्ठी झाग झाग सिद्ध हो गयी तो मन कहे चला जाता है, सारी ही झाग थोड़ी' झाग होगी। एक घूंघट व्यर्थ हुआ, दूसरे घूंघट में खोज लेंगे। ऐसा जन्मों-जन्मो से घूंघट उठाने का क्रम चल रहा है। किसी घूंघट में कभी किसीको नहीं पाया। सब घूंघट खाली थे।

तुमने कभी किसीमें किसीको पाया? पति में कुछ पाया? पत्नी में कुछ पाया? मित्र मे कुछ पाया? सगे-साथी में कुछ पाया? या सिर्फ घूंघट था। नहीं मिलता है, कोई नही मिलता है वहां; लेकिन मन की आशा कहती है, यहां नहीं मिला तो कही और मिल जाएगा। इस झरने में पानी सिद्ध नही हुआ, फिर दूर और झरना दिखायी पड़ने लगता है। तुम कब जागोगे इस सत्य से कि झरने तुम कल्पित करते हो, कहीं कोई नहीं है (तुम्हारे अतिरिक्त सब अयथार्थ है। तुम्हारे अतिरिक्त सब माया है।)

'यमराज की दृष्टि से बचकर आगे बढ़ो'।

अगर जीवन को सचमुच पाना है तो मौत से ... जहां-जहां मौत हो वहां-वहां जीवन नहीं है, इसको तुम समझ लो। जहाँ-जहाँ परिवर्तन हो, वहाँ शाश्वत नहीं है। और जहां-जहां क्षणभंगुर हो वहाँ सनातन नहीं है। और जहां-जहां चीजें बदलती हों, वहां समय को मत गवाँना। उसको खोजो जो कभी नहीं बदलता है। उस न बदलने को खोज लेने की कला का नाम धर्म है। एस धम्मो सनंतनो।

'विषयरूपी फूलों को चुननेवाले, मोहित मन वाले पुरुष को मृत्यु उसी तरह उठा ले जाती है, जिस तरह सोए हुए गाँव को बढ़ी हुई बाढ।'

जैसे सोए हुए गाँव में अचानक नदी में बाढ़ आ जाए और लोग सोए-सोए ही बह जाते है, ऐसे ही विषयरूपी फूलों को चुननेवाले, मोहित मन वाले पुरुष को मृत्यु उठा ले जाती है। सोए ही सोए बाढ़ आ जाती है और जिंदगी विदा हो जाती है। तुम सपने ही देखते रहते हो और बाढ़ आ जाती है। और कामवासना स्वप्न देखने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

ये ऐश के बंदे सोते रहे फिर जागे भी तो क्या जागे
सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गये

एक तो जागते ही नहीं। सोए ही रहके बिता देते हैं। और अगर कभी कोई सोचता भी है कि जाग गया, तो सोचता ही है कि जाग गया। वो भी जागना जैसे सपने में ही जागना है। 'सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गये'।

तो लोग अपने जन्मदिन को याद रखते हैं। मृत्युदिन की कौन चर्चा करता है? लोग जीवन पे नजर रखते हैं। मौत! मौत की बात ही करनी बेहूदी मालूम पड़ती है। अगर किसीसे पूछो कि कब मरोगे, तो वो नाराज हो जाता है। मरोगे कि नहीं? तो वो फिर दुबारा तुम्हें कभी मिलेगा ही नहीं। वो तुम्हें दुश्मन समझ लेगा। पूछा कुछ गलत न था। जो होने ही वाला था वही पूछा था। लेकिन मौत की लोग बात भी नही करना चाहते। बात से भी भय लगता है। फिर भी मौत तो है। उस तथ्य को इनकार न कर सकोगे। किसी भाँति उस तथ्य को स्वीकार करो तो शायद इस जीवन से जागने की क्षमता आ जाए। जिसने भी मृत्यु को स्वीकार किया वो देखेगा, मृत्यु कभी आती है ऐसा थोड़ी', रोज हम मर रहे हैं। अभी आती है। अभी आ रही है, अभी घट रही है। ऐसा थोड़ी' कि कभी सत्तर साल के बाद घटेगी। रोज-रोज घटती है, सत्तर साल में पूरी हो जाती है। जन्म के साथ ही मौत का सिलसिला शुरू होता है, मरने के साथ पूरा होता है। लंबी प्रक्रिया है। मृत्यु कोई घटना नही है, प्रक्रिया है। पूरे जीवन पर फैली है। जैसे झील पे लहरें फैली हों, ऐसे जीवन पे मौत फैली है। अगर तुम मौत को छिपाते हो, ढाँकते हो, बचते हो, तो तुम जीवन के सत्य को न देख पाओगे। जिसे तुम जीवन कहते हो इस जीवन का सत्य तो मृत्यु है।

'सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गये'

सूरज उग चुका है, ढलने में ज्यादा देर न लगेगी। जो उग चुका, वो ढल ही चुका। जो उग गया है, वो ढलने के मार्ग पर है। सुबह का सूरज साँझ का सूरज बनने की चेष्टा में संलग्न है। साँझ दूर नही है, अगर सुबह हो गयी। जब सुबह ही हो गयी, तो साँझ कितनी दूर हो सकती है! जिसको तुम भर जवानी कहते हो, वो केवल आधे दिन का पूरा हो जाना है — आधी साँझ का आ जाना है। जवानी आधी मौत है। लेकिन कौन याद रखता है? जो याद रख सके, वही शिष्य है।

मौत ही इंसान की दुश्मन नहीं
जिंदगी भी जान लेकर जाएगी

'मौत ही इंसान की दुश्मन नही, जिंदगी भी जान लेकर जाएगी।' मौत को दुश्मन मत समझना। जिसे तुम जिंदगी कहते हो वो मौत ही है, वो भी जान लेकर जाएगी। 'फूलों को चुननेवाले, मोहित मन वाले पुरुष को मृत्यु उसी तरह उठा ले जाती है, जिस तरह सोए हुए गाँव को बढ़ी हुई बाढ़'।

तू हविश में दुनिया की जिंदगी मिटा बैठा
भूल हो गयी गाफिल जिंदगी ही दुनिया थी

'तू हविश में दुनिया की जिंदगी मिटा बैठा'। दुनिया को पाने की चेष्टा में वो

जो जीवन था उसे तूने मिटा दिया । और दुनिया को पाने की चेष्टा को ही तूने जिंदगी समझी । वो जिंदगी न थी । 'भूल हो गयी गाफिल...सोए हुए आदमी भूल हो गयी...जिंदगी ही दुनिया थी' । इसे थोड़ा समझ लो । जिसे तुम दुनिया कहते हो, तुम्हारे बाहर जो फैला है, उसे जिंदगी मत समझ लेना । अगर उस बाहर की दुनिया को ही इकट्ठा करने में लगे रहे, तो असली जिंदगी गवाँ दोगे । पीछे पछताओगे । समय बीत जाएगा और रोओगे । फिर शायद कुछ कह भी न सकोगे । अभी कुछ किया जा सकता है । मरते क्षण में शायद अधिकतम लोगों को यह समझ आती है —

तू हविश में दुनिया की जिंदगी गवाँ बैठा

मरते वक्त अधिक लोगों को ये खयाल आना शुरू हो जाता है —

भूल हो गयी गाफ़िल जिंदगी ही दुनिया थी

लेकिन तब समय नहीं बचता । मरते-मरते दिखायी पड़ना शुरू होता है कि महल जो बनाए, धन जो इकट्ठा किया, साम्राज्य जो फैलाया —

भूल हो गयी गाफ़िल जिंदगी ही दुनिया थी

भीतर की जिंदगी को जान लेते तो दुनिया को पा लेते । बाहर की दुनिया को पाने में लग गये, भीतर की जिंदगी गवाँ दी । बाहर और भीतर में उतना ही फर्क है, जितना सत्य में और स्वप्न में । बाहर है स्वप्न का जाल, भीतर है साक्षी का निवास । जो दिखायी पड़ता है उसपर ध्यान मत दो, जो देखता है उसपर ध्यान दो । जो भोगा जाता है उसपर ध्यान मत दो, जो भोगता है उसपर ध्यान दो । आँख की फिक्र मत करो, आँख के पीछे जो खड़ा देखता है उसकी फिक्र करो । कान की फिक्र मत करो, कान के पीछे खड़ा जो सुनता है उसकी फिक्र करो । न जन्म की चिंता करो न मृत्यु की; चिंता करो उसकी जो जन्म में आता है और मृत्यु में जाता है । जो जन्म के भी पहले है और मृत्यु के भी बाद है । मरते क्षण में ये याद भी आए तो फिर क्या करोगे ? जिसको पहले याद आ जाती है वे कुछ कर लेते हैं ।

हिचकियों पर हो रहा है जिंदगी का राग खत्म

झटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं

मरते क्षणमें तो फिर ऐसा ही लगेगा कि जिसको जिंदगी समझी —

हिचकियों पर हो रहा है जिंदगी का राग खत्म

वो सारे स्वप्न, वे सारे गीत, वो सारा संगीत, हिचकियों में बदल जाता है । हिचकियाँ ही हाथ में रह जाती हैं ।

हिचकियों पर हो रहा है जिंदगी का राग खत्म

झटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं

इसके पहले कि सब कुछ हिचकियों में बदल जाए, और इसके पहले कि तुम्हारा साज तोड़ा जाए, भीतर के गीत को गा लो। इसके पहले कि मौत शरीर को छीने, तुम उसे जान लो जिसे मौत छीन न सकेगी। इसके पहले कि बाहर का जगत खो जाए, भीतर के जगत में पैर जमा लो। अन्यथा तुम सोए हुए गाँव की तरह हो; बढ़ी हुई नदी की बाढ़ तुम्हे सोया-सोया बहा ले जाएगी।

'जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुँचाए बिना रस को लेके चल देता है, वैसे ही मुनि गाँव में भिक्षाटन करे।'

जीवन के गाँव की बात है। बुद्ध कह रहे हैं, जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुँचाए बिना रस को लेके चल देते हैं, ऐसे ही तुम इस जिंदगी में रहो। जीवन जो रस दे सके, ले लो। मगर रस केवल वे ही ले पाते हैं जो जाग्रत हैं। शेष तो उन भौरों की तरह है, जो रस लेने में इस तरह डूब जाते हैं कि उड़ना ही भूल जाते हैं। साँझ जब कमल की पंखुड़ियाँ बंद होने लगती हैं तब वे उसीमें बंद हो जाते है। उनके लिए कमल भी कारागृह हो जाते है। भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को बिना हानि पहुँचाए रस लेके चुपचाप चल देता है, ऐसे जिंदगी को बिना कोई हानि पहुँचाए। यही अहिंसा का सूत्र है।

अहिंसा का सूत्र इतना ही है कि रस लेने के तुम हकदार हो, लेकिन किसीको हानि पहुँचाने के नहीं। फूल को तोड़के भी भोगा जा सकता है। वो भी कोई भोगना हुआ! भौरा आता है फूल पर चुपचाप, गुनगुनाता है गीत, रिझा लेता फूल को, रस ले लेता है, उड़ जाता है। तोडता नही, मिटाता नहीं। भौरो की तरह मुक्त, भ्रमर की तरह मुक्त। बुद्ध कहते हैं, जीवन के गाँव में तुम जिओ जरूर, लेकिन आबद्ध मत हो जाना, बंद मत हो जाना। हमारी हालत तो बड़ी उल्टी है, इससे ठीक उल्टी। बुद्ध कहते है दुनिया में रहना, लेकिन दुनिया का मत हो जाना। बुद्ध कहते हैं दुनिया मे रहना, लेकिन दुनिया तुममें न रहे। हमारी हालत इससे ठीक उल्टी है।

बाद मरने के भी दिल लाखों तरह के गम में है —
बाद मरने के भी दिल लाखों तरह के गम मे है
हम नहीं दुनिया में लेकिन एक दुनिया हम मे है

मर भी जाएँ हम तो भी गम नहीं मरते। कब्र में भी तुम पडे रहोगे — 'हम नहीं दुनिया में लेकिन एक दुनिया हम मे है' — तब भी तुम सपने देखोगे। तब भी तुम उसी दुनिया के सपने देखोगे जिससे तुमने कुछ कभी पाया नहीं। तुम्हारी आँखें फिर भी उसी अँधेरे में खोयी रहेंगी, जहाँ कभी रोशनी की किरण न मिली।

तो एक तो है ढग सासारिक व्यक्ति का, वो मर भी जाए, तो भी दुनिया उसके

भीतर से नहीं हटती। और एक है संन्यासी का ढंग, वो जीता भी है तो दुनिया उसके भीतर नहीं होती।

ये जीवन के विराट नगर के संबंध में भी सही है, और यही बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के लिए कहा कि गाँव-गाँव जब तुम भीख भी माँगने जाओ—भिक्षाटन भी करो—तो चुपचाप माँग लेना, ऐसे ही जैसे भौंरा फूलों से माँग लेता है, और विदा हो जाना। ले लेना, जो मिलता हो। धन्यवाद दे देना, जहाँसे मिले। अनुग्रहपूर्वक स्वीकार कर लेना। न मिले, तो दुखी मत होना। क्योंकि मिलना चाहिए, ऐसी कोई शर्त कहाँ? मिल जाए, धन्यभाग! न मिले, संतोष! और जो न मिलने पे संतुष्ट है, उसे मिल ही जाता है। लेकिन हमारी स्थिति ऐसी है कि मिल जाने पर भी संतोष नहीं। तो मिलके भी नहीं मिल पाता। हम दरिद्र के दरिद्र ही रह जाते हैं।

जीवन से बहुत कुछ पाया जा सकता है। सपने से भी सीखा जा सकता है। और मृगमरीचिकाएँ भी बुद्धत्व का आधार बन जाती हैं। भ्रम से भी जागने की कला उपलब्ध हो जाती है।

'जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुँचाए बिना रस को लेके चल देता है, वैसे ही मुनि गाँव में भिक्षाटन करे।'

न तो संसार का सवाल है। न संसार को छोड़ने का सवाल है। क्योंकि जो तुम्हारा है ही नहीं उसे तुम छोड़ोगे कैसे? इतना भर जानने की बात है कि हम यहाँ मेहमान से ज्यादा नहीं। जब तुम किसीके घर मेहमान होते हो, जाते वक्त तुम ऐसा थोड़े ही कहते हो कि अब सारा घर तुम्हारे लिए छोड़े जाते हैं, त्याग किये जाते है। मेहमान का यहाँ कुछ है ही नही। जितनी देर घर में ठहरने का सौभाग्य मिल गया, धन्यवाद! अपना कुछ है नही, छोड़ेंगे क्या? इसलिए त्यागी वही है जिसने ये जान लिया कि हमारा कुछ भी नहीं है। वह नही, जिसने छोड़ा। क्योंकि जिसने छोड़ा, उसे तो अभी भी ख्याल है कि अपना था, छोड़ा। अपना हो तो ही छोडा जा सकता है। अपना हो ही न, तो छोड़ना कैसा?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, छोड़ने की भ्रांति में मत पड़ना, क्योंकि वो पकड़ने की ही भ्रांति का हिस्सा है। तुम तो पकड़ने की भ्रांति को ही समझ लेना। अपना कुछ भी नहीं। अभी नहीं थे तुम। अभी हो, अभी फिर नहीं हो जाओगे। घड़ी भर का सपना है। आँख झंपक गयी, एक सपना देखा। आँख खुल गयी, सपना खो गया। इस संसार को भीतर घर मत बनाने देना। तुम संसार में रहना, लेकिन संसार तुम में न रह पाए। गुज़रना पानी से, लेकिन पैर भीगें नही। जीना, लेकिन भौंरे की तरह — किसीको हानि न पहुँचे।

'जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुँचाए बिना रस को लेके चल देता है।'

क्या रस है? किस रस की बात कर रहे हैं बुद्ध? समझा दूँ, क्योंकि डर है कि तुम कुछ गलत न समझ लो। बुद्ध किस रस की बात कर रहे हैं? किस भौरे की बात कर रहे हैं? तुम जिन्हें सुख कहते हो उनकी बात नहीं कर रहे हैं। बुद्ध तो इस जीवन का एक ही रस जानते हैं, वो है बुद्धत्व। वो है इस जीवन से जागने की कला सीख के चल देना। वही रस है। क्योंकि जिसने वह जान लिया उसके लिए महारस के द्वार खुल गये।

तो जीवन के हर फूल से और जीवन की हर घटना से — जन्म हो कि मृत्यु — और जीवन की हर एक प्रक्रिया से तुम एक ही रस को खोजते रहना और चुनते रहना : हर अवस्था तुम्हें जगाने का कारण बन जाए, निमित्त बन जाए। घर हो कि गृहस्थी, बाजार हो कि दुकान, कोई भी चीज तुम्हें सुलाने का बहाना न बने। जगाने का बहाना बन जाए, तो तुमने रस ले लिया। मरने के पहले अगर तुमने इतना जान लिया कि तुम अमृतपुत्र हो तो तुमने रस ले लिया। मौत के पहले अगर तुमने जीवन — असली जीवन को, महाजीवन को — जान लिया, तो तुमने रस ले लिया। तो तुम यूँ ही न भटके। तो तुमने ऐसे ही गर्द-गुबार न खायी। तो रास्ते पे तुम चले ही नहीं, पहुँचे। पहुँचे भी।

तब ... तब तुम अचानक हैरान होओगे, चकित होओगे, कि जिसे तुम खोजते फिरते थे वो तुम्हारे भीतर था। वो परमात्मा का राज्य, तुम्हारे हृदय के ही राज्य का दूसरा नाम है। मोक्ष तुम्हारे भीतर छिपी स्वतंत्रता का ही नाम है। और क्या है स्वतंत्रता? तुम दुनिया में रहो, दुनिया तुममें न हो। वो निर्वाण तुम्हारे अहंकार के बुझ जाने का ही नाम है। जब तुम्हारे अहंकार का टिमटिमाता दिया बुझ जाता है, तो ऐसा नहीं कि अंधकार हो जाता है। उस टिमटिमाते दिये के बुझते ही महासूर्यों का प्रकाश तुम्हे उपलब्ध हो जाता है।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि जब वे गीतांजलि लिख रहे थे, तो पद्मा नदी पर एक बजरे में निवास करते थे। रात गीत की धुन में खोए — कोई गीत उतर रहा था, उतरे चला जा रहा था। वो एक टिमटिमाती मोमबत्ती को जलाके बजरे में और देर तक गीत की कड़ियों को लिखते रहे। कोई आधी रात फूंक मारके मोमबत्ती बुझायी, हैरान हो गये। पूरे चाँद की रात थी ये भूल ही गये थे। यद्यपि वो जो लिख रहे थे वो पूरे चाँद का ही गीत था। जैसे ही मोमबत्ती बुझी कि बजरे की उस छोटी सी कोठरी में सब तरफ से चाँद की किरणें भीतर आ गयीं। रंध्र-रंध्र से। वो छोटी सी मोमबत्ती की रोशनी चाँद की किरणों को बाहर रोके हुए

थी। तुमने कभी ख्याल किया, कमरे में दिया जलता हो तो चाँद भीतर नहीं आता। फिर दिया फूंक मार के बुझा दिया, चाँद बरस पड़ा भीतर, बाढ़ की तरह सब तरफ से आ गया।

रवींद्रनाथ उस रात नाचे। और उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि आज एक अपूर्व अनुभव हुआ। कहीं ऐसा ही तो नहीं है कि जबतक ये अहंकार का दिया भीतर जलता रहता है, परमात्मा का चाँद भीतर नहीं आ पाता।

यही बुद्ध ने कहा है कि अहंकार के दिये को फूंक मार के बुझा दो। दिये के बुझाने का ही नाम निर्वाण है। इधर तुम बुझे, उधर सब तरफ से परमात्मा, सत्य — या जो भी नाम दो — भीतर प्रविष्ट हो जाता है।

तो एक तो जीवन को जीने का ढंग है, जैसा तुम जी रहे हो। एक बुद्धों का ढंग भी है। चुनाव तुम्हारे हाथ में है। तुम बुद्धों की भाँति भी जी सकते हो — कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है सिवाय तुम्हारे। और तुम दीन-हीन भिखमंगों की भाँति भी जी सकते हो — जैसा तुम जी रहे हो। कोई तुम्हें जबरदस्ती जिला नहीं रहा। तुमने ही न मालूम किस बेहोशी और नासमझी में इस तरह की जीवन-शैली को चुन लिया है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई जिम्मेवार नहीं है। एक झटके में तुम तोड़ दे सकते हो, क्योंकि सब बनाया तुम्हारा ही खेल है। ये सब घर तुमने बना लिए है अपने चारों तरफ, जिनमें तुम खुद ही कैद हो गये हो।

मैं एक घर में मेहमान था। सामने एक मकान बन रहा था और एक छोटा लड़का वहाँ मकान के सामने पड़ी हुई रेत और ईंटों के बीच में खेल रहा था। उसने धीरे-धीरे — मैं देखता रहा बाहर बैठा हुआ, मैं देख रहा था — उसने धीरे-धीरे अपने चारों तरफ ईंटें लगा लीं और ईंटों को जमाता गया ऊपर। फिर वो घबड़ाया जब उसके गले तक ईंटें आ गयीं, क्योंकि वो खुद कैद हो गया। तब वो चिल्लाया कि बचाओ!

मैं उसे देख रहा था, और मुझे लगा, यही आदमी की अवस्था है। तुम ही अपने चारों तरफ ईंटें जमा लेते हो, जिसको तुम जिंदगी कहते हो। फिर एक दिन तुम पाते हो कि गले तक डूब गये। तब चिल्लाते हो कि बचाओ। तुमने ही रखी हैं ईंटें, चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं। जिस ढंग से रखी हैं उसी ढंग से गिरा दो। तुमने ही रखी हैं, तुम ही उठा सकते हो। कारागृह तुम्हारा ही बनाया हुआ है, किसी और ने तुम्हें कारागृह में बंद नहीं किया है। खेल-खेल में बना लिया है। खेल-खेल में ही आदमी बंद हो जाता है। जंजीरों में उलझ जाता है।

> चलने को चल रहा हूँ पर इसकी खबर नहीं
> मैं हूँ सफर में या मेरी मंजिल सफर में है

अब ऐसे मत चलो। अब जरा जागके चलना हो जाए। अब जरा होश से चलो। अब जरा देखके चलो। जितने जागोगे, उतना पाओगे मंजिल करीब। जिस दिन पूरे जागोगे, उस दिन पाओगे मंजिल सदा भीतर थी।

आज इतना ही।

समझ और समाधि के अंतर्सूत्र

६ दिसंबर १९७५

पहला प्रश्न : महाकाश्यप उस दिन सुबह खिलखिलाकर न हंसा होता, तो भी क्या बुद्ध उसे मौन का प्रतीक फूल नहीं देते?
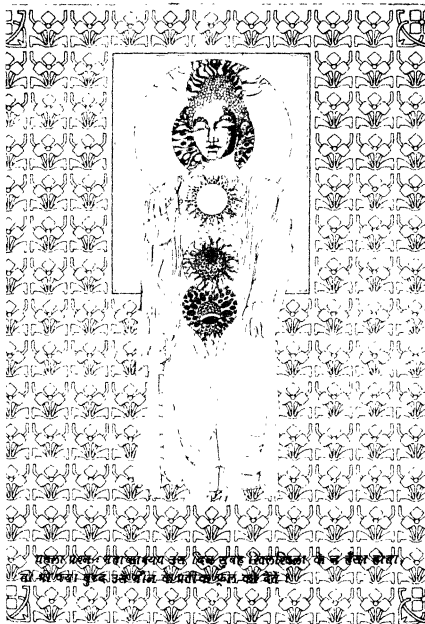
प्रश्न पूछते समय थोड़ा सोचा भी करें कि प्रश्न का सार क्या है। यदि ऐसा हुआ होता ! यदि वैसा हुआ होता ! इन सारी बातों में क्यों व्यर्थ समय को व्यतीत करते हो ?

महाकाश्यप न हँसा होता तो बुद्ध फूल देते या न देते, इससे तुम्हें क्या होगा ? महाकाश्यप न भी हुआ हो, हुआ हो। कहानी हो, तो भी तुम्हें क्या होगा ? कुछ अपनी पूछो। कुछ ऐसी बात पूछो जो तुम्हारे काम पड़ जाए। प्रश्न ऐसे न हों कि सिर्फ मस्तिष्क की खुजलाहट हों, क्योंकि खुजलाहट का गुण है जितना खुजाओ बढ़ती चली जाती है। पूछने के लिए ही मत पूछो। अगर न हो प्रश्न तो पूछो ही मत। चुप बैठेंगे, शायद तुम्हारे बीच कोई महाकाश्यप हँस दे।

हँसना न हँसना महत्वपूर्ण नहीं है। बाहर जो घटता है उसका कोई मूल्य बुद्ध-पुरुषों के लिए नहीं है। फूल तो महाकाश्यप को दिया ही होता। वो अकेला ही था वहाँ जो बुद्ध के मौन को समझ सकता था। हर हालत में फूल उसके पास गया होता। और बुद्ध न देते तो भी गया होता। छोड़ दो फिकर हँसता नहीं। बुद्ध न भी

देते फूल तो भी मैं कहता हूँ उसीके पास गया होता फूल, खुद चला गया होता। कोई बुद्ध को देने की जरूरत भी न थी।

घटना को समझने की कोशिश करो, ब्यौरे की व्यर्थ बकवास में मत पड़ो। घटना सीधी है कि बुद्ध चुप रहे, उस चुप्पी को कोई और न समझ पाया। चुप्पी को समझने के लिए तुम्हें भी चुप होना जरूरी है। जिस भाषा को समझना हो उस भाषा को जानना जरूरी है। मैं हिंदी बोल रहा हूँ, तो हिंदी जानना जरूरी है। मैं चीनी बोलूँ, तो चीनी जानना जरूरी है, तभी समझ सकोगे।

बुद्ध उस दिन मौन बोले, मौन की भाषा बोले, जो मौन का रस जानता था वही समझा। जो मौन का रस नही जानते थे, उन्होंने इस मौन को भी अपने चिंतन का व्यापार बना लिया। वो सोचने लगे बुद्ध मौन क्यों बैठे हैं? अभागे लोग! जब बुद्ध मौन थे तब तुम चुप हो गये होते, तो फूल उन्हें भी मिल सकता था। लेकिन वे सोचने लगे कि बुद्ध मौन क्यो बैठे हैं? कि बुद्ध हाथ में फूल क्यों लिए हैं? जिसने सोचा, उसने गवाँया।

बुद्धों के पास सोचने से संबंध नहीं जुड़ता। बुद्धों के पास तो न सोचने की कला आनी चाहिए। महाकाश्यप चुप रहा। उसने बस भर आँख देखा। उसने सोचा नहीं। कौन फिकिर करे? इतना अप्रतिम सौदर्य उस दिन पगट हुआ था! ऐसा सूरज उगा था जैसा कभी-कभी सदियों में उगता है। बुद्ध उस दिन सब द्वार-दरवाजे अपने मंदिर के खोलकर बैठे थे। निमंत्रण दिया था कि जिसे भी आना हो आ जाए। परमात्मा द्वार पर आके खडा था। दस्तक दे रहा था। तुम सोचने लगे, तुम विचार करने लगे, ऐसा क्यों? वैसा क्यों? क्यों बुद्ध चुप बैठे हैं? पहले क्यों कभी नही बैठे?

विचारक चूक गये। महाकाश्यप कोई विचारक न था। वो सिर्फ देखता रहा बुद्ध को। जैसे बुद्ध फूल को देखते रहे, ऐसा महाकाश्यप बुद्ध को देखता रहा। वही तो इशारा था कि जैसे मै देख रहा हूँ फूल को — मात्र द्रष्टा हूँ — ऐसे ही तुम भी द्रष्टा हो जाओ आज। हो चुकी बहुत बातें दर्शन की, अब द्रष्टा हो जाओ। दर्शन की बात कब तक चलाए रखोगे? हो चुकी चर्चा भोजन की, अब भोजन करो। अब स्वाद लो। बुद्ध ने थाली सजा दी थी अपनी। तुम सोचने लगे भोजन के संबंध मे, बुद्ध भोजन रखे सामने बैठे थे।

जैसे बुद्ध फूल को देख रहे थे, वैसा ही महाकाश्यप बुद्ध के फूल को देखने लगा। बुद्ध ने एक फूल देखा, महाकाश्यप ने दो फूल देखे। दो फूलों को एक साथ देखा। उन दोनों फूलों का तारतम्य देखा, संगीत देखा, लयबद्धता देखी। एक अपूर्व छंद का उसे अनुभव होने लगा। रुकता भी महाकाश्यप कैसे बिना हँसे!

क्यों हँसा महाकाश्यप ? हँसा लोगों पर, जोकि सोच में पड़ गये हैं। मंदिर सामने खड़ा है और वो मंदिर की खोज कर रहे हैं। सूरज उग चुका है, वो आँख बंद किये प्रकाश की चर्चा में लीन हैं। महाकाश्यप हँसा लोगों की मूढ़ता पर। हँसा कहना ठीक नहीं, हँसी निकल गयी। कुछ किया नहीं हँसने में। वो रुक न सका। घट गया, फूट पड़ी हँसी देख के सारी नासमझी। हजारों लोग मौजूद थे, चूके जा रहे हैं, इस मूढ़ता पर हँसा। और इस बात पर भी हँसा कि बुद्ध ने भी खूब खेल खेला। जो नहीं कहा जा सकता वो भी कह दिया। जो नहीं बताया जा सकता उसको भी बता दिया। जिसको जतलाने में कभी अंगुलियाँ समर्थ नहीं हुईं, उस तरफ भी इशारा कर दिया। उपनिषद् उस दिन मात हो गये। जो नहीं कहा जा सकता था उसे कृत्य बना दिया, वक्तव्य दे दिया उसका संपूर्ण जीवन से।

इसलिए उस दिन के बाद झेन परंपरा में जब भी गुरु प्रश्न पूछता है तो शिष्य को उत्तर नहीं देना होता, कोई कृत्य करना होता है जिससे वक्तव्य मिल जाए। कोई कृत्य, ऐसा कृत्य जिसमें शिष्य संपूर्ण रूप से डूब जाए। महाकाश्यप हँसा ऐसा नहीं, महाकाश्यप हँसी हो गया। पीछे कोई बचा नहीं जो हँस रहा था। कोई पीछे खड़ा नहीं था जो हँस रहा था। महाकाश्यप एक खिलखिलाहट होके बिखर गया उस संगत पर। झेन फकीर प्रश्न पूछते हैं...

एक झेन फकीर हुआ। बैठा था, शिष्य बैठे थे। एक बर्तन में पानी रखा था। उसने कहा कि सुनो, बिना कुछ कहे बताओ कि ये क्या है ? ये बर्तन और ये पानी, बिना कुछ कहे कोई वक्तव्य दो। अर्थात् कृत्य से घोषित करो, जैसा महाकाश्यप ने किया था — खिलखिलाकर। और जब कृत्य से महाकाश्यप ने घोषित किया, तो कृत्य से बुद्ध ने उत्तर भी दिया — फूल देकर। आज मैं भी तुम्हें फूल देने को उत्सुक हूँ।

शिष्य देखने लगे, हाथ में कोई फूल तो नहीं था। सोचने लगे कि ये बात तो और उलझन की हो गयी। कम से कम बुद्ध हाथ में फूल तो लिए थे; इस आदमी के हाथ में कोई फूल नहीं है। वो फूल के संबंध में सोचने लगे। और उन्होंने लाख सोचा कि इस पानी भरे बर्तन के संबंध में क्या कहो, बिना कहे कैसे वक्तव्य दो ? और तभी भोजन का समय करीब आ रहा था। रसोइया — जो भिक्षु, जो संन्यासी रसोई का काम करता था, वो भीतर आया। उसने ये उदासी, चिंतन से तने हुए लोग देखे। उसने पूछा मामला क्या है ? गुरु ने कहा एक सवाल है। इस जल भरे बर्तन के संबंध में वक्तव्य देना है। कोई वक्तव्य जो इसके पूरे के पूरे रहस्य को प्रगट कर दे। शब्द का उपयोग नहीं करना है। और जो ये करेगा, वही फूल मैं देने को तैयार हूँ जो बुद्ध ने दिया था।

लेकिन उस रसोइये ने गुरु के हाथ की तरफ देखा ही नहीं कि फूल वहाँ है या नहीं। गुरु फूल है। अब इसमें फूल क्या देखना! वो उठा, उसने एक लात मार दी उस बर्तन में, पानी लुढ़क के सब तरफ बह गया। और वो बोला कि अब उठो, हो गयी बकवास बहुत, भोजन का समय हो गया। कहते हैं गुरु ने उसके चरण छू लिए — दे दिया फूल। वक्तव्य उसने प्रगट कर दिया। अस्तित्व को तो ऐसे ही बिखेर के बताया जाता है। अब और क्या कहने को रहा — उल्टा दिया पात्र, जल बिखर गया सब तरफ।

ऐसे ही उस दिन महाकाश्यप ने भी उल्टा दिया था अपना पात्र। खिलखिलाहट बिखर गयी थी सब तरफ। ऐसी फिर हजारों घटनाएँ हैं झेन परंपरा में। एक घटना को दुबारा नहीं दोहरा सकते, याद रखना। क्योंकि दोहराने का तो मतलब होगा, सोचके की। इसलिए हर घटना अनूठी है और आखिरी है। फिर तुम उसे पुनरुक्त नहीं कर सकते। अगर मैं आज फूल लेके आ जाऊँ, तो जो हँसेगा, उसको भर नहीं मिलेगा। अगर बर्तन में आज मैं पानी रखके बैठ जाऊँ और तुम से पूछूं, तो जो लात मारके लुढ़काएगा, उसको भर नहीं मिलेगा। वो तो विचार हो गया अब। अब तो महाकाश्यप की कहानी पता है। हजारों घटनाएँ हैं, लेकिन हर घटना अनूठी है। और उसकी पुनरुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि पुनरुक्ति यानी विचार। कुछ कहो पूरे अस्तित्व से, और कुछ कहो इस ढंग से जैसा कभी न कहा गया हो, तो फिर मन को जगह नहीं बचती। मन तो अनुकरण करता है। दोहराता है। मंत्रवत् है। मन के पास कोई मौलिक सूझ नहीं होती।

एक दूसरे झेन फकीर का एक शिष्य बहुत दिन से चिंता में रत है — गुरु ने कोई सवाल दिया है जो हल नहीं होता। जब सब तरह के उपाय कर चुका तो उसने प्रधान शिष्य को पूछा कि तुम तो स्वीकार हो गये हो, तुम तो कुछ कुंजी दो। हम परेशान हुए जा रहे हैं, वर्षों बीत गये। कुछ हल नहीं होता, कोई राह नहीं मिलती। और जब भी जाते हैं हम, उत्तर भी नहीं दे पाते और गुरु कहता है बस, बकवास बंद। अभी हम बोले भी नहीं! अब ये तो हद हो गयी। ऐसे तो हम कभी भी जीत न पाएंगे। कम से कम बोलने तो दो। हम कुछ कहें, फिर तुम कहो गलत और सही। हम बोलते ही नहीं और गलत हो जाता है। तो अब तो सही होने का कोई उपाय न रहा। गुरु नाराज हैं।

शिष्य हँसने लगा। प्रधान शिष्य ने कहा नाराज नहीं। क्योंकि जब तुम विचार करते हुए जाते हो तो चेहरे का ढंग ही और होता है। जब तुम निर्विचार में जाते हो, तो चेहरे का ढंग ही और होता है। सोचो थोड़ा, जब तुम विचार से भरे होते हो तो सारे चेहरे पर तनाव होता है। आँख में, माथे पर बल होते हैं। जब तुम निर्विचार

में होते हो, सब बल खो जाते हैं, सब तनाव खो जाता है। जब तुम निर्विचार में होते हो, तब तुम्हारे चारों तरफ ऐसी शांति झरती है कि अज्ञानी भी पहचान ले, तो गुरु न पहचानेगा ! वो तुम्हें दरवाजे के भीतर घुसने देता है, वे भी उसकी करुणा है। उस प्रधान शिष्य ने कहा कि मेरी तुम्हें पता नहीं। दरवाजे के बाहर ही रहता था, वह कहता था लौट जा। फिजूल की बकवास लेके मत आ। अभी उसने मुझे देखा भी नहीं था। लेकिन जैसे मेरी छाया मुझसे पहले पहुँच जाती। जैसे मेरा वातावरण, मैं दरवाजे पर होता, और उसे छू लेता। जैसे कोई गंध उसे खबर दे देती।

तो इस नये शिष्य ने पूछा फिर तुमने कैसे उसकी अनुकंपा को पाया, उसके प्रसाद को पाया। उसने कहा वो तो मैं कभी न पा सका। जब मैं मर ही गया, तब मिला। उसने कहा भलेमानुष, पहले क्यों न बताया ? यही हम भी करेंगे। अब कहीं कोई ये कर सकता है ?

दूसरे दिन वो गया। जैसे ही गुरु ने उसकी तरफ देखा, इसके पहले कि गुरु कहे कि नहीं, बकवास बंद, वो भड़ाम से गिर पड़ा, आँखें बंद कर लीं, हाथ फैला दिये, जैसे मर गया। गुरु ने कहा बहुत खूब ! बिलकुल ठीक-ठीक किया। प्रश्न का क्या हुआ ? उस शिष्य ने — अब मजबूरी — एक आँख खोली और कहा कि प्रश्न तो अभी हल नहीं हुआ। तो गुरु ने कहा नासमझ, मुर्दे बोला नहीं करते, और न मुर्दे ऐसे आँख खोलते हैं। उठ, भाग यहाँ से; और किसी दूसरे से उत्तर मत पूछना। पूछे उत्तरों का क्या मूल्य है ? वो तुम्हारा होना चाहिए। तुम्हारे अंतरतम से आना चाहिए। तुम उसमें मौजूद होने चाहिए। वो तुम्हारा गीत हो, वो तुम्हारा नाच हो। उसमें तुम पूरे लीन हो जाओ। वो जीवन हो कि मौत, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

महाकाश्यप उस दिन हँसा। कहना ठीक नहीं हँसा। हँसी फैल गयी देखके ये सारी दशा। बुद्ध का सामने होना और लोगों का अंधे बने रहना, सूरज का निकल आना और अँधेरे का न मिटना देखके हँसा। ज्ञान बरसता हो, और लोगों के घड़े चिकने हों, और जल उनपे पड़ता ही न हो, ये देखके हँसा।

हँसता या न हँसता, फूल उसे मिलना था। हँसी, न हँसी तो सांयोगिक है। बुद्ध ने फूल हर हालत दिया होता। हँसने की वजह से नहीं दिया, ध्यान रखना, नहीं तो फिर भूल हो जाएगी। यही तो भूल है मन की। तब तुम सोचोगे हँसने की वजह से दिया, तो अगर अब दुबारा कभी ऐसा मौका हमें मिलेगा तो हम हँस देंगे। वहीं तुम चूक जाओगे। हँसने की वजह से नहीं दिया। हँसी के पीछे जो मौन था — हँसी के पीछे विचार भी हो सकता है, तब व्यर्थ होगी — हँसी के पीछे जो मौन था, उस खिलखिलाहट के फूलों के पीछे जो परम शांति थी। वो हँसी निर्वाण का फूल थी।

न हँसता तो बुद्ध उठके गये होते। हँसा तो बुद्ध ने उसे बुला भी लिया। न हँसता तो बुद्ध खुद उठके गये होते, खुद उसकी झोली में उँडेल दिया होता।

लेकिन इस तरह के प्रश्न तुम्हारे मन में उठते क्यों हैं? तुम्हारे जीवन की समस्याएँ हल हो गयीं कि तुम महाकाश्यप की चिंता में पड़े हो? तुम्हारा जीवन समाधान को उपलब्ध हो गया, कि तुम इस तरह के बौद्धिक प्रश्न उठाते हो? मत गवांओ समय को इस भांति, अन्यथा कोई महाकाश्यप तुम पर भी हँसेगा, तुम्हारी मूढ़ता पर भी हँसेगा। यहां मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूँ, कुछ हो सकता है। जब मैं मौजूद नहीं रहूँगा, तब तुम रोओगे। अगर अभी न हँसे, तो तब तुम रोओगे। इस मौजूदगी का उपयोग कर लो। इस मौजूदगी को पी लो। इस मौजूदगी को तुम्हारे रग-रेशे में उतर जाने दो। व्यर्थ के ऊहापोह में मत पड़ो।

मदरसे तक ही थीं बहस आराइयाँ

पाठशाला तक तर्क, तर्कजाल। प्रश्न और प्रश्नों के विस्तार।

मदरसे तक ही थीं बहस आराइयाँ

चुप लगी जब बात की तह पा गये

तो जो मैं कहता हूँ उसको तुम तर्क मत बनाओ, अन्यथा तुम चूके। तब तुम किसी दिन पछताओगे कि इतने करीब थे और चूक गये। और कभी-कभी ऐसा हुआ है कि सोचनेवालों ने गवां दिया है और न सोचनेवालों ने पा लिया है। कभी कभी क्या हमेशा ही ऐसा हुआ है। जो मैं कह रहा हूँ, वो इसीलिए कह रहा हूँ ताकि चुप लग जाए, और तुम बात की तह पा जाओ। तुम बात में से बात निकाल लेते हो। बात की तह नहीं पाते। एक बात से तुम दस दूसरी बातों पे निकल जाते हो। मैं करता हूँ इशारा चाँद की तरफ, तुम अंगुली पकड़ लेते हो। तुम अँगुली के संबंध में पूछने लगते हो, तुम चाँद की बात ही भूल जाते हो। कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन तुम्हें कहना पड़े —

थी न आजादे फना किश्ती-ए-दिले-नाखुदा

मौजे-तूफाँ से बची तो नजरे-साहिल हो गयी

किसी तरह तूफान से बचके आ भी गये तो किनारे से टकरा गये।

थी न आजादे फना किश्ती-ए-दिले-नाखुदा

मौजे-तूफाँ से बची तो नजरे-साहिल हो गयी

कहीं ऐसा न हो कि यहाँ मेरे किनारे पे आके भी डूब जाओ।

कोई एजाजे सफर था या फरेबे-चश्मे-शौक

सामने आकर निहाँ आँखों से मंजिल हो गयी

कहीं ऐसा न हो कि मंजिल सामने आ गयी हो और फिर भी तुम चूक जाओ।

उस दिन बुद्ध के सामने बैठे लोग चूक गये।

'सामने आकर निहां आंखो से मंजिल हो गयी'। आ गयी थी सामने मंजिल, लेकिन जिसे पहुंचना है अगर वही तैयार न हो, तो मंजिल भी क्या करे? सामने भी आ जाए तो भी तुम चूक जाओगे। क्योंकि सवाल मंजिल का नहीं, तुम्हारा है।

व्यर्थ की बातों में मत पड़ो। और यदि ऐसा होता, तो कैसा होता, ये तो पूछो ही मत। इसकी तुम्हें व्यर्थता नहीं दिखायी पड़ती कि यदि रावण सीता को न चुराता तो रामायण का क्या होता? अब इसका कौन उत्तर दे? इसका कौन उत्तर दे और उत्तर का क्या अर्थ है? जो हो गया, हो गया। उससे अन्यथा नहीं हो सकता था। अब तुम उसमें से और व्यर्थ की बातें मत निकालो, नहीं तुम सोचते ही रहोगे। प्रत्येक पल सोचने में गवांया, बड़ा महंगा है। क्योंकि उसी पल में सब कुछ उपलब्ध हो सकता था।

दूसरा प्रश्न : बुद्ध के देह में जीवित रहते उनका भिक्षु-संघ एकता में रहा। लेकिन बुद्ध के देह-विसर्जन के बाद जैसे-जैसे समय बीतता गया, बुद्ध-धर्म अनेक शाखाओं एवम् प्रशाखाओं में बँटने लगा। अज्ञानी संप्रदाय बनाते हैं, लेकिन बुद्ध के ज्ञानी शिष्य भी अनेक विभिन्न एवम् विपरीत संप्रदायों में बँट गये। कृपया इस घटना पर कुछ प्रकाश डालें।

अज्ञानी संप्रदाय बनाते हैं। ज्ञानी भी संप्रदाय बनाते हैं। लेकिन अज्ञानी का संप्रदाय कारागृह हो जाता है। और ज्ञानी का संप्रदाय मुक्ति की एक राह। संप्रदाय का अर्थ होता है, मार्ग। संप्रदाय का अर्थ होता है, जिससे पहुँचा जा सकता है।

ज्ञानी मार्ग से पहुँचते है। मार्ग बनाते भी हैं। अज्ञानी मार्ग से जकड़ जाते हैं, पहुँचते नहीं। मार्ग बोझिल हो जाता है। छाती पे पत्थर की तरह बैठ जाता है। ज्ञानी मार्ग का उपयोग कर लेते हैं, अज्ञानी मार्ग से ही बँध जाते हैं। संप्रदाय में कुछ बुराई नहीं है, अगर पहुँचाता हो।

संप्रदाय शब्द बड़ा बहुमूल्य है। जिससे पहुंचा जाता है, वही संप्रदाय है। लेकिन बड़ा गंदा हो गया। लेकिन गंदा हो जाने का कारण संप्रदाय नहीं है। अब कोई नाव को सिर पे रखके ढोए तो इसमें नाव का क्या कसूर है? क्या तुम नाव के दुश्मन हो जाओगे, कि लोग नाव को सिर पे रखके ढो रहे हैं। मूढ़ तो ढोएँगे ही। नाव न होती, कुछ और ढोते। मंदिर-मस्जिद न होते लड़ने को तो किसी और बात से लड़ते। कुछ और कारण खोज लेते। जिन्हें जाना नहीं है, वे मार्ग के संबंध में विवाद करने लगते हैं। जिन्हें जाना है, वे मार्ग का उपयोग कर लेते हैं। और जिसने मार्ग का उपयोग कर लिया, वो मार्ग से मुक्त हो जाता है। जिसने नाव का उपयोग कर लिया,

वो नाव को सिर पे थोड़ी ' ढोता है ? नाव पीछे पड़ी रह जाती है, रास्ते पीछे पड़े रह जाते हैं। तुम सदा आगे बढ़ते चले जाते हो।

संप्रदाय में अपने आप कोई भूल-भ्रांति नहीं है। भूल-भ्रांति है तो तुम में है। तुम तो औषधि को भी जहर बना लेते हो। बड़े कलाकार हो! तुम्हारी कुशलता का क्या कहना! जो जानते हैं वे जहर को भी औषधि बना लेते हैं। वक्त पे काम पड़ जाता है जहर भी जीवन को बचाने के। तुम्हारी औषधि भी जीवन की जान-लेवा हो जाती है। असली सवाल तुम्हारा है।

बुद्ध के जाने के बाद धर्म शाखा-प्रशाखाओं में बँटा। बँटना ही चाहिए। जब वृक्ष बड़ा होगा तो पीड ही पींड थोड़ी ' रह जाएगा। शाखा-प्रशाखाओं में बँटेगा। पींड ही पींड बड़ी ठूंठ मालूम पड़ेगी। उस वृक्ष के नीचे छाया किसको मिलेगी जिसमें पीड ही पींड हो? उससे तो खजूर का वृक्ष बेहतर। कुछ तो छाया थोड़ी-बहुत कहीं पड़ती होगी।

(वृक्ष तो वही शानदार है, वही जीवित है, जिसमें हजारों शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकलती हैं) शाखाएँ-प्रशाखाएँ तो इसीकी खबर हैं कि वृक्ष में हजार वृक्ष होने की क्षमता थी, किसी तरह एक में समा लिया है। हर्जे भी कुछ नहीं है। जितनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ हों उतना ही सुदर। क्योंकि उतने ही पक्षी बसेरा कर सकेंगे। उतने ही पक्षी घोंसले बना सकेंगे। उतने ही यात्री विश्राम पा सकेंगे। उतनी ही बड़ी छाया होगी, उतनी ही गहन छाया होगी। धूप से तपे-मांदों के लिए आसरा होगा, शरण होगी।

जो वृक्ष ठूंठ रह जाए, उसका क्या अर्थ हुआ? उसका अर्थ हुआ, वृक्ष बाँझ है। उसमें फैलने की क्षमता नहीं है। जीवन का अर्थ है, फैलने की क्षमता। सभी जीवित चीजें फैलती हैं। सिर्फ मृत्यु सिकुड़ती है। मृत्यु सिकोड़ती है, जीवन फैलाता है। एक से दो, दो से अनेक होता चला जाता है। परमात्मा जीवित था। अगर मुर्दा होता, तो अनेक नहीं हो सकता था। संसार को गाली मत देना, अगर तुम्हें मेरी बात समझ मे आए तो तुम समझोगे कि संसार परमात्मा की शाखाएँ-प्रशाखाएँ है। तुम भी उसीकी शाखा-प्रशाखा हो। इतना जीवित है कि चुकता ही नहीं, फैलता ही चला जाता है।

वृक्ष भारत में बड़े प्राचीन समय से जीवन का प्रतीक रहा है। बुद्ध के वृक्ष में बड़ी क्षमता थी, बड़ा बल था, बड़ी संभावना थी। अकेली पींड से कैसे बुद्ध का वृक्ष चिपटा रहता? जैसे-जैसे बढ़ा, शाखाएँ-प्रशाखाएँ हुईं। लेकिन ज्ञानी की दृष्टि में उन शाखाओं-प्रशाखाओं में कोई विरोध न था। वे सभी एक ही वृक्ष से जुड़ी थीं और एक ही जड़ पर जीवित थीं। उन सभी का जीवन एक ही स्रोत से आता था।

बुद्ध स्रोत थे। ज्ञानी ने इसमें कुछ विरोध न देखा। इसमें इतना ही देखा कि बुद्ध में बड़ी संभावना है। ये जरा हैरानी की बात है, सारी मनुष्य जाति में बुद्ध ने जितनी संभावनाओं को जन्म दिया, किसी दूसरे आदमी ने नही दिया।

महावीर के वृक्ष में केवल दो शाखाएँ लगीं — दिगंबर, श्वेतांबर। बस। और उनमें भी कोई बहुत फासला नहीं है। क्षुद्र बातों का फासला है। कि कोई महावीर का शृंगार करके पूजता है, कोई महावीर को नग्न पूजता है। शृंगार के भीतर भी महावीर नग्न हैं, और नग्न में भी उनका बड़ा शृंगार है। इसमें कुछ बड़ा फासला नहीं है। उनकी नग्नता ही शृंगार है, अब और क्या सजाना है? उनको और सजाना तो ऐसे ही है जैसे कोई साँप पे पैर चिपकाए। वो साँप अकेला बिना पैर के ही खूब चलता था। अब तुम और पैर चिपका के उसे खराब मत करो। ये तो उन पर और शृंगार करना ऐसे ही है जैसे कोई मोर को और रंगों से पोत दे। मोर वैसे ही काफी रंगीन था, अब तुम कृपा करके रंग खराब मत करो।

महावीर की नग्नता में ही खूब शृंगार है। उन जैसी सुंदर नग्नता कभी प्रगट हुई? पर फिर तुम्हारी मौज है। तुम्हारा मन नहीं मानता — इसलिए नही कि महावीर में कुछ कमी है — तुम्हारा मन बिना किये कुछ नही मानता। तुम कुछ करना चाहते हो। करो भी क्या? महावीर जैसे व्यक्ति के सामने एकदम असमर्थ हो जाते हो। सुंदर कपड़े पहनाते हो, सुंदर आभूषण लगाते हो, ये तुम्हारी राहत है। इससे महावीर का कुछ लेना-देना नहीं। तुम्हारे सब वस्त्रों के पीछे भी वे अपनी नग्नता में खड़े हैं, नग्न ही है। ऐसे छोटे-छोटे फासले हैं।

दिगंबर कहते हैं कि उनकी कोई शादी नहीं हुई। श्वेतांबर कहते हैं शादी हुई। क्या फर्क पड़ता है? दिगंबर कहते हैं उनका कोई बच्चा नहीं हुआ — जब शादी ही नहीं हुई तो बच्चा कैसे हो? श्वेतांबर कहते है उनकी एक लड़की थी। पर क्या फर्क पड़ता है? महावीर में इससे क्या फर्क पड़ता है? शादी हुई कि न हुई? ये तो फिजूल के विस्तार की बातें हैं। महावीर के होने का इससे क्या लेना-देना? शादी हुई हो तो ठीक, न हुई हो तो ठीक। जिसको जैसी मौज हो वैसी कहानी बना ले। लेकिन कोई बहुत बड़ा विस्तार नही हुआ।

जीसस की भी दो शाखाएँ फूट के रह गयीं। 'प्रोटेस्टेंट' और 'केथॅलिक'। कोई बड़ा विस्तार नहीं हुआ।

बुद्ध अनूठे है, अद्वितीय है। सकड़ों शाखाएँ हुईं। और प्रत्येक शाखा इतनी विराट थी कि उसमें से भी प्रशाखाएँ हुईं। कहते हैं जितने दर्शन के मार्ग अकेले बुद्ध ने खोले उतने मनुष्य जाति मे किसी व्यक्ति ने नहीं खोले। बद्ध अकेले समस्त प्रकार के

दर्शनों का स्रोत बन गये। ऐसी कोई दार्शनिक परंपरा नहीं है जगत में जिसके समतुल परंपरा बुद्ध-धर्म में न हो।

अगर तुम बुद्ध-धर्म का पूरा इतिहास समझ लो, तो बाकी सब धर्मों का इतिहास छोड़ भी दो तो कुछ हर्जा न होगा; क्योंकि सारे जगत में जो भी कहीं हुआ है, जो विचार कहीं भी जन्मा है, वो विचार बुद्ध में भी जन्मा है। बुद्ध अकेले बड़े विराट वृक्ष हैं। ये तो सौंदर्य की बात है। ये तो अहोभाव और उत्सव की बात है। इसमें कुछ चिंता का कारण नहीं है। ये तो इतना ही बताता है कि बुद्ध में बड़ी संभावना थी। ज्ञानी ने तो उस संभावना का उपयोग किया। उसमें कोई झगड़ा न था। बिलकुल विपरीत जाने वाली शाखाएँ भी -- एक पूरब जा रही है, एक पश्चिम जा रही है -- फिर भी एक ही तने से जुड़ी होती हैं, विरोध कहाँ है? और उन दोनों का जीवन-स्रोत एक ही जगह से आता है। एक बुद्ध ही फैलते चले गये सब में। इससे कुछ अड़चन न थी। लेकिन अज्ञानी अड़चन खड़ी करता है। अज्ञानी की अड़चन ऐसी है कि वो ये भूल ही जाता है कि सभी विरोध अलग-अलग दिशाओं में जाती शाखाएँ हैं। एक ही स्रोत से जन्मी हैं।

मैंने सुना है, एक गुरु के दो शिष्य थे। गर्मी की दोपहर थी, गुरु विश्राम कर रहा था, और दोनों उसकी सेवा कर रहे थे। गुरु ने करवट बदली -- तो दोनों शिष्यों ने आधा-आधा गुरु को बाँट रखा था सेवा के लिए। बायाँ पैर एक ने ले रखा था, दायाँ पैर एक ने ले रखा था -- गुरु ने करवट बदली तो बायाँ पैर दाएँ पैर पे पड़ गया। स्वभावतः झंझट खड़ी हो गयी।

गुरु तो एक है। शिष्य दो थे। तो उन्होंने हिंदुस्तान-पाकिस्तान बाँटा हुआ था। तो जब दाएँ पैर पर बायाँ पैर पड़ा तो जिसका दायाँ पैर था उसने कहा, हटा ले अपने बाएँ पैर को। मेरे पैर पर पैर! सीमा होती है सहने की। बहुत हो चुका, हटा ले। तो उस दूसरे ने कहा, देखूँ किसकी हिम्मत है कि मेरे पैर को और कोई हटा दे! सिर कट जाएँगे, मगर मेरा पैर जहाँ रख गया रख गया। ये कोई साधारण पैर नहीं, अंगद का पैर है। भारी झगड़ा हो गया, दोनों लट्ठ लेके आ गये। गुरु ये उपद्रव सुनके उसकी नींद खुल गयी, उसने देखी ये दशा। उसने जब लट्ठ चलाने के ही करीब आ गये -- लट्ठ चलने वाले थे गुरु पर! क्योंकि जिसका दायाँ पैर था वो बाएँ पैर को तोड़ डालने को तत्पर हो गया था, और जिसका बायाँ पैर था वो दाएँ पैर को तोड़ डालने को तत्पर हो गया था। गुरु ने कहा, जरा रुको, तुम मुझे मार ही डालोगे। ये दोनों पैर मेरे हैं। तुमने विभाजन कैसे किया?

अज्ञानी बाँट लेता है और भूल ही जाता है। भूल ही जाता है कि जो उसने बाँटा है वो एक ही व्यक्ति के पैर हैं, या एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं। अज्ञानी ने उपद्रव

खड़ा किया। अज्ञानी लड़े। एक दूसरे का विरोध किया। एक दूसरे का खंडन किया। एक दूसरे को नष्ट करने की चेष्टा की। जब संप्रदाय अज्ञानी के हाथ में पड़ता है तब खतरा शुरू होता है।

ज्ञानी संप्रदाय को बनाता है, क्योंकि धर्म की शाखाएं-प्रशाखाएँ पैदा होती हैं। जितना जीवित धर्म, उतनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ। दुनिया से संप्रदाय थोड़े ही मिटाने हैं, अज्ञानी मिटाने हैं। जिस दिन संप्रदाय मिट जाएँगे, दुनिया बड़ी बेरौनक हो जाएगी। उस दिन गुरु बिना पैर के होगा। उसको फिर, जैसे भिखमगों को ठेले पर रखके चलना पड़ता है, ऐसे चलना पड़ेगा। फिर वृक्ष बिना शाखाओं के होगा। न पक्षी बसेरा करेंगे, न राहगीर छाया लेंगे। और जिस वृक्ष में पत्ते न लगते हों, शाखाएँ न लगती हों, उसका इतना ही अर्थ है कि जड़ें सूख गयीं। अब वहाँ जीवन नहीं। जीवन छोड़ चुका उसे, उड़ गया।

तुम पूछते हो बुद्ध के देह में जीवित रहते उनका भिक्षु-संघ एकता में रहा। नहीं, ज्ञानियों के लिए तो वह अब भी एकता में है। और तुमसे मैं कहता हूँ अज्ञानी के लिए वो तब भी एकता में नहीं था जब बुद्ध जीवित थे। तब भी अज्ञानी अपनी तैया-रियाँ कर रहे थे। तभी फिरके बँटने शुरू हो गये थे। बुद्ध के जीते जी अज्ञानियों ने अपने हिसाब बाँट लिए थे, अलग-अलग कर लिए थे। बुद्ध के मरने से थोड़ी' अचानक अज्ञान पैदा होता है। अज्ञानी तो पहले भी अज्ञानी था। वो कोई अचानक थोड़े ही अज्ञानी हो गया। और जो अज्ञानी है, बुद्ध के जीवित रहने से थोड़ा कुछ फर्क पड़ता है? अज्ञान तो तुम्हें छोड़ना पड़ेगा, बुद्ध क्या कर सकते हैं?

बुद्ध ने कहा है, मार्ग दिखा सकता हूँ, चलना तो तुम्हें पड़ेगा। समझा सकता हूँ, समझना तो तुम्हें पड़ेगा। अगर तुम न समझने की ही जिद्द किये बैठे हो, अगर समझने के लिए तुम में जरा भी तैयारी नहीं है — तैयारी नहीं दिखायी है — तो बुद्ध लाख सिर पीटते रहें, कोई परिणाम नहीं हो सकता।

तीसरा प्रश्न : क्या जीवन में सभी कुछ नदी-नाव-संयोग है? बुद्ध भी, बुद्धत्व भी?

नहीं। बुद्धत्व को छोड़कर सभी कुछ नदी-नाव-संयोग है। क्योंकि बुद्धत्व तुम्हारा स्वभाव है, संयोग नहीं। ऐसा नहीं है कि तुम्हें बुद्ध होना है। तुम बुद्ध हो। बस इतना ही है कि तुम्हें पहचानना है। ऐसा नहीं है कि तुम्हें बुद्धत्व अर्जित करना है। तुमने कभी गवाँया ही नहीं। प्रत्यभिज्ञा करनी है। पहचान करनी है। जो मिला ही है, जागकर देखना है।

बुद्धत्व संयोग नहीं है। बुद्धत्व किन्हीं परिस्थितियों पे निर्भर नहीं है। न तुम्हारी साधना पर निर्भर है, याद रखना। ये मत सोचना कि तुम बहुत ध्यान करोगे इस-

लिए बुद्ध हो जाओगे। बहुत ध्यान, बहुत तपश्चर्या से शायद तुम्हें जागने में आसानी होगी बुद्धत्व के प्रति, लेकिन बुद्ध होने में नहीं। बुद्ध तो तुम थे। गहरी तंद्रा में थे और खर्राटे ले रहे थे, तब भी तुम बुद्ध ही थे। भटक रहे थे योनियों में — अनंत योनियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह — जी रहे थे कामवासना में, हजार क्रोध और लोभ में, तब भी तुम बुद्ध ही थे। यह सब सपने थे जो तुमने देखे। लेकिन सपनों के पीछे तुम्हारा मूलस्रोत सदा ही शुद्ध था। वो कभी अशुद्ध हुआ नहीं। अशुद्ध होना उसकी प्रकृति नहीं।

और सब जीवन में नदी-नाव-संयोग है। किसी स्त्री के तुम प्रेम में पड़ गये, तुमने शादी कर ली, वो नदी-नाव-संयोग है। धन कमा लिया किसीने और कोई न कमा पाया, वो नदी-नाव-संयोग है। किसीने यश कमा लिया और कोई बदनाम हो गया, वो नदी-नाव-सयोग है। वो हजार परिस्थितियों पे निर्भर है। वो तुम्हारा स्वभाव नहीं। वो बाहर पर निर्भर है, भीतर पर नहीं।

सिर्फ एक चीज नदी-नाव-संयोग नहीं है, वो है तुम्हारा होना। शुद्ध होना। बुद्धत्व भर संसार के बाहर है, शेष सब संसार है। तो जिस दिन तुम जागते हो, उस दिन तुम अचानक संसार के बाहर हो जाते हो, अतिक्रमण हो जाता है।

ऐसा समझो कि तुम एक सपना देख रहे हो। सपने में कोई देख रहा है गरीब है, कोई देख रहा है अमीर है। कोई देखता है साधु, कोई देखता है असाधु। कोई देखता है हजार पाप कर रहा हूँ, कोई देखता है हजार पुण्य कर रहा हूँ। ये सब नदी-नाव-सयोग है। ये सब सपना है। लेकिन वह जो सपना देख रहा है, वो जो द्रष्टा है, वो नदी-नाव-संयोग नही है। चाहे सपना तुम साधु का देखो, चाहे असाधु का, सपने में भेद है, देखनेवाले में कोई भेद नही है। वो देखनेवाला वही है। चाहे साधु, चाहे असाधु; चाहे चोर, चाहे अचोर; पाप करो, पुण्य करो; वो जो देखनेवाला है भीतर वो एक है। उस देखनेवाले को ही जान लेना बुद्धत्व है। स्वयं को पहचान लेना बुद्धत्व है। शेष सब पराया है। शेष सब संयोग से बनता मिटता है। इसलिए शेष की फिकिर नासमझ करते हैं। जो संयोग पर निर्भर है उसकी भी क्या फिक्र करनी ?

थोड़ा समझो।

तुम एक गरीब घर में पैदा हुए। तुम्हें ठीक से शिक्षा नहीं मिल सकी, तो कुछ द्वार बंद हो गये संयोग के। तुम एक जंगल में पैदा हुए, एक आदिवासी समाज में पैदा हुए। अब वहाँ तुम उस आदिवासी समाज में शेक्सपियर न बन सकोगे, न कालिदास बन सकोगे। संयोग की बात है। तुम पूरब में पैदा हुए तो एक संयोग, पश्चिम में पैदा हुए तो दूसरा संयोग। इन संयोगों पर बहुत सी बातें निर्भर हैं — सभी बातें

निर्भर है — एक को छोड़कर। एक भर अपवाद है। और इसीलिए धर्म उसकी खोज है जो संयोग के बाहर है। धर्म उसकी खोज है, जो परिस्थिति पर निर्भर नहीं है। धर्म उसकी खोज है, जो किसी चीज पर निर्भर नहीं है। जो परम स्वातंत्र्य का सूत्र है तुम्हारे भीतर, उसकी खोज है।

शेष सब तुम खोजते हो, वो सब संयोग की बात है। और छोटे-छोटे संयोग बड़े महत्वपूर्ण हो जाते हैं। किसीको बचपन में ही चेचक निकल गयी और चेहरा कुरूप हो गया। अब इसकी पूरी जिंदगी इस चेचक पे निर्भर होगी। क्योंकि शादी करने में इस व्यक्ति को अड़चन आएगी। इस व्यक्ति को जिंदगी में चलने में हजार तरह की हीनताएँ घेरेंगी। यह सब संयोग की ही बात है।

लेकिन, चेहरा सुंदर हो कि कुरूप, काला हो कि गोरा, वो जो भीतर द्रष्टा है, वो एक है। जिसने उसे खोजना शुरू कर दिया, उसने सत्य की तरफ कदम रखने शुरू कर दिये।

तो इस बात को स्मरण रखो कि जो भी संयोग मालूम पड़े उस पर बहुत समय मत गवाँना, बहुत शक्ति मत लगाना। बहुत अपने को उस पर निर्भर मत रखना। वो है तो ठीक, नहीं है तो ठीक। चिंतन करना उसका, मनन करना उसका, ध्यान करना उसका, जो संयोगातीत है। उसका ही नाम बुद्धत्व है।

जिंदगी एक आँसुओं का जाम था
पी गये कुछ और कुछ छलका गये

जिंदगी तो आँसुओं का प्याला है। जो तुम पी रहे हो, वो तो आँसू ही हैं। कभी-कभार शायद जीवन में सुख की थोड़ी सी झलक भी मिलती है; लेकिन वो भी संयोग-निर्भर है। इसलिए उसके भी तुम मालिक नहीं। कब जिंदगी तुम पे मुस्कुरा देगी, उसके तुम मालिक नहीं। इसको ही तो पुराने ज्ञाताओं ने भाग्य कहा था, कि वो सब भाग्य की बात है। भाग्य का इतना ही अर्थ है कि वो संयोग की बात है, उसकी चिंता में बहुत मत पड़ो। जो भाग्य है, वो हजार कारणों पर निर्भर है। लेकिन जो तुम हो, वो किसी कारण पर निर्भर नहीं है।

मैं एक यहूदी विचारक फ्रेंकल का जीवन पढ़ता था। वो हिटलर के कारागृह में कैद था। उसने लिखा है कि हिटलर के कारागृह से और खतरनाक कारागृह दुनिया में कभी रहे नहीं। दुख, पीड़ा, सब तरह का सताया जाना, सब तरह का अपमान, हर छोटी-छोटी बात पर जूतों से ठुकराया जाना, लेकिन वहाँ भी उसने लिखा है कि मुझे धीरे-धीरे एक बात समझ में आ गयी कि मेरी स्वतंत्रता अक्षुण्ण है।

जब मैं पढ़ रहा था उसका जीवन तो मैं भी चौंका, कि इसने अपनी स्वतंत्रता वहाँ कैसे पायी होगी? हिटलर ने सब इंतजाम कर दिये परतंत्र करने के, दीन करने के,

दुखी करने के; एक रोटी का छोटा सा टुकड़ा रोज मिलता, वो एक दफे भोजन के लिए काफी नहीं था, तो लोग उसे छिपा-छिपा के रखते। फ्रेंकल बड़ा मनोवैज्ञानिक, प्रतिष्ठित विचारक। लेकिन उसने भी लिखा है कि बड़े डॉक्टर मेरे साथ थे, जिन्होंने कभी सोचा भी न होगा किसीकी दूसरे की रोटी का टुकड़ा चुरा लेंगे; बड़े धनपति मेरे साथ थे, जो अपनी रोटी के टुकड़े को एक-एक टुकड़ा कर के खाते—एक टुकड़ा सुबह खा लिया जरा सा, फिर दोपहर में खा लिया, क्योंकि इतनी बार भूख लगेगी, थोड़ा-थोड़ा करना ज्यादा बेहतर बजाय एक बार खा लेने के। फिर चौबीस घंटे भूखा रहना पड़ता है। तो छोटा-छोटा मन को समझाते। लोग अपनी रोटी को छिपाके रखते, बार-बार देख लेते कि कोई दूसरे ने निकाल तो नहीं ली, क्योंकि सौ कैदी एक जगह बंद। रात लोग एक दूसरे के बिस्तर में से टटोलके रोटी निकाल लेते। ऐसा दीन हिटलर ने कर दिया। लेकिन, उसने लिखा है, फिर भी मुझे एक बात समझ में आ गयी कि मेरी स्वतंत्रता अक्षुण्ण है।

कैसे?

तो उसने लिखा है कि सब परतंत्र हो गया है, लेकिन इस परतंत्रता की तरफ मैं क्या दृष्टि लूं, उसके लिए मैं मालिक हूँ। क्या दृष्टि लूँ, कैसे इसे देखूँ, स्वीकार करूँ, अस्वीकार करूँ, लड़ूँ, न लड़ूँ—द्रष्टा स्वतंत्र है। और उसने लिखा है कि जिनको भी ये स्वतंत्रता का अनुभव हुआ, उन्होंने पाया कि ऐसी स्वतंत्रता की प्रतीति बाहर कभी भी न हुई थी। क्योंकि जहाँ इतनी परतंत्रता थी — इतनी काली दीवाल थी — वहाँ स्वतंत्रता की छोटी सी सफेद लकीर बड़ी उभर के दिखायी पड़ने लगी।

तो उसने लिखा, वहाँ भी दो तरह के लोग थे कारागृह में। स्वतंत्र लोग भी थे वहाँ, जो स्वतंत्र ही रहे। वहाँ असली पता चल गया कि कौन स्वतंत्र है? उनको हिटलर झुका न सका, उनको तोड़ न सका। उनको भूखा मार डाला, उनको कोड़े लगाए, लेकिन उनको झुकाया न जा सका। उनको मारा जा सका, लेकिन झुकाया न जा सका। उनकी स्वतंत्रता अक्षुण्ण थी। कौन तुम्हें कारागृह में डाल सकता है? लेकिन, अगर तुम्हारे भीतर द्रष्टा का बोध ही न हो, तो तुम अपने घर में भी कारागृह में हो जाते हो।

खुदा गवाह है दोनों हैं दुश्मने-परवाज
गमे कफस हो कि राहत हो आशियाने की

कारागृह का दुख हो, वह तो बाँधता ही है। 'कि राहत हो आशियाने की'— घर की सुख-सुविधा भी बाँध लेती है। जिसको बँधना है, वो कहीं भी बँध जाता है। उसके लिए कारागृह जरूरी नहीं। तुम अपने घर को ही सोचो। तुमने कब का उसे

कारागृह बना लिया। तुम स्वतंत्र हो अपने घर में? अगर तुम स्वतंत्र नहीं हो, अगर वहाँ भी तुम्हारी मालिकियत नहीं है, अगर वहाँ भी तुम्हारा दृष्टा मुक्त नहीं हुआ है, अगर तुम कहते हो मेरा घर, तो तुम गुलाम हो। अगर तुम कहते हो इस घर में मैं रहता हूँ, और ये घर मुझमें नहीं, तो तुम मालिक हो।

खुदा गवाह है दोनों हैं दुश्मने-परवाज

आकाश में उड़ने की क्षमता दोनों छीन लेते हैं — 'गमे कफस हो कि राहत हो आशियाने की'। कारागृह तो छीन लेता है आकाश में उड़ने की क्षमता, घर की सुख-सुविधा भी छीन लेती है। सुरक्षा भी छीन लेती है।

तो असली सवाल न तो घर का है और न कारागृह का है। असली सवाल तुम्हारा है। तुम अगर कारागृह में भी द्रष्टा बने रहो, तो तुम मुक्त हो। और तुम घर में भी अगर द्रष्टा न रह जाओ, भोक्ता हो जाओ, तो बँध गये।

द्रष्टा हो जाना बुद्ध हो जाना है। बुद्धत्व कुछ और नहीं मांगता, इतना ही कि तुम जागो, और उसे देखो जो सब को देखनेवाला है। विषय पर मत अटके रहो। दृश्य पर मत अटके रहो। द्रष्टा में ठहर जाओ। अकंप हो जाए तुम्हारे द्रष्टा का भाव, साक्षी का भाव, बुद्धत्व उपलब्ध हो गया। और ऐसा बुद्धत्व सभी जन्म के साथ लेके आए है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ बुद्धत्व जन्मसिद्ध अधिकार है। जब चाहो तब तुम उसे उठा लो, वो तुम्हारे भीतर सोया पड़ा है। जब चाहो तब तुम उघाड़ लो, वो हीरा तुम लेकर ही आए हो; उसे कहीं खरीदना नहीं, कहीं खोजना नहीं।

चौथा प्रश्न : होशपूर्ण व्यक्ति भूल नही करता तो कृपया मेरे नाम में अँग्रेजी और हिंदी में इस अंतर का क्या रहस्य है? हिंदी : स्वामी श्यामदेव सरस्वती, और अँग्रेजी : स्वामी श्यामदेव भारती।

तुमसे बात करना करीब-करीब ऐसे है जैसे दीवाल से बात करना। तुमसे बात करना करीब-करीब ऐसे है जैसे बहरे आदमी से बात करना। तुम जो समझना चाहते हो वही समझते हो। तुम्हें लाख कुछ और दिखाने के उपाय किये जाएँ, तुम उनसे चूकते चले जाते हो। और बड़े मजे की बात है कि तुम जिन सिद्धांतों से मुक्त हो सकते थे, जो सिद्धांत तुम्हारे जीवन को नये आकाश से जोड़ देते, वे ही सिद्धांत तुम अपनी जंजीरों में ढाल लेते हो।

जैसे, यह बात बिलकुल सच है कि बुद्धपुरुष भूल नहीं करते। लेकिन इसका ये अर्थ नहीं है कि जिन चीजों को तुम भूल समझते हो वैसी भूल बुद्धपुरुष नहीं कर सकते। बुद्धपुरुष कोई मुर्दा थोड़ी' है। सिर्फ मुर्दा बिलकुल भूल नहीं करते। तो

तुम्हारे हिसाब में तो सिर्फ मुर्दे ही बुद्धपुरुष हो सकते हैं। इसीलिए तो जीवित गुरु को पूजना बहुत कठिन है। मरे हुए गुरु को पूजना आसान होता है। क्योंकि मरा हुआ गुरु फिर कोई भूल नहीं कर सकता।

बुद्धपुरुष का तुमने क्या अर्थ ले लिया है? जैसे कि पीछे मैंने कहा कि बुद्ध एक मार्ग से गुजरते थे। एक मक्खी उनके कंधे पे आके बैठ गयी। वो बात कर रहे थे आनंद से, उन्होंने उसे उड़ा दिया। मक्खी तो उड़ गयी, फिर वो रुक गये। और उन्होंने फिर से अपना हाथ उठाया और बड़े आहिस्ता से मक्खी को उड़ाने को गये। आनंद ने पूछा, अब आप क्या करते हैं, मक्खी तो जा चुकी। बुद्ध ने कहा, अब मैं ऐसे उड़ाता हूँ जैसे उड़ाना चाहिए था। तुझसे बात में लगा था, बिना होश के मक्खी उड़ा दी। चोट लग जाती कहीं, मक्खी पर हाथ जोर से पड़ जाता कहीं — पड़ा नहीं, संयोग — तो हिंसा हो जाती। मैंने जानके नहीं की होती, फिर भी हो तो जाती। तत्क्षण दूसरे दिन प्रश्न आ गया कि बुद्धपुरुषों से तो कोई भूल होती नही, और बुद्धपुरुष ने कैसे मक्खी उड़ा दी आनंद से बातचीत करते हुए? तुम पागल हो। बुद्धपुरुष से भूल नही होती, इसीका सबूत है उनका दुबारा मक्खी को उड़ाना। अगर तुम जैसे बुद्ध होते, तो चुप रह जाते। अगर वो भी इस सिद्धांत को मानते होते कि बुद्धपुरुष से भूल नहीं होती, कैसे उड़ाएँ। आनंद क्या कहेगा, कि आप बुद्ध होके और भूल कर लिए?

बुद्धपुरुष से भूल नहीं होती, लेकिन अगर हो जाए तो बुद्धपुरुष तत्क्षण स्वीकार कर लेता है। बिना किसीके बताए भी। भूल नहीं होती इससे भी बड़ी बात ये है कि वो भूल को स्वीकार कर लेता है। तुमसे भूल भी होती और भूल को स्वीकार करने में कष्ट भी होता है, अड़चन भी होती है। तुम भूल को छिपाते हो, तुम ढांकते हो। तुम चेष्टा करते हो कि किसीको पता न चले कि हो गयी। अब ये मक्खी उड़ाने की बात तो दुनिया मे कभी किसीको पता भी न चलती। कि चलती? कौन बैठा था वहाँ खुर्दबीन लेके? आनंद को भी पता न था, वो अगर दुबारा हाथ न ले जाते तो आनंद को भी पता न चलता। पर ये सवाल नहीं है।

बुद्ध ने इतना ही कहा कि अगर चैतन्य एक तरफ उलझा हो, जैसे आनंद से बात कर रहे थे तो सारा ध्यान उस तरफ था। बुद्धपुरुष जो भी करते हैं पूरे ध्यान से करते हैं — तो जब वो बात कर रहे थे तो सारा ध्यान उस तरफ था। वो तुम जैसे कटे-बँटे नही है कि बाएँ देख रही है आधी खोपड़ी, और आधी खोपड़ी दाएँ देख रही है। वो पूरे ही आनंद की तरफ मुड़ गये होंगे।

तुम्हें भूल दिखायी पड़ती है, मुझे उनके ध्यान की एकाग्रता दिखायी पड़ती है। वो इतने तल्लीन होके आनंद से बात करते थे कि जैसे सारा संसार मिट गया था।

सारा संसार मिट गया था, मक्खी की तो बात क्या ! ऐसी घड़ी में शरीर ने यंत्रवत् मक्खी उड़ा दी। बुद्ध ने उड़ायी मक्खी भूल से, ऐसा कहना भी गलत है । क्योंकि बुद्ध तो मौजूद ही न थे । बुद्ध तो मौजूद थे आनंद से चर्चा में। शरीर ने उड़ा दी। शरीर बहुत से काम यंत्रवत् करता है । रात तुम सोए भी रहते हो, मच्छर आ जाता है, हाथ उड़ा देता है । उसके लिए जागने की भी जरूरत नहीं होती । तुम बैठे हो, कोई एक कंकड़ फेंक दे तुम्हारी आंख की तरफ, तो तुम्हें आँख बंद थोड़ी ' करनी पड़ती है । आँख अपने से बंद हो जाती है। वो स्वचालित है, ' ऑटोमैटिक ' है । और अच्छा है कि स्वचालित है । नहीं तो कंकड़ पड़ जाता और तुम आँख बंद करने की सोचते ही रहते, करें बद, कि न करें । इसलिए प्रकृति ने तुमपर नहीं छोड़ा है । तुम्हारे लिए नहीं छोड़ा है कि तुम सोचो, फिर बंद करो । उसमें तो खतरा हो जाएगा । आँख जैसी नाजुक चीज तुम्हारे ऊपर नहीं छोड़ी जा सकती । प्रकृति ने इंतजाम किया है । जैसे ही कोई चीज करीब आएगी, आँख अपने से बंद हो जाएगी। तुम थोड़ी ' आँख झपकाते हो, आँख झपकती है ।

तुमने कभी ख्याल किया कि बहुत से काम शरीर चुपचाप किए चला जाता है। तुमने भोजन किया । शरीर पचाता है, तुम थोड़ी' पचाते हो । तुम्हें तो फिर ख्याल भी नहीं रखना पड़ता कि शरीर पचा रहा है । अपने आप पचाए चला जाता है ।

उस घड़ी बुद्ध ने जो पहली दफा मक्खी उड़ायी, वो बुद्ध ने उड़ायी यह कहना ही गलत है । कहने की बात है, इसलिए उस तरह कही गयी । हुआ ऐसा कि बुद्ध तो पूरे के पूरे आनद से चर्चा में मौजूद थे, मक्खी आ गयी, शरीर ने उड़ा दी । बुद्ध ने शरीर को सुधारा, जब दुबारा उन्होंने मक्खी उड़ायी तो उन्होंने शरीर को एक पाठ दिया कि ऐसे उड़ानी थी —— मैं घर पे नहीं था तो भी गलती नहीं होनी चाहिए । मै मौजूद नही था, तो भी गलती नहीं होनी चाहिए । अगर मै न भी रहूँ तो भी तुझे ऐसे ही मक्खी उडानी चाहिए जैसे बुद्धपुरुषो को शोभा देती है । ये शरीर को थोड़ा सा संशोधन किया ।

लेकिन तत्क्षण दूसरे दिन सवाल आ गया कि बुद्धपुरुषों से भूल हो गयी । तुम इतने उत्सुक हो भूल दूसरे की देखने में कि बुद्धपुरुषों मे भी देखने का रस तुम्हारा छूटता नहीं । किसीने एक दिन पूछा कि कभी-कभी मैं बोलने में किसी शब्द की भूल कर जाता हूँ । बुद्धपुरुषों से भूल नहीं हो सकती । तो जाहिर है, या तो मै बुद्धपुरुष नही हूँ, या फिर बुद्धपुरुषों से भूल होती है । इसलिए मै कहता हूँ तुम्हारे सामने बोलना करीब-करीब भैंस के सामने बीन बजाने जैसा है ।

जब मैं तुमसे बोल रहा हूं तब मैं तुम्हारे साथ इतनी गहनता से हूं कि मै मस्तिष्क पर ध्यान ही नहीं दे सकता। तो बोलने का काम और शब्द बनाने का काम तो

मस्तिष्क का यंत्र कर रहा है -- जैसे बुद्ध के हाथ ने मक्खी उड़ा दी थी, ऐसा मेरा मस्तिष्क तुमसे बोले चला जाता है, मैं तो तुम्हारे साथ हूँ। यंत्र कई दफे भूलें कर जाता है। यंत्र की भूलें मेरी भूलें नहीं हैं। और जिसने मुझे पहचाना, वो ऐसे सवाल न उठाएगा। ऐसे सवाल तुम्हारे मन में उठ जाते हैं, क्योंकि तुम आ गये हो भला मेरे पास लेकिन झुकने की इच्छा नहीं है। कोई भी बहाना मिल जाए, तो तुम अपना झुकना वापिस ले लो -- कि अरे! इस आदमी से एक शब्द की भूल हो गयी! कहना कुछ था, कह कुछ और दिया। फिर पीछे सुधारना पड़ा। तुम इस तलाश में हो कि किसी भी तरह तुम्हारा समर्थन बच जाए।

सचाई ये है कि मैं एक बहुत कठिन काम कर रहा हूँ। तुम्हारे साथ हो सकता हूं पूरा, बोलने की वजह से एक दूसरा काम भी मुझे साथ में करना पड़ रहा है। अच्छा तो यही होता कि मैं चुप हो जाता। तुम्हें भी भूल न मिलती, मेरी भी झंझट छूट जाती। लेकिन तुम शब्दों को भी नहीं समझ पा रहे हो, तुम मौन को भी न समझ पाते। मेहरबाबा चुप हो गये। तो ऐसे लोग थे जो समझते थे कि बोलने को कुछ नहीं आता इसलिए चुप हो गये। तुम वहाँ भी भूल खोज लोगे। बुद्ध ने बहुत से प्रश्नों के जवाब न दिये, तो सुननेवालों ने समझा कि इनको कुछ आता नहीं। जब आता ही नहीं तो जवाब कैसे देंगे? बुद्ध ने इसलिए जवाब नहीं दिये कि जवाब उन बातो के दिये ही नहीं जा सकते। उन बातों का जवाब केवल वही दे सकता है जो जानता नहीं। जो जानता है, वो चुप रह जाएगा।

जब मैं तुमसे बोल रहा हूँ तो मैं एक अति कठिन काम कर रहा हूँ। पहला कि तुम्हारी और मेरी उपस्थिति संपूर्ण रूप से एक हो जाए। तो बोल नहीं सकता। या फिर मैं बोलूं। तो तुमसे मेरी उपस्थिति का कोई मिलन न हो पाए। तो फिर बोल सकता हूँ, लेकिन वे शब्द फिर कोरे होंगे। तब शब्द की कोई भूल न होगी। पंडित से कभी शब्द की भूल नहीं होती। बुद्धों से होती है। पंडित शब्द में कुशल होता है, क्योंकि यंत्र को ही निखारता रहता है। शब्द तो कामचलाऊ है। जो मुझे कहना है, वो इन कामचलाऊ शब्दों से तुम समझ लेना। तुम ये बैठे मत सोच लेना कि व्याकरण की कोई भूल हो गयी। तो बुद्धपुरुषों से कैसे भूल हो सकती है? व्याकरण मुझे आती ही नहीं। इतना चला ले रहा हूँ वह भी चमत्कार है! मौन आता है, भाषा नहीं आती। किसी तरह चला ले रहा हूँ।

अब इन मित्र ने पूछा है कि होशपूर्ण व्यक्ति भूल नहीं करता, तो कृपया मेरे नाम में अँग्रेजी में तो लिखा है -- स्वामी श्यामदेव भारती, और हिंदी में लिखा है -- स्वामी श्यामदेव सरस्वती। जरूर मैं तुम्हें देखने में लग गया होऊँगा जब ये नाम लिखे। और संभावना इसकी है श्यामदेव भारती! श्यामदेव सरस्वती! कि तुम दो आदमी

हो, एक नहीं। 'स्प्लिट', टूटे हुए। दर्पण में दो चेहरे बन गये होंगे। इस तरह भी तुम देख सकते थे। लेकिन उस तरह देखोगे तो तुम्हारी जिंदगी तुम्हें बदलनी पड़े ! तुमने तत्क्षण देखा कि अरे ! बुद्धपुरुष से भूल हो गयी। कहाँ फँस गये ? कोई और बुद्धपुरुष खोजें, जो श्यामदेव सरस्वती लिखे तो श्यामदेव सरस्वती ही लिखे।

झेन फकीर हुआ लिंची। वो अपने शिष्यों को नाम दे देता और भूल जाता। किसीको कोई नाम दे देता और जब वो दूसरे दिन उसको बुलाता तो वो किसी और नाम से बुलाता। लोग कहते भी, ये क्या बात हुई ? हमने तो सुना है कि बुद्धपुरुष कभी इस तरह का विस्मरण नहीं करते। लिंची कहता, लेकिन जिसको मैंने नाम दिया था कल, वो अब है कहाँ ? तुम कुछ और ही होके आ गये हो। तुम्हीं आते जो कल थे, तो पहचान भी लेता। तुम्हीं बदल के आ गये तो अब मैं क्या करूँ ?

दूसरा फकीर हुआ बोकूजू। वो रोज सुबह उठके कहता, बोकूजू ! और फिर खुद कहता, 'यस सर'। जी हाँ, यहीं हूँ। उसके शिष्य पूछते कि ये क्या मामला है ? वो कहता रात सोने में भूल जाते हैं कि कौन सोया था ? सुबह अगर याद न कर लो, ऐसा दो-चार-दस दिन निकल जाएँ, अपना नाम ही भूल जाए ! क्योंकि मैं कोई नाम तो नहीं हूँ।

मन की इस वृत्ति को थोड़ा बदलो। अगर मेरी कोई भूल होगी, तो उसको मैं भोगूँगा, तुम क्यों परेशान हो। मेरे पाप, मेरी भूलें मुझे भटकाएँगे। तुम अपनी भूलों को सुधार लो। तुम अपने होश को सम्हाल लो। और इस तरह की व्यर्थ की बातें मत पूछो।

अंतिम प्रश्न : पतंजलि और सारे बुद्धपुरुषों ने कहा है, समाधि। परंतु कृष्णमूर्ति कहते है, समझ। समाधि से तो लगता है समझ फलित हो सकती है, परंतु समझ से समाधि कैसे फलित हो सकती है ? क्या केवल समझ से बुद्धत्व की स्थिति प्राप्त की जा सकती है ? भगवान, इसे ठीक से समझाएँ।

शब्दों का ही भेद है समझ और समाधि में। जिसे कृष्णमूर्ति समझ कहते हैं, उसीको पतंजलि समाधि कहते है। तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूँ कहाँ है। क्योंकि तुम सोचते हो समझदार तो तुम हो। इसलिए क्या अकेली समझ से समाधि फलित हो सकती है ? क्योंकि अगर ऐसा होता, तब तो समाधि फलित हो गयी होती, समझदार तुम हो। बुरा न मानना, समझदार भी तुम नहीं हो। समाधि भी तुम्हें अभी फलित

नहीं हुई। समझ तो समाधि बन ही जाती है। समझ और समाधि एक ही घटना के नाम हैं।

कृष्णमूर्ति को पुराने शब्दों का उपयोग करने में थोड़ी अड़चन है। अड़चन यही है कि पुराने शब्द पुराने अर्थों से बहुत बोझिल हो गये हैं। इसलिए कृष्णमूर्ति नये शब्दों का उपयोग करते हैं। लेकिन शब्दों का तुम चाहे कुछ भी, कितना ही नया उपयोग करो, तुम गुलाब के फूल को, गुलाब कहो या चमेली कहना शुरू कर दो, इससे गुलाब का फूल न बदल जाएगा। तुम्हारे चमेली कहने से तुम गुलाब के फूल को न बदल दोगे। तुम नाम बदलते चले जाओ, गुलाब का फूल ही रहेगा। आदमी ने परमात्मा की कितनी प्रतिमाएँ बनायीं। प्रतिमाएँ अलग-अलग हैं, परमात्मा एक है।

कृष्णमूर्ति किसे समझ कहते हैं? अगर उनकी तुम परिभाषा समझोगे, तो तुम पाओगे वो परिभाषा वही है जिसको पतंजलि ने समाधि कहा है। क्या है कृष्णमूर्ति की परिभाषा समझ की? वे कहते हैं, समझ का अर्थ है होश, परिपूर्ण जागृति। वे कहते हैं, समझ का अर्थ है विचारों के ऊहापोह का शांत हो जाना। निर्मल दृष्टि का अविर्भाव। ऐसे देखना कि देखो तो जरूर, लेकिन चित्त का धुआँ तुम्हारी आँखों पर न हो। धुआँ से रहित जब तुम्हारी चेतना की ज्योति जलती है, तब समझ।

पतंजलि भी यही कहता है — निर्विचार, निर्विकल्प। न कोई सोच-विचार, न कोई कल्प-विकल्प मन में, वही स्थिति समाधि। समाधि का अर्थ होता है समाधान। जहाँ सब चिंतन समाप्त हो गया, सब प्रश्न गिर गये, उस समाधान की अवस्था में तुम एक दर्पण बन जाते हो। उस दर्पण में जो है — 'जो है' कृष्णमूर्ति का शब्द है परमात्मा के लिए। कृष्णमूर्ति कहते हैं — 'दैट व्हिच इज', जो है। पतंजलि कहेगा — सत्य। मीरा कहेगी — कृष्ण। बुद्ध कहेंगे — निर्वाण। ये उनके अपने-अपने शब्द हैं। जो है, वो तुम्हें उसी क्षण दिखायी पड़ेगा जब तुम्हारी सब धारणाएँ गिर जाएँगी। जबतक तुम धारणा से देखोगे, तबतक तुम वही देख लोगे जो तुम्हारी धारणा दिखा देगी। जैसे किसीने रंगीन चश्मा लगाके संसार देखा, तो उसी रंग का दिखायी पडने लगता है। हर धारणा का रंग है। समझ निर्धारणा है। उसका कोई रंग नहीं। समझ का अर्थ है, वही दिखायी पड़ जाए जो है। जैसा है, वैसा ही दिखायी पड़े।

इन शब्दों के बहुत जाल में तुम मत पड़ना। तुम्हें जो रुच जाए, जो भा जाए। समझ भा जाए, ठीक। मगर मेरा खयाल है, समझ से तुम्हें अड़चन इसीलिए होती है कि तुम सोचते हो समझदार तो हम हैं। समाधि को पाना है। शायद तुम यह भी सोचते हो कि चूंकि हम समझदार हैं इसीलिए तो समाधि पाने निकले। ना-

समझ कही समाधि पाने की चेष्टा करते हैं ! लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, नासमझ वही है जिसने अपने को समझदार समझ लिया है । सभी नासमझ अपने को समझदार समझते हैं, तुम्हीं थोडी ' ।

समझदार वही है जिसने अपनी नासमझी पहचान ली है । और जिसने अपनी नासमझी पहचान ली है, वो धीरे-धीरे — उपाय हैं उसके — या तो वो शुद्ध समझदारी के ही सूत्र को बड़ा करता चला जाए । प्रत्येक कृत्य जागके करने लगे, होश से करने लगे — उठे तो होशपूर्वक, बैठे तो होशपूर्वक, चले तो होशपूर्वक, जो कुछ भी करे उसके पीछे होश साध ले ; और दूसरा उपाय पुराना उपाय है, कि अगर इतना न हो सके, तो कम से कम घड़ी भर, दो घड़ी चौबीस घंटे में से निकाल ले और उन दो घड़ियों को समाधि के क्षणों में बिताए, ध्यान में बिताए । घड़ी भर अगर तुमने ध्यान में बिताया, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे, उस ध्यान का प्रभाव चौबीस घड़ियो पर फैलने लगा ; क्योंकि ये असंभव है कि तुम एक घंटे के लिए स्वस्थ हो जाओ और तेईस घंटे बीमार रहो । एक घंटे को भी जो स्वस्थ हो गया, उसके स्वास्थ्य की लहरें चौबीस घंटों पे फैल जाएँगी । तो पुराने मनीषियों ने कहा है, चौबीस घंटे तुम आज शायद निकाल भी न पाओ — तुमसे आशा भी रखनी उतनी उचित नहीं है — तुम घड़ी भर निकाल लो । ऐसा नहीं कि उन्हें पता नही कि घडी भर से क्या होगा ? लेकिन शुरुआत होगी । और जब हाथ पकड़ में आ जाए, तो फिर धीरे-धीरे पूरे सत्य को ही पकड़ा जा सकता है ।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, अलग से ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं । ठीक ही कहते है । जिन्होने अलग से करने को कहा है वो भी जानते हैं कि अलग से करने की कोई जरूरत नहीं । लेकिन अभी तुम चौबीस घंटे कर सकोगे, इतनी अपेक्षा वो नही करते ।

कृष्णमूर्ति ने तुमपे ज्यादा भरोसा कर लिया है । पतंजलि उतना भरोसा तुमपे नही करते । और इसलिए पतंजलि ने तो तुममें से कुछ को समाधि तक पहुँचा दिया है, कृष्णमूर्ति न के बराबर; किसीको पहुँचा पाए हों ! तुम पे जरा ज्यादा भरोसा कर लिया । तुम घुटने से सरक-सरक के चलते थे और कृष्णमूर्ति ने मान लिया कि तुम दौड़के चल सकते हो ।

कृष्णमूर्ति ने जो बात कही है, अपने हिसाब से कह दी, तुम्हारी चिंता नही की । पतंजलि ने जो बात कही है उसमें तुम्हारी चिंता है । पतंजलि ने सीढ़ियाँ रखी हैं, कृष्णमूर्ति ने छलाँग । तुम सीढ़ियाँ चढ़ने तक की हिम्मत नही जुटा पाते, तुम छलाँग क्या खाक लगाओगे ! और अक्सर ऐसा होता है कि जो सीढ़ियों पे चढ़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वो कृष्णमूर्ति में उत्सुक हो जाते हैं । क्योंकि यहाँ तो सीढ़ियाँ चढ़नी

ही नहीं, छलांग लगानी है। और वो कभी ये सोचते नहीं कि हम सीढ़ियाँ चढ़ने तक का साहस नहीं कर पा रहे, हम छलाँग कैसे लगाएँगे? लेकिन छलाँग लगानी है, सीढ़ियाँ चढ़ने से क्या होगा, इस भाँति बहाना मिल जाता है। सीढ़ियाँ चढ़ने से बच जाते है और छलाँग तो लगानी किसको?

जितना ज्यादा मैंने तुम्हारे भीतर झाँककर देखा उतना ही पाया कि तुम अपने को धोखा देने में बहुत कुशल हो। तुम्हारी सारी समझदारी वही है। कृष्णमूर्ति ने तुमपे जरूरत से ज्यादा आस्था कर ली। तुम इस योग्य नहीं। इसलिए कृष्णमूर्ति जीवन भर चिल्लाते रहे और किसीको कोई सहायता नहीं पहुँची। क्योंकि वे वहाँ से मानके चलते हैं जहाँ तुम नहीं हो। और जो लोग उनके आसपास इकट्ठे हुए, उनमें अधिक लोग ऐसे हैं जो कुछ भी नही करना चाहते, उनको बहाना मिल गया। उन्होंने कहा, करने से कहीं कुछ होगा? ये तो होश की बात है, करने से क्या होगा? करने से भी बच गये, होश तो साधना किसको है?

मेरे पास रोज ऐसी घटना आती है। अगर मैं किसीको कहता हूँ कि तुम शांत-ध्यान करो, तो वो कुछ दिनों बाद आके कहता है कि ऐसा शांत बैठने से कुछ नहीं होता। और शांत बैठने से होगा भी क्या? ऐसा आँख बंद करने से कहीं कुछ ध्यान हुआ है? अगर मैं उनको कहता हूँ कि छोड़ो, सक्रिय-ध्यान करो, कुछ दिन बाद वो आके कहते हैं कि ऐसे नाचने-कूदने-उछलने से क्या होगा? अरे ध्यान तो शात होना चाहिए! तो आदमी — वही आदमी — भूल ही जाता है। जब सक्रिय का कहो, तब वो शात की सोचता है। क्योंकि तब शात की आड़ में सक्रिय से बच जाता है। जब शांत की कहो, तब वो सक्रिय की सोचता है। सक्रिय की आड़ में शात से बच जाता है। तुम बचने ही चले हो? फिर तुम्हारी मर्जी। बदलना है, या बचना है?

कृष्णमूर्ति के शब्द बहुमूल्य है, लेकिन बेईमानों के हाथ में पड़ गये। और बेईमानो को बड़ी राहत मिल गयी। न पूजा करनी, न प्रार्थना करनी, न ध्यान करना, सिर्फ समझ। और समझ, समझ तो है ही तुम्हारे पास। तब उनकी तकलीफ ये होती है कि समझ तो हमारे पास है ही, पूजा करनी नही, ध्यान करना ही नही, प्रार्थना करनी नही, समाधि नही आ रही है? समझ भी तुम्हारे पास नही है।

मै तुमसे कहता हूँ कृष्णमूर्ति की समझ पतंजलि की समाधि से ज्यादा कठिन है। क्योंकि पतंजलि ने टुकड़े-टुकड़े करके सीढ़ियाँ बना दी हैं। लंबे रास्ते को छोटे-छोटे खंडों में तोड़ दिया है।

बुद्ध एक जंगल से गुजरते थे, राह भटक गये। अब तुम कहोगे कि बुद्धपुरुष और राह भटक जाते हैं! बुद्धपुरुष अगर राह भटक ही न सकते हो, तो मुर्दा। राह भटक

गये, जहाँ पहुँचना था न पहुँच पाए, देर होने लगी। तो आनंद ने राहगीर से पूछा कि गाँव कितने दूर है ? उस राहगीर ने कहा, बस दो कोस। चल पड़े, दो कोस पूरे हो गये, लेकिन गाँव का कोई पता नहीं। फिर किसी राहगीर को पूछा। उसने कहा, बस दो कोस। आनंद ने कहा, ये लोग कैसे हैं ? इनका कोस कितना बड़ा? दो कोस हम पार हो गये। पहला आदमी धोखा दे गया मालूम होता है। या उसे पता नही था, जवाब देने के मजे में जवाब दे गया। क्योंकि गुरु होने का जब मौका मिले तो कोई छोड़ता नहीं। तुम्हें पता भी न हो कि कितनी दूर है, कह दिया; अब कम से कम कहने से पता तो चला कि पता है।

फिर बुद्ध मुस्कराते रहे। दो कोस फिर पूरे हो गये, अब गाँव का कोई पता नहीं। आनंद ने कहा ये इस गाँव के आदमी सभी झूठे मालूम होते हैं। फिर किसी को पूछा। उसने कहा कि बस दो कोस। तब तो आनंद गुस्से में आ गया। उसने कहा हद्द हो गयी, जो देखो वही दो कोस कहता है ! दो कोस का मतलब कितना होता है ? बुद्ध ने कहा, नाराज न होओ। इस गाँव के लोग बड़े करुणावान हैं। चार कोस तो चला दिया उन्होंने। अगर पहला आदमी कहता दस कोस, आठ कोस, शायद हम थक के ही बैठ जाते कि अब कहाँ जाना ! अब नहीं चलना हो सकता। दो कोस के भरोसे पे चल लिए, दो कोस पार हो गया। फिर दो कोस के भरोसे पे चल लिए, वो भी पार हो गया। अब इसकी मान लो। ऐसा लगता है कि अब दो ही कोस है। छः कोस रहा होगा शुरू में।

जब वे पहुँच गये दो कोस के बाद तो आनंद ने बुद्ध से क्षमा माँगी कि मुझे क्षमा कर दें। मैं तो समझा कहाँ के झूठे, बेईमान, दुष्ट लोग हैं कि कम से कम रास्ता तक सही नही बता सकते। लेकिन बुद्ध ने कहा करुणावान हैं।

पतंजलि ज्यादा करुणावान हैं। कृष्णमूर्ति कठोर हैं। कृष्णमूर्ति उतना ही बता देते हैं जितना है। वे कहते हैं हजार कोस। तुम बैठ गये। तुमने कहा अब देखेंगे। पतंजलि कहते हैं बस दो कोस है। जरा चल लो, पहुँच जाओगे। पतंजलि को भी पता है हजार कोस है। लेकिन तुम्हारी हिम्मत हजार कोस चलने की एक साथ हो नहीं सकती। तुमसे उतना ही कहना उचित है जितना तुम चल सको। पतंजलि मंजिल को देखके नहीं कहते, तुमको देखके कहते हैं कि तुम्हारे पैरों की हिम्मत कितनी, साहस कितना, सामर्थ्य कितनी ? दो कोस। देख लेते हैं कि दो कोस ये आदमी चल सकता है। अगर दो कोस चल सकता है तो ढाई कोस बता दो। दो कोस के सहारे आधा कोस और भी चल जाएगा। फिर बता देंगे ढाई कोस। जल्दी क्या है ? और धीरे-धीरे पहुँचा देंगे।

पतंजलि आहिस्ता-आहिस्ता क्रमबद्ध तोड़ते हैं। इसलिए पतंजलि का पूरा योगशास्त्र

बड़ी क्रमिक सीढ़ियाँ हैं। एक-एक कदम, एक-एक कदम पतंजलि हजारों को ले गये। कृष्णमूर्ति नहीं ले जा सके। और कुछ ऐसा नहीं है कि कृष्णमूर्ति ने ये बात पहली दफे कही है। कृष्णमूर्ति जैसे चिंतन के लोग पहले भी हुए हैं। उन्होंने भी इतनी ही बात कही है, यही बात कही है, वो भी किसीको नहीं पहुँचा सके।

कृष्णमूर्ति की ज्यादा इच्छा ये है कि तुमसे सच कहा जाए। सत्य की बड़ी प्रमाणिकता है। वो कहते हैं हजार कोस है तो हजार ही कोस कहना है। एक कोस भी कम कर के हम क्यों कहें, झूठ क्यों बोलें? कृष्णमूर्ति कहते हैं, कहीं झूठ बोलने से किसीको सत्य तक पहुँचाया जा सकता है? मैं तुमसे कहता हूँ हाँ, पहुँचाया जा सकता है। पहुँचाया गया है। पहुँचाया जाता रहेगा। और तुम अनुग्रह मानना उनका जिन्होंने तुम्हारे कारण झूठ तक बोलने की व्यवस्था की है। जो तुम्हारी वजह से झूठ तक बोलने को राजी हो गये।

सत्य को कह देना बहुत कठिन नहीं है। अगर तुम्हारी चिंता न की जाए, तो सत्य को कह देने में क्या कठिनाई है? जैसा है वैसा कह दिया, बात खतम। अगर तुम्हारी चिंता की जाए, तो वैसा कहना होगा जहाँ से तुम्हें खींचना है। तुम एक गहरे गर्त में पड़े हो। तुम्हारे अंधकार में रोशनी पहुँचती ही नहीं। तुमसे रोशनी की बात भी क्या करनी! तुम्हें तो धीरे-धीरे, शनैः-शनैः अँधेरे के बाहर लाना है। तुमसे कुछ कहना जरूरी है जिसका तुमसे आज तालमेल बैठ जाए। कल की कल देख लेंगे।

पर ये दो दृष्टिकोण है। जिसको जो जम जाए। जिसको जो रम जाए। एक बात भर ख्याल रखना, न तो पतंजलि की समाधि का तुम्हें अभी पता है, न कृष्णमूर्ति की समझ का। वो दोनों एक ही चीज के दो नाम हैं। और तुम ये जान लेना कि तुम नासमझ हो और समाधिशून्य हो। इसे जानके ही अगर तुम चलोगे तो जिसको बुद्ध ने कहा शिष्य, तुम शिष्य हो गये।

और जीवन को वे ही जीत लेते हैं जो सीखने में समर्थ हैं। और धर्म का फूलों से भरा पथ उन्हींको उपलब्ध हो जाता है जिनके जीवन में शिष्यत्व की संभावना, शिष्यत्व का स्रोत खुल गया।

आज इतना ही।

प्रार्थना स्वयं मंजिल

७ दिसबर १९७५
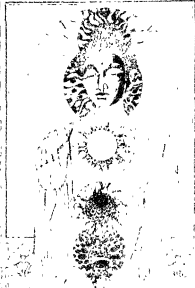
न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।
अत्तनो ' व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ।। ४४ ।।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवंतं अगंधकं ।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ।। ४५ ।।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवंतं सगंधकं ।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो ।। ४६ ।।

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं ।। ४७ ।।

न पुप्फगंधो पटिवातमेति न चंदनं तगरं मल्लिका वा ।
सतञ्च गंधो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ।। ४८ ।।

दिल है कदमो पर किसीके सर झुका हो या न हो
बंदगी तो अपनी फितरत है खुदा हो या न हो

बुद्ध ने जगत को एक धर्म दिया, मनुष्य को एक दिशा दी, जहां प्रार्थना परमात्मा से बड़ी है; जहां मनुष्य का हृदय-- पूजा-अर्चना से भरा -- परमात्मा से बड़ा है।

असली सवाल इसका नहीं है कि परमात्मा हो। असली सवाल इसका है कि मनुष्य का हृदय प्रार्थना से भरा हो। प्रार्थना में ही मिल जाएगा वह जिसकी तलाश है। और प्रार्थना मनुष्य का स्वभाव कैसे हो जाए। परमात्मा हुआ और फिर तुमने प्रार्थना की, तो प्रार्थना की ही नहीं। रिश्वत हो गयी। परमात्मा हुआ और तुम झुके, तो तुम झुके ही नहीं। कोई झुकानेवाला हुआ तब झुके, तो तुम नहीं झुके। झुकानेवाले की सामर्थ्य रही होगी, शक्ति रही होगी। लेकिन कोई परमात्मा न हो और तुम झुके, तो झुकना तुम्हारा स्वभाव हो गया।

बुद्ध ने धर्म को परमात्मा से मुक्त कर दिया। और धर्म से परमात्मा का संबंध

न रह जाए तो धर्म अपने ऊँचे से ऊँचे शिखर को पाता है। इसलिए नहीं कि परमात्मा नहीं है, बल्कि इसलिए कि परमात्मा के बिना झुकना आ जाए तो झुकना आ गया।

इसे थोड़ा समझने की फिक्र करो।

तुम जाते हो और झुकते हो। झुकने के पहले पूछते हो, परमात्मा है। अगर है तो झुकोगे। परमात्मा के सामने झुकते हो तो इसीलिए कि कुछ लाभ, कुछ लोभ, कुछ भय, कुछ भविष्य की आकांक्षा -- कोई महत्वाकांक्षा काम कर रही है। परमात्मा कुछ दे सकता है इसलिए झुकते हो। अगर परमात्मा कुछ न दे सकता हो, तो तुम झुकोगे? अगर झुकने में और परमात्मा तुमसे छीन लेता हो, तो तुम झुकोगे? झुकने मे हानि हो जाती हो, तो तुम झुकोगे? झुकना स्वार्थ है। स्वार्थ से जो झुका, वो कैसा झुका? वो तो सौदा हुआ, व्यवसाय हुआ।

ऐसे तो तुम ससार मे भी झुकते हो। जिनके हाथ मे ताकत है उनके चरणों में झुकते हो। जिनके पास धन है, पद है, उनके चरणो में झुकते हो। तो तुम्हारा परमात्मा शक्ति का ही विस्तार हुआ, धन और पद का ही विस्तार हुआ। इसीलिए तो लोगों ने परमात्मा को ईश्वर का नाम दिया है। ईश्वर यानी ऐश्वर्य। ऐश्वर्य के सामने झुकते हो। ईश्वर को परमपद कहा है। उसके ऊपर कोई पद नही। पद के सामने झुकते हो। तो ये राजनीति हुई, धर्म न हुआ। और इसके पीछे लोभ होगा, भय होगा। प्रार्थना कहाँ?

'दिल है कदमों पर किसीके सर झुका हो या न हो'। और ध्यान रखना, जो किसी मतलब से झुकेगा, उसका सिर झुकेगा दिल नही, क्योकि दिल हिसाब जानता नही। उसकी खोपड़ी झुकेगी, हृदय नही, क्योंकि हृदय तो बिना हिसाब झुकता है। हृदय तो कभी उनके सामने झुक जाता है जिनके पास न कोई शक्ति थी, न कोई पद था, न कोई ऐश्वर्य था। हृदय तो कभी भिखारियो के सामने भी झुक जाता है। सिर नही झुकता भिखारियो के सामने। वो सदा सम्राटों के सामने झुकता है। हृदय तो कभी फूलों के सामने झुक जाता है। कोई शक्ति नही, कोई सामर्थ्य नही। क्षण भर है, फिर विदा हो जाएँगे। हृदय तो कमजोर के सामने और नाजुक के सामने भी झुक जाता है। सिर नही झुकता।

सिर है मनुष्य का अहंकार। हृदय यानी मनुष्य का प्रेम। 'दिल है कदमो पर किसीके सर झुका हो या न हो'। दिल किसीके कदमों पर हो, काफी है। सर न झुका, चल जाएगा। झुक गया, ठीक। दिल के पीछे चला, ठीक। दिल की छाया बना, ठीक। दिल का साथ रहा, ठीक। न झुका, चल जाएगा। क्योंकि सिर के झुकने से कुछ भी संबंध नही है। तुम झुकने चाहिए। तुम्हारा वास हृदय में है -- जहाँ

तुम्हारा प्रेम है वहाँ । सिर झुकता है भय से । हृदय झुकता है प्रेम से । प्रेम और भय का मिलन कहीं भी नहीं होता । इसलिए अगर तुम भगवान के सामने झुके हो कि भय था, डरे थे, तो सिर ही झुकेगा । और अगर तुम इसलिए झुके हो कि प्रेम का पूर आया, बाढ़ आयी — क्या करोगे इस बाढ़ का ? कहीं तो इसे बहाना होगा। कहीं तो उलीचना होगा । कूल-किनारे तोड़कर तुम्हारी इबादत बहने लगी । तुम्हारी प्रार्थना की बाढ़ आ गयी — तब तुम्हारा हृदय झुकता है ।

दिल है कदमों पर किसीके सर झुका हो या न हो
बंदगी तो अपनी फितरत है खुदा हो या न हो

और फिर कौन फिक्र करता है कि परमात्मा है या नहीं । बंदगी अपनी फितरत है। फिर तो स्वभाव है प्रार्थना । बहुत कठिन है ये बात समझनी । प्रेम स्वभाव होना चाहिए । प्रेमपात्र की बात ही मत पूछो । तुम कहते हो, जब प्रेमपात्र होगा तब हम प्रेम करेंगे । अगर तुम्हारे भीतर प्रेम ही नहीं तो प्रेमपात्र के होने पर भी तुम कैसे प्रेम करोगे ? जो तुम्हारे भीतर नहीं है, वो प्रेमपात्र की मौजूदगी पैदा न कर पाएगी । और जो तुम्हारे भीतर है, प्रेमपात्र न भी हो तो भी तुम उसे गवाँओगे कहाँ, खोओगे कहाँ ?

इसे ऐसा समझो । जो कहता है परमात्मा हो तो हम प्रार्थना करेंगे, वो आस्तिक नहीं, नास्तिक है । जो कहता है प्रेम है, हम तो प्रेम करेंगे, वो आस्तिक है । वो जहाँ उसकी नजर पड़ेगी वहाँ हजार परमात्मा पैदा हो जाएंगे । प्रेम से भरी हुई आँख जहाँ पड़ेगी वही मंदिर निर्मित हो जाएँगे । जहाँ प्रेम से भरा हुआ हृदय धड़केगा, वहीं एक और नया काबा बन जाएगा, एक नयी काशी पैदा होगी । क्योंकि जहाँ प्रेम है, वहाँ परमात्मा प्रगट हो जाता है । प्रेमभरी आँख कण-कण में परमात्मा को देख लेती है । और तुम कहते हो, पहले परमात्मा हो तब हम प्रेम करेंगे । तो तुम्हारा प्रेम खुशामद होगी । तुम्हारा प्रेम प्रेम न होगा, सिर का झुकना होगा — हृदय का बहना नहीं ।

असली सवाल प्रेमपात्र का नहीं है, असली सवाल प्रेमपूर्ण हृदय का है । बुद्ध ने इस बात पर बड़ा अद्भुत जोर दिया । इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात नहीं की । और जितने लोगों को परमात्मा का दर्शन कराया, उतना किसी दूसरे व्यक्ति ने कभी नहीं कराया । ईश्वर की चर्चा के बाहर छोड़ दिया और लाखों लोगों को ईश्वरत्व दिया । भगवान की बात ही न की और संसार में भगवत्ता की बाढ़ ला दी । इसलिए बुद्ध जैसा अद्भुत पुरुष मनुष्य के इतिहास में कभी हुआ नहीं । बात ही न उठायी परमात्मा की और न मालूम कितने हृदयों को झुका दिया । और ध्यान रखना, बुद्ध के साथ सिर को झुकने का तो सवाल ही न रहा । न कोई भय का कारण है,

न कोई परमात्मा है, न डरने की कोई वजह है। न परमात्मा से पाने का कोई लोभ है। मौज से झुकना है, आनंद से झुकना है। अपने ही अहोभाव से झुकना है, अनुग्रह से झुकना है।

जब वृक्ष लद जाता है फलो से तो झुक जाता है। इसलिए नहीं कि फलों को तोड़ने वाले पास आ रहे है। अपने भीतरी कारण से झुक जाता है। फल को खानेवाले पास आ रहे हैं इसलिए नही झुकता। अपने भीतर के ही अपूर्व बोझ से झुक जाता है। भक्त भगवान के कारण नहीं झुकता। अपने भीतर हृदय के बोझ के कारण झुक जाता है। फल पक गये, शाखाएँ झुकने लगी। 'बंदगी तो अपनी फितरत है खुदा हो या न हो'। बुद्ध का जोर प्रार्थना पर है, परमात्मा पर नही। और परमात्मा को काट देने से, बीच में न लेने से, बुद्ध का धर्म बहुत वैज्ञानिक हो गया। तब शुद्ध आंतरिक क्रांति की बात रह गयी। ये सूत्र आतरिक क्रांति के सूत्र हैं। समझने की कोशिश करो।

'दूसरों के दोष पर ध्यान न दे, दूसरों के कृत्य-अकृत्य को नही देखे, केवल अपने कृत्य-अकृत्य का अवलोकन करे।'

जिसकी नजर परमात्मा पर है, उसकी नजर दूसरे पर है। जिसने परमात्मा को बाहर देखा, वो शैतान को भी बाहर देखेगा। इसे थोड़ा समझना। थोड़ा बारीक है। पकड़ोगे तो बहुत काम आ जाएगा सूत्र। अगर तुमने परमात्मा को बाहर देखा, तो शैतान को कहाँ देखोगे? उसे भी तुम बाहर देखोगे। तुम्हारे बाहर देखने का ढंग हर चीज को बाहर देखेगा। तब तुम्हारी नजर दूसरो के आचरण में अटकी रहेगी। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी सदा दूसरों के कृत्य-अकृत्य का विचार करते रहते है। दूसरे की आलोचना में लीन रहते हैं। कौन ने बुरा किया, किसने भला किया। कौन मंदिर गया, कौन नही गया। दूसरा ही उनके चितन में प्रभावी रहता है। इसलिए धार्मिक जिनको तुम कहते हो, उन्हे अपने को छोड़कर सारे जगत की फिक्र बनी रहती है — कौन पाप कर रहा है, कौन पुण्य कर रहा है। कौन नर्क जाएगा, कौन स्वर्ग जाएगा।

बुद्ध कहते है, तुम सिर्फ अपनी ही चिंता करना। तुम्हारे ऊपर तुम्हारे अतिरिक्त और किसीका दायित्व नहीं है। अगर तुम उत्तरदायी हो, तो सिर्फ अपने लिए। अगर अस्तित्व तुमसे पूछेगा, तो सिर्फ तुम्हारे लिए। तुम्हें जो जीवन का अवसर मिला है, उस अवसर में तुमने क्या कमाया, क्या गवाँया? तुम्हें जो जीवन के क्षण मिले, उन्हें तुमने खाली ही फेंक दिया, या जीवन के अमरस से भर लिया? तुम्हारे जो कदम पड़े जीवन की राह पर, वो मंजिल की तरफ पड़े या मंजिल से दूर गये? तुमसे और कुछ

भी नहीं पूछा जा सकता, तुम किसी और के लिए जुम्मेवार भी नहीं हो। अपनी ही जुम्मेवारी पर्याप्त है।

'दूसरों के दोष पर ध्यान न दें'। और ध्यान रखना, जो दूसरों के दोष पर ध्यान देता है वो अपने दोषों के प्रति अंधा हो जाता है। ध्यान तुम या तो अपने दोषों की तरफ दे सकते हो, या दूसरों के दोषों की तरफ दे सकते हो। दोनों एक साथ न चलेगा। क्योंकि जिसकी नजर दूसरों के दोष देखने लगती है, वो अपनी ही नजर की ओट में पड़ जाती है। जब तुम दूसरे पर ध्यान देते हो, तो तुम अपने को भूल जाते हो। तुम छाया में पड़ जाते हो।

और एक समझ लेने की बात है, कि जब तुम दूसरों के दोष देखोगे तो दूसरों के दोष को बड़ा करके देखने की मन की आकांक्षा होती है। इससे ज्यादा रस और कुछ भी नही मिलता कि दूसरे तुमसे ज्यादा पापी हैं, तुमसे ज्यादा बुरे हैं, तुमसे ज्यादा अंधकारपूर्ण हैं। इससे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है, कि मैं बिलकुल ठीक हूँ, दूसरे गलत हैं। बिना ठीक हुए अगर तुम ठीक होने का मजा लेना चाहते हो, तो दूसरों के दोष गिनना। और जब तुम दूसरों के दोष गिनोगे तो तुम स्वभावतः उन्हें बड़ा करके गिनोगे। तुम एक यंत्र बन जाते हो, जिससे हर चीज दूसरे की बड़ी होके दिखायी पड़ने लगती है। और जो दूसरे के दोष बड़े करके देखता है, वो अपने दोष या तो छोटे करके देखता है, या देखता ही नहीं। अगर तुमसे कोई भूल होती है, तो तुम कहते हो मजबूरी थी। वही भूल दूसरे से होती है तो तुम कहते हो पाप। अगर तुम भूखे थे और तुमने चोरी कर ली, तो तुम कहते हो, मैं करता क्या, भूख बड़ी थी? लेकिन दूसरा अगर भूख में चोरी कर लेता है, तो चोरी है। तो भूख का तुम्हे स्मरण भी नहीं आता।

जो तुम करते हो, इसके लिए तुम तर्क खोज लेते हो। जो दूसरा करता है, उसके लिए तुम कभी कोई तर्क नही खोजते। तो धीरे-धीरे दूसरे के दोष तो बड़े होके दिखायी पड़ने लगते हैं, और तुम्हारे दोष उनकी तुलना में छोटे होने लगते हैं। एक ऐसी घड़ी आती है दुर्भाग्य की जब दूसरे के दोष तो आकाश छूने लगते हैं — गगनचुबी हो जाते है — तुम्हारे दोष तिरोहित हो जाते हैं। तुम बिना अच्छे हुए अच्छे होने का मजा लेने लगते हो। यही तो तथाकथित धार्मिक की, दुर्भाग्य की अवस्था है।

जिसने दूसरों के पाप देखे, वो अपने पुण्य गिनता है। चोरी तुम हजार रुपये की करो तो तुम भुला देते हो। दान तुम एक पैसे का दो तो तुम याद रखते हो। एक पैसे का दान भी बहुत बड़ा मालूम पड़ता है। हजार रुपये की चोरी भी छोटी मालम पड़ती है। शायद हजार रुपये की चोरी करके, तुम एक पैसे का दान

देके उसका निपटारा कर लेना चाहते हो। थोड़ा सोचो, धार्मिक लोगों ने कैसी-कैसी तरकीबें निकाली हैं। पाप करते हैं, गंगा में स्नान कर आते हैं। अब गंगा में स्नान करने का और पाप के मिटने से क्या संबंध हो सकता है! दूर का भी कोई संबंध नहीं हो सकता। गंगा का कसूर क्या है, पाप तुमने किया! और ऐसे अगर गंगा धो-धो के सबके पाप लेती रही हो, तो गंगा के लिए तो नर्क में भी जगह न मिलेगी। इतने पाप इकट्ठे हो गये होंगे! और अगर इतना ही आसान हो, पाप तुम करो, गंगा में डुबकी लगा आओ और पाप हल हो जाएँ, तब तो पाप करने में बुराई ही कहाँ रही? सिर्फ गंगा तक आने-जाने का श्रम है। तो जो गंगा के किनारे ही रह रहे हैं, उनका तो फिर कहना क्या!

तुमने तीर्थ बना लिए। तुमने छोटे-छोटे पुण्य की तरकीबें बना ली, ताकि बड़े-बड़े पापों को तुम झठला दो, भुला दो। छोटा-मोटा अच्छा काम कर लेते हो, अस्पताल को दान दे देते हो — दान उसी चोरी में से देते हो जिसका प्रायश्चित्त कर रहे हो — लाख की चोरी करते हो, दस रुपया दान देते हो, लेकिन लाख की चोरी को दस रुपये के दान में ढाँक लेना चाहते हो। तुम किसे धोखा दे रहे हो? या, इतना भी नहीं करता कोई। रोज सुबह बैठके पाँच-दस मिनट माला जप लेता है। माला के गुरिये सरका लेता है, सोचता है हल हो गया। या राम-राम जप लेता है। या रामनाम छपी चदरिया ओढ़ लेता है। सोचता है मामला हल हो गया। जैसे राम पर कुछ एहसान हो गया। अब राम समझें! चदरिया ओढ़ी थी। कहने को अपने पास बात हो गयी। मंदिर गये थे, हिसाब रख लिया है।

जीवन अंधेरे से भरा रहे और प्रकाश की ज्योति भी नहीं जलती, सिर्फ अंधेरी दीवालों पर तुम प्रकाश शब्द लिख देते हो, या दिये के चित्र टाँग देते हो। प्यास लगी हो तो पानी शब्द से नहीं बुझती। अंधेरा हो तो दिये शब्द से नहीं मिटता।

मंजरे तस्वीर दर्दे दिल मिटा सकता नहीं
आईना पानी तो रखता है पिला सकता नहीं

तुम अगर सिर्फ तस्वीर का अवलोकन करते रहो — 'मंजरे तस्वीर दर्दे दिल मिटा सकता नहीं' — तो तुम्हारे दिल की पीड़ा न मिटेगी तस्वीरों के देखने से। प्रेमी की तस्वीर लिए बैठे रहो, इससे कहीं कोई प्रेमी मिला है? 'आईना पानी तो रखता है पिला सकता नहीं'। आईने में कैसी पानी की झलक है, पर उससे तुम्हारी प्यास न बुझेगी। शास्त्र शब्द दे सकते हैं, सत्य नहीं। अंधेरे की दीवालों पर बनायी गयी दिये की तस्वीरें धोखा दे सकती हैं, रोशनी नहीं।

और जो व्यक्ति दूसरों के दोष पर ध्यान देता है, वो अपने दोष पर तो ध्यान देता नहीं, जो छोटे-मोटे हैं, जिनको तुम पुण्य कहते हो, जिनको पुण्य कहना फिजूल

ही है। जिनको पुण्य केवल नासमझ कह सकते हैं, जो तुम्हारे पाप के ही सजावटों से ज्यादा नहीं है, पाप का ही शृंगार है जो, पाप के ही माथे पे लगी बिंदी है, पाप के ही हाथों में पड़ी चूड़ी है, पाप के ही पैरों में बँधे घूँघर हैं, उन्हें तुम पुण्य कहते हो। उनका हिसाब रखते हो !

बुद्ध ने कहा छोड़ो ये बात। दूसरों के दोष पर ध्यान न दो। उससे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारा प्रयोजन केवल तुमसे है। दूसरों के कृत्याकृत्य मत देखो। केवल अपने कृत्य-अकृत्य का अवलोकन करो। सिर्फ अपना ही 'ऑब्जर्वेशन', अवलोकन।

यह शब्द समझ लेने जैसा है — अवलोकन।

अवलोकन बुद्ध की प्रक्रिया है; जीवन के अंधकार से मुक्त होने के लिए। बुद्ध यह नहीं कहते हैं कि तुम अपने पाप को देखो और दुखी होओ, पश्चात्ताप करो कि मैं पापी हूँ। और न बुद्ध कहते है तुम अपने पुण्य को देखो और बडे फूले न समाओ और उछलके चलो कि मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ। बुद्ध कहते हैं तुम अवलोकन करो।

अवलोकन का अर्थ होता है, तटस्थ दर्शन। बिना किसी निर्णय के। न ये कहना कि ठीक; न ये कहना कि बुरा, न भला; न पाप, न पुण्य। तुम कोई निर्णय मत लेना। तुम कोई मूल्याकन मत करना। तुम सिर्फ देखना। जैसे कोई आदमी रास्ते के किनारे खड़ा हो जाए, भीड़ चलती है, देखता है। अच्छे लोग निकलते है, बुरे लोग निकलते है, उसे कुछ प्रयोजन नहीं। साधु निकलते हैं, असाधु निकलते है, प्रयोजन नहीं। जैसे कोई लेट गया है घास पर क्षण भर, आकाश में चलते बादलों को देखता है। उनके रूप-रंग अलग-अलग। काले बादल हैं, शुभ्र बादल है, कोई हिसाब नहीं रखता, चुपचाप देखता रहता है।

अवलोकन का अर्थ है एक वैज्ञानिक दृष्टि। तटस्थ-भाव। मात्र देखने पर ध्यान रखो। जोर देखने पर है। जो तुम देख रहे हो उसके निर्णय करने पर नहीं कि वो ठीक है या गलत। तुम न्यायाधीश मत बनो। तुम तराजू लेके तौलने मत लगो। तुम मात्र द्रष्टा रहो। जिसको उपनिषद् साक्षी कहते हैं, उसीको बुद्ध अवलोकन कहते हैं। बस देखो। जैसे अपना कुछ लेना-देना नहीं। एक तटस्थ-भाव। एक फासले पर खड़े हुए चुपचाप। और एक अद्भुत क्रांति घटती है। जितने तुम तटस्थ होते जाते हो, उतना ही तुम्हें पता चलता है कि तुम अपने कृत्यों से अलग हो। पाप से भी अलग, पुण्य से भी अलग। और ये जो अलगपन है इसीका नाम मुक्ति है, मोक्ष है।

जो पाप के साथ अपने को एक समझता है, वह भ्रांति में है। जो पुण्य के साथ अपने को एक समझता है, वह भी भ्रांति में है। उसने कृत्य के साथ अपने को एक समझ लिया। उसने अपने को कर्ता समझ लिया। अवलोकन करनेवाला इस नतीजे

पर आता है कि मैं केवल द्रष्टा हूँ, कर्ता नही। फिर पाप और पुण्य दोनों ही मिट जाते हैं। जैसे स्वप्न में किये हों कभी। जैसे किसी उपन्यास में पढ़े हों कभी। जैसे कभी अफवाह सुनी हो। स्वयं से उनका कोई संबंध नही रह जाता। यही शुद्ध बुद्धत्व है। कभी-कभी तुम्हें भी अचानक क्षण भर को इसकी झलक मिल जाएगी; और क्षण-भर को भी बिजली कौंध जाए तो जिंदगी फिर वही नहीं होती जो पहले थी। अवलोकन करो।

तुम जमाने की राह से आए वरना सीधा था रास्ता दिल का

तुम जमाने की राह से आए वरना सीधा था रास्ता दिल का

दूसरो के संबध में सोचते-विचारते, बजार में भटकते, संसार की लंबी परिक्रमा करते अपने तक आए।

'तुम जमाने की राह से आए वरना सीधा था रास्ता दिल का'। अन्यथा जरा गर्दन झुकाने की बात थी। अवलोकन से तुम सीधे स्वयं मे पहुँच जाओगे। हाँ, दूसरे के कृत्य-अकृत्य का विचार करते रहे, तो बडी परिक्रमा है, अनंत परिक्रमा है। अनत जन्मो तक भी तुम ये विचार चुकता न कर पाओगे। कितने है दूसरे? किस-किस का हिसाब करोगे? किस-किस के लिए रोओगे, हँसोगे? किसकी प्रशसा, किसकी निंदा करोगे? अगर ऐसे तुम चल पड़े...

मैंने सुना है कि एक आदमी भागा जा रहा था। राह के पास बैठे आदमी से उसने पूछा कि भाई, दिल्ली कितनी दूर है? उस आदमी ने कहा जिस तरफ तुम जा रहे हो, बहुत दूर। क्योंकि दिल्ली तुम आठ मील पीछे छोड़ आए हो। अगर इसी रास्ते से जाने की जिद्द हो, तो सारी पृथ्वी की परिक्रमा करके जब आओगे — अगर बच गये — तो दिल्ली पहुँच जाओगे। अगर लौटने की तैयारी हो तो ज्यादा दूर नहीं है।

'तुम जमाने की राह से आए वरना सीधा था रास्ता दिल का'। दिल्ली बिलकुल पीछे है। आठ मील का फासला भी नहीं है। अवलोकन की बात है। निरीक्षण की बात है। जागृति की बात है, अप्रमाद की बात है। जरा होश साधना है।

पहली बात, दूसरों का विचार मत करो। अपना ही विचार करने योग्य काफी है। आँख बंद करो, अपने ही कृत्यो को देखो। और अपने कृत्यो के भी निर्णायक मत बनो, अन्यथा अवलोकन समाप्त हो गया। तुम आसक्त हो गये। तुमने कहा ये ठीक है; तो प्रीति बनी। तुमने कहा ये ठीक नही, तो अप्रीति बनी। किसी कृत्य से घृणा हुई, किसी कृत्य से प्रेम हुआ। आसक्ति-अनासक्ति, राग-द्वेष के भावजाल में तुम खो गये। बस कृत्य को देखते रहो।

अगर घड़ी भर भी तुम रोज कृत्य का अवलोकन करते रहो, तो तुम्हें ऐसा ही

अनुभव होगा जैसे आत्मा ने स्नान कर लिया। दिन भर उसकी ताजगी रहेगी। और दिन भर रह-रह के लहरें आती रहेंगी आनंद की। रह-रह के झोंके आ जाएँगे। पुलक आ जाएगी। एक मस्ती छा जाएगी ! तुम झूम-झूम उठोगे किसी भीतरी रस से। और ये जो भीतरी रस है ये बुद्धि का नहीं है, हृदय का है।

जब तुम सोचते हो और निर्णय करते हो, बुद्धि सक्रिय हो जाती है। जब तुम मात्र देखते हो, तब हृदय का फूल खिलता है। जैसे ही तुमने निर्णय लेना शुरू किया, बुद्धि बीच में आयी। क्योंकि निर्णय विचार का काम है। जैसे ही तुमने तौला, तराजू आया। तराजू बुद्धि का प्रतीक है। तुमने नहीं तौला, बस देखते रहे, तो बुद्धि को बीच मे आने की कोई जरूरत ही न रही। मात्र देखने की अवस्था में, साक्षीभाव में, बुद्धि हट जाती है। और जीवन के जो गहरे रहस्य हैं उन्हें हृदय जानता है।

अक्ल को क्यों बताएँ इश्क का राज
गैर को राजदाँ नहीं करते

और हृदय ने कोई राज प्रेम का, परमात्मा का बुद्धि को कभी बताया नहीं। 'अक्ल को क्यों बताएँ इश्क का राज, गैर को राजदाँ नहीं करते'। पराये को कही कोई भेद की बातें बताता है ? बुद्धि परायी है, उधार है। हृदय तुम्हारा है।

इसे थोड़ा समझो। जब तुम पैदा हुए, तो हृदय लेके पैदा होते हो। बुद्धि समाज देता है, संस्कार देते हैं, शिक्षा देती है; घर, परिवार, सभ्यता देती है। तो हिंदू के पास एक तरह की बुद्धि होती है। मुसलमान के पास दूसरी तरह की बुद्धि होती है। जैन के पास तीसरी तरह की बुद्धि होती है। क्योकि तीनो के सस्कार अलग, शास्त्र अलग, सिद्धात अलग। लेकिन तीनों के पास दिल एक ही होता है। दिल परमात्मा का है। बुद्धियाँ समाजों की हैं।

रूस में कोई पैदा होता है, तो उसके पास कम्यूनिस्ट-बुद्धि होगी। ईसाई घर मे कोई पैदा होता है, तो उसके पास ईसाई-बुद्धि होगी। बुद्धि तो धूल है बाहर से इकट्ठी की हुई। जैसे हृदय के दर्पण पर धूल जम जाए। दर्पण तो तुम लेके आते हो, धूल तुम्हें मिलती है। इस धूल को झाड़ देना जरूरी है। समस्त धर्म की गहनतम प्रक्रिया धूल को झाड़ने की प्रक्रिया है, कि दर्पण फिर स्वच्छ हो जाए, तुम फिर से बालक हो जाओ, तुम फिर हृदय में जीने लगो। तुम फिर वहाँ से देखने लगो जहाँ से तुमने पहली बार देखा था, जब तुमने आँख खोली थी। तब बीच में कोई बुद्धि न खड़ी थी। तब तुमने सिर्फ देखा था। वह था अवलोकन।

'जैसे कोई सुदर फूल वर्णयुक्त होकर भी निर्गंध होता है, वैसे ही आचरण न करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।'

दूसरा सूत्र। जैसे कोई सुंदर फूल रंग-बिरंगा है बहुत, वर्णयुक्त है, लेकिन फिर

भी गंधशून्य। ऐसा ही पांडित्य है। रंग बहुत हैं उसमें, सुगंध बिलकुल नहीं। जीवन में सुगंध तो आती है आचरण से। तुम जो जानते हो उससे जीवन में सुगंध नहीं आती। वो तो मौसमी फूल है। दूर से लुभावना लग सकता है। पास आने पे तुम उसे कागजी पाओगे। आदमी भला धोखे में आ जाए, मधुमक्खियाँ धोखे मे नहीं आतीं। तितलियाँ धोखे में नही आतीं। भँवरे धोखे में नही आते। भँवरे धोखे मे नही आते, तुम परमात्मा को कैसे धोखा दे सकोगे? तितलियाँ धोखे में नहीं आतीं, मधुमक्खियाँ धोखे में नही आतीं, तुम परमात्मा को कैसे धोखा दे सकोगे?

सम्राट सोलोमन के जीवन मे कथा है। एक रानी उसके प्रेम में थी और वो उसकी परीक्षा करना चाहती थी कि सच में वह इतना बुद्धिमान है जितना लोग कहते है? अगर है, तो ही उससे विवाह करना है। तो वो आयी। उसने कई परीक्षाएँ ली। वो परीक्षाएँ बड़ी महत्वपूर्ण है।

उसमें एक परीक्षा ये भी थी -- वो आयी एक दिन, राज दरबार में दूर खड़ी हो गयी। हाथ मे वो दो गुलदस्ते, फूलों के गुलदस्ते लायी थी और उसने सोलोमन से कहा दूर से कि इनमे कौन मे असली फूल हैं, बता दो। बडा मुश्किल था। फासला काफी था। वो उस छोर पर खडी थी राज दरबार के। फूल बिलकुल एक जैसे लग रहे थे। सोलोमन ने अपने दरबारियों को कहा कि सारी खिडकियाँ और द्वार खोल दो। खिडकियाँ और द्वार खोल दिये गये। न तो दरबारी समझे और न वो रानी समझी कि द्वार-दरवाजे खोलने से क्या संबध है। रानी ने सोचा कि शायद रोशनी कम है, इसलिए रोशनी की फिक्र कर रहा है, कोई हर्जा नही। लेकिन सोलोमन कुछ और फिकिर कर रहा था। जल्दी ही उसने बता दिया कि कौन से असली फूल हैं, कौन से नकली। क्योंकि एक मधुमक्खी भीतर आ गयी बगीचे से और वो जो असली फूल थे उनपे जाके बैठ गयी। न दरबारियों को पता चला, न उस रानी को पता चला।

वो कहने लगी कैसे आपने पहचाना? सोलोमन ने कहा तुम मुझे धोखा दे सकती हो, लेकिन एक मधुमक्खी को नही। मधुमक्खी को धोखा देना मुश्किल है, परमात्मा को कैसे दोगे?

बुद्ध कहते है 'जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होकर भी निर्गंध होता है, वैसे ही आचरण न करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है'। तुम्हें जीवन के सत्यों का पता सोचने से न लगेगा। उन सत्यों को जीने से लगेगा। जिओगे तो ही पता चलेगा। जो ठीक लगे उसे देर मत करना। उसे कल के लिए स्थगित मत करना। जो ठीक लगे उसमें आज ही डुबकी लगाना। अगर तुम्हें अवलोकन की बात ठीक लग जाए, तो सोचते मत रहना कि कल करेंगे। ऐसे तुम्हारे जीवन में कभी

सुगंध न आएगी। ऐसे हो सकता है कि अवलोकन के संबंध में तुम बातें करने में कुशल हो जाओ, ध्यान के संबंध में तुम शास्त्रकार बन जाओ, लेकिन तुम्हारे जीवन में सुगंध न आएगी।

प्रार्थना के संबंध में जान लेना प्रार्थना को जानना नहीं है। प्रार्थना को तो वही जानता है जो डूबता है। प्रार्थना को तो वही जानता है जो प्रार्थना में मिट जाता है, जब प्रार्थना तुम्हारा अस्तित्व बनती है।

आचरण का अर्थ है, तुम्हारा ज्ञान तुम्हारा अस्तित्व हो। तुम जो जानते हो, वो सिर्फ ऊपर से चिपकी हुई बात न रह जाए। उसकी जड़ें तुम्हारे जीवन में फैलें। तुम्हारे भीतर से वो बात उठे। वो तुम्हारी अपनी हो। ऊपर से इकट्ठा ज्ञान ऐसा है जैसे तुमने भोजन तो बहुत कर लिया हो, लेकिन पचा न सके। उससे तुम बीमार पड़ोगे। उससे शरीर रुग्ण होगा। पचा हुआ भोजन जीवन देता है, ऊर्जा देता है। अनपचा भोजन जीवन को नष्ट करने लगता है। भूखे भी बच सकते हैं लोग ज्यादा देर तक, ज्यादा भोजन से जल्दी मर जाते हैं। बोझ हो जाता है पूरी व्यवस्था पर। और ज्ञान का तो भारी बोझ है।

तुम्हारा चैतन्य अगर दब गया है तो तुम्हारे ज्ञान के बोझ से। तुम जानते ज्यादा हो, जिए कम हो। एक असंतुलन हो गया है। बुद्ध कहते हैं थोड़ा जानो, लेकिन उसे जीने में बदलते जाओ। थोड़ा भोजन करो, लेकिन ठीक से चबाओ, ठीक से पचाओ। रक्त, मांस-मज्जा बन जाए।

होश के बंदे समझेंगे क्या गफलत है क्या होशियारी
अक्ल के बदले जिस दिन दिल की ज्योत जलाकर देखेंगे

'अक्ल के बदले जिस दिन दिल की ज्योत जलाकर देखेंगे, होश के बंदे समझेंगे क्या गफलत है क्या होशियारी'। केवल वे ही समझ पाएँगे जो बुद्धि से गहरे उतर कर हृदय का दिया जलाएँगे। हृदय के दिये से अर्थ है, जो जानते हैं उसे जीवन बना लेंगे। जो समझा है, वो समझ ही न होगी समाधि बन जाएगी। जो सुना है, वो सुना ही नहीं पी लिया है।

'जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होकर भी निर्गंध होता है, वैसे ही आचरण न करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।'

थोड़ा जानो, जिओ ज्यादा, और तुम पहुँच जाओगे। ज्यादा तुमने जाना और जिया कुछ भी नहीं, तो तुम न पहुँच पाओगे। तब तुम दूसरों की गायों का ही हिसाब रखते रहोगे, तुम्हारी अपनी कोई गाय नहीं। तुम गायों के रखवाले ही रह जाओगे, मालिक न हो पाओगे।

पंडित मत बनना। पापी भी पहुँच जाते हैं, पंडित नहीं पहुँचते। क्योंकि पापी

भी आज नहीं कल जग जाएगा। दुख जगाता है। पंडित एक सुख का सपना देख रहा है कि जानता है। बिना जाने।

शास्त्र से बचना। शास्त्र जंजीर हो सकता है। सुभाषित सुंदर वचन जहर हो सकते हैं। जिस चीज को भी तुम जीवन में रूपांतरित न कर लोगे वही जहर हो जाएगी। तुम्हारी जीवन की व्यवस्था में जो भी चीज पड़ी रह जाएगी बिना रूपांतरित हुए, बिना लहू-मांस-मज्जा बने, वही तुम्हारे जीवन में जहर का काम करने लगेगी। पंडित का अस्तित्व विषाक्त हो जाता है।

'जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होने के साथ-साथ सुगंधित होता है, वैसे ही आचरण करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।'

तो ध्यान इसपर हो कि मेरा आचरण क्या है? मेरा होने का ढंग क्या है? मेरे जीवन की शैली क्या है? परमात्मा को मानो या न मानो, अगर तुम्हारा आचरण ऐसा है — घर लौटनेवाले का, संसार की तरफ जानेवाले का नहीं। प्रत्याहार करनेवाले का, अपनी चेतना के केंद्र की तरफ आनेवाले का। अगर तुम्हारा आचरण ऐसा है — व्यर्थ का कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेवाले का नहीं, सिर्फ हीरे ही चुननेवाले का। अगर तुम्हारा आचरण हंस जैसा है कि मोती चुन लेता है, कि दूध और पानी में दूध पी लेता है, पानी छोड़ देता है।

हमने ज्ञानियों को परमहंस कहा है। तुमने कभी समझा क्यों? दो कारणों से। एक तो हंस सार को असार से अलग कर लेता है और दूसरा, हंस सभी दिशाओं में गतिवान है। वो जल में तैर सकता है, जमीन पे चल सकता है, आकाश में उड़ सकता है। उसके स्वातंत्र्य पर कहीं कोई सीमा नहीं है। जमीन हो तो चल लेता है। सागर हो तो तैर लेता है। आकाश हो तो उड़ लेता है। तीनों आयामों में, तीनों 'डायमेन्शन्स' में उसके लिए कहीं कोई रुकावट नहीं है। जिस दिन तुम सार और असार को पहचानने लगोगे, उस दिन तुम्हारा स्वातंत्र्य भी इतना ही अपरिसीम हो जाएगा जैसा हंस का। इसलिए हमने ज्ञानियों को परमहंस कहा है।

न जानने से ही बँधे हो। जमीन पर ही ठीक से रहना नहीं आता, पानी पे चलने की तो बात अलग! आकाश में उड़ना तो बहुत दूर! शरीर में ही ठीक से रहना नहीं आता, मन की तो बात अलग, आत्मा की तो बात बहुत दूर!

शरीर यानी जमीन। मन यानी जल। आत्मा यानी आकाश। इसलिए मन जल की तरह तरंगायित। शरीर थिर है पृथ्वी की तरह। सत्तर साल तक डटा रहता है। गिर जाता है उसी पृथ्वी में जिससे बनता है। मन बिलकुल पानी की तरह है। पारे की तरह कहो। छितर-छितर जाता है। आत्मा आकाश की तरह निर्मल है। कितने ही बादल घिरे, कोई बादल धुएँ की एक रेखा भी पीछे नहीं छोड़ गया।

कितनी ही पृथ्वियां बनीं और खो गयीं। कितने ही चांद-तारे निर्मित हुए और विलीन हो गये। आकाश कूटस्थ है, अपनी जगह, हिलता-डुलता नहीं।

शरीर में ही रहना तुमसे नहीं हो पाता, मन की तो बात अलग। मन में जाते ही चिंता पकड़ती है। विचारों का ऊहापोह पकड़ता है। आत्मा तो फिर बहुत दूर है। क्योंकि आत्मा यानी निर्विचार ध्यान, आत्मा यानी समाधि — आकाश, मुक्त, असीम।

Cपरमहंस कहा है ज्ञानियों को। लेकिन, ज्ञान को आचरण में बदलने की कीमिया, बदलने का रहस्य समझ लेना चाहिए। तुम समझ भी लेते हो कभी कोई बात, स्फटिक-मणि की भाँति साफ दिखायी पड़ती है कि समझ में आ गयी, अगर तुम उसी क्षण उसका उपयोग करने लगो तो और निखरती जाए। तुम कहते हो कल उपयोग कर लेंगे, परसों उपयोग कर लेंगे, अभी समझ में आ गयी सँभालके रख लें।

एक मित्र यहाँ सुनने आते थे। डॉक्टर हैं, पढ़े-लिखे हैं। मैंने उनको देखा कि जब भी वह सुनते, तो बैठके बस नोट ले रहे हैं। फिर मुझे मिलने आए तो मैंने पूछा कि आप क्या कर रहे हो? वह कहते हैं कि आप इतनी अद्भुत बातें कह रहे हैं कि नोट कर लेना जरूरी है, पीछे काम पड़ेंगी। जब मैं समझा रहा हूँ तब वह समझ नहीं रहे हैं। वो कल पे टाल रहे हैं, समझ तक को कल पे टाल रहे हैं। करने की तो बात अलग! वो नोट ले रहे हैं अभी। फिर पीछे कभी जब जरूरत होगी, काम पड़ जाएगी। तुम अभी मौजूद थे, मैं अभी मौजूद था, अभी ही उतर जाने देते हृदय में। लेकिन वो सोचते हैं कि वो बड़ा कीमती काम कर रहे हैं। वो धोखा दे रहे हैं। खुद को धोखा दे रहे हैं। ये बचाव है समझने से। समझना नही है।

सामने एक घटना घट सकती थी, अभी और यहीं। मैं तुम्हारी आँख में झाँकने को राजी था। तुम आँख बचा लिए — नोट करने लगे। मैंने हाथ फैलाया था तुम्हें उठा लूं बाहर तुम्हारे गड्ढे से। तुम्हारा हाथ तुमने व्यस्त कर लिया, तुम नोट लेने लगे। मैंने तुम्हें पुकारा, तुमने पुकार न सुनी। तुमने अपनी किताब में कुछ शब्द अंकित कर लिए और तुम बड़े प्रसन्न हुए। तुम अभी जीवित सत्य को न समझ पाए, कल के लिए टाल दिया। करोगे कब? टालना मनुष्य के मन की सबसे बड़ी बीमारी है Cजो समझ में आ जाए उसे उसी क्षण करना। क्योंकि करने से स्वाद आएगा। स्वाद आते से करने की और भावना जगेगी। और करने से और स्वाद आएगा। अचानक एक दिन तुम पाओगे, जिसे तुमने ज्ञान की तरह सोचा था, वो ज्ञान नहीं रहा आचरण बन गया D

'जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होने के साथ सुगंधित होता है, वैसे ही आचरण करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।'

और ध्यान रखना, जो भी जाना जा सकता है वो जीकर ही जाना जा सकता है। नाहक की बहस में मत पड़ना। क्योंकि बहस भी अक्सर बचने का ही उपाय है। और व्यर्थ के तर्कजाल में मत उलझना। क्योंकि तुम्हे बहुत मिल जाएँगे कहनेवाले कि इसमें क्या रखा है ? लेकिन गौर से देख लेना कि जो कह रहा है, उसने कुछ अनुभव लिया है ?

मेरी दीवानगी पर होशवाले बहस फरमाएँ
मगर पहले उन्हें दीवाना बनने की जरूरत है

'मेरी दीवानगी पर होशवाले बहस फरमाएँ'। कोई हर्जा नहीं, तर्क करें। लेकिन, पहले इन्हें दीवाना बनने की जरूरत है। उनके पास भी कुछ स्वाद हो तभी। तुम उसीकी बात सुनना जिसके पास कुछ स्वाद हो। अन्यथा इस जगत में आलोचक बहुत हैं। निंदक बहुत है। किसी भी चीज को गलत कह देना जितना आसान है, उतनी आसान और कोई बात नही। ईश्वर को कह देना 'नही है', कितना आसान है ! 'है' कहना बहुत कठिन। क्योंकि जो 'है' कहे उसे सिद्ध करना पड़े। जो 'नहीं' कहे, उसे तो सिद्ध करने का सवाल ही न रहा। जब है ही नहीं तो सिद्ध क्या करना है !

प्रेम को इनकार कर देना कितना आसान है। लेकिन प्रेम को 'हाँ' करना कितना कठिन है ? क्योंकि प्रेम का अर्थ होगा फिर एक आग से गुजरना। 'नहीं' बहुत आसान है। इसलिए कायर हमेशा 'नही' कह-कह के जिंदगी चला लेते हैं। हालाँकि वो दिखते बड़े बहादुर हैं। कोई आदमी कहता है ईश्वर नहीं है। लगता है बड़ी हिम्मत का आदमी है। अपनी इतनी हिम्मत नही है। पर मैं तुमसे कहता हूँ कायर, 'नही' कहके काम चला लेते है। क्योंकि जिस चीज को नही कह दिया उसे न सिद्ध करने की जरूरत, न जीवन में उतारने की जरूरत, न दाँव लगाने की जरूरत, न मार्ग चलने की जरूरत। जिसने 'हाँ' कहा वही बहादुर है, वही साहसी है।

लेकिन हाँ भी नपुसक हो सकती है, अगर तुमने सिर्फ बहाने के लिए हाँ कह दी हो। अगर किसीने कहा ईश्वर है, तुमने कहा होगा भाई, जरूर होगा। सिर्फ झंझट छुटाने को कि इतनी भी किसको फुरसत है कि बकवास करे, इतना भी किसके पास समय है कि विवाद करे ? अब कौन झंझट करे कि है या नहीं। कि बिलकुल ठीक, जरूर होगा। अगर तुमने 'हाँ' भी सिर्फ बचाव के लिए कही तो तुम्हारी 'हाँ' 'नही' ही है। उस 'हाँ' में हाँ नहीं, 'नही' ही है।

मेरी दीवानगी पर होश वाले बहस फरमाएँ
मगर पहले उन्हें दीवाना बनने की जरूरत है

उसीके पास पूछना जिसके जीवन में कोई सुगंध हो और सुवास हो, और जिसके जीवन में कोई स्वाद हो। जिसके ओठों से, जिसकी श्वाँसों से शराब की थोड़ी गंध आती हो, उसीसे शराब की बात पूछना। जिसके आसपास थोड़े मस्ती की हवा हो, जिसकी आँखों में खुमार हो, उसीसे पूछना। हर किसीसे मत पूछने बैठ जाना। और हर किसीकी बात मत सुन लेना, नहीं तो जिंदगी को ऐसे ही गवाँ दोगे। नासमझ बहुत हैं, कायर बहुत हैं। आलोचक बहुत हैं। उनका कोई अंत नहीं, क्योंकि ये सब बचाव की तरकीबें हैं। जिंदगी को जाननेवाले बहुत कम हैं। और तुम भी कहीं इसी भीड़ में न खो जाना। खो ही जाओगे। अगर जीवन में कोई सूत्र तुम्हारे पास आएँ और तुमने उनका जल्दी उपयोग न कर लिया, वे जंग खा जाते हैं।

सत्य बड़ी नाजुक चीज है। वो बीज की तरह है। तुम उसे हृदय में ले जाओ तत्क्षण, तो वह अंकुरित हो जाता है। बीज को रखे रहो तिजोड़ियों में सँभालके, वो सड़ जाएगा। सारे सत्य तुम्हारे शास्त्रों की तिजोड़ियों में सड़ गये हैं। ऐसा नहीं है कि सत्यों की कोई कमी है। सत्य बहुत है। शास्त्र भरे पड़े हैं, लेकिन किसी काम के नहीं रहे। तुम्हारे जीवन के शास्त्र में जबतक कोई सत्य उतर कर खून, मांस, मज्जा न बन जाए, पच न जाए, तुम्हारे रग-रेशे में न दौड़ने लगे, तबतक किसी काम का नही है। इसे स्मरण रखना।

'जैसे फूलों से मालाएँ बनती हैं, वैसे ही जन्म लेकर प्राणी को बहुत पुण्य करने चाहिए।'

जीवन दो ढंग का हो सकता है। बुद्ध ने बड़ा ठीक प्रतीक चुना है। एक तो जीवन ऐसा होता है जिसको तुम ज्यादा से ज्यादा फूलों का ढेर कह सकते हो। और एक जीवन ऐसा होता है जिसे तुम फूलों की माला कह सकते हो। माला और ढेर में बड़ा फर्क है। माला में एक संयोजन है, एक तारतम्य है, एक संगीत है, एक लय-बद्धता है। माला में एकजुटता है। एक शृंखला है, एक सिलसिला है। फूलों का एक ढेर है, उसमें कोई शृंखला नही है। उसमें कोई संगीत नहीं है। उसमे दो फूल जुड़े नही हैं किसी अनुस्यूत धागे से। सब फूल अलग-अलग हैं। बिखरे पड़े हैं।

तो या तो जीवन ऐसा हो सकता है कि जीवन के सब क्षण बिखरे पड़े हैं, एक क्षण से दूसरे क्षण के भीतर दौड़ती हुई कोई जीवनधारा नहीं है, कोई धागा नहीं जो सबको जोड़ता हो। अधिक लोगों का जीवन क्षणों का ढेर है। जन्म से लेकर मृत्यु तक तुम्हें भी उतने ही क्षण मिलते हैं जितने बुद्ध को। लेकिन बुद्ध का जीवन एक माला है। हर क्षण पिरोया हुआ है। हर क्षण अपने पीछे क्षण से जुड़ा हुआ

है, आगे क्षण से जुड़ा है। जन्म और मृत्यु एक शृंखला में बंधे हैं। एक अनुस्यूत संगीत है।

इसे थोड़ा समझो।

तुम ऐसे हो जैसे वर्णमाला के अक्षर। बुद्ध ऐसे हैं जैसे उन्ही अक्षरों से बना एक गीत। गीत में और वर्णमाला के अक्षरो में कोई फर्क नही है। वही अक्षर हैं। वर्णमाला में जितना है उतना ही सभी गीतो मे है।

मार्क ट्वेन के जीवन में एक घटना है। उसके एक मित्र ने उसे निमंत्रित किया। मित्र एक बहुत बड़ा उपदेष्टा था। मार्क ट्वेन कभी उसे सुनने नही गया था। कुछ ईर्ष्या रही होगी मन मे मार्क ट्वेन के। मार्क ट्वेन खूब बड़ा साहित्यकार था। लेकिन उपदेष्टा की बड़ी ख्याति थी।

मित्र ने कई दफा निमंत्रित किया तो एक बार गया। सामने की ही कुर्सी पर बैठा था। उस दिन मित्र ने जो श्रेष्ठतम उसके जीवन में भाव मे था, कहा। क्योंकि मार्क ट्वेन सुनने आया था। लेकिन मार्क ट्वेन के चेहरे पर कोई भावदशा नही बदली। वो ऐसे ही बैठा रहा अकड़ा जैसे कुछ भी नही हो रहा है। जैसे क्या कचरा बकवास कर रहे हो!

मित्र भी चकित हुआ।

जब दोनों लौटने लगे गाड़ी में वापिस, रास्ते में उसने हिम्मत जुटायी और पूछा, तुम्हे मेरी बाते कैसी लगी? मार्क ट्वेन ने कहा, बातें! सब उधार। मेरे पास एक किताब है जिसमे सब लिखा है। तुमने उसीको पढके बोला है। उस आदमी ने कहा चकित कर रहे हो। कोई एकाध वाक्य, कोई एकाध टुकड़ा कही लिखा हो सकता है, लेकिन जो मैंने बोला है, वो मैंने किसी किताब से लिया नहीं। मार्क ट्वेन ने कहा शर्त बदते हो। सौ-सौ डालर की शर्त लग गयी। उपदेष्टा सोचता था निश्चित ही शर्त मैं जीत जाऊँगा। ये पागल किस बात की शर्त लगा रहा है। जो मैं बोला हूँ, ये पूरा का पूरा एक किताब में हो ही नहीं सकता। संयोग नहीं हो सकता ऐसा।

लेकिन उसे पता नहीं था। मार्क ट्वेन ने दूसरे दिन एक डिक्शनरी भेज दी और लिखा, इसमें सब है जो भी तुम बोले हो। एक-एक शब्द जो तुम बोले हो सब इसमें है। शब्दशः।

पर डिक्शनरी और शेक्सपियर में कुछ फर्क है। शब्दकोश में और कालिदास में कुछ फर्क है। शब्दकोश और उपनिषद् में कुछ फर्क है। क्या फर्क है? वही फर्क तुममें और बुद्ध में है। तुम केवल शब्दकोश हो। फूल की भीड़, एक ढेर। अनुस्यूत नही हो। जुड़े नही हो। तारतम्य नही है। सब फूल अलग-अलग पड़े हैं, माला नहीं बन पाए हैं। माला उसीका जीवन बनता है जो अपने जीवन को एक साधना देता

है, एक अनुशासन देता है। जो अपने जीवन को होशपूर्वक एक लयबद्धता देता है। तब जीवन न केवल गद्य बन जाता है, अगर धीरे-धीरे तुम जीवन को निखारते ही जाओ, तो गद्य पद्य हो जाता है। जीवन तुम्हारा गाने लगता है, गुनगुनाने लगता है। तुम्हारे भीतर से अहर्निश संगीत की एक धारा छूटने लगती है। तुम बजने लगते हो।

जब तक तुम बजो न, तब तक तुम परमात्मा के चरणों के योग्य न हो सकोगे। और ध्यान रखना व्यर्थ की शिकायतें-शिकवे मत करना।

उनसे शिकवा फजूल है सीमाब
काबिले इल्तिफात तू ही नहीं

परमात्मा से क्या शिकायत करनी कि आनंद नहीं है जीवन में! 'काबिले इल्तिफात तू ही नही'। परमात्मा की कृपा के योग्य तू ही नहीं। इसलिए किसी और से शिकवा मत करना।

तुम जैसे अभी हो ऐसे ही तुम परमात्मा पर चढ़ने योग्य नहीं हो। तुम माला बनो। तुम जीवन को एक दिशा दो। तुम ऐसे ही सब दिशाओं में मत भागते फिरो पागलों की तरह। तुम एक भीड़ मत रहो। तुम्हारे भीतर एकस्वरता है। और बुद्ध इसीको पुण्य कहते हैं। तुम चकित होओगे। बुद्ध कहते है, जिसके जीवन में एकस्वरता है, वही पुण्यधर्मा एक माला है। पापी असंगत है। कहता कुछ है, करता कुछ है। सोचता कुछ है, होता कुछ है। पापी के भीतर एकस्वरता नहीं है। बोलता कुछ है, आँखें कुछ और कहती हैं, हाथ कुछ और करते है।

पापी एक साथ बहुत है। पुण्यात्मा एक है। योगस्थ है। जुड़ा है, 'इंटीग्रेटेड' है। वो जो भी करता है वो सब संयोजित है। वो सभी एक दिशा में गतिमान है। उसके पैर भी उसी तरफ जा रहे हैं जिस तरफ उसका हृदय जा रहा है। उसकी स्वाँसें भी उसी तरफ जा रही हैं जिस तरफ उसकी धड़कनें जा रही हैं। वो इकट्ठा है। उसके जीवन में एक दिशा है, एक गति है, विक्षिप्तता नहीं है।

'जैसे फूलों से मालाएँ बनती हैं वैसे ही जन्म लेकर प्राणी को पुण्य अर्जन करना चाहिए'।

ताकि तुम्हारा जीवन एक माला बन जाए।

'फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशाओं में नहीं जाती।'

बड़ी मीठी बात बुद्ध कह रहे हैं। खूब हृदय भर के सुनना। 'फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशाओं में नहीं जाती। न चंदन की, न तगर की, न चमेली की, न बेला की'। अगर हवा पूरब की तरफ बह रही हो, तो चंदन, कोई उपाय नहीं चदन के पास कि अपनी सुगंध को पश्चिम की तरफ भेज दे। हवा के विपरीत नही

जाती।' न तगर की, न चमेली की, न चंदन की, न बेला की। लेकिन सज्जनों की सुगंध विपरीत दिशा में भी जाती है'। सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगंध बहाता है। एक ही सुगंध है इस जगत में जो विपरीत दिशा में भी चली जाती है। वो है संत-पुरुष की। वो है जाग्रत पुरुष की सुगंध।

मनुष्य भी एक फूल है। और जो कली ही रह गये, खिल न पाए, उनके दुख का अंत नहीं। कलियों से पूछो, जो खिलने में असमर्थ हो गयीं। ऐसे ही जैसे किसी स्त्री को गर्भ रह गया, और फिर बच्चे का जन्म न हो, तो उसका संताप समझो। गर्भ बड़ा होता जाए और बेटे का जन्म न हो। तो उस स्त्री की पीड़ा समझो। ऐसा ही प्रत्येक मनुष्य पीड़ा में है, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो बड़ा हो रहा है, वो जन्म नहीं पा रहा है। तुम एक गर्भ लेके चल रहे हो। गर्भ बड़ा होता जाता है, लेकिन तुम्हारे जन्म की दिशा खो गयी है। तुम भूल ही गये हो। तुम एक कली हो, उसके भीतर गंध इकट्ठी होती जा रही है। बोझिल हो गयी है, कली अपने ही बोझ से दबी जा रही है।

मेरे देखे तुम्हारी पीड़ा ये नहीं है कि तुम्हारे जीवन में दुख है। तुम्हारी असली पीड़ा यही है कि जो सुखी हो सकता था वो नहीं हो पा रहा है। ये दुख की मौजूदगी नहीं है जो तुम्हें पीड़ित कर रही है, ये उस सुख की मौजूदगी का अभाव है जो हो सकता था और नहीं हो पा रहा है। तुम्हारी गरीबी तुम्हें पीडा नहीं दे रही है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो अमीरी का झरना फूट सकता था, फूटने को तत्पर खड़ा है, उस पर चट्टान पड़ी है, वह झरना फूट नहीं पा रहा है. यह विकास की छटपटाहट है आदमी का संताप। ये आदमी की पीडा जन्म लेने की छटपटाहट है।

सारा अस्तित्व खिलने में भरोसा रखता है। जब भी कोई चीज खिल जाती है, तो निर्भार हो जाती है। आदमी भी एक फूल है। और बुद्ध कहते हैं बड़ा अनूठा फूल है। और बुद्ध जान कर कहते हैं। उनका फूल खिला तब उन्होने एक अनूठी बात जानी कि विपरीत दिशाओं में भी, जहाँ हवा नही भी जा रही हो, वहाँ भी संत की गंध चली जाती है। संत की गंध कोई सीमाएँ नहीं मानती।

'फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशाओ मे नही जाती। न चंदन की सुगंध, न तगर की, न चमेली की, न बेला की। लेकिन सज्जनों की सुगंध विपरीत दिशा में भी जाती है।'

सज्जन की सुगंध एकमात्र सुगंध है, जो संसार के नियम नही मानती। जो संसार के साधारण नियमों के पार है, जो अतिक्रमण कर जाती है।

सीख ले फूलो से गाफिल मद्दआ-ए-जिंदगी
खुद महकना ही नहीं गुलशन को महकाना भी है

इतना ही काफी नहीं है कि खुद महको । 'खुद महकना ही नहीं गुलशन को महकाना भी है'। इसलिए बुद्ध ने कहा है, समाधि, फिर प्रज्ञा । समाधि, फिर करुणा । बुद्ध ने कहा है वो ध्यान ध्यान ही नहीं, जो करुणा तक न पहुँचा दे । 'खुद महकना ही नहीं गुलशन को महकाना भी है'। उसी समाधि को बुद्ध ने परिपूर्ण समाधि कहा है जो लुट जाए सभी दिशाओं में । सभी दिशाओं में बह जाए ।

लेकिन यही समझ लेने की बात है । ये बड़ी विरोधाभासी बात है । तुम साधारण अवस्था में सभी दिशाओं में दौड़ते हो और कहीं नहीं पहुँच पाते । बुद्धत्व की तरफ चलनेवाला व्यक्ति एक दिशा में चलता है और जिस दिन पहुँचता है उस दिन सभी दिशाओं में बहने में समर्थ हो जाता है । तुम सभी दिशाओं में बहने की कोशिश करते हो । थोड़ा धन भी कमा लें, थोड़ा धर्म भी कमा लें । थोड़ी प्रतिष्ठा भी बना लें, थोड़ी समाधि भी कमा लें । थोड़ा दूकान भी बचा लें, थोड़ा मंदिर भी । तुम सभी दिशाओं में हाथ फैलाते हो । और अखीर में पाते हो भिखारी के भिखारी ही विदा हो गये । जैसे आए थे खाली हाथ वैसे खाली हाथ गये । बहुत पकड़ना चाहा, कुछ पकड़ में न आया ।

तुम्हारी हालत करीब-करीब वैसी है जैसे तुमने एक बहुत प्रसिद्ध गधे की सुनी हो, कि एक मजाकिया आदमी ने एक गधे के पास दोनों तरफ घास के दो ढेर लगा दिये बराबर दूरी पर । और गधा बीच में खड़ा था । उसे भूख तो लगी, तो वो बाएँ तरफ जाना चाहा, तब मन ने कहा कि दाएँ । उस तरफ भी घास थी । दाएँ तरफ जाना चाहा तो मन ने कहा बाएँ ।

कहते हैं गधा भूखा बीच में खड़ा-खड़ा मर गया, क्योंकि न वो बाएँ जा सका, न दाएँ । जब दाएँ जाना चाहा तब मन ने कहा बायाँ । जब बाएँ जाना चाहा तब मन ने कहा दायाँ ।

तुम्हारा मन यही कर रहा है । जब तुम मंदिर की तरफ जाना चाहते हो, तब मन कहता है दूकान । जब तुम दूकान पे बैठे हो, मन को भजन याद आता है, मंदिर । ऐसे ही मर जाओगे । और दोनों तरफ तृप्ति के साधन मौजूद थे । कहीं भी गये होते ।

मैं तुमसे कहता हूँ, अगर तुम दूकान पर ही पूरी तरह से चले जाओ तो वहीं ध्यान हो जाएगा । आधे-आधे मंदिर जाने की बजाय दूकान पर पूरे चले जाना बेहतर है । क्योंकि पूरे चला जाना ध्यान है । ग्राहक से बात करते वक्त भीतर राम-राम गुनगुनाना गलत है । ग्राहक को ही पूरा राम मान लेना उचित है ।

आधे-आधे कुछ सार न होगा । आधा यहाँ, आधा वहाँ, तुम दो नाव पे सवार हो, तुम बड़ी मुश्किल में पड़े हो । तुम सब दिशाओं में पहुँचना चाहते हो और कहीं

नहीं पहुँच पाते। बुद्धपुरुष एक दिशा में जाते हैं। और जिस दिन मंजिल पे पहुँचते हैं, सब दिशाओं में उनकी गंध फैल जाती है। तुम सब पाने की कोशिश में सब गवाँ देते हो। बुद्धपुरुष एक को पा लेते हैं और सब पा लेते हैं।

महावीर ने कहा है, जिसने एक को पा लिया, उसने सब पा लिया। जिसने एक को जान लिया, उसने सब जान लिया।

जीसस ने कहा है, 'सीक यी फॅर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड ऐंड ऑल एल्स सेल बी एडेड अन टू यू' (अकेले तुम परमात्मा की खोज कर लो। प्रभु का राज्य खोज लो; शेष सब अपने से आ जाएगा, तुम उसकी फिकिर ही मत करो। एक को जिसने गवाँया, वो सब गवाँ देता है। और एक को जिसने पाया वो सब पा लेता है।)

लेकिन तुम्हारा सब अधूरा-अधूरा है। अधूरे-अधूरे के कारण तुम खंड-खंड हो गये हो। तुम्हारे भीतर बड़े टुकड़े हो गये हैं। एक टुकड़ा कहीं जा रहा है, दूसरा टुकड़ा कहीं जा रहा है। तुम एक टूटी हुई नाव हो, जिसके तख्ते अलग-अलग बह रहे हैं। तुम कैसे पहुँच पाओगे? तुम कहाँ पहुँच पाओगे? तुम हो ही नहीं। तुम इतने खंड-खंड हो गये हो कि तुम हो, यह कहना भी उचित नहीं है। होने के लिए जरूरी है कि तुम्हारी दिशा बने, एक अनुशासन हो, एक शृंखला हो। तुम फूलों को पिरोना सीखो, फूलों की माला बनाना सीखो।

जीवन में सत्य का आविष्कार करना है, प्रेम का आविष्कार करना है। जीवन में तुम कौन हो इसका आविष्कार करना है। इसे ऐसे ही नहीं गवाँ देना है। तो तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे अनुशासन आना शुरू हो जाए। अगर तुम्हारे पास कुछ भी--थोड़ी-सी भी -- दृष्टि हो, दिशा हो कहाँ पहुँचना है, तो एक तारतम्य आ जाए। उस तारतम्य के साथ ही साथ तुम्हारे भीतर एकता का जन्म होगा। इस एकता के माध्यम से ही किसी दिन तुम माला बन सकते हो। और जिस दिन तुम माला बन जाते हो, उस दिन परमात्मा के गले में चढ़ाने नहीं जाना होता। परमात्मा का गला खुद तुम्हारी माला में आ जाता है। आ ही जाएगा। तुम काबिल हो गये। 'काबिले इल्तिफात तू ही नहीं' -- तभी तक अड़चन थी। 'उनसे शिकवा फजूल है सीमाब'। शिकायत बेकार है। इतना ही जानना कि अभी हम तैयार नहीं हुए।

अब यह फूलों की गठरी को तुम किसीके गले में डालना चाहोगे तो माला कैसे बनेगी? गिर जाएँगे फूल नीचे, धूल में पड़ जाएँगे। ये माला किसीके गले में डालनी हो तो माला होनी चाहिए। फूलों के ढेर को माला मत समझ लेना।

थोड़ा देखो, माला और ढेर में क्या फर्क है?

ढेर में संगठन नहीं है। अर्थात् आत्मा नहीं है। माला में एक संगठन है, एक व्यक्तित्व है, एक आत्मा है। धागा दिखायी नहीं पड़ता। एक फूल से दूसरे फूल

में चुपचाप अदृश्य में पिरोया हुआ है। जीवन के लक्ष्य भी दिखायी नहीं पड़ते। एक क्षण से दूसरे क्षण में अदृश्य पिरोये होते हैं। बुद्ध उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, तो हर घड़ी के भीतर ध्यान का धागा पिरोया हुआ है। जो भी करते हैं, एक बात ध्यान रखते ही हैं कि उस करने में से ध्यान का धागा न छूटे। वो धागा बना रहे।

फूल से भी ज्यादा मूल्य धागे का है। लक्ष्य का है, दिशा का है। और जिस दिन ये घड़ी घट जाती है कि तुम संगठित हो जाते हो, तुम एक हो जाते हो, उसी दिन — उसी दिन परमात्मा की कृपा तुम पे बरस उठती है। उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

इसलिए बुद्ध उस संबंध में चुप रहे हैं। जो कहा जा सकता था, उन्होंने कहा। जो नहीं कहा जा सकता था, उन्होंने नहीं कहा। उन्होंने सारा जोर इस पर दिया है कि तुम्हारा व्यक्तित्व कैसे एक हो जाए। तुम्हारा ज्ञान कैसे आचरण बन जाए। तुम्हारे बिखरे फूल कैसे माला बन जाएँ। इससे ज्यादा उन्होंने बात नहीं की, क्योंकि इसके बाद बात करनी ठीक ही नहीं है। इसके बाद जो होना है वो होता ही है। वो हो ही जाता है। उसमें कभी कोई अड़चन नहीं पड़ती।

इसलिए परमात्मा को तुम भूल जाओ तो अड़चन नहीं है। अपने को मत भूल जाना। अपने को भूला, तो सब गया, सब डूबा। खुद की याद रखी और उसी याददाश्त को रोज-रोज सँभालते गये, रोज-रोज हर तरह से वह याददाश्त सघन होती चली जाए। जैसे जल गिरता है पहाड़ से — और चट्टान मजबूत है, जल बिलकुल नाजुक है। लेकिन रोज गिरता ही चला जाता है। एक दिन चट्टान तो रेत होके बह जाती है, जल की धारा अपनी जगह बनी रहती है।

कठोर से कठोर भी टूट जाता है सातत्य के सामने। इसलिए घबड़ाना मत, अगर आज तुम्हे अपनी दशा चट्टान जैसी लगे। तुम कहो कि कैसे ये अहंकार बहेगा? ये चट्टान बडी मजबूत है। कैसे ये दिल झुकेगा? ये झुकना जानता नही। तुम इसकी फिकर मत करना, तुम सिर्फ सातत्य रखना ध्यान का, अवलोकन का, साक्षी का। शेष सब अपने से हो जाता है।

बुद्ध ने मनुष्य के व्यक्तित्व का विज्ञान दिया। उन्होंने मनोविज्ञान दिया। 'मेटाफिजिक्स'। परलोक के शास्त्र की बात नहीं की। बुद्ध बड़े यथार्थवादी हैं। वे कहते हैं जो करना जरूरी है, वही। और ज्यादा व्यर्थ की विस्तार की बातों में तुम्हें भटकाने की जरूरत नहीं है। ऐसे ही तुम काफी भटके हुए हो।

थोड़े से तुम्हें सूत्र दिये हैं। अगर तुम इन्हें कर लो, तो इन सूत्रों में बड़ी आग है। वो अंधकार को जला डालेंगे। वो व्यर्थ को राख कर देंगे। और उन सूत्रों की आग से तुम्हारे भीतर का स्वर्ण निखर के बाहर आ जाएगा। बुद्ध ने बहुत थोड़ी

सी बातें कहीं। उन्हीं-उन्ही को दोहरा के कहा है। क्योंकि बुद्ध को रस दर्शनशास्त्र में नहीं है। बुद्ध को रस है मनुष्य की आंतरिक-क्रांति में, रूपांतरण में। बुद्ध को जिन लोगों ने गौर से अध्ययन किया है, उन सबको हैरानी होती है कि बुद्ध एक ही बात को कितनी बार दोहराए चले जाते हैं। वो हैरानी इसीलिए होती है कि बुद्ध व्यर्थ की बात को कभी बीच में नहीं लाते। बस सार्थक को ही दोहराते हैं, ताकि सतत चोट पड़ती रहे।

और तुम ऐसे हो, तुम्हारी नीद ऐसी है, तुम्हारी तंद्रा ऐसी है कि बहुत बार दोहराने पर भी तुम सुन लो, वो भी आश्चर्य है। बुद्ध से कोई पूछता था तो वो तीन बार दोहरा के जवाब देते थे। उसी वक्त तीन दफा दोहरा के जवाब देते थे। क्यों तीन बार? क्योंकि, बुद्ध से कोई पूछने लगा कि क्यों तीन बार? क्या आप सोचते हैं हम बहरे हैं? बुद्ध ने कहा, नहीं। अगर तुम बहरे होते तो इतनी अड़चन न थी। तुम बहरे नहीं हो और फिर भी सुनते नहीं हो। तुम सोए नही हो, यही तो अड़चन है। सोए होते तो जगाना आसान हो जाता। तुम बनके लेटे हो। तुम सोने का ढोंग कर रहे हो। उठना भी नही चाहते, जाग भी गये हो। तुम सुनते हुए मालूम पड़ते हो और सुनते भी नही, इसलिए तीन बार दोहराता हूँ।

ये जो बुध्द का दोहराना है, धम्मपद में — इस पूरी चर्चा में — बहुत बार आएगा। अलग-अलग द्वारों से वो फिर वही लौट आते है — कैसे तुम्हारा रूपांतरण हो? बुध्द की सारी आकांक्षा, अभीप्सा मनुष्य-केंद्रित है। महावीर मोक्ष-केंद्रित हैं। वो मोक्ष की चर्चा करते हैं। जीसस ईश्वर-केंद्रित है, वो ईश्वर की चर्चा करते हैं। बुद्ध मनुष्य-केंद्रित है। जैसे मनुष्य से ऊपर कोई सत्य नही है बुद्ध के लिए।

साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं

सबके ऊपर मनुष्य का सत्य है और उसके ऊपर कोई सत्य नहीं है। क्योंकि जिसने मनुष्य के सत्य को समझ लिया, उसे कुंजी मिल गयी। सारे सत्यों के द्वार उसके लिए फिर खुले हैं।

बुद्ध को भोजन बनाओ, पिओ, पचाओ, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारे भीतर बुद्ध का अवतरण होने लगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारे भीतर बुद्ध की प्रतिमा उभरने लगी। हर चट्टान छिपाए है बुद्ध की प्रतिमा अपने में। जरा छेनी की जरूरत है, हथौडी की जरूरत है। व्यर्थ को छाँट के अलग कर देना है।

किसीने माइकल एंजलो से पूछा — क्योंकि एक चर्च के बाहर एक पत्थर बहुत दिन से पड़ा था, उसे अस्वीकार कर दिया गया था, चर्च के बनानेवालो ने उपयोग में नहीं लिया था, वो बडा अनगढ़ था, माइकल एंजलो ने उस पर मेहनत की और

उससे एक अपूर्व क्राइस्ट की प्रतिमा निर्मित की — किसीने पूछा कि ये पत्थर तो बिलकुल व्यर्थ था, इसे तो फेंक दिया गया था, इसे तो राह का रोड़ा समझा जाता था, तुमने इसे रूपांतरित कर दिया। तुम अनूठे कलाकार हो।

माइकल एंजलो ने कहा, नहीं, तुम गल्ती कर रहे हो। जो मैंने पत्थर से प्रगट किया है, वो पत्थर में छिपा ही था, सिर्फ मैंने पहचाना। और जो व्यर्थ टुकड़े पत्थर के आसपास थे उनको छाँटके अलग कर दिया। ये प्रतिमा तो मौजूद ही थी। मैंने बनायी नहीं। मैंने सिर्फ सुनी आवाज। मैं गुजरता था यहाँ से, ये पत्थर चिल्लाया और उसने कहा कि कब तक मैं ऐसे ही पड़ा रहूँ ? कोई पहचान ही नहीं रहा है। तुम मुझे उठा लो, जगा दो। बस, मैंने छेनी उठाके इस पे मेहनत की। जो सोया था उसे जगाया।

बुद्धत्व को कहीं पाने नहीं जाना है। हरेक के भीतर आज जो चट्टान की तरह मालूम हो रहा है —— अनगढ़, बस जरा से छेनी-हथौड़े की जरूरत है। सब के भीतर से पुकार रहा है कि कब तक पड़ा रहूँगा ? उघाड़ो मुझे। इसलिए बुद्ध कहते हैं जो तुम सुनो, जो सुभाषित तुम्हारे कानों में पड़ जाएँ, उन्हें तुम स्मृति में सग्रहीत मत करते जाना। उन्हें उतारना आचरण में। उन्हें जीवन की शैली बनाना। धीरे-धीरे तुम्हारे चारों तरफ उनकी हवा तुम्हें घेरे रहे, उनके मौसम में तुम जीना। जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर का बुद्धत्व उभरना शुरू हो गया। फूल माला बन गये।

और तब एक ऐसी घटना घटती है, जो संसार के नियमों के पार है। फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशा में नहीं जाती —— न चंदन की, न तगर की, न चमेली की, न बेला की। लेकिन जिनके भीतर का बुद्धपुरुष जाग गया, बुद्ध चैतन्य जाग गया, उनकी सुगंध विपरीत दिशा में भी जाती है। सभी दिशाओं में उनकी सुगंध फैल जाती है।

और जब तक तुम ऐसे अपने को लुटा न सकोगे, तब तक तुम पीड़ित रहोगे। एक ही नर्क है —— अपने को प्रगट न कर पाना। और एक ही स्वर्ग है — अपनी अभिव्यक्ति खोज लेना।

जो गीत तुम्हारे भीतर अनगाया पड़ा है, उसे गाओ। जो वीणा तुम्हारे भीतर सोयी पड़ी है, उसे छेड़ो उसके तारों को। जो नाच तुम्हारे भीतर तैयार हो रहा है, उसे तुम बोझ की तरह मत ढोओ। उसे प्रगट हो जाने दो।

प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर बुद्धत्व को लेके चल रहा है। जब तक वह फूल न खिले, तब तक बेचैनी रहेगी, अशांति रहेगी। पीड़ा रहेगी, संताप रहेगा। वो फूल खिल जाए, निर्वाण है, सच्चिदानंद है, मोक्ष है।

आज इतना ही।

प्रार्थना : प्रेम की पराकाष्ठा

८ दिसंबर १९७५

पहला प्रश्न : बुद्ध बातें करते हैं होश की, जागने की, और आप बीच-बीच में मस्ती, नशा, शराब और लीनता की बातें भी उठाया करते हैं। बुद्ध को बोलते समय विपरीत की चर्चा क्यों आवश्यक है? कृपया समझाएं।
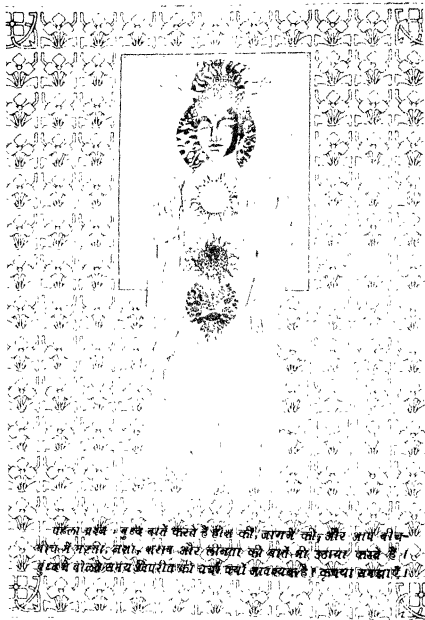
दृष्टि न हो, तो विपरीत दिखायी पड़ता है। दृष्टि हो, तो जरा भी विपरीत दिखायी न पड़ेगा।

जिसको बुद्ध होश कहते हैं, उसीको सूफियों ने बेहोशी कहा। जिसको बुद्ध अप्रमाद कहते हैं, उसीको भक्तों ने शराब कहा। बुद्ध के वचनों में और उमर खैयाम में इंच भर का फासला नहीं। बुद्ध ने जिसे मंदिर कहा है, उसीको उमर खैयाम ने मधुशाला कहा। बुद्ध तो समझे ही नहीं गये, उमर खैयाम भी समझा नहीं गया। उमर खैयाम को लोगों ने समझा कि शराब की प्रशंसा कर रहा है।

कुछ अपनी करामत दिखा ऐ साकी
जो खोल दे आँख को पिला ऐ साकी
होशियार को दीवाना बनाया भी तो क्या
दीवाने को होशियार बना ऐ साकी

तुम बेहोश हो। शराब तो तुमने पी ही रखी है। संसार की शराब। किसीने

धन की शराब पी रखी है और धन में बेहोश है। किसीने पद की शराब पी रखी है और पद में बेहोश है। किसीने यश की शराब पी रखी है। जिनको न पद, यश, धन की शराब मिली, वो सस्ती शराब मयखानों में पी रहे हैं। वे हारे हुए शराबी हैं।

और बड़ा मजा तो ये है कि बड़े शराबी छोटे शराबियों के खिलाफ हैं। जो दिल्ली में पदों पर बैठे है, वे छोटे-छोटे मयखानों में लोगों को शराब नही पीने देते। उनने खुद भी शराब पी रखी है। लेकिन उनकी शराब सूक्ष्म है। उनका नशा बोतलों में बंद नहीं मिलता। उनका नशा बारीक है। उनके नशे को देखने के लिए बड़ी गहरी आँख चाहिए।

उनका नशा स्थूल नहीं है। राह पे तुमने शराबी को डगमगाते देखा, राजनेता को डगमगाते नही देखा? राह में तुमने शराबी को गिर जाते देखा, धनी के पैर तुमने डगमगाते नही देखे? शराबी को ऊलजुलूल बकते देखा, पदधारियों को ऊल-जुलूल बकते नहीं देखा? तो फिर तुमने कुछ देखा नही। ससार में आँख बंद करके जी रहे हो।

बहुत तरह की शराबें हैं। संसार शराब है। उमर खैयाम, सूफी या भक्त जिस शराब की बात कर रहे हैं, वो ऐसी शराब है जो संसार के नशे को तोड़ दे। जो तुम्हें जगा दे।

परमात्मा की शराब का लक्षण है जागरण। इसलिए बुद्ध और उमर खैयाम की बातों में फर्क नहीं है। जान के ही बुद्ध के साथ इन मस्तानों की भी बात कर रहा हूँ। क्योंकि अगर तुम्हें फर्क दिखायी पडता रहा, तो न तो तुम बुद्ध को समझ सकोगे और न इन दीवानों को। जब इन दोनों में तुम्हें कोई फर्क न दिखायी पड़ेगा, तभी तुम समझोगे।

परमात्मा का भी एक नशा है। लेकिन नशा ऐसा है कि और सब नशे तोड़ देता है। नशा ऐसा है कि तुम्हारी नींद ही तोड़ देता है। नशा ऐसा है कि जागरण की एक अहर्निश धारा बहने लगती है। फिर भी उसे नशा क्यों कहें, तुम पूछोगे। जब होश आता है, तो नशा क्यों कहे? नशा इसलिए है कि होश तो आता है, मस्ती नहीं जाती। होश तो आता है, मस्ती बढ़ जाती है। और ऐसा होश भी क्या जो मस्ती भी छीन ले! फिर तो मरुस्थल का हो जाएगा होश। फिर तो रूखा-सूखा होगा। फिर तो हरियाली न होगी, फूल न खिलेंगे, और पक्षी गीत न गाएँगे, और झरने न बहेंगे, और आकाश के तारों में सौंदर्य न होगा।

या तो तुम उमर खैयाम को समझ लेते हो कि ये किसी साधारण शराब की प्रशंसा कर रहा है, और या तुम समझ लेते हो कि बुद्ध मस्ती के खिलाफ हैं। दोनों नासमझियाँ हैं। बुद्ध मस्ती के खिलाफ नहीं हैं। बुद्ध से ज्यादा मस्त आदमी तुम

कहाँ पाओगे ? तुम कहोगे ये जरा अड़चन की बात है । बुद्ध को किसीने कभी नाचते नहीं देखा । मीरा नाचती है, चैतन्य नाचते हैं । बुद्ध को कब किसने नाचते देखा ? पर मैं तुमसे कहता हूँ, ऐसे भी नाच हैं जो दिखायी नहीं पड़ते । और मैं तुमसे ये भी कहता हूँ कि नाच की एक ऐसी आखिरी स्थिति भी है, जहां सब स्थिर हो जाता है । ऐसा भी नाच है, जहाँ कंपन नहीं होता ।

किसी और उदाहरण से समझें जो तुम्हारी समझ में आ जाए । क्योंकि ये बात तो बेबूझ हो जाएगी, पहेली बन जाएगी । कोई मर जाता है प्रियजन, तो तुमने आँखों से आँसू बहाते लोग देखे हैं । कभी तुमने उस दुख को घड़ी को भी देखा है जब आँसू भी नहीं बहते । ऐसे भी दुख हैं । दुख की आत्यंतिक ऐसी भी गहराई है कि आँख से आँसू भी नहीं बहते, मुंह से आह भी नही निकलती । दुख इतना गहन हो जाता है कि आँसू बहाना भी दुख की बेइज्जती मालूम होगी । दुख इतना गहन हो जाता है कि रोना भी व्यर्थ मालूम होगा ।

रोते भी वे है, जिनके दुख में अभी थोड़ी सुख की सुविधा है । जिनका दुख पूरा नहीं है । रोते भी वे हैं, जिनके दुख ने अभी आखिरी तक नहीं छू लिया है । हृदय के आखिरी कोर तक को नहीं भिगो दिया है । चिल्लाते भी वे हैं, जिनका दुख स्थूल है । तुमने कभी ऐसी घड़ी जरूर देखी होगी । दुख महान हुआ । दुख इतना बड़ा था कि तुम सम्हाल न पाए, आँखें भी सम्हाल न पायीं, आँसू भी सम्हाल न पाए, सब सन्नाटा हो गया । आघात इतना गहरा था कि कंपन ही न हुआ ।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर ऐसी घड़ी हो तो किसी भी तरह उस व्यक्ति को रुलाने की चेष्टा करनी चाहिए, अन्यथा वो मर भी जा सकता है । किसी भाँति उसे हिलाओ, रुलाओ, उसकी आँखों में किसी भाँति आँसू ले आओ, ताकि आघात हल्का हो जाए, ताकि आघात बह जाए, ताकि दुख आँसुओं से निकल जाए और भीतर राहत आ जाए ।

तुम दुख के कारण रोते हो, या दुख से छुटकारा पाने के कारण रोते हो ? तुम दुख के कारण रोते हो, या दुख से राहत पाने के लिए रोते हो ? दुख जब सघन होता है, तो आवाज भी नही उठती । दिल जब सच में ही टूट जाता है, तो आवाज भी नहीं उठती । ठीक इससे विपरीत अब तुम समझ सकोगे । मीरा नाचती है । अभी नाच सकती है, इसलिए । अभी नाच इतना गहरा नहीं गया है । अभी लीनता और समाधी की दशा इतनी गहरी नहीं गयी है जहाँ नाच भी खो जाए। ऐसे भी नाच हैं जहाँ नाच भी खो जाता है । ऐसे भी दुख हैं जहाँ आँसू भी नहीं होते ।

बुद्ध भी नाच रहे हैं, लेकिन बड़ा सूक्ष्म है ये नृत्य । ये इतना सूक्ष्म है कि स्थूल आँखें न पकड़ पाएँगी । इसे तो केवल वे ही देख पाएँगे जिन्होंने ऐसा नाच जिया

हो, जाना हो। मैं तुमसे कहता हूँ, बुद्ध नाच रहे हैं। अन्यथा हो ही नहीं सकता। मैं तुमसे कहता हूँ, बुद्ध ने पी ली वो शराब, जिसकी मैं बात कर रहा हूँ। आनंद इतना सघन है, अवाक् हो गये हैं! ठगे रह गये हैं! मीरा तो नाच सकी, थोड़ी राहत मिली होगी। आनंद भी जब सघन हो जाए, तो कुछ करो तो राहत मिल जाती है। बुद्ध पी गये। पूरा आनंद पी गये। अगर कोई मुझसे पूछे, तो बुद्ध का नशा मीरा से भी ज्यादा है। मीरा को तो कम से कम नाचने की खबर रही। बुद्ध को उतनी खबर भी न रही।

ध्यान रखना, जब मैं मीरा, या बुद्ध, या किन्हीं और की बात करता हूँ, तो ये बातें तुलनात्मक नहीं हैं, 'कंपेरेटिव' नहीं हैं। मैं किसीको छोटा-बड़ा नहीं कह रहा हूँ। तुम्हें बुद्ध समझ में आ जाएँ, तो तुम्हें उमर खैयाम भी समझ में आ जाएगा। फिट्जराल्ड ने, जिसने उमर खैयाम का अँग्रेजी में अनुवाद किया, उमर खैयाम को बरबाद कर दिया। क्योंकि सारी दुनिया ने फिट्जराल्ड के बहाने ही, उसीके मार्ग से, उसीके निमित्त से उमर खैयाम को जाना। और सारी दुनिया ने यही समझा कि ये शराब की चर्चा है, ये मयखाने की चर्चा है। ये मयखाने की चर्चा नहीं है। शराब की चर्चा नहीं है, ये मंदिर की बात है।

कुछ अपनी करामत दिखा ऐ साकी
जो खोल दे आँख वो पिला ऐ साकी.
होशियार को दीवाना बनाया भी तो क्या
दीवाने को होशियार बना ऐ साकी

बुद्ध ने ऐसी ही शराब ढाली, जिसमें दीवाने होशियार बन जाते हैं। वही उनका अप्रमाद योग है। वही उनकी जागरण की कला है। लेकिन मैं इसको फिर-फिर शराब कहता हूँ। क्योंकि मैं चाहता हूँ, तुम ये न भूल जाओ कि रूखी-सूखी जीवन स्थिति नहीं है, बड़ी हरी-भरी है। ये रेगिस्तान नहीं है, मरुद्यान है। यहाँ फूल खिलते हैं, पक्षी चहचहाते हैं। यहाँ चाँद-तारे घूमते हैं। यहाँ गीतों का जन्म होता है। यहाँ रोएँ-रोएँ में, जर्रे-जर्रे में अज्ञात की प्रतिध्वनि सुनी जाती है। यहाँ मंदिर की घंटियों का नाद है और मंदिर में जलती धूप की सुगंध है। बुद्ध नीरस नहीं बैठे हैं। हीरा सम्हाल के बैठे हैं।

कबीर ने कहा है --

'हीरा पायो गाँठ गठियायो'। तुम ऊपर ही ऊपर मत देखते रहना, गाँठ ही दिखायी पड़ती है। भीतर हीरे को गठिया के बैठे हैं। हिलते भी नहीं, इतना बड़ा हीरा है। कंपित भी नहीं होते, इतना बड़ा हीरा है। इतनी बड़ी संपदा मिली है कि धन्यवाद देना भी ओछा पड़ जाएगा।' छोटा पड़ेगा। अहोभाव भी प्रगट क्या

करें ! अहोभाव प्रगट करनेवाला भी खो गया है। कौन धन्यवाद दे, कौन अनुग्रह की बात करे, कौन उत्सव मनाए !

मैं तुमसे यह कह रहा हूँ कि ऐसे उत्सव भी हैं जब उत्सव भी ओछा पड़ जाता है। इसलिए जानके ही बात कर रहा हूँ। इसलिए जब कभी उमर खैयाम की तुमसे बात करूंगा, तो बुद्ध की भी बात करूंगा। क्योंकि न तो उमर खैयाम समझा जा सकता है बुद्ध के बिना, न बुद्ध समझे जा सकते हैं उमर खैयाम के बिना। मेरी सारी चेष्टा यही कि जिनको तुमने विपरीत समझा है, उनको तुम इतने गौर से देख लो कि उनकी विपरीतता खो जाए। और अलग-अलग रंगों और रूपों में तुम्हें एक ही सौंदर्य की झलक मिल जाए। मीरा के नाच में अगर तुम्हें बुद्ध बैठे मिल जाएँ और बुद्ध की ध्यानस्थ प्रतिमा में अगर तुम्हें मीरा का नाच मिल जाए, तो हाथ लग गयी कुंजी। मंदिर का द्वार तुम भी खोलने में समर्थ हो जाओगे। जिन्होंने इससे अन्यथा देखा, उन्होने देखा नहीं। उन अंधों की बातों में मत पड़ना।

दूसरा प्रश्न : कुछ दिल ने कहा ? कुछ भी नहीं
कुछ दिल ने सुना ? कुछ भी नहीं
ऐसे भी बातें होती है ? ऐसे ही बातें होती हैं

एक तो मनुष्य की बुद्धि में चलते हुए विचारों का जाल है। वहाँ सब साफ-सुथरा है। वहाँ चीजें कोटियों में बँटी हैं, क्योंकि वहाँ तर्क का साम्राज्य है। और एक फिर हृदय में उठती हुई लहरें हैं। वहाँ कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है। वहाँ तर्क का साम्राज्य नहीं है। वहाँ प्रेम का विस्तार है। वहाँ हर लहर दूसरी लहर से जुड़ी है। वहाँ कुछ भी अलग-थलग नहीं है, सब सयुक्त है। वहाँ शून्य भी बोलता है, और बोलना भी सन्नाटे जैसा है। वहाँ नृत्य भी आवाज नहीं करता, और वहाँ सन्नाटा भी नाचता है।

तर्क की जितनी कोटियाँ है, जैसे-जैसे तुम हृदय के करीब आते हो, टूटती चली जाती हैं। तर्क के जितने हिसाब हैं, जैसे-जैसे तुम हृदय के करीब आते चले जाते हो, वे हिसाब व्यर्थ होने लगते हैं। जितनी धारणाएँ हैं विचार की, वे धारणाएँ बस जबतक तुम मस्तिष्क में जीते हो, खोपड़ी ही तुम्हारा जब तक घर है, तबतक अर्थ-पूर्ण हैं। जैसे ही थोड़े गहरे गये, जैसे ही थोड़ी डुबकी ली, जैसे ही थोड़े अपने में लीन हुए, जैसे ही हृदय के पास सरकने लगे, वैसे ही सब रहस्य हो जाता है। जो जानते थे, पता चलता है वो भी कभी जाना नहीं। जो सोचते थे कभी नही जाना, एहसास होता है जानने लगे। ज्ञात छूटता है, अज्ञात में गति होती है। किनारे से नाव मुक्त होती है और उस सागर में प्रवेश होता है, जिसका फिर कोई किनारा नहीं।

इस किनारे से नाव मुक्त होती है, उस तरफ जहाँ फिर कोई दूसरा किनारा नहीं है, तटहीन सागर है हृदय का, वहाँ बड़ी पहेली बन जाती है।

कुछ दिल ने कहा ? कुछ भी नहीं
कुछ दिल ने सुना ? कुछ भी नहीं
ऐसे भी बातें होती हैं ? ऐसे ही बातें होती हैं

दिल को सुनने की कला सीखनी पड़ेगी। अगर पुरानी आदतों से ही सुना, जिस ढंग से मन को सुना था, बुद्धि को सुना था, अगर उसी ढंग से सुना, तो तुम हृदय की भाषा न समझ पाओगे। वो भाषा भाव की है। उस भाषा में शब्द नहीं हैं, संवेग हैं। उस भाषा में शब्दकोश से तुम कुछ भी सहायता न ले सकोगे। उस भाषा में तो जीवन के कोश से ही सहायता लेनी पड़ेगी।

और इसीलिए अक्सर लोग हृदय के करीब जाने से डर जाते हैं। क्योंकि हृदय के पास जाते ऐसा लगता है, जैसे पागल हुए जाते हैं। सब साफ-सुथरापन नष्ट हो जाता है। ऐसा ही समझो कि विराट जंगल है जीवन का, और तुमने एक छोटे से आँगन को साफ-सुथरा कर लिया है -- काट दिये झाड़-झखाड, दीवालें बना ली हैं, अपने आँगन में तुम सुनिश्चित हो -- जरा आँगन से बाहर निकलो, तो जंगल की विराटता घबड़ाती है। वहाँ खो जाने का डर है। वहाँ कोई राजपथ नहीं। पगडंडियाँ भी नहीं है, राजपथ तो बहुत दूर।

उस विराट बीहड़ जगल में, जीवन के जंगल में तो तुम चलो, जितना चलो उतना ही रास्ता बनता है। चलने से रास्ता बनता है। चलने के लिए कोई रास्ता तैयार नहीं है। 'रेडीमेट' वहाँ कुछ भी नहीं है। इसलिए आदमी डरता है, लौट आता है अपने आँगन में। यही तो अड़चन है। बुद्धि तुम्हारा आँगन है, जहाँ सब साफ-सुथरा है, जहाँ गणित ठीक बैठ जाता है।

प्लेटो ने अपनी अकॅदमी, अपने स्कूल के द्वार पर लिख रखा था -- जो गणित न जानता हो, वो भीतर न आए। प्लेटो ये कह रहा है -- जिसने बुद्धि की भाषा न सीखी हो, वो वहाँ भीतर न आए। मेरे द्वार पर भी लिखा है कुछ। प्लेटो तो लिख सकता है, क्योंकि बुद्धि के पास शब्द हैं, मैं लिख नहीं सकता। लेकिन मेरे द्वार पर भी लिखा है कि जो हृदय की भाषा न समझता हो, वो भीतर न आए। क्योंकि यहाँ हम उस जगत की ही बात कर रहे हैं, जिसकी कोई बात नहीं हो सकती। यहाँ हम उसी तरफ जाने की चेष्टा में संलग्न हैं, जहाँ जाना अपने को मिटाने जैसा है। जहाँ केवल वे ही पहुँचते हैं जो अपने को खोने को तत्पर होते हैं। तो डर लगेगा।

इसीलिए तो लोग प्रेम से भयभीत हो गये हैं। प्रेम की बात करते हैं, प्रेम करते नहीं। बात खोपड़ी से हो जाती है। करना हो, तो जीवन के बीहड़ जंगल में प्रवेश

करना होता है। खतरे ही खतरे हैं। प्रेम के संबंध में लोग सुनते हैं, समझते हैं, गीत गाते हैं, कथाएँ पढ़ते हैं, प्रेम करते नहीं। क्योंकि प्रेम करने का अर्थ, अपने को मिटाना। अहंकार खो जाए, तो ही प्रेम का अंकुरण होता है। और जिसने प्रेम न जाना — जिस अभागे ने प्रेम ही न जाना — वो प्रार्थना कैसे जानेगा। वो तो प्रेम की पराकाष्ठा है। वो तो प्रेम का आखिरी निचोड़ है, आखिरी सार है।

कुछ दिल ने कहा ? कुछ भी नहीं
कुछ दिल ने सुना ? कुछ भी नहीं
ऐसी भी बातें होती हैं ? ऐसे ही बातें होती हैं

वहाँ भीतर ऐसी ही तरंगें चलती हैं। वहाँ 'हाँ' और 'ना' में फासला नहीं। वहाँ 'हाँ' भी कभी 'ना' होता है, 'ना' भी कभी 'हाँ' होता है। वहाँ सब विरोध लीन हो जाते हैं एक में। उत्तर में मैं तुमसे कहना चाहूँगा —

कान वो कान है जिसने तेरी आवाज सुनी
आँख वो आँख है जिसने तेरा जलवा देखा

जबतक कान आदमियों की ही बात सुनते रहे, जबतक कान वही सुनते रहे जो बाहर से आता है, जबतक कान आहत नाद को सुनते रहे — जिसकी चोट पड़ती है कान पर और कान के पर्दों पर झन्नाहट होती है — तबतक कान कान ही नहीं। और जबतक आँखों ने वही देखा जो बाहर से आके प्रतिबिंब बनाता है, तबतक उधार ही देखा। सत्य का कोई अनुभव न हुआ। तबतक सपना ही देखा। जब कानों ने वह सुना जो भीतर से उमगता है, जो भीतर से उठता है, जो भीतर से भरता है, तभी कान कान हैं। और जब आँखों ने वो देखा जो आँखें देख ही नहीं सकतीं, जब आँखों ने वो देखा जो आँख बंद करके दिखायी पडता है, जब आँखें अपने पर लौटीं, स्वयं को देखा, तभी आँखें आँखें हैं।

कान वो कान हैं जिसने तेरी आवाज सुनी
आँख वो आँख है जिसने तेरा जलवा देखा

सरको। भीतर की तरफ चलो। थोड़ी अपने से पहचान करें। संसार की बहुत पहचान हुई। बहुत परिचय बनाए, कोई काम नहीं आते। बहुत संग-साथ किया, अकेलापन मिटता नहीं। भीड़ में खड़े हो, अकेले हो बिलकुल। ऐसे भी लोग हैं जो जिंदगी भर भीड़ में रहते हैं और अकेले ही रह जाते हैं। और ऐसे भी लोग हैं जो अकेले ही रहे और क्षणभर को भी अकेले नहीं। जिन्होंने भीतर की आवाज सुन ली उनका अकेलापन समाप्त हो गया। उन्हें एकांत उपलब्ध हुआ। जिन्होंने भीतर के दर्शन कर लिए, उनके सब सपने खो गये। सपनों की कोई जरूरत न रही। सत्य को देख लिया, फिर कुछ और देखने को नहीं बचता।

राबिया अपने घर में बैठी थी। हसन नाम का फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह का सूरज निकला, हसन बाहर गया। बड़ी सुंदर सुबह थी। आकाश में रंगीन बादल तैर रहे थे और सूरज ने सब तरफ किरणों का जाल फैलाया था। हसन ने चिल्लाकर कहा, राबिया! भीतर बैठी क्या करती है? बाहर आ, बड़ी सुंदर सुबह है। परमात्मा ने बड़ी सुंदर सुबह को पैदा किया है। और आकाश में बड़े रंगीन बादल तैरते हैं। पक्षियों के गीत भी हैं। किरणों का जाल भी है। सब अनूठा है। स्रष्टा की लीला देख, बाहर आ! राबिया खिलखिला के हँसी और उसने कहा, हसन, तुम ही भीतर आ जाओ। क्योंकि हम उसे ही देख रहे हैं जिसने सुबह बनायी, जिसने सूरज को जन्म दिया, जिसके किरणों के जाल को देखके तुम प्रसन्न हो रहे हो, भीतर आओ, हम उसे ही देख रहे हैं।

कान वो कान हैं जिसने तेरी आवाज सुनी
आँख वो आँख है जिसने तेरा जलवा देखा

तीसरा प्रश्न: भगवान, आप अपने प्रवचनों में प्रतिदिन ऐसी तात्कालिकता पैदा कर देते हैं *कि रोआँ-रोआँ सिहर उठता है। और हृदय में बाढ़-सी आ जाती है* और एक शिखर-अनुभव की सी स्थिति बन जाती है। फिर आप कहते है कि यदि हम तैयार हों, तो घटना इसी क्षण घट सकती है। कृपया इस तैयारी को कुछ और स्पष्ट करें।

फिर से प्रश्न को पढ़ देता हूँ, क्योंकि प्रश्न में ही उत्तर छिपा है।

'आप अपने प्रवचनों में प्रतिदिन ऐसी तात्कालिकता पैदा कर देते हैं कि रोआँ-रोआँ सिहर उठता है और हृदय में बाढ़-सी आ जाती है।' बाढ़ नहीं आती, बाढ़-सी। 'और एक शिखर-अनुभव की सी स्थिति बन जाती है।' शिखर नहीं, शिखर की सी। वही उत्तर है। वहीं तैयारी चूक रही है।

बुद्धि झूठे सिक्के बनाने में बड़ी कुशल है। बाढ़ की सी स्थिति बना देती है। बाढ़ का आना और है। बाढ़ के आते तो फिर हो गयी घटना! लेकिन बाढ़ की सी स्थिति से नहीं होगी। ये तो ऐसा ही है जैसे तट पर बैठे हैं, नदी में तो बाढ़ नहीं आती, सोच लेते हैं, एक सपना देख लेते हैं, एक ख्वाब देखा कि बाढ़ की सी स्थिति आ गयी। फिर आँख खोलके देखा कि गाँव अपनी जगह है — न गाँव डूबा, न कुछ बहा — नदी अपनी जगह है। बाढ़ की सी स्थिति आयी और गयी। कूड़ा-करकट वहीं का वहीं पड़ा है, कुछ भी बहा न। कुछ ताजा न हुआ, कुछ नया न हुआ।

मैं जब बोल रहा हूँ तो दो तरह की संभावनाएँ बन सकती हैं। तुम मुझे अगर बुद्धि से सुनो, तो ज्यादा से ज्यादा बाढ़ की सी स्थिति बनेगी। बुद्धि बड़ी कुशल है।

और बुद्धि, तुम जो चाहो उसीका सपना देखने लगती है। बुद्धि से मत सुनो। कृपा करो, बुद्धि को जरा बीच से हटाओ। सीधे-सीधे होने दो बात, हृदय की हृदय से। बुद्धि से सुनते हो तब...तब तरंगें बुद्धि से उठती हैं। लेकिन बुद्धि की तरंगें तो पानी में खींची गयी लकीरों जैसी हैं — बन भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं। बुद्धि का भी कोई भरोसा है! विचार क्षणभर नहीं ठहरते और चले जाते हैं। आए भी नहीं कि गये। बुद्धि तो मुसाफिरखाना है। वहाँ कोई घर बनाके कभी रहा है? रेल्वे स्टेशन का प्रतीक्षालय है। यात्री आते हैं, जाते हैं। वहाँ तुम्हारे जीवन में कोई शाश्वत का नाद न बजेगा। एस धम्मो सनंतनो।

उस सनातन का बुद्धि से कोई संबंध न हो पाएगा। बुद्धि क्षणभंगुर है। पानी के बबूले हैं — बने, मिटे। उनमें तुम घर मत बसाना। कभी-कभी पानी के बबूलों में भी सूरज की किरणों का प्रभाव ऐसे रंग दे देता है, इंद्रधनुष छा जाते हैं। मेरी बात तुम सुनते हो। बुद्धि सुनती है, तरंगायित हो जाती है, बाढ़ की सी स्थिति बन जाती है। एक सपना तुम देखते हो। फिर उठे, गये, बाढ़ चली गयी। तुम जहाँ थे वही के वहीं रह गये। कूड़ा-करकट भी न बहा, तुम्हें पूरा बहा ले जाने की तो बात ही दूर! शायद तुम और भी मजबूत होके जम गये। क्योंकि एक बाढ़, तुम्हें लगा आयी और चली गयी, और तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ पायी। ऐसे तो तुम रोज सपने देखते रहो बाढों के, कुछ भी न होगा।

बुद्धि को हटा दो। जब सुनते हो तो सब सुनो, विचारो मत। सुनना काफी है, विचारना बाधा है। मैं तुमसे ये नहीं कह रहा हूँ कि मैं जो कह रहा हूँ उसे मान लो। क्योंकि वो मानना भी बुद्धि का है। मानना बुद्धि का, न मानना बुद्धि का। स्वीकार करना बुद्धि का, अस्वीकार करना बुद्धि का। मैं तुमसे ये नहीं कहता कि जो मैं तुमसे कह रहा हूँ उसे मान लो। न मैं तुमसे कहता हूँ न मानो, न कहता हूँ मानो। मैं तो कहता हूँ सिर्फ सुन लो। सोचो मत। बुद्धि को कह दो, तू चुप!

तुम मुझे ऐसे ही सुनो जैसे अगर पक्षी कोई गीत गाता हो, उसे सुनते हो। तब तो बुद्धि कोई काम नहीं कर सकती। यद्यपि वहाँ भी थोड़े अपने हाथ फैलाती है। थोड़े झपट्टे मारती है। कहती है बड़ा सुंदर है। कल सुना था वैसा ही गीत है। ये कौनसा पक्षी गा रहा है? थोड़े बहुत हाथ मारती है, लेकिन ज्यादा नहीं। क्योंकि पक्षी की भाषा तुम नहीं समझते। मैं तुमसे कहता हूँ, मेरी भाषा भी तुम समझते मालूम पड़ते हो, समझते नहीं। क्योंकि जो मैं बोल रहा हूँ, वही मैं बोल नहीं रहा हूँ। जो मैं तुम्हें कहता हुआ सुनायी पड़ रहा हूँ, उससे कुछ ज्यादा तुम्हें देना चाहता हूँ। शब्दों के साथ-साथ शब्दों की पोटलियों में बहुत शून्य बाँधा है। स्वरों के साथ-साथ उनके पीछे-पीछे बहुत सन्नाटा भी भेजा है। जो कह रहा हूँ वही नहीं, अनकहा

भी कहे हुए के पीछे-पीछे छिपा आ रहा है।

तुम अगर बुद्धि से ही सुनोगे, तो जो मैंने कहा वही सुनोगे, अनकहा से वंचित रह जाओगे। जो कहा ही नही जा सकता, उससे तुम वंचित रह जाओगे। बाढ़ उससे आती है। दृश्य के साथ जो अदृश्य को बाँधा है, प्रतीकों के साथ उसे रख दिया है जिसका कोई प्रतीक नहीं। शब्दों की पोटलियों में शून्य को सँभाला है। अगर बुद्धि से सुना, पोटली हाथ लग जाएगी, पोटली के भीतर जो था वो खो जाएगा। उसीके लिए पोटली का उपयोग था। 'कंटेंट' खो जाएगा। विषयवस्तु खो जाएगी, 'कंटेनर', खाली डब्बा हाथ लग जाएगा। तब बाढ़ की सी स्थिति मालूम पड़ेगी।

सुनो, सोचो मत। सुनो, मानने न मानने की जरूरत ही नही है। मैं तुमसे कहता हूँ सुनने से ही मुक्ति हो सकती है, अगर तुम मानने, न मानने के जाल को खडा न करो। क्योंकि जैसे ही तुम्हारे मन मे सवाल उठा कि ठीक है, मानने योग्य है; या सवाल उठा ठीक नही है, मानने योग्य नही है। जब तुम कहते हो ठीक है, मानने योग्य है, तो तुम क्या कर रहे हो? तुम ये कह रहे हो, मेरे अतीत से मेल खाती है बात। मेरे विचारो से तालमेल पड़ता है। मेरी अतीत की श्रद्धा, मान्यताएँ, सिद्धात, शास्त्र, उनके अनुकूल है। तो तुमने मुझे कहाँ सुना? तुमने अपने अतीत को ही मुझसे पुनः-पुनः सिद्ध कर लिया। यहाँ मैं तुम्हारे अतीत को सही सिद्ध करने के लिए नही हूँ।

तो फिर बाढ़ कैसे आएगी? जिसको बहाना था, बाढ जिसे ले जाती, वो और मजबूत हो गया। या तुमने कहा कि नही, बात जमती नही। अपने शास्त्र के अनुकूल नहीं, प्रतिकूल है। अपने सिद्धांतों का साथ नही बैठता। तो तुमने अपने को तोड ही लिया अलग। जोडते हो तो बुद्धि से, तोडते हो तो बुद्धि से। यहाँ कुछ बात ही और हो रही है। न जोड़ने का सवाल है, न तोड़ने का सवाल है। अगर बुद्धि बीच से हट जाए, तो जोडे कौन, तोड़े कौन? एक ही बचता है, जुड़े कौन, टूटे कौन?

अगर बुद्धि हट जाए, तो तुम पाओगे कि मैं तुम्हारे भीतर वहाँ हूँ, तुम मेरे भीतर यहाँ हो। तब मैं कुछ ऐसा नही कह रहा हूँ, जो मेरा है। मेरा कुछ भी नहीं है। कबीर ने कहा है --

'मेरा मुझमें कुछ नहीं।'

जो मैं कह रहा हूँ उसमे मेरा कुछ भी नहीं है। जो मैं कह रहा हूँ वो तुम्हारा ही है। लेकिन तुमने अपना नहीं सुना है, मैंने अपना सुन लिया है।

जो मैं तुमसे कह रहा हूँ जब तुम पहचानोगे, तो तुम पाओगे ये तुम्हारी ही आवाज थी। ये तुम्हारा ही गीत था जो मैंने गुनगुनाया। यहाँ कोई शास्त्रों की, सिद्धांतों की बात नहीं हो रही है, ये सब तो बहाने हैं, खूँटियाँ हैं। यहाँ तो शास्त्रों, सिद्धांतों

के बहाने कुछ दूसरा ही खेल हो रहा है। अगर तुमने शब्द ही सुने और उनपर ही विचार किया — ठीक है या गलत; मानें कि न मानें; अपने अनुकूल पड़ता है कि नहीं; तो तुम मुझे चूक गये। और मुझसे चूका, वो खुद से भी चूका। तुम अपने से ही चूक गये।

अब तुम पूछते हो। अगर तुमने अपना प्रश्न ही गौर से देखा होता, तो समझ में आ जाता। 'आप अपने प्रवचनों में प्रतिदिन ऐसी तात्कालिकता पैदा कर देते हैं कि रोआं-रोआं सिहर उठता है। और हृदय में बाढ़-सी आ जाती है'। बाढ़-सी? सावधान, बाढ़-सी से बचना। बाढ़ चाहिए। 'और एक शिखर-अनुभव की सी स्थिति बन जाती है'। शिखर-अनुभव की सी? सावधान, यह झूठा सिक्का है!

मन के एक स्वभाव को समझ लो। तुम जो चाहते हो, मन उसकी प्रतिमाएँ बना देता है। वो कहता है, ये लो, हाजिर है। दिनभर तुम भूखे रहे, रात सपना देखते हो कि सुस्वादु भोजन कर रहे हो। मन कहता है दिनभर भूखे रहे, ये लो भोजन हाजिर है। लेकिन रात तुम कितना ही सुस्वादु भोजन करो, पेट न भरेगा। हालांकि नींद सम्हल जाएगी। भूखे रहते तो नींद लगना मुश्किल होती। सपने ने कहा, ये लो भोजन, मजे से कर लो और सो जाओ। तुमने सपने में भोजन कर लिया, सो गये।

तुमने कभी ख्याल किया, नींद में प्यास लगी है, गर्मी की रात है, शरीर ने बहुत पसीना छोड़ दिया है, नींद में बहुत प्यास लग गयी है। अब डर है, अगर प्यास बढ़ जाए तो नींद टूट जाए। तो मन कहता है उठो। उठे तुम सपने में, गये रेफ्रीजेरेटर के पास, सपने में ही कोकाकोला पी लिया, लौट के अपने बिस्तर पे सो गये। निश्चित अब। मन ने धोखा दे दिया। प्यास अपनी जगह है। न तुम उठे, न तुम गये कहीं; बस एक स्वप्न, एक बाढ़-सी — कोकाकोला-सा; नींद सम्हल गयी, करवट लेके तुम सोए रहे। सुबह पता चलेगा कि अरे, प्यासे रात भर पड़े रहे!

स्वप्न का काम है निद्रा की रक्षा। कहीं नींद टूट न जाए, तो स्वप्न का इंतजाम है। स्वप्न सुरक्षा है। नींद को नहीं टूटने देता। सब तरह से बचाता है। और धोखा पैदा हो जाता है। कम से कम नींद में तो काम चल जाता है। सुबह जागोगे, तब पता चलेगा। जिस दिन जागोगे उस दिन सोचोगे बाढ़-सी? किस धोखे में रहे, किस सपने में खो गये?

इन बातों का भरोसा मत करो। इससे एक बात साफ है कि जो भी मैं कहता हूँ, तुम्हारी बुद्धि उसकी छानबीन करती है, फिर तुम्हारे भीतर जाता है। तुम्हारी बुद्धि पहरेदार की तरह खड़ी है। जो मैं कहता हूँ, बुद्धि पहले परीक्षण करती है उसका, फिर भीतर जाने देती है। परीक्षण ही करे तो भी ठीक है। उसका रंग-रूप

भी बदल देती है। अतीत के अनुकूल बना देती है। बुद्धि यानी तुम्हारा अतीत। जो तुमने अब तक जाना है, अनुभव किया है, पढ़ा है, सुना है, उस सबका संग्रह। तो तुमसे कोई नयी बात कही ही नहीं जा सकती। और मैं तुमसे नयी ही बात करने की जिद्द किये बैठा हूँ।

तुम वही सुन सकते हो जो पुराना है, मै तुमसे वही कहने की जिद्द किये बैठा हूँ कि जो नया है। जो नितनूतन है वही सनातन है। जो प्रतिपल नया है वही सनातन है। जो कभी पुराना नहीं हो सकता वही पुरातन है। लेकिन तुम्हारी बुद्धि वहाँ बैठी है। अपना सारा धूल जमाए हुए है। कोई भी चीज आती है, बुद्धि उसके रंग को बदल देती है। तब तुम सुन पाते हो, पर वो सुनना धोखा हो गया। फिर बाढ़ की सी स्थिति बनती है। वहीं तैयारी चूक गयी।

मैं तुमसे कहता हूँ, इसी क्षण घटना घट सकती है, यदि तुम तैयार हो। तैयार का क्या अर्थ? तैयार का इतना ही अर्थ, अगर तुम अपनी बुद्धि को किनारे रख देने को तैयार हो। अगर तुम कहते हो ठीक है, हो जाए साक्षात्कार सीधा-सीधा।

आएँ हमारे दिल में दिल से ही मिलाएँगे

ये बीच में भूमिका बाँधने के लिए बुद्धि न होगी। तो अभी इसी घड़ी घटना घट सकती है। धर्म के लिए ठहरने की कोई जरूरत ही नहीं। उसका कल से कुछ लेना-देना नहीं। आज हो सकता है। धर्म सदा नगद है, उधार नहीं। कल का कोई आश्वासन नहीं देता मैं तुम्हें। अभी हो सकता है, इसी क्षण हो सकता है। कल का तो तुम्हें वे ही आश्वासन देते हैं जो तुम्हारी बुद्धि को ही अपील कर रहे हैं, तुम्हारी बुद्धि को ही निमंत्रण दे रहे हैं। मैंने तुम्हारी बुद्धि को कोई निमंत्रण नहीं दिया है, तुम्हें बुलाया है। जिस दिन भी तुम आओगे बुद्धि को अलग रखके, किनारे हटाके, उसी क्षण मिलन संभव है।

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो
तुम को देखूं कि तुमसे बात करूँ

तुम यहाँ बैठे हो, मैं यहाँ बैठा हूँ —

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो
तुमको देखूं कि तुमसे बात करूँ

अगर तुमने मुझसे बात की, चूके। अगर तुमने मुझे देखा, पाया। यहाँ मैं तुमसे बोल भी रहा हूँ और यहाँ हूँ भी। बोलना सिर्फ बहाना है। बोलना तो सिर्फ तुम्हें बुलाना है। बोलना तो सिर्फ ये है कि खाली तुम न बैठ सकोगे मेरे पास इतनी देर। रोज-रोज खाली बैठने को तुम न आ सकोगे। उतनी समझ की तुमसे अपेक्षा नहीं।

अगर मैं चुप हो जाऊँगा, तुम धीरे-धीरे छँटते चले जाओगे। तुम कहोगे खाली ही वहाँ बैठना है, तो अपने घर ही बैठ लेंगे। घर भी तुम न बैठोगे, क्योंकि तुम कहोगे खाली बैठने से क्या सार? इतना समय तो धन में रूपांतरित हो सकता है। कुछ कमा लेंगे, कुछ कर लेंगे।

मैं तुमसे बोल रहा हूँ, ताकि तुम्हें उलझाए रखूं। ऐसे ही जैसे छोटा बच्चा ऊधम कर रहा हो, खिलौना दे देते हैं। खिलौने से खेलता रहता है, उतनी देर कम से कम शांत रहता है। तुमसे बात करता हूँ, शब्द तो खिलौने हैं। थोड़ी देर तुम खेलते रहो, शायद खेलने में मन तल्लीन हो जाए, ठहर जाओ तुम थोड़ी देर मेरे पास। शायद तुम आँख उठाके देखो और मैं तुम्हें दिखायी पड़ जाऊँ। असली सवाल वही है, असली काम वही है। उसी क्षण असली काम शुरू होगा जिस दिन तुम मुझे देखोगे।

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो
तुमको देखूं कि तुमसे बात करूँ

कब तक तुम मुझसे बात करते रहोगे? देखो अब। और तैयारी का कोई अर्थ नहीं है। बात होती है बुद्धि से। देखना होता है हृदय से। जब तुम देखते हो, तो आँखों के पीछे हृदय आ जाता है। जब तुम बात करते हो, तो आँखों के पीछे बुद्धि आ जाती है। बुद्धि यानी तुम्हारे विचार करने का यंत्र। हृदय यानी तुम्हारे प्रेम करने का यंत्र।

देखना एक प्रेम की घटना है। और अगर प्रेम से नहीं देखा, तो क्या खाक देखा! जब आँख से प्रेम उँडलता हो तभी देखना घटता है। मैं तुम्हारे सामने भी हूँ, तुमसे बात भी कर रहा हूँ। अब ये तुम्हारे ऊपर है, तुम अपने से पूछ लो —

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो
तुमको देखूं कि तुमसे बात करूँ

बात तुम करते रहो जन्मों-जन्मों तक, बात से बात निकलती रहेगी। बात मैं करता रहूँगा, बात करने में कही कोई अड़चन है? बात से सरल कहीं कोई और बात है? लेकिन ये सिर्फ बहाना था। बहाना था कि शायद इसी बीच किसी दिन खिलौनों से खेलते-खेलते तुम आँख उठाके देख लो। खिलौनो में उलझे होने के कारण मन तो खिलौनों में उलझा रह जाए, और तुम्हारी आँख मुझे मिल जाए। बुद्धि शब्दों में उलझी तो उलझी रहे, कभी किसी क्षण में रंध्र मिल जाए, थोड़ी जगह मिल जाए, और तुम झाँक के मेरी तरफ देख लो। उसी क्षण घटना घट सकती है। मैं देने को तैयार हूँ, तुम जिस दिन लेने को तैयार होओगे।

चौथा प्रश्न : कहाँ ले चले हो बता दो मुसाफिर
सितारों से आगे ये कैसा जहाँ है
वो क्या इश्क के बाकी इम्तहाँ हैं

पूछो मत, चलो। पूछना भी बुद्धि की हुशियारी है। प्रेम के मार्ग पर भी बुद्धि पूछती है। कहाँ ले चले हो? और प्रेम के मार्ग पर बुद्धि चल नहीं सकती। और बुद्धि अगर पूछती रहे, तो तुम्हें भी न चलने देगी। कभी तो इतना साहस करो, कि चलो चलते हैं। पूछेंगे नहीं। यही तो प्रेम का लक्षण है।

अगर मुझसे प्रेम है तो पूछने की कोई जरूरत नहीं, चल पड़े। पूछना प्रेम के अभाव का द्योतक है। पहले से सब पक्का कर लेना है — कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, क्या प्रयोजन है? अपना कोई लाभ है, नहीं है! कहीं ले जानेवाला अपना ही कोई लाभ तो नहीं देख रहा है? कहीं ले जानेवाला धोखा तो नहीं दे रहा है? बुद्धि आत्मरक्षा है। और प्रेम आत्मसमर्पण। दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते।

यही प्रेम का आखिरी इम्तहाँ है। आखिरी, कि चल पड़ो। और बुद्धि पर कितने दिन भरोसा कर के देख लिया, पहुँचे कहाँ? कितना बुद्धि के साथ हिसाब करके देख लिया, मंजिल कहीं आती तो दिखायी पडती नहीं। झलक भी नहीं मिलती, फिर भी इसपर भरोसा किए जा रहे हो!

ठीक-ठीक बुद्धिमान आदमी अपनी बुद्धि पर संदेह करने लगता है। वो बुद्धि की पराकाष्ठा है, जब अपनी बुद्धि पर संदेह आता है। आना चाहिए। सिर्फ बुद्धुओं को अपनी बुद्धि पे संदेह नहीं आता। कितने दिन से चलते हो उसीके साथ, कहाँ पहुँचे हो? फिर भी भरोसा उसी पर है।

जिस दिन भी तुम्हें ये दिखायी पड़ जाएगा उसी दिन जीवन में एक नया मार्ग खुलता है। एक नया द्वार खुलता है। वो हमेशा पास ही था, कोई बहुत दूर न था। बुद्धि, हृदय में फासला ही कितना है? वो पास ही था, अब भी पास है। लेकिन जबतक तुम बुद्धि की ही सुने जाओगे, पूछे चले जाओगे ...। यह पूछना आश्वस्त होने की चेष्टा है। कैसे मैं तुम्हें आश्वस्त करूँ? कुछ भी मैं कहूँ, वो मेरा ही कहना होगा, तुम्हारा अनुभव न बन जाएगा। जबतक तुम्हारा अनुभव न बन जाए, तबतक मुझपे भरोसा कैसे आएगा?

तो दो ही उपाय हैं। या तो तुम जैसे चलते हो वैसे ही चलते रहो। शायद कभी थकोगे, अनंत जन्मों के बाद ऊबोगे, होश आएगा, तो फिर किसीका हाथ पकड़ोगे। वो हाथ अभी भी उपलब्ध है। वो हाथ सदा उपलब्ध रहेगा। उस हाथ का मुझसे या किसीका कोई लेना-देना नहीं है। वो हाथ तो परमात्मा का है। वो परमात्मा का हाथ अनेक हाथों में प्रविष्ट हो जाता है। कभी बुद्ध के हाथ में, कभी मुहम्मद के हाथ में। लेकिन तुम्हारा हाथ उसे पकड़ेगा तभी तो कुछ होगा।

और तुम तभी पकड़ोगे जब तुम अज्ञात की यात्रा पर जाने को तैयार हो। मत पूछो — कहाँ ले चले हो बता दो मुसाफिर !

एक तो बताना मुश्किल है। क्योंकि तुम्हारी भाषा में उस जगत के लिए कोई शब्द नहीं है। और बताने पर भी तुम भरोसा कैसे करोगे ? पूछो बुद्ध से, वो कहते हैं निर्वाण। पूछो मीरा से, वो कहती है कृष्ण, वैकुंठ। क्या होता है शब्दों को सुनने से। मीरा के चारों तरफ खोजके देखो, तुम्हें वैकुंठ का कोई पता न चलेगा। क्योंकि वैकुंठ तो मीरा के भीतर है। और जबतक वैसा ही तुम्हारे भीतर न हो जाए, जब तक तुम भी डुबकी न लगा लो ! मत पूछो — कहाँ ले चले हो बता दो मुसाफिर, सितारों के आगे ये कैसा जहाँ है ? सितारो के आगे का अर्थ ही यही होता है — जहाँ तक दिखायी पड़ता है, उसके आगे। सितारों का मतलब है जहाँ तक दिखायी पड़ता है।

सितारो के आगे जहाँ और भी हैं

इसका मतलब इतना ही है कि कुछ दिखायी नही पड़ता, ये आँखें थक जाती हैं। इन आँखों की सीमा आ जाती है।

सितारों के आगे जहाँ और भी हैं
इश्क के अभी इम्तहाँ और भी हैं

इश्क का इम्तहान क्या है ? वही, जहाँ नहीं दिखायी पड़ता वहाँ भी किसीके ऊपर भरोसा। जहाँ नहीं दिखायी पड़ता वहाँ भी श्रद्धा। जहाँ नहीं दिखायी पड़ता वहाँ भी चलने का साहस।

तुम जिसे संदेह कहते हो, गौर से खोजना, कही वह कायरता तो नहीं है। कहीं डर तो नही है, कहीं भय तो नही है कि कहीं लूट न लिए जाएँ ! कहीं ऐसा तो नहीं है कि कैसे पक्का करें, कौन लुटेरा है, कौन मार्गदर्शक है ! लेकिन इसकी फिकिर छोड़ो, पहले यह सोचो तुम्हारे पास लुट जाने को है भी क्या ? तुम पहले ही लुट चुके हो। ससार से बड़ा और लुटेरा अब तुम्हें कहाँ मिलेगा ? संसार ने तो रत्ती-रत्ती, पाई-पाई भी लूट लिया है। एक ' सिफर ' हो, एक शून्यमात्र रह गये हो। आँकड़ा तो एक भी नहीं बचा है भीतर। कुछ भी नही है पास, फिर भी डरे हो कि कहीं लुट न जाओ। ये जो तुम पूछते हो — ' कहाँ ले चले हो बता दो मुसाफिर ', ये भय के कारण, कायरता के कारण, साहस की कमी के कारण। लेकिन तुम जहाँ भी चलते रहे हो अब तक, अगर वहाँ से ऊब गये हो, तो अब खतरा क्या है ? किसी नये मार्ग को खोजकर देख लो। असली सवाल साहस का है। साधारणतः लोग सोचते है, श्रद्धालु लोग डरपोक हैं, कायर हैं। और मैं तुमसे कहता हूँ, श्रद्धा इस जगत में सबसे बडा दुस्साहस है।

ऐसा हुआ कि तिब्बत का एक फकीर अपने गुरु के पास गया। गुरु की बड़ी ख्याति थी। और ये फकीर बड़ा श्रद्धालु था। और गुरु जो भी कहता, सदा मानने को तैयार था। इसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। और शिष्यों को पीड़ा हुई। उन्होंने एक दिन इससे छुटकारा पाने के लिए — एक पहाड़ी के ऊपर बैठे थे — इससे कहा कि अगर तुम्हें गुरु में पूरी श्रद्धा है तो कूद जाओ। तो वो कूद गया। उन्होंने तो पक्का माना कि हुआ खतम। नीचे जाके देखा तो वो पद्मासन में बैठा था। और ऐसा सौंदर्य और ऐसी सुगंध उन्होने कभी किसी व्यक्ति के पास न देखी थी, जो उसके चारों तरफ बरस रही थी। वो तो बड़े हैरान हुए। सोचा संयोग है।

संदेह ज्यादा से ज्यादा संयोग तक पहुँच सकता है, कि संयोग की बात है कि बच गया। कोई फिकिर नहीं। एक मकान में आग लगी थी, उन्होंने कहा कि चले जाओ, अगर गुरु पर पूरा भरोसा है, शिष्यो ने ही। वो चला गया भीतर। मकान तो जलके राख हो गया। जब वो भीतर गये तो आशा थी कि वो भी जलके राख हो चुका होगा। वो तो वहाँ ऐसे बैठा था, जल में कमलवत्। आग ने छुआ ही नही। उन्होने सुनी थी अबतक ये बातें कि ऐसे लोग भी हुए है — जल में कमलवत्, पानी मे होते है और पानी नहीं छूता। आज जो देखा, वो अद्भुत चमत्कार था! आग मे था और आग ने भी न छुआ। पानी न छुए, समझ में आता है!

अब सयोग कहना जरा मुश्किल मालूम पड़ा। गुरु के पास ये खबरें पहुँची। गुरु को भी भरोसा न आया, क्योंकि गुरु खुद ही इतनी श्रद्धा का आदमी न था। गुरु ने सोचा कि संयोग ही हो सकता है, क्योंकि मेरे नाम से हो जाए, अभी तो मुझे ही भरोसा नही कि अगर मैं जलते मकान में जाऊँ तो बचके लौटूँगा, कि मैं कूद पडूँ पहाड़ से और कोई हाथ मुझे सँभाल लेगे अज्ञात के। तो गुरु ने कहा कि देखेंगे।

एक दिन नदी के तट से सब गुजरते थे। गुरु ने कहा कि तुझे मुझ पर इतना भरोसा है कि आग मे बच गया, पहाड़ मे बच गया, तू नदी पर चल जा। वो शिष्य चल पड़ा। नदी ने उसे न डुबाया। वो नदी पर ऐसा चला जैसे जमीन पर चल रहा हो। गुरु को लगा कि निश्चित ही मेरे नाम का चमत्कार है। अहंकार भयंकर हो गया। कुछ था तो नही पास।

तो उसने सोचा जब मेरा नाम लेके कोई चल गया, तो मैं चल ही जाऊँगा। वो चला, पहले ही कदम पे डुबकी खा गया। किसी तरह बचाया गया। उसने पूछा कि ये मामला क्या है? मैं खुद डूब गया। वो शिष्य हँसने लगा। उसने कहा मुझे आप पर श्रद्धा है, आपको अपने पर नहीं। श्रद्धा बचाती है।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि जिनपर तुमने श्रद्धा की उनमें कुछ भी न था फिर भी श्रद्धा ने बचाया। और कभी-कभी ऐसा भी हुआ है, जिन पर तुमने श्रद्धा

न की उनके पास सब कुछ था, लेकिन अश्रद्धा ने डुबाया है। कभी बुद्धों के पास भी लोग संदेह करते रहे और डूब गये। और कभी इस तरह के पाखंडियों के पास भी लोगों ने श्रद्धा की और पहुँच गये।

तो मैं तुमसे कहता हूँ गुरु नही पहुँचाता, श्रद्धा पहुँचाती है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ श्रद्धा ही गुरु है। और जहाँ तुम्हारी श्रद्धा की आँख पड़ जाए, वहीं गुरु पैदा हो जाए। परमात्मा नहीं पहुँचाता, प्रार्थना पहुँचाती है। और जहाँ हृदयपूर्वक प्रार्थना हो जाए वही परमात्मा मौजूद हो जाता है। मंदिर नही पहुँचाते, भाव पहुँचाते हैं। जहाँ भाव है वहाँ मंदिर है।

मत पूछो कि कहाँ ले चला हूँ। चलने की हिम्मत हो, साथ हो जाओ। चलने की हिम्मत न हो, नाहक समय खराब मत करो, भाग खड़े होओ। ऐसे आदमी के पास नहीं रहना चाहिए जिसपे भरोसा न हो। कहीं और खोजो। शायद किसी और पर भरोसा आ जाए। क्योंकि असली सवाल भरोसे का है! किसपे आता है, ये बात गौण है। कौन जाने किसी और पर आ जाए, तो फिर तुम्हारा मार्ग वहीं से हो जाएगा। जिसके पास तुम्हें जाके पूछने का सवाल न उठे कि कहाँ ले चले हो, चल पड़ने को तैयार हो जाओ। अँधेरे में जाता हो वो तो अँधेरे में, और नर्क जाता हो तो नर्क में। जहाँ तुम्हारे मन में ये संदेह और सवाल न उठते हों, यही आखिरी मंजिल है, यही आखिरी इम्तहाँ है।

सितारों के आगे जहाँ और भी हैं
इश्क के अभी इम्तहाँ और भी हैं

और आखिरी इम्तहान इश्क का यही है कि प्रेम इतना अनन्य हो, श्रद्धा इतनी अपूर्व हो कि श्रद्धा ही नाव बन जाए, कि प्रेम ही बचा ले। मार्ग नही पहुँचाता, श्रद्धा पहुँचाती है। मजिल कही दूर थोड़े ही है। जिसने प्रेम किया, उसने अपने भीतर पा ली।

पाँचवाँ प्रश्न : लीनता व भक्ति के साधक को बुद्ध के होश की और 'अप्प दीपो भव' की बातों के प्रति क्या रुख रखना चाहिए ?

जरूरत क्या है ? तुम्हें सभी के प्रति रुख रखने की जरूरत क्या है ? तुम अपनी श्रद्धा का बिंदु चुन लो, शेष सब को भूल जाओ। तुम्हें कोई सारे बुद्धों के प्रति श्रद्धा थोड़े ही रखनी है। एक पर तो रख लो। सब पर रखने में तो तुम बड़ी झंझट में पड़ जाओगे। एक पर ही इतनी मुश्किलहै, सब पर तुम कैसे रख सकोगे ? तुम एक मंदिर को तो मंदिर बना लो; सब मस्जिद, सब गुरुद्वारे, सब शिवालय, उनकी तुम चिंता में मत पड़ो। क्योंकि जिसका एक मंदिर मंदिर बन गया, वो एक दिन अचानक पा लेता है कि सभी मस्जिदों में, सभी गुरुद्वारों में वही मंदिर है। एक सिद्ध

हो जाए, सब सिद्ध हो जाता है।

और अगर तुमने यही चेष्टा की कि मैं सभी में श्रद्धा रखूं, तुम्हारे पास श्रद्धा इतनी कहाँ है? इतना बाँटोगे, रत्ती-रत्ती श्रद्धा हो जाएगी। अगर अल्लाह को पुकारना हो तो पूरे प्राणों से अल्लाह को ही पुकार लो। 'अल्ला ईश्वर तेरे नाम' — इस तरह की बकवास में मत पड़ना। क्योंकि तब न तुम्हारे राम में बल होगा और न तुम्हारे अल्लाह में बल होगा। ये राजनीतिक बातचीत हो सकती है, धर्म का इससे कुछ लेना-देना नहीं। अल्लाह को ही तुम परिपूर्ण प्राणों से पुकार लो, तुम अल्लाह में ही छिपे राम को पुकार लो, तुम अल्लाह में ही छिपे राम को किसी दिन पहचान लोगे। अल्लाह ही जब पूरी त्वरा और तीव्रता से पुकारा जाता है, तो राम भी मिल जाते हैं। राम जब पूरी त्वरा से पुकारा जाता है, तो अल्लाह भी मिल जाता है। क्योंकि ये सब नाम उसीके हैं। लेकिन तुम बैठके इन सभी नामों की माला मत बनाना।

लीनता और भक्ति के साधक को जरूरत ही क्या है बुद्ध की? बुद्ध जानें, उनका काम जाने। लीनता और भक्ति का साधक लीनता और भक्ति में डूबे। ऐसी अड़चनें क्यों खड़ी करना चाहते हो? क्योंकि ध्यान रखना, मंजिल एक है, मार्ग अनेक हैं। तुम अगर सभी मार्गों पर एक साथ चलना चाहो, पागल हो जाओगे। चलोगे तो एक ही मार्ग पर, यद्यपि सभी मार्ग उसी मंजिल पर पहुंचा देते हैं। लेकिन अगर तुम्हें बंबई जाना हो, तो तुम एक ही मार्ग चुनोगे। अगर तुमने सभी मार्ग चुन लिए, तो दो कदम इस मार्ग पे चलोगे, दो कदम उस मार्ग पे चलोगे, चार कदम किसी और मार्ग पे चलोगे, तुम पहुँचोगे कैसे? एक ही मार्ग पर चलोगे तो पहुँचोगे।

भक्त की दुनिया अलग है। भक्त के देखने के ढंग अलग हैं। भक्त के तौर-तरीके अलग हैं। भक्त की जीवन-शैली अलग है। साधक की जीवन-शैली अलग है। साधक होश को साधता है। होश से ही मस्ती को पाता है। भक्त मस्ती को साधता है। मस्ती से ही होश को पाता है।

जबाने-होश से ये कुफ्र सरजद हो नहीं सकता
मैं कैसे बिन पिये ले लूं खुदा का नाम ऐ साकी

भक्त की बड़ी अलग दुनिया है। वो कहता है, हम तो खुदा का नाम भी लेंगे तो बिना पिये नहीं ले सकते। खुदा का नाम है, कोई साधारण बात है कि बिना पिये ले लें! मस्ती में ही लेंगे। होश में खुदा का नाम लें? बात जमती नहीं। डूब के लेंगे। पागल होके लेंगे।

जबाने-होश से ये कुफ्र सरजद हो नहीं सकता

भक्त कहता है कि मेरी जबान से ये पाप मैं न कर सकूंगा।

मैं कैसे बिन पिये ले लूँ खुदा का नाम ऐ साकी

पीकर ही लूँगा। नाचकर लूँगा। मस्ती में सरोबोर करके लूँगा। होश से खुदा का नाम? तो बुद्धि पर ही अटक जाएगा। लड़खड़ाते कदमों से लूँगा।

'पाँव पड़ें कित के किती' — सहजो ने कहा है। झूमते हुए लेंगे। सम्हल के और खुदा का नाम? वो नाम खुदा का ही न रहा फिर। भक्त की दुनिया बड़ी अलग है।

गुनाह गिन-गिन के मैं क्यों अपने दिल को छोटा करूँ
सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नहीं

तेरी कृपा का कोई अंत नहीं, हम काहे को छोटा मन करें गिन-गिन के अपने पापो को, कि ये भूल की, वो भूल की। ये तो तेरे संबंध में शिकायत हो जाएगी। भक्त कहता है हम अपनी भूलों और पापो का हिसाब रखें?

गुनाह गिन-गिन के मैं क्यों अपने दिल को छोटा करूँ
सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नही

परमात्मा का हृदय अगर बड़ा है, अगर परमात्मा की करुणा अपार है, तो हम अपने मन को क्यों छोटा करें। भक्त पाप-माप की फिकिर नहीं करता। इसका ये मतलब नहीं है कि पाप करता है। भक्त परमात्मा में ऐसा लीन हो जाता है कि पाप होते नहीं। जिसने परमात्मा को इतने हृदय से याद किया हो, उससे पाप कैसे होंगे?

इसे तुम समझ लो।

भक्त पाप छोड़ता नहीं। परमात्मा को पकड़ता है, पाप छूट जाते हैं। साधक पाप छोड़ता है। पाप के छूटने से परमात्मा को पाता है। साधक को चेष्टा करनी पड़ती है, रत्ती-रत्ती। साधक संघर्ष है, संकल्प है। भक्त समर्पण है।

भक्त कहता है, तेरी करुणा इतनी अपार है कि हम क्यों नाहक दीन हुए जाएँ — कि ये भूल हो गयी, वो भूल हो गयी? तू भी कहीं इन भूलों की फिकर करेगा! हमारी भूलों का तू हिसाब रखेगा? हम इतने छोटे हैं कि बड़ी भूलें भी तो हमसे नहीं होती। तुमने कौनसी बड़ी भूल की, जरा सोचो। और अगर परमात्मा हिसाब रखता हो, तो परमात्मा न हुआ कोई दुकानदार हो गया। तुम्हारी भूलें भी क्या हैं? क्या भूलें की हैं तुमने? भक्त तो कहता है अगर की भी होगी, तो तूने ही करवायी होगी। तेरी कोई मर्जी रही होगी।

भक्त तो ये कहता है कि ये भी खूब मजा है! तूने ही बनाया जैसा हमें — अब हमसे भूलें हो रही हैं, और सजा हमको, ये भी खूब मजा है! ये भी खूब रही! बनाए तू, करवाए तू, फँस जाएँ हम! भक्त अपने को बीच में नहीं लेता। वो

कहता है तेरा काम, तू जान। तूने जैसा बनवाया, जो करवाया, वो हुआ। हम तेरे हैं, अब तू ही समझ। भक्त का ढंग और ! साधक कहता है, भूलें हो गयीं, एक-एक भूल को काटना है, सुधारना है।

तो तुम अपना मार्ग चुन लो एक दफा। फिर बार-बार ये मत पूछो कि मैंने भक्त का मार्ग चुन लिया, अब मैं होश भी साधना चाहता हूँ। फिर बात गलत हो जाएगी। कि मैंने भक्त का मार्ग चुन लिया, अब मुझे योगासन भी करने हैं। नाचनेवाले को कहाँ फुर्सत योगासन करने की ! और क्या मजा है योगासन का, जिसको नाचना आ गया ! नाच से बड़ा कहीं कोई योगासन है ? योगासन का अर्थ होता है, जहाँ हम उससे मिल के एक हो जाएँ। नाच से बड़ा कहीं कोई योगासन है ? क्योंकि नाच से बड़ा कहाँ कौन सा योग है ? नृत्य महायोग है। पर वो भक्त की बात है।

अगर भक्त का मार्ग चुन लिया तो भूलो ... बुद्ध को भूल जाने से कोई अड़चन न होगी और बुद्ध कुछ नाराज न होंगे। जब तुम मंजिल पर पहुँचोगे, उनका आशीर्वाद भी तुम्हे मिलेगा ही कि तुम आ गये, और मुझे छोड़के भी आ गये। लेकिन अगर बुद्ध को चुना है, तो फिर छोड़ दो भक्ति की बात।

कही ऐसा न हो कि ये तुम्हारे मन की तरकीबें हों कि तुम जो चुनते हो वो करना नहीं है, तो दूसरे को बीच में ले आते हो, ताकि अड़चन खड़ी हो जाए, दुविधा बन जाए। दुविधा बन जाए, तो करें कैसे ?

बुद्ध को चुन लिया, पर्याप्त हैं बुद्ध। किसीकी जरूरत नही। फिर मीरा और चैतन्य को भूल जाओ। फिर कृष्ण को बीच में लाओ ही मत। बुद्ध काफी हैं। ये इलाज पर्याप्त है। उनकी चिकित्सा पूरी है। उसमें किसी और को जोड़ने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन वो ढंग और, वो दुनिया और ! वहाँ एक-एक को काटना है। होश को साधना है। संकल्प को प्रगाढ करना है। अपने को निखारना है, शुद्ध करना है। तुम जब निखर जाओगे, शुद्ध हो जाओगे, तब परमात्मा तुममें उतरेगा। भक्त परमात्मा को बुला लेता है और कहता है, तुम आ जाओ, मुझसे तो क्या निखरेगा, मुझसे क्या सुधरेगा। तुम आ जाओगे, तुम्हारी मौजूदगी ही निखार देगी, सुधार देगी।

दोनों तरह से लोग पहुँचे हैं। मेरे लिए कोई चुनाव नही है। दोनो बिलकुल ठीक है। तुम अपनी प्रकृति के अनुकूल मार्ग को चुन लो। अगर तुम समर्पण कर सकते हो, तो भक्ति। अगर तुम समर्पण न कर सकते हो, समर्पण में तुम्हारा रस न हो, अनुकूल न पड़ता हो, तो फिर योग, तप, ध्यान।

ध्यान उनके लिए, जो प्रेम में डूबने से घबड़ाते हों। प्रार्थना उनके लिए, जो प्रेम में डूबने को तत्पर हों। ध्यान में विचार को काटना है। प्रेम में विचार को समर्पित

करना है। दोनों स्थिति में विचार चला जाता है। ध्यानी काटता है, प्रेमी परमात्मा के चरणों में रख देता है कि तुम सँभालो।

आखिरी प्रश्न : कल आए थे प्रभु मेरे घर
मैं सो रही थी बेखबर
कौन से कर्मों के फल हैं प्रेम सागर
आप आए और मैं खड़ी रही बाहर

जीवन जैसे-जैसे थोड़ा-थोड़ा झुकेगा, जैसे-जैसे अहंकार थोड़ा-थोड़ा गलेगा, वैसे-वैसे अँधेरी से अँधेरी रात में भी उसकी बिजलियाँ कौंधनी शुरू हो जाती हैं। तुम झुके नहीं कि उसका आना शुरू हुआ नहीं। तुम्हीं बाधा हो। तुम्हीं दीवाल बनके खड़े हो। तुम गिर जाओ, उसका खुला आकाश सदा से ही मुक्त है।

परमात्मा दूर नहीं है, तुम अकड़े खड़े हो। तुम्हारी अकड़ ही दूरी है। तुम्हारा नम जाना, तुम्हारा झुक जाना ही निकटता हो जाएगी। उपनिषद् कहते हैं, परमात्मा दूर से दूर और पास से भी पास है। दूर, जब तुम अकड़ जाते हो। जब तुम पीठ कर लेते हो। दूर, जब तुम जिद्द कर लेते हो कि है ही नहीं। दूर, जब तुम कहते हो मैं ही हूँ, तू नहीं। पास, जब तुम कहते हो तू ही है, मैं नहीं हूँ। जब तुम आँख खोलते हो। जब तुम अपने पात्र को — अपने हृदय के पात्र को — उसके सामने फैला देते हो, तब तुम भर जाते हो, हजार-हजार खजानों से।

प्रभु तो रोज ही आ सकता है। आता ही है। उसके अतिरिक्त और कौन आएगा? जब तुम नहीं पहचानते, तब भी वही आता है। जब तुम पहचान लेते हो, धन्य-भाग! जब तुम नहीं पहचानते, तब भी उसके अतिरिक्त और कोई न कभी आया है, न आएगा। वही आता है। क्योंकि सभी शक्लें उसीकी हैं। सभी रूप उसके। सभी स्वर उसीके। सभी आँखों से वही झाँका है। तो अगर कभी एक बार ऐसी प्रतीति हो कि आगमन हुआ है, तो उस प्रतीति को गहराना, सँभालना; उस प्रतीति को साधना, सुरति बनाना। और धीरे-धीरे कोशिश करो, जो भी आए उसमें उसको पहचानने की।

पुरानी कहावत है, अतिथि देवता है। अर्थ है कि जो भी आए उसमें परमात्मा को पहचानने की चेष्टा जारी रखना चाहिए। चाहे परमात्मा हजार बाधाएँ खड़ी करे, तो भी तुम धोखे में मत आना। परमात्मा चाहे गालियाँ देता आए, तो भी तुम समझना कि वही है। मित्र में तो दिखायी पड़े ही, शत्रु में भी दिखायी पड़े। अपने में तो दिखायी पड़े ही, परायों में भी दिखायी पड़े। रात के अँधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी। नींद और सपनों में ही नहीं, जागरण में भी। अभी तुम

कली हो, और जितने पदचाप तुम्हें उसके सुनायी पड़ने लगें उतनी ही पंखुड़ियाँ तुम्हारी खुलने लगेंगी।

तुम्हारी पीड़ा मैं समझता हूँ। कभी-कभी उसकी झलक मिलती है और खो जाती है। कभी-कभी आता पास लगता है और पदध्वनियाँ दूर हो जाती हैं। लगता है मिला, मिला, और कोई सूत्र हाथ से छूट जाता है।

चमन में फूल तो खिलते सभी ने देख लिए ...
चमन में फूल तो खिलते सभी ने देख लिए
'सिसकते गुंचे की हालत किसीको क्या मालूम

वो जो कली का रोना है, सिसकना है —

सिसकते गुंचे की हालत किसीको क्या मालूम

पर वो तुम्हारी सभी की हालत है। सिसकते हुए गुंचे की हालत। रोती हुई कली की हालत। और कली तभी फूल हो सकती है जब अनंत के पदचाप उसे सुनायी पड़ने लगें। तुम अपने तईं फूल न हो सकोगे। सुबह जब सूरज उगता है और सूरज की किरणें नाच उठती हैं आकर कली की निकटता में, सामीप्य में — कली के ऊपर — जब सूरज की किरणों के हल्के-हल्के पद कली पर पड़ते है, तो कली खिलती है, फूल बनती है। जब तक तुम्हारे ऊपर परमात्मा के पदचाप न पड़ने लगें, उसके स्वर आके आघात न करने लगें, तब तक तुम कली की तरह ही रहोगे।

और कली की पीड़ा यही है कि खिल नहीं पायी। जो हो सकता था, वो नहीं हो पाया। नियति पूरी न हो, यही संताप है, यही दुख है। हर आदमी की पीड़ा यही है कि वो जो होने को आया है, नहीं हो पा रहा है। लाख उपाय कर रहा है — गलत, सही; दौड़-धूप कर रहा है; लेकिन पाता है समय बीता जाता है और जो होने को मैं आया हूँ वो नहीं हो पा रहा हूँ। और जब तक तुम वही न हो जाओ जो तुम होने को आए हो, तब तक संतोष असंभव है। स्वयं होकर ही मिलता है परितोष।

तो सुनो प्रभु के पद जहाँ से भी सुनायी पड़ जाएँ। और धीरे-धीरे सब तरफ से सुनायी पड़ने लगेंगे जिस दिन हर घड़ी उसीका अनुभव होने लगे, कि वही द्वार पर खड़ा है, उस क्षण फूल हठात् खुल जाता है। वो जो सुगंध तुम अपने भीतर लिए हो, अभिव्यक्त हो जाती है। वही अनुग्रह है, उत्सव है, अहोभाव है।

चमन में फूल तो खिलते सभी ने देख लिए
सिसकते गुंचे की हालत किसीको क्या मालूम

मुझे मालूम है। तुम्हारी सबकी हालत मुझे मालूम है। क्योंकि वही हालत कभी मेरी भी थी। उस पीड़ा से मैं गुजरा हूँ. जब तुम खोजते हो सब तरफ, कहीं सुराग

नहीं मिलता; टटोलते हो सब तरफ और चिराग नहीं मिलता; और जिंदगी प्रति-पल बीती चली जाती है, हाथ से क्षण खिसकते चले जाते हैं, जीवन की धार बही चली जाती है — ये आयी मौत, ये आयी मौत; जीवन गया, गया — और कुछ हो न पाए; पता नहीं क्या लेकर आए थे, समझ में ही न आया; पता नहीं क्यों आए थे, क्यों भेजे गये थे, कुछ प्रतीति न हुई; गीत अनगाया रह गया, फूल अन-खिला रह गया।

सुनो उसकी आवाज, और सभी आवाजें उसकी हैं, सुनने की कला चाहिए। गुनो उसे, क्योंकि सभी रूप उसीके हैं, गुनने की कला चाहिए। जागते-सोते, उठते-बैठते एक ही स्मरण रहे कि तुम परमात्मा से घिरे हो। शुरू-शुरू में चूक-चूक जाएगा, भूल-भूल जाएगा, विस्मृति हो जाएगी, पर अगर तुम धागे को पकड़ते ही रहे, तो — जैसा बुद्ध कहते हैं, तुम फूलों के ढेर न रह जाओगे। वही सुरति का धागा तुम्हारे फूलों की माला बना देगा।

और फिर मैं तुमसे कहता हूँ — फिर-फिर कहता हूँ — जिस दिन तुम्हारी माला तैयार है, वो खुद ही झुक आता है, वो अपनी गर्दन तुम्हारी माला में डाल देता है। क्योंकि उस तक, उसके सिर तक, हमारे हाथ तो न पहुँच पाएँगे। बस, हमारी माला तैयार हो, वो खुद हम तक पहुँच जाता है।

मनुष्य कभी परमात्मा तक नही पहुँचता। जब भी मनुष्य तैयार होता है, पर-मात्मा उसके पास आता है।

आज इतना ही।

जागरण का तेल + प्रेम की बाती = परमात्मा का प्रकाश

९ दिसंबर १९७५
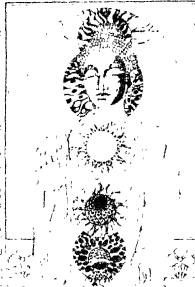
चंदनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी ।
एतेसं गंधजातानं सीलगंधो अनुत्तरो ।। ५५ ।।
अप्पमत्तो अयं गंधो या'यं तगरचंदनी ।
यो च सीलवतं गंधो वाति देवेसु उत्तमो ।। ५६ ।।
तेसं संपन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं ।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ।। ५७ ।।
यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगंधं मनोरमं ।। ५८ ।।
एवं संकारभूतेसु अंधभूते पुथुज्जने ।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासंबुद्धसावको ।। ५९ ।।

वा इसके और दुनिया में क्या हो रहा है
कोई हँस रहा है कोई रो रहा है
अरे चौंक यह ख्वाबे गफलत कहाँ तक
सहर हो गयी है और तू सो रहा है

निद्रा है दुर्गंध। जाग जाना है सुगंध। जो जागा, उसके भीतर न केवल प्रकाश के दिये जलने लगते हैं, वरन् सुगंध के फूल भी खिलते हैं। और ऐसी सुगंध के जो फिर कभी मुरझाती नहीं। सदियाँ बीत जाती हैं, कल्प आते हैं और विदा हो जाते हैं, लेकिन जीवन की सुगंध अडिग और स्थिर बनी रहती है। नाम भी शायद भूल जाएँ कि किसकी सुगंध है, इतिहास पर स्मृति की रेखाएँ भी न रह जाएँ, लेकिन सुगंध फिर भी जीवन के मुक्त आकाश में सदा बनी रहती है।

बुद्ध पहले बुद्धपुरुष नहीं हैं, और न अंतिम। उनके पहले बहुत बुद्धपुरुष हुए हैं और उनके बाद बहुत बुद्धपुरुष होते रहे हैं, होते रहेंगे। लेकिन सभी बुद्धों की सुगंध एक है। सोए हुए सभी आदमियों की दुर्गंध एक है; जागे हुए सभी आदमियों की

सुगंध एक है। क्योंकि सुगंध जागरण की है; क्योंकि दुर्गंध निद्रा की है।

बुद्ध के ये वचन अनूठे काव्य से भरे हैं। कोई तो कवि होता है शब्दों का, कोई कवि होता है जीवन का। कोई तो गीत गाता है, कोई गीत होता है। बुद्ध गीत हैं। उनसे जो भी निकला है, काश, तुम उनके छंद को पकड़ लो तो तुम्हारे जीवन में भी क्रांति हो जाए।

'चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।'

कहा है बुद्ध ने चंदन या तगर, कमल या जूही; पर तुम्हारी सुगंध अगर मुक्त हो जाए तो सब सुगंधें फीकी हैं। क्योंकि मनुष्य पृथ्वी का सबसे बड़ा फूल है। मनुष्य में पृथ्वी ने अपना सब कुछ दाँव पर लगाया है। मनुष्य के साथ पृथ्वी ने अपनी सारी आशाएँ बाँधी हैं। जैसे कोई माँ अपने बेटे के साथ सारी आशाएँ बाँधे, ऐसे पृथ्वी ने मनुष्य की चेतना के साथ बड़े सपने देखे हैं। और जब भी कभी कोई एक व्यक्ति उस ऊँचाई को उठता है, उस गहराई को छूता है, जहाँ पृथ्वी के सपने पूरे हो जाते हैं, तो सारी पृथ्वी आनंद-मंगल का उत्सव मनाती है।

कथाएँ है बड़ी प्रीतिकर, जब बुद्ध को बुद्धत्व उपलब्ध हुआ तो वन-प्रांत में जहाँ वे मौजूद थे, निरंजना नदी के तट पर, वृक्षों में बेमौसम फूल खिल गये। अभी कोई ऋतु न थी, अभी कोई समय न था, लेकिन जब बुद्ध का फूल खिला तो बेमौसम भी वृक्षों में फूल खिल गये। स्वागत के लिए जरूरी था।

जीवन इकट्ठा है। हम अलग-थलग नहीं हैं। हम कोई द्वीप नहीं हैं, महाद्वीप हैं। हम एक ही जीवन के हिस्से है। अगर हमारे बीच से कोई एक भी ऊँचाई पर उठता है, तो उसके साथ हम भी ऊँचे उठते हैं। और हमारे बीच से कोई एक भी नीचे गिरता है, तो उसके साथ हम भी नीचे गिरते हैं। हिटलर या मुसोलिनी के साथ हम भी बड़ी गहन दुर्गंध और पीड़ा का अनुभव करते हैं। बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट के साथ हम भी उनके पंखों पर सवार हो जाते हैं। हम भी उनके साथ आकाश का दर्शन कर लेते हैं।

'चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।' क्यों? चंदन की सुगंध आज है, कल नहीं होगी। सुबह खिलता है फूल, साँझ मुरझा जाता है। खिला नहीं कि मुरझाना शुरू हो जाता है। इस जीवन में शाश्वत तो केवल एक ही घटना है, वो है तुम्हारे भीतर चैतन्य की धारा, जो सदा-सदा रहेगी। एक बार खिल जाए, तो फिर भीतर के फूल कभी मुरझाते नहीं। उन्होंने मुरझाना जाना ही नहीं है। वे केवल खिलना ही जानते हैं। और खिल जाने के बाद वापसी नहीं है, लौटना नहीं है।

ऊँचाई पर तुम जब पहुँचते हो, तो वहाँ से वापिस गिरना नहीं होता। जो सीख लिया, सीख लिया। जो जान लिया, जान लिया। जो हो गये, हो गये। उसके विपरीत जाने का उपाय नहीं है। जो गिर जाएँ ऊँचाई से, समझना ऊँचाई पर पहुँचा ही न था। क्योंकि ऊँचाई से गिरने का कोई उपाय नहीं। जो तुमने जान लिया उसे तुम भूल न सकोगे। अगर भूल जाओ तो जाना ही न होगा। सुन लिया होगा, स्मरण कर लिया होगा, कंठस्थ हो गया होगा। जीवन के साधारण फूल आज हैं, कल नहीं। चैतन्य का फूल सदा है।

तो बहुत बाहर के फूलों में मत भरमे रहना, भीतर के फूल पर शक्ति लगाना। कबतक हँसते और रोते रहोगे बाहर के फूलों के लिए? फूल खिलते हैं, हँस लेते हो, फूल मुरझा जाते हैं, राख हो जाते हैं, रो लेते हो।

सिवा इसके और दुनिया में क्या हो रहा है
कोई हँस रहा है कोई रो रहा है

सारी दुनिया को तुम इन दो हिस्सों में बाँट दे सकते हो।

अरे चौंक यह ख़्वाबे गफलत कहाँ तक...

अब यह सपना और कब तक खींचना है? काफी खींच लिया है।

अरे चौंक यह ख़्वाबे गफलत कहाँ तक
सहर हो गयी है और तू सो रहा है

सुबह हो गयी है। सुबह सदा से ही रही है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि सुबह न रही हो। सुबह होना ही अस्तित्व का ढंग है, अस्तित्व की शैली है। वहाँ साँझ कभी होती नहीं। तुम सो रहे हो इसलिए रात मालूम होती है।

इसे थोड़ा समझ लो।

रात है इसलिए सो रहे हो, ऐसा नहीं है; सो रहे हो इसीलिए रात है। जो जागा, उसने सदा पाया कि सहर थी, सुबह थी। जो सोया, उसने समझा सदा कि रात है। तुम्हारी आँख बंद है, इसलिए अँधेरा है। अस्तित्व प्रकाशवान है। अस्तित्व प्रकाश है। हजार-हजार सूरज उगे हैं। सब तरफ प्रकाश की बाढ़ है। प्रकाश की ही तरंगें तुमसे आके टकरा रही हैं, लेकिन तुम आँख बंद किए हो। छोटी सी पलकें आँख पर पड़ी हों, तो विराट सूरज ढँक जाता है। जरा सी कंकड़ी आँख में आ जाए, तो सारा संसार अंधकार हो जाता है। बस छोटी सी ही कंकड़ी आँख में पड़ गयी है। छोटा सा ही धूल का कण आँख में पड़ गया है, उसे अहंकार कहो, अज्ञान कहो, निद्रा कहो, प्रमाद कहो, पाप कहो, जो मर्जी हो वो नाम दे दो, बात कुल इतनी है और छोटी सी है कि तुम्हारी आँख किसी कारण से बंद है। आँख खुली, सुबह हुई। अरे चौक, 'सहर हो गयी है और तू सो रहा है'।

और ये सहर सदा से ही रही है। क्योंकि बुद्ध पच्चीस सौ साल पहले जागे और पाया कि सहर हो गयी है। कृष्ण पाँच हजार साल पहले जागे और पाया कि सहर हो गयी है। जब भी कोई जागा, उसने पाया कि सुबह हो गयी है।

जो सोए हैं वे अभी भी सोए हैं। वे हजारों वर्ष और भी सोए रहेंगे। तुम्हारे सोने में ही रात है। रात के कारण तुम नहीं सो रहे हो; सो रहे हो इसीलिए रात है। सुबह के कारण तुम न जागोगे, क्योंकि सुबह तो सदा से है। तुम जागोगे तो पाओगे कि सुबह है।

लोग पूछते हैं, परमात्मा कहाँ है? पूछना चाहिए हमारे पास आँखें कहाँ हैं? लोग पूछते हैं, परमात्मा को कहाँ खोजें? उन्हें पूछना चाहिए, ये खोजनेवाला कौन है? कौन खोजे परमात्मा को? लोग पूछते है हमें परमात्मा पर भरोसा नहीं आता, क्योंकि जो दिखायी नहीं पड़ता उसे हम कैसे मानें? उन्हें पूछना चाहिए कि हमने अभी आँख खोली है या नहीं? क्योंकि बंद आँख कोई कैसे दिखायी पड़ेगा? परमात्मा द्वार पर ही खड़ा है। क्योंकि जो भी है वही है। अरे चौक, सहर हो गयी है! परमात्मा द्वार पर ही खड़ा है। कभी द्वार से क्षण भर को नहीं हटा है। क्योंकि उसके अतिरिक्त कुछ है ही नही।

अस्तित्व सुबह है, प्रभात है। सूर्योदय है। सवाल तुम्हारी आँख के खुल जाने का है। और तुम्हारी आँख जब खुलती है तो ऐसी ही घटना घटती है जैसे फूल की पखुड़ियाँ खुल जाएँ। तुम्हारी पलकें पखुड़ियाँ हैं। जैसे फूल की पखुड़ियाँ खुल जाएँ और सुगंध मुक्त हो जाए। लेकिन छोटे-छोटे फूल हैं, जूही के, तगर के, बेला के, गुलाब के, कमल के, उनकी सामर्थ्य बड़ी छोटी है। उनकी सीमा है। थोड़ी सी गंध को लेकर वे चलते हैं। उसे लुटा देते हैं, रिक्त हो जाते हैं, फिर मिट्टी में गिर जाते हैं। लेकिन तुम कुछ ऐसी गंध लेकर चले हो, जिसकी कोई सीमा नहीं। तुम अपनी बूंद में सागर लेकर चले हो। तुम अपने इस छोटे से फूल में असीम को लेकर चले हो। उस असीम को ही हमने आत्मा कहा है, उस असीम को ही हमने परमात्मा कहा है।

तुम दिखायी पड़ते हो छोटे, तुम छोटे नहीं हो। मैंने तो बहुत खोजा छोटा, मुझे कोई मिला नहीं। मैंने तो बहुत जाँच-पड़ताल की, सभी सीमाओं में असीम को छिपा पाया। हर बूंद में सागर ने बसेरा किया है। जिस दिन तुम खिलोगे उस दिन तुम पाओगे, तुम नहीं खिले परमात्मा खिला है।

इसलिए तो बुद्ध कहते हैं: चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है। शील की सुगंध का अर्थ है, जागे हुए आदमी के जीवन की सुगंध, आँख खुले आदमी के जीवन की सुगंध, प्रबुद्ध हुई चेतना के जीवन की सुगंध।

जिन फूलों को तुमने बाहर देखा है, उनका तो खिलना केवल मौत की खबर लाता है। खिला नहीं फूल कि मरा नहीं। इधर खिले, उधर अर्थी बँधने लगी।

फूल बनने की खुशी में मुस्कराती थी कली
क्या खबर थी तग़ैयुग़र मौत का पैगाम है

बाहर तो जो फूल हैं उनका खिलना मरने की ही खबर है; मौत का पैगाम है। वहाँ तो खिले कि मरे।

फूल बनने की खुशी में मुस्कराती थी कली

क्या पता उस बेचारी कली को, क्या पता उस नासमझ कली को कि ये खिलना विदा होने का क्षण है। लेकिन तुम्हारे भीतर का जो फूल है, वो जब खिलता है तो मृत्यु नहीं अमृत को उपलब्ध होता है। साधारण फूल खिलके मरते हैं। जितनी देर न खिले, उतनी देर ही बचे। वहाँ तो पूरा होना मरने के बराबर है। तुम्हारे भीतर एक ऐसा फूल है जो खिलता है तो अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

लेकिन ध्यान रखना, जब मैं कहता हूँ तुम्हारे भीतर एक ऐसा फूल है, तो तुम यह मत समझ लेना कि मैं कह रहा हूँ तुम। तुम्हारे भीतर, तुम नहीं। तुम तो उसी तरह मरोगे जैसे बाहर की कली मरती है। क्योंकि तुम भी तुमसे बाहर हो। तुम भी तुमसे बाहर हो।

फूल बनने की खुशी में मुस्कराती थी कली

वैसी घटना तुम्हारे भीतर भी घटेगी। क्योंकि तुम्हारा अहंकार तो मरेगा। तुमने अबतक जो जाना है कि तुम हो, वो तो मरेगा। इधर बुद्धत्व का फूल खिला, उधर गौतम सिद्धार्थ विदा हुआ। इधर महावीर का फूल खिला, वहाँ वर्द्धमान की अर्थी बँधी। एक बहुत मजेदार घटना घटी —

एक जैन मुनि चित्रभानु। संयोग से एक बार मुझे उनके साथ बोलने का मौका मिला। वे बड़े प्रसिद्ध जैन मुनि थे। मुझसे पहले बोले, मैं उनके पीछे बोला। उन्होंने, महावीर का जन्मदिन था तो महावीर के जीवन पर बातें कीं। लेकिन मुझे लगा, महावीर के जीवन पर उन्होंने एक भी बात नहीं की। वर्द्धमान की चर्चा की। वर्द्धमान महावीर के जन्म का नाम था। महावीर होने के पहले का नाम था। जबतक जागे न थे, तबतक का नाम था।

कहाँ पैदा हुए, किस घर में पैदा हुए, कौन माँ, कौन पिता, कितना बड़ा राज्य, कितने हाथी-घोड़े, इसकी उन्होंने चर्चा की। महावीर की बात ही न आयी। इस सबसे क्या लेना-देना था? ऐसे तो बहुत राजकुमार हुए, कौन उनकी याद करता है?

मैं जब बोला तो मैंने कहा कि मैं तो यहाँ महावीर पर बोलने आया हूँ, वर्द्धमान

पर बोलने नहीं। और मैंने कहा, वर्द्धमान और महावीर तो दो अलग आदमी हैं। मुनि चित्रभानु क्रोध से खड़े हो गये। उन्होंने समझा कि ये कौन नासमझ आ गया, जो कहता है वर्द्धमान और महावीर अलग-अलग आदमी हैं। उन्होंने खड़े होके कहा, महानुभाव, मालूम होता है आपको कुछ भी पता नहीं है। महावीर और वर्द्धमान एक ही आदमी हैं। मैं तो हँसा ही, वो जो हजारों लोग थे वे भी हँसे।

मैंने उनसे कहा, मुनि महाराज, जो आपके श्रावक समझ गये वो भी आप नहीं समझ पा रहे हैं। मैंने भी नहीं कहा है कि दो आदमी थे। फिर भी मैं कहता हूँ कि दो आदमी थे। वर्द्धमान सोया हुआ आदमी है। जब वर्द्धमान विदा हो जाता है, तभी तो महावीर का आविर्भाव होता है, या जब महावीर का आविर्भाव होता है, तब वर्द्धमान की अर्थी बँध जाती है। वर्द्धमान की बात मत करो। महावीर की बात अलग ही बात है।

तो तुम्हारे भीतर भी कुछ मरेगा। तुम मरोगे, जैसा तुमने अभी तक अपने को जाना है। नाम, रूप, परिवार, प्रतिष्ठा, अबतक तुमने जितने तादात्म्य बनाए हैं, वे तो मरेंगे। लेकिन उन सबके मर जाने के बाद पहली बार तुम्हारी आँखें उसकी तरफ खुलेंगी जो तुम्हारे भीतर अमृत है। उस अनाहत नाद को तुम सुनोगे पहली बार, जब तुम्हारी आवाजें और शोरगुल बंद हो जाएगा। जब तुम अपनी बकवास बंद कर दोगे, जब तुम्हारे विचार जा चुके होंगे, जब तुम्हारी भीड़ विदा हो जाएगी, तब अचानक तुम्हारा सन्नाटा बोलेगा, तुम्हारा शून्य अनाहत नाद से गूँजेगा। जब तुम्हारी दुर्गंध जा चुकी होगी, तभी तुममें परमात्मा की सुगंध का अवतरण होता है। वो छिपी है, पर तुम मौका दो तब फूटे न। तुम जगह दो तब फैले न। कली की छाती पर तुम सवार होकर बैठे हो, पखुड़ियों को तुम खुलने नहीं देते।

'चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।' क्यों? क्योंकि चंदन या जूही, तगर या कमल रूप, रंग, आकार के जगत के खेल हैं। रूप के ही सपने हैं, रंग के ही सपने हैं। निराकार का फूल तुम्हारे भीतर खिल सकता है। क्योंकि निराकार का फूल तभी खिलता है जब कोई चैतन्य को उपलब्ध हो। निराकार यानी चैतन्य। आकार यानी तंद्रा, मूर्छा।

जिस दिन संसार जागेगा, उस दिन ब्रह्म को पाएगा। अगर मिट्टी का कण भी या पत्थर का टुकड़ा भी जागेगा, तो अपने को जमा हुआ चैतन्य पाएगा। जो जागा उसने परमात्मा को पाया, जो सोया उसने पदार्थ को समझा। पदार्थ सोए हुए आदमी की व्याख्या है परमात्मा की। परमात्मा जागे हुए आदमी का अनुभव है पदार्थ का। पदार्थ और परमात्मा दो नहीं हैं। सोया हुआ आदमी जिसे पदार्थ कहता है, जागा हुआ आदमी उसीको परमात्मा जानता है। दो दृष्टियाँ हैं। जागा हुआ

आदमी जिसे परमात्मा जानता है, सोया हुआ आदमी पदार्थ मानता है । दो दृष्टियाँ हैं ।

'शील की सुगंध सर्वोत्तम है ।' क्योंकि वस्तुतः वह परमात्मा की सुगंध है। शील का क्या अर्थ है ? शील का अर्थ चरित्र नहीं है। इस भेद को समझ लेना जरूरी है, तो ही बुद्ध की व्याख्या में तुम उतर सकोगे ।

चरित्र का अर्थ है, ऊपर से थोपा गया अनुशासन । शील का अर्थ है, भीतर से आयी गंगा । चरित्र का अर्थ है आदमी के द्वारा बनायी गयी नहर । शील का अर्थ है, परमात्मा के द्वार से उतरी गंगा । चरित्र का अर्थ है, जिसका तुम आयोजन करते हो, जिसे तुम सम्हालते हो। सिद्धांत, शास्त्र, समाज तुम्हें एक दृष्टि देते हैं — ऐसे उठो, ऐसे बैठो, ऐसे जिओ, ऐसा करो । तुम्हें भी पक्का पता नहीं है कि तुम जो कर रहे हो वो ठीक है या गलत । अगर तुम गैर-मांसाहारी घर में पैदा हुए तो तुम मांस नहीं खाते, अगर तुम मांसाहारी घर में पैदा हुए हो तो मांस खाते हो । क्योंकि जो घर की धारणा है, वही तुम्हारा चरित्र बन जाती है । अगर तुम रूस में पैदा हुए तो तुम मंदिर न जाओगे, मस्जिद न जाओगे । तुम कहोगे, परमात्मा ! कहाँ है परमात्मा ?

राहुल सांकृत्यायन उन्नीस सौ छत्तीस में रूस गये। और उन्होंने एक छोटे स्कूल में — प्राइमरी स्कूल में — एक छोटे बच्चे से जाके पूछा, ईश्वर है ? उस बच्चे ने कहा — हुआ करता था, अब है नहीं । 'यूज्ड टू बी, बट नो मोर'। ऐसा पहले हुआ करता था, जब लोग अज्ञानी थे — क्रांति के पहले — उन्नीस सौ सत्रह के पहले हुआ करता था । अब नहीं है । ईश्वर मर चुका । आदमी जब अज्ञानी था, तब हुआ करता था ।

जो हम सुनते हैं, वो मान लेते हैं । संस्कार हमारा चरित्र बन जाता है । पश्चिम में शराब पीना कोई दुश्चरित्रता नहीं है । छोटे-छोटे बच्चे भी पी लेते हैं । सहज है । पूरब में बड़ी दुश्चरित्र बात है । धारणा की बात है।

कल ही मैं देख रहा था, जयप्रकाश नारायण के स्वास्थ्य की बुलेटिन रोज निकलती है, वो मैं देख रहा था । तो उन्होंने दो अंडे खाए । कोई सोच भी नहीं सकता, किस भाँति के सर्वोदयी हैं ! अहिंसा, सर्वोदय, गाँधी के मानने वाले, अंडे ? लेकिन बिहार में चलता है । बिहारी हैं, कोई अड़चन की बात नहीं । कोई जैन सोच भी नहीं सकता कि अहिंसक और अंडे खा सकता है। लेकिन जयप्रकाश को खयाल ही नहीं आया होगा । गाँधी और विनोबा के साथ जिंदगी बितायी लेकिन अंडे नहीं खाना है, यह ख्याल नहीं आया ।

एक क्वेकर कई वर्ष पहले मेरे पास मेहमान हुआ । तो मैंने उनसे सुबह ही पूछा

कि चाय लेंगे, दूध लेंगे, कॉफी लेंगे — क्या लेंगे ? वो एकदम चौंक गया, जैसे मैंने कोई बड़ी खतरनाक बात कही हो। उसने कहा, क्या आप चाय, दूध कॉफी पीते हैं ? जैसे कोई खून का निमंत्रण दिया हो। मैंने पूछा, तुम... कोई गलती बात हुई ? उसने कहा, मैं शाकाहारी हूँ, दूध मैं नहीं पी सकता। क्योंकि क्वेकर मानते हैं दूध खून है। उनके मानने में भी बात तो है। क्वेकर अंडा खाते हैं, लेकिन दूध नहीं पीते, क्योंकि दूध तो रक्त से ही बनता है। शरीर में सफेद और लाल कण होते हैं खून में। मादा के शरीर से — चाहे गाय हो, चाहे स्त्री हो — सफेद कण अलग हो जाते हैं और दूध बन जाता है। वो आधा खून है। तो उसने इस तरह नाक-भौं सिकोड़ी, कहा कि दूध ! आप भी क्या बात कर रहे हैं ! अंडा खा लेते हैं। क्योंकि अंडा वो कहते हैं कि जबतक अभी जीवन प्रगट नहीं हुआ तबतक कोई पाप नहीं है। ऐसे तो जीवन सभी जगह छिपा है; इसलिए प्रगट और अप्रगट का भेद करना उचित है उनके हिसाब से। ऐसे तो जीवन सभी जगह छिपा है।

तुमने एक फल खाया, अगर तुम न खाते और फल रखा रहता, सड़ जाता, तो उसमें कीड़े पड़ते, तो उसमें भी जीवन प्रगट हो जाता। तो जब तक नहीं प्रगट हुआ है तब तक नहीं है।

मान्यताओं की बातें हैं। चरित्र मान्यताओं से बनता है, संस्कार से बनता है। शील ? शील बड़ी अनूठी बात है। शील तुम्हारी मान्यताओ और संस्कार से नहीं बनता। शील तुम्हारे ध्यान से जन्मता है। इस फर्क को बहुत ठीक से समझ लो। मान्यता, संस्कार, समाज, संस्कृति, नीति की धारणाएँ विचार हैं। जो विचार तुम्हें दिये गये हैं, वो तुम्हारे भीतर पकड़ गये हैं।

मैं जैन घर में पैदा हुआ। तो बचपन में मुझे कभी रात्रि को भोजन करने का सवाल नहीं उठा। कोई करता ही न था घर में, इसलिए बात ही नहीं थी। मैं पहली दफा पिकनिक पर कुछ हिंदू मित्रों के साथ पहाड़ पर गया। उन्होंने दिन में खाना बनाने की कोई फिकिर ही न की। मुझ अकेले के लिए कोई चिंता का कारण भी न था। मैं अपने लिए जोर दूं, यह भी ठीक न मालूम पड़ा।

रात उन्होंने भोजन बनाया। दिन भर पहाड़ का चढाव, दिन भर की थकान, भयंकर मुझे भूख लगी। और रात उन्होंने खाना बनाया। उनके खाने की गंध, वो मुझे आज भी याद है। ऊपर-ऊपर मैंने हाँ-ना किया कि नहीं, रात कैसे खाना खाऊँगा, लेकिन भीतर तो चाहा कि वे समझा-बुझा के किसी तरह खिला ही दें। उन्होंने समझा-बुझा के खिला भी दिया। लेकिन मुझे तत्क्षण वमन हो गया, उल्टी हो गयी।

उस दिन तो मैंने यही समझा कि रात का खाना इतना पापपूर्ण है इसीलिए उल्टी हो गयी। लेकिन उनको तो किसीको भी न हुई। संस्कार की बात थी। कोई रात

के खाने से संबंध न था। कभी खाया न था, और रात खाना पाप है, वो धारणा; तो किसी तरह खा तो लिया, लेकिन वो सब शरीर ने फेंक दिया, मन ने बाहर फेंक दिया।

शील से इन घटनाओं का कोई संबंध नहीं है, मन की धारणाओं से संबंध है। तुम जो मानके चलते हो, जो तुम्हारे विचार में बैठ गया है, उसके अनुकूल चलना आचरण है, उसके प्रतिकूल चलना दुराचरण है।

शील क्या है? शील है, जब तुम्हारे मन से सब विचार समाप्त हो जाते हैं और निर्विचार दशा उपलब्ध होती है, शून्यभाव बनता है, ध्यान लगता है, उस ध्यान की दशा में तुम्हें जो ठीक मालूम होता है, वही करना शील है। और वैसा शील सारे जगत में एक-सा होगा। उसमें कोई संस्कार के भेद नहीं होंगे, समाज के भेद नहीं होंगे।

चरित्र हिंदू का अलग होगा, मुसलमान का अलग होगा, ईसाई का अलग होगा, जैन का अलग होगा, सिक्ख का अलग होगा, शील सभी का एक होगा। शील वहाँ से आता है जहाँ न हिंदू जाता, न मुसलमान जाता, न ईसाई जाता। तुम्हारी गहनतम गहराई से, अछूती, कुँवारी गहराई से, जहाँ किसीने कभी कोई स्पर्श नही किया, जहाँ तुम अभी भी परमात्मा हो, वहाँ से शील आता है। जैसे अगर तुम थोड़ी सी जमीन खोदो तो ऊपर-ऊपर जो पानी मिलेगा वो तो पास की सड़कों से बहती हुई नालियों का पानी होगा, जो जमीन ने सोख लिया है— चरित्र। चरित्र होगा वह। फिर तुम गहरा कुआँ खोदो, इतना गहरा कुआँ खोदो जहाँ तक नालियों का पानी जा ही नही सकता, तब तुम्हें जलस्रोत मिलेंगे, वे सागर के हैं। तब तुम्हें शुद्ध जल मिलेगा।

अपने भीतर इतनी खुदाई करनी है कि विचार समाप्त हो जाएँ, निर्विचार का तल मिल जाए। वहाँ से तुम्हारे जीवन को जो ज्योति मिलेगी वो शील की है। चरित्र में कोई बड़ी सुगंध नहीं होती। चरित्र तो प्लास्टिक के फूल हैं, चिपका लिए ऊपर से, सज-धज गये, शृंगार कर लिया। दूसरों को दिखाने के लिए अच्छे, लेकिन परमात्मा के सामने काम न पड़ेंगे। शील ऐसे फूल हैं जो तुमने चिपकाए नहीं, तुम्हारे भीतर लगे, उगे, उमगे, तुम्हारे भीतर से आए। जिनकी जड़ें तुम्हारे भीतर छिपी हैं। उन्हीं फूलों को तुम परमात्मा के सामने ले जाने में समर्थ हो सकोगे। जो समाज ने दिया है, वो मौत छीन लेगी। क्योंकि जो समाज ने दिया है, वो जन्म के बाद दिया है। उसे तुम मौत के आगे न ले जा सकोगे। जन्म और मौत के बीच ही उसकी संभावना है। लेकिन अगर शील का जन्म हो जाए, तो उसका अर्थ है, तुमने वहाँ पाया अब जो जन्म के पहले था, जब तुम पैदा भी न हुए थे। उस शुद्ध चैतन्य से आ रहा है। अब मृत्यु के आगे भी ले जा सकोगे। जो जन्म के पहले है, वो मृत्यु

के बाद भी साथ जाएगा। शील को उपलब्ध कर लेना इस जगत की सबसे बड़ी क्रांति है।

न जाने कौन है गुमराह कौन आगाहे-मंजिल है
हजारों कारवाँ हैं जिंदगी की शाह राहों में

... 'कौन है गुमराह'? कौन भटका हुआ है? 'कौन आगाहे-मंजिल है'? और कौन है जिसे मंजिल का पता है? हजारों यात्री-दल हैं जिंदगी के राजपथ पर। तुम कैसे पहचानोगे? चरित्र के धोखे में मत आ जाना। दुश्चरित्र को तो छोड़ ही देना, चरित्रवान को भी छोड़ देना। शीलवान को खोजना।

ऐसा समझो—

एक सूफी फकीर हज की यात्रा को गया। एक महीने का मार्ग था। उस फकीर और उसके शिष्यों ने तय किया कि एक महीने उपवास रखेंगे। पाँच-सात दिन ही बीते थे कि एक गाँव में पहुँचे, कि गाँव के बाहर ही आए थे कि गाँव के लोगों ने खबर की कि तुम्हारा एक भक्त गाँव में रहता है, उसने अपना मकान, जमीन सब बेंच दिया। गरीब आदमी है। तुम आ रहे हो, तुम्हारे स्वागत के लिए उसने पूरे गाँव को आमंत्रित किया है भोजन के लिए। सब बेच दिया है ताकि तुम्हारा ठीक से स्वागत कर सके। उसने बड़े मिष्ठान्न बनाए हैं। फकीर के शिष्यों ने कहा, यह कभी नहीं हो सकता, हम उपवासी हैं, हमने एक महीने का उपवास रखा है। हमने व्रत लिया है, व्रत नहीं टूट सकता। लेकिन फकीर कुछ भी न बोला।

जब वे गाँव में आए और उस भक्त ने उनका स्वागत किया, और फकीर को भोजन के लिए निमंत्रित किया तो वो भोजन करने बैठ गया। शिष्य तो बड़े हैरान हुए कि ये किस तरह का गुरु है, जरा से भोजन के पीछे व्रत को तोड़ डाला। भूल गया कसम, भूल गया प्रतिज्ञा कि एक महीने उपवास करेंगे। ये क्या मामला है? लेकिन जब गुरु ने ही इनकार नहीं किया तो शिष्य भी इनकार न कर सके। करना चाहते थे।

समारोह पूरा हुआ, रात जब विश्राम को गये तो शिष्यों ने गुरु को घेर लिया और कहा कि ये क्या है? क्या आप भूल गये, या आप पतित हो गये? उस गुरु ने कहा, पागलों, प्रेम से बड़ी कहीं कोई तीर्थयात्रा है? और इसने इतने प्रेम से, अपनी सब जमीन-जायदाद बेच के, सब लुटाके — गरीब आदमी है — भोजन का आयोजन किया, उसे इनकार करना परमात्मा को ही इनकार करना हो जाता। क्योंकि प्रेम को इनकार करना परमात्मा को इनकार करना है। रही उपवास की बात, तो क्या फिकिर है, सात दिन आगे कर लेंगे। एक महीने का उपवास करना है न? एक महीने का उपवास कर लेंगे। और अगर कोई दंड तुम सोचते हो, तो दंड भी जोड़

लो। एक महीने दस दिन का कर लेंगे। जल्दी क्या है? और मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हारी ये अकड़ कि हमने व्रत लिया है और हम अब भोजन न कर सकेंगे अहंकार की अकड़ है। ये प्रेम की और धर्म की विनम्रता नहीं।

यहां फर्क तुम्हारे समझ में आ सकता है। शिष्यों का तो केवल चरित्र है, गुरु का शील है। शील अपना मालिक है, वो होश से पैदा होता है। चरित्र अपना मालिक नहीं है, वो अंधानुकरण से पैदा होता है। जब कभी तुम्हें जीवन में कोई शीलवान आदमी मिल जाए, तो समझ लेना यही चरण पकड़ लेने जैसे हैं। चरित्रवान के धोखे में मत आ जाना, क्योंकि चरित्रवान तो सिर्फ ऊपर-ऊपर है। भीतर बिल्कुल विपरीत चल रहा है।

फर्क कैसे करोगे? चरित्रवान को तुम हमेशा अकड़ा हुआ पाओगे। क्योंकि, इतना कर रहा हूँ! तो अहंकार मजबूत होता है। चरित्रवान को तुम हमेशा तना हुआ पाओगे, तनाव से भरा पाओगे। क्योंकि कर रहा है, कर रहा है, कर रहा है। फल की अपेक्षा कर रहा है। शीलवान को तुम हमेशा विश्राम में पाओगे। शीलवान इसलिए नहीं कर रहा है कि आगे कुछ मिलने को है। शीलवान इसलिए कर रहा है कि करने में आनंद है। शीलवान को तुम प्रफुल्लित पाओगे। शीलवान अपनी तपश्चर्या की चर्चा न करेगा। वो उत्सव के गीत गाएगा। शीलवान तुम्हें आनंदित मालूम पड़ेगा। चरित्रवान तुम्हें बड़ा तना हुआ और कष्ट झेलता हुआ मालूम पड़ेगा। बारीक है फासले, लेकिन अगर तुमने नजर खोलके रखी तो तुम्हें कठिनाई न होगी।

चरित्रवान के पास तुम्हें दंभ की दुर्गंध मिलेगी। शीलवान के पास तुम्हें सरलता की सुगंध मिलेगी। शीलवान को तुम ऐसा पाओगे जैसा छोटा बालक, चरित्रवान को तुम बड़ा हिसाबी-किताबी पाओगे। वो एक-एक बात का हिसाब रखेगा। गणित में पक्का पाओगे, प्रेम में नहीं। और जहाँ गणित बहुत पक्का हो जाता है, वहाँ परमात्मा से दूरी बहुत हो जाती है। तुम चरित्रवान को तर्कयुक्त पाओगे। वो जो भी करेगा, तर्क से ठीक है इसलिए करेगा। शीलवान को तुम तर्कयुक्त न पाओगे, सहज-स्फूर्त पाओगे। वो जो भी करेगा वो उसकी सहज-स्फुरणा है। ऐसा हुआ। शीलवान को तुम परमात्मा के हाथ में अपने को सौंपा हुआ पाओगे, चरित्रवान को तुम अपने ही हाथ में नियंत्रित पाओगे। चरित्रवान में नियंत्रण होगा, अनुशासन होगा। शीलवान में स्वातंत्र्य होगा, मुक्ति होगी। और सुगंध और दुर्गंध का फर्क होगा।

दुश्चरित्र तो होना ही नहीं, चरित्रवान भी मत होना। अगर होना ही है, तो शीलवान होना। चरित्र है ऊपर से थोपा गया — आरोपण। शील है भीतर से आयी हुई जीवन-धारा, भीतर से आया हुआ बोध।

'चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वो-

तम है ' । शील छोटे बच्चे जैसा है । छोटे बच्चों को फिर से गौर से देखना । बहुत कम लोग उन्हें गौर से देखते हैं । छोटे बच्चों को ठीक से पहचानना, क्योंकि वही संतों की भी पहचान बनेगी । तुमने कभी छोटा बच्चा देखा जो कुरूप हो ? सभी छोटे बच्चे सुंदर होते हैं, सभी छोटे बच्चों में जीवन का आल्हाद होता है । एक सरलता होती है — गणितशून्य, हिसाब से मुक्त । एक प्रवाह होता है ।

निकलके कूँचे से तेरे बहुत खराब हुए
कहीं न चैन मिला फिर तेरी गली की तरह

अगर तुम अपने बचपन को याद करोगे, तो तुम्हें ये वचन समझ में आ जाएँगे । ये वचन तो कहे गये हैं अदम के लिए, कि अदम को जब स्वर्ग के बगीचे से निकाल दिया गया कि उसने बचपन खो दिया, उसने सरलता खो दी, निर्दोषता खो दी । उसने ज्ञान के वृक्ष का फल चख लिया, वह समझदार हो गया ।

अब ये बड़ी मजे की कहानी है ईसाइयों की । इससे अनूठी कहानी दुनिया के इतिहास में दूसरी नहीं । अदम को इसलिए निकाला गया कि वो ज्ञानी हो गया । थोड़ा सोचो । हम तो सोचते हैं, ज्ञानियों को वापस ले लिया जाएगा । अदम जबतक सरल था, तबतक तो स्वर्ग के बगीचे में रहा, और जब समझदार हो गया -- समझदार यानी जब वो चालाक हो गया, जब उसने ज्ञान के वृक्ष का फल चख लिया — उस क्षण परमात्मा ने उसे बाहर कर दिया ।

निकलके कूँचे से तेरे बहुत खराब हुए
कहीं न चैन मिला फिर तेरी गली की तरह

और आदमी, ईसाइयत कहती है, तब से बेचैन है, उसीकी गली को फिर खोज रहा है (लेकिन ये खोज तभी पूरी हो सकती है जब ज्ञान को तुम वमन कर दो, जब तुम अपने पांडित्य को फेंक दो कूड़े-करकट के ढेर पर, जब तुम फिर से सरल हो जाओ) जब तुम फिर बालक की भाँति हो जाओ । संतत्व में पुनः बच्चे का शील आ जाता है, बच्चे की सुगंध आ जाती है ।

'चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है ' ।

ये शील की सुगंध तुम्हारे मस्तिष्क का हिसाब-किताब नहीं, तुम्हारे हृदय में जला हुआ दिया है, तुम्हारे हृदय में जली ज्योति है ।

दिल से मिलती तो है एक राह कहीं से आकर
सोचता हूँ यह तेरी रहगुजर है कि नहीं

मत सोचो । दिल से जो राह मिलती है वही परमात्मा की राह है । सोचा तो भटकोगे । उस राह पे थोड़ा चलके देखो । उस राह पे चलते ही तुम्हें लगेगा, मंदिर

के शिखर दिखायी पड़ने लगे, मंदिर का घंटियों का स्वर सुनायी पड़ने लगा, मंदिर में जलती धूप की सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भरने लगी।

दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर

अज्ञात की राह तुम्हारे सिर से नहीं मिलती, तुम्हारे दिल से मिलती है।

सोचता हूँ कि यह तेरी रहगुजर है कि नहीं

सोचो मत। जिसने सोचा उसने गवाँया। क्योंकि जब तुम सोचने लगते हो तब तुम मस्तिष्क में आ जाते हो। प्रेम करो, भाव से भरो। रो लेना भी बेहतर है सोचने से, नाच लेना बेहतर है सोच लेने से, आँसू टपका लेना बेहतर है सोचने से। जो भी हृदय से उठे, वो बेहतर है, वो श्रेष्ठ है। और जैसे-जैसे तुम्हारा थोड़ा संबंध बनेगा, तुम निश्चित ही जान लोगे कि उसी राह से परमात्मा आता है। ज्ञान की राह से नहीं, निर्दोष भाव की राह से आता है।

'तगर और चंदन की जो ये गंध फैलती है वह अल्पमात्र है। और यह जो शील-वंतों की सुगंध है, वह उत्तम गंध देवलोकों में भी फैल जाती है, देवताओं में भी फैल जाती है।'

इसे थोड़ा समझें। तगर, चदन की जो गंध है अल्पमात्र है, क्षणजीवी है। हवा का एक झोंका उसे उडा ले जाएगा। जल्दी ही खो जाएगी इस विराट में, फिर कहीं खोजे न मिलेगी। एक सपना हो जाएगी, एक अफवाह मालूम पड़ेगी। पता नहीं थी भी या नहीं थी। लेकिन शीलवंतों की जो सुगंध है, वह उत्तम गंध देवताओ में भी फैल जाती है।

मैंने सुना है, एक स्त्री मछलियाँ बेचके अपने घर वापिस लौट रही थी। नगर के बाहर निकलती थी कि उसकी एक पुरानी सहेली मिल गयी, जो एक मालिन थी। उसने कहा, आज रात मेरे घर रुक जा, बहुत दिन से साथ भी नहीं हुआ, बहुत बातें भी करने को हैं। वो रुक गयी। मालिन ने यह सोचकर कि पुरानी सखी है, ऐसी जगह उसका बिस्तर लगाया जहाँ बाहर से बेला की सुगंध भरपूर आती थी। लेकिन मछली बेचनेवाली औरत करवटें बदलने लगी। बेला की सुगंध की आदत नहीं। आधी रात हो गयी, तो मालिन ने पूछा बहन तू सो नहीं पाती, कुछ अड़चन है? उसने कहा, कुछ और अड़चन नहीं, मेरी टोकरी मुझे वापिस दे दो। और थोड़ा पानी उसपर छिड़क दो, क्योंकि मछलियों की गंध के बिना मैं सो न सकूँगी। बेला की सुगंध मुझे बड़ी तकलीफ दे रही है। बड़ी तेज है।

मालिन को तो भरोसा न आया। मछलियों की गंध! गंध कहना ही ठीक नहीं उसे, दुर्गंध है। लेकिन उसने पानी छिड़का उसकी टोकरी पर, कपड़े के टुकड़े पर -- जिन पर मछलियाँ बाँधकर वो बेच आयी थी। उसने उसे अपने सिर के

पास रख लिया, जल्दी ही उसे घुर्राटे आने लगे, वो गहरी नींद में खो गयी ।

तल हैं बहुत । बुद्ध कहते हैं देवताओं को भी; पृथ्वी पर रहनेवालों को ही नहीं स्वर्ग में रहनेवालों को भी शील की गंध आती है । शायद पृथ्वी पर रहनेवालों को तो वैसी ही हालत हो जाए जैसी मछली बेचनेवाली औरत की हो गयी थी ।

बुद्ध को लोगों ने पत्थर मारे । उन्हें दुर्गंध आयी होगी, सुगंध न आयी होगी । महावीर को लोगों ने सताया, उन्हें सुगंध न आयी होगी, अन्यथा पूजते । जीसस को सूली पर लटका दिया । अब और क्या चाहते हो ! जाहिर है बात कि हम कोई ऐसी बस्ती के रहनेवाले हैं जहाँ मछलियों की दुर्गंध हमें सुगंध मालूम होने लगी है, जहाँ हम जीसस को सूली पर लटका देते हैं, जहाँ हम सुकरात को जहर पिला देते है, जहाँ बुद्धों को हम पत्थर मारते हैं, महावीरों का अपमान करते हैं। हमें उनकी सुगध सुगध नही मालूम पड़ती । हम भयभीत हो जाते है । उनका होना हमें डगमगा देता है । उनके होने में बगावत मालूम पड़ती है । उनकी श्वाँस-श्वाँस में विद्रोह के स्वर मालूम होते है । लेकिन देवताओं को उनकी गंध आती है ।

महावीर के जीवन में बड़ा प्यारा उल्लेख है । कथा ही होगी । लेकिन कथा भी बड़ी बहुमूल्य है और सार्थक है । और कभी-कभी कथाओं के सत्य जीवन के सत्यों से भी बड़े सत्य होते हैं । कहते है कि महावीर ने जब पहली दफा अपनी उद्घोषणा की, अपने सत्य की, तो देवताओं के सिवाय कोई भी सुनने न आया । आते भी कैसे कोई और ? उद्घोषणा इतनी ऊँची थी ! उसकी गंध ऐसी थी कि केवल देवता ही पकड़ पाए होंगे । अगर कहीं कोई देवता है तो निश्चित ही वही सुनने आए होंगे । फिर देवताओं ने महावीर को समझाया-बुझाया कि आप कुछ इस ढंग से कहें कि मनुष्य भी समझ सके । आप कुछ मनुष्य की भाषा में कहें । मतलब यही कि मनुष्य की टोकरी पर थोड़ा पानी छिड़कें, मनुष्य की टोकरी उसके पास रख दें, तो ही शायद पहचान पाए ।

कोई भी नहीं जानता कि महावीर की पहली उद्घोषणा में, पहले संबोधन में महावीर ने क्या कहा था । वही शुद्धतम धर्म रहा होगा । लेकिन उसके आधार पर तो जैन धर्म नहीं बना । जैन धर्म तो बना तब, जब महावीर कुछ ऐसा बोले जो आदमी की समझ में आ जाए । वो महावीर का अंतरतम नही हो सकता ।

बुद्ध तो चुप ही रह गये जब उन्हें ज्ञान हुआ । उन्होंने कहा, बोलना फिजूल है, कौन समझेगा ? यह गंध बाँटनी व्यर्थ है । यहाँ कोई गंध के पारखी ही नहीं हैं । हम बाँटेंगे सोना, लोग समझेंगे पीतल; हम देंगे हीरे, लोग समझेंगे कंकड़-पत्थर । फेंक आएँगे । बुद्ध तो सात दिन चुप रह गये ।

फिर कथा कहती है कि स्वर्ग के देवता उतरे, खुद ब्रह्मा उतरे, बुद्ध के चरणों में

सिर रखा और कहा कि ऐसी अनूठी घटना कभी-कभार घटती है सदियों में, आप कहें। कोई समझे या न समझे, आप कहें। शायद कोई समझ ही ले। शायद कोई थोड़ा ही समझे। एक किरण भी किसीकी समझ में आ जाए तो भी बहुत है। क्योंकि किरण के सहारे कोई सूरज तक जा सकता है।

बुद्ध कहते हैं, 'तगर या चंदन की ये जो गंध है, अल्पमात्र है। और यह जो शीलवंतों की सुगंध है, वह उत्तम देवलोकों तक फैल जाती है।'

इस सुगंध को शब्द देने कठिन हैं। ये सुगंध कोई पार्थिव घटना नहीं है। तुम उसे तोल न सकोगे। न ही तुम इसे गठरियों में बाँध सकोगे। न ही तुम उसे शास्त्रों में समा सकोगे। न ही तुम इसके सिद्धांत बना सकोगे। यह सुगंध अपार्थिव है। यह तो केवल उन्हींको मिलती है, जो बुद्धों की आँखों में झाँकने में समर्थ हो जाते हैं। यह तो केवल उन्हींको मिलती है, जो बुद्धों के हृदयों में डूबने में समर्थ हो जाते हैं। यह तो केवल उन्हींको मिलती है, जो मिटने को राजी हैं, जो खोने को राजी हैं। इस सुगंध को पाना बड़ा सौदा है। केवल जुआरी ही इसको पा पाते है।

होता है राज़े-मुहब्बत इन्हीं से फाश
आँखें ज़ुबाँ नही हैं मगर बेज़ुबाँ नहीं

बुद्ध की आँखों में जो झाँकेगा, तो बुद्ध की आँखें जबान तो नहीं है कि बोल दें, लेकिन वे बेज़ुबाँ भी नहीं हैं। बोलती हैं। जो बुद्ध की आँखों के दीये को समझेगा, जो बुद्ध की आँखों के दीये के पास अपने बुझे दीयों को ले आएगा, जो बुद्ध की शून्यता में अपनी शून्यता को मिला देगा, जो बुद्ध के साथ होने को राजी होगा — अज्ञात की यात्रा पर जाने को — केवल उसीके अंतरपट उस गंध से भर जाएँगे, केवल वही उस गंध का मालिक हो पाएगा।

वो जो शीलवान, अप्रमाद में विहार करनेवाले सम्यक् ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गये हैं, उनकी राह में मार नहीं आता है।'

और जिसने भी शील को पा लिया, अप्रमाद को पा लिया, सम्यक् ज्ञान को पा लिया — एक ही बातें हैं — उसकी राह में फिर वासना का देवता मार नहीं आता है। जो जाग गया, उसे फिर मार के देवता से मुलाकात नहीं होती। उसको तो फिर परमात्मा से ही मुलाकात होती है। जो सोया है, उसकी घड़ी-घड़ी मुलाकात वासना के देवता से ही होती है।

'जैसे महापथ के किनारे फेंके गये कूड़े के ढेर पर कोई सुगंधयुक्त सुंदर कमल खिले, वैसे ही कूड़े के समान अंधे सामान्यजनों के बीच सम्यक् संबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से शोभित होता है।'

बहुत बातें हैं इस सूत्र में। पहली तो बात ये है कि कमल कीचड़ से खिलता है,

कूड़े-करकट के ढेर से निकलता है। कमल कीचड़ में छिपा है। कमल तो पैदा करना, लेकिन कीचड़ के दुश्मन मत हो जाना। नहीं तो कमल कभी पैदा नहीं हो पाएगा।

समझो। जिसे तुमने क्रोध कहा है, वही है कीचड़, और जिसे तुमने करुणा जानी है, वही है कमल। और जिसे तुमने कामवासना कहा है, वही है कीचड़, और जिसको तुमने ब्रह्मचर्य जाना है, वही है कमल। काम के कीचड़ से ही राम का कमल खिलता है, क्रोध के कीचड़ से ही करुणा के फूल खिलते हैं।

जीवन एक कला है। और जीवन उन्हींका है जो उस कला को सीख लें। भगोड़ों के लिए नहीं है जीवन, और न नासमझों के लिए है। तुम कहीं भूल में मत पड़ जाना। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तुम्हें जो समझाते हैं, जल्दी मत मान लेना। क्योंकि वे कहते हैं कि हटाओ क्रोध को; वे कहते हैं, हटाओ काम को। मैं तुमसे कहता हूँ, बदलो, हटाओ मत। रूपांतरित करो, 'ट्रांसफार्म' करो। क्रोध ऊर्जा है, उसे काट दोगे तो करुणा पैदा न होगी। तुम सिर्फ शक्तिहीन, नपुंसक हो जाओगे। काम ऊर्जा है। उसे अगर काट दोगे तो तुम निर्वीर्य हो जाओगे। बदलो, उसे रूपांतरित करो, उसमें महाधन छिपा है। तुम कहीं फेंक मत देना। कीचड़ समझ के फेंक मत देना, कमल भी छिपा है। हालाँकि कीचड़ को ही कमल मत समझ लेना।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। बड़ी खतरनाक दुनिया है। एक तो वे लोग हैं, जो कहते हैं कीचड़ को हटाओ, क्योंकि कहाँ कीचड़ को ढो रहे हो? काटो कामवासना को, तोड़ो क्रोध को, जला दो इंद्रियों को। एक तो ये लोग हैं। इन्होंने काफी हानि की संसार की। इन्होंने मनुष्य की गरिमा से शून्य कर दिया। इन्होंने मनुष्य का सारा गौरव नष्ट कर दिया, दीन-हीन कर दिया मनुष्य को। क्योंकि उसी कीचड़ में छिपे थे कमल।

फिर दूसरे तरह के लोग भी हैं। अगर उनसे कहो कीचड़ में कमल छिपा है, फेंको मत कीचड़ को, बदलो; तो वे कहते हैं, बिलकुल ठीक! फिर वे कीचड़ को ही सिंहासन पे विराजमान कर लेते हैं, फिर वे उसीकी पूजा करते हैं। फिर वे कहते हैं, तुम्हींने तो कहा था कि कीचड़ में कमल छिपा है। अब हम कीचड़ की पूजा कर रहे हैं। ये दोनों ही खतरनाक लोग हैं।

कीचड़ में कमल छिपा है। न तो कीचड़ को फेंकना है, न कीचड़ की पूजा करनी है, कीचड़ से कमल को निकालना है। कीचड़ से कमल को बाहर लाना है। जो छिपा है, उसे प्रगट करना है। इन दो अतियों से बचना। ये दोनों अतियाँ एक जैसी हैं। कुआँ नहीं तो खाई। कहीं बीच में होने के लिए जगह खोजनी है। कोई संतुलन चाहिए।

'जैसे महापथ के किनारे फेंके गये कूड़े के ढेर पर कोई सुगंधित सुंदर कमल खिले'। तो पहली तो बात यह कि कमल खिलता ही कीचड़ में है। इसका बड़ा गहरा अर्थ हुआ। इसका अर्थ हुआ कि कीचड़ सिर्फ कीचड़ ही नहीं है, कमल की संभावना भी है। तो गहरी आँख से देखना, तो तुम कीचड़ में छिपा हुआ कमल पाओगे। कीचड़ सिर्फ वर्तमान ही नहीं है, भविष्य भी है। गौर से देखना, तुम भविष्य के कमल को झाँकते हुए पाओगे। छिपा है। इसलिए जिनके पास पैनी आँखें हैं, उन्हींको दिखायी पड़ेगा।

कीचड़ की पूजा भी नहीं करना, कीचड़ का उपयोग करना। कीचड़ को मालिक मत बन जाने देना, कीचड़ को सेवक ही रहने देना। मालिक तुम्हीं रहना, तो ही कमल निकल पाएगा। क्योंकि तुम्हारी मालिकियत रहे तो ही कमल को तुम कीचड़ के बाहर खींच पाओगे। तुम अगर ऊर्ध्वगमन पर जाते हो, अगर तुम ऊपर की तरफ यात्रा कर रहे हो, तो ही कीचड़ का कमल भी ऊपर की तरफ तुम्हारे साथ जा सकेगा। तुम कीचड़ में ही डुबकी लगा के मत बैठ जाना। नहीं तो कमल किसके सहारे जाएगा। तुम्ही को तो कमल की डंडी बनना है। पैर रहें कीचड़ में, सिर रहे आकाश में, तो तुम कीचड़ से कमल को बाहर निकाल पाओगे। पैर रहे जमीन पर, सिर रहे आकाश में, चलना जमीन पर, उड़ना परमात्मा में, और इन दोनों के बीच अगर तालमेल बना लो, तुम्हारे भीतर एक अनूठा कमल खिलेगा।

'जैसे महापथ के किनारे फेंके गये कूड़े के ढेर पर कोई सुगधित सुंदर कमल खिले, वैसे ही कूड़े के समान अंधे सामान्यजनों के बीच सम्यक् संबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से शोभित होता है।'

बुद्ध अपने शिष्य को श्रावक कहते हैं। श्रावक का अर्थ है जिसने बुद्ध को सुना, श्रवण किया। बुद्ध को तो बहुत लोगों ने सुना, सभी श्रावक नहीं हैं। कान से ही जिन्होंने सुना, वे श्रावक नहीं हैं। जिन्होंने प्राण से सुना, वे श्रावक हैं। जिन्होंने ऐसे सुना कि सुनने में ही क्राति घटित हो गयी, जिन्होंने ऐसे सुना कि बुद्ध का सत्य उनका सत्य हो गया। श्रद्धा के कारण नहीं, सुनने की तीव्रता और गहनता के कारण। श्रद्धा के कारण नहीं, मान लिया ऐसा नहीं, वह सुना इतने प्राणपण से, सुना इतनी परिपूर्णता से, सुना अपने को पूरा खोलकर कि बुद्ध के शब्द केवल शब्द ही न रहे, नि:शब्द भी उनमें चला आया। बुद्ध के शब्द ही भीतर न आए, उन शब्दों में लिपटी बुद्धत्व की गंध भी भीतर आ गयी।

और ध्यान रखना, जब बुद्ध बोलते हैं तब शब्द तो वही होते हैं जो तुम बोलते हो, लेकिन जमीन-आसमान का फर्क है। शब्द तो वही होते हैं, लेकिन बुद्ध में डूबके आते हैं, सरोबोर होते हैं बुद्धत्व में, उन शब्दों में से बुद्धत्व झरता है। अगर तुमने

बुद्ध के शब्दों को अपने प्राण में जगह दी, तो उनके साथ ही साथ बुद्धत्व का बीज भी तुम्हारे भीतर आरोपित हो जाता है। बुद्ध ने उनको श्रावक कहा है जिन्होंने ऐसे सुना। और बुद्ध कहते हैं, सम्यक् संबुद्धों का श्रावक सामान्यजनों के कूडे-करकट की भीड़ में कमल की तरह खिल जाता है। अलग हो जाता है। रहता संसार में है. फिर भी पार हो जाता है। कमल होता कीचड़ में है, फिर भी दूर हो जाता है! उठता है दूर। भिन्न हो जाता है।

कमल और कीचड़, कितना फासला है। फिर भी कमल कीचड़ से ही आता है। तुम्हारे बीच ही अगर किसीने बुद्धत्व को अपने प्राणों में आरोपित कर लिया, बुद्ध के बीज को अपने भीतर जाने दिया, अपने हृदय में जगह दी, सींचा, पाला, पोसा, सुरक्षा की, तो तुम्हारे ठीक बीच बजार के घूरे पर, ढेर पर उसका कमल खिल आएगा।

एक ही बात खयाल रखनी जरूरी है, ऊपर की तरफ जाने को मत भूलना। नीचे की तरफ जो ले जाता है, वो है कामवासना, कीचड़। ऊपर की तरफ जो ले जाता है, वही है प्रेम, वही है प्रार्थना। काम को प्रेम में बदलो।

काम का अर्थ है, दूसरे से सुख मिल सकता है ऐसी धारणा। प्रेम का अर्थ है, किसीसे सुख नहीं मिल सकता, और न कोई तुम्हें दुख दे सकता है। इसलिए दूसरे से लेने का तो कोई सवाल ही नहीं। काम माँगता है दूसरे से। काम भिखारी है। काम है भिक्षा का पात्र। प्रेम है इस बात की समझ कि दूसरे से न कुछ कभी मिला है, न मिलेगा। ये दूसरे के सामने भिक्षा के पात्र को मत फैलाओ। प्रेम है : तुम्हारे भीतर जो है उसे बाँटो और दो। काम है माँगना, प्रेम है दान। जो तुम्हारे जीवन की संपदा है, उसे तुम दे दो, उसे तुम बाँट दो। जैसे सुगंध बाँटता है फूल, ऐसे तुम प्रेम को बाँट दो। तो तुम्हारे जीवन में शील का जन्म होगा। बाँटोगे तो तुम पाओगे, जितना बाँटते हो उतनी बढ़ती जाती है संपदा। जितना लुटाते हो, साम्राज्य बड़ा होता जाता है।

केसरी और खुशरबी तो ढलती-फिरती छाँव है ...

इस जिंदगी के बाहर दिखायी पड़नेवाले साम्राज्य और सम्राट तो ढलती-फिरती छाँव है।

केसरी और खुशरबी तो ढलती-फिरती छाँव है
इश्क ही एक जाविदाँ दौलत है इंसानों के पास

वो दौलत एक है, धन एक है, संपत्ति एक है। बाकी तो ढलती-फिरती छाँव है।

'इश्क ही है एक जाविदाँ दौलत'। प्रेम ही एकमात्र संपदा है। काम है भिखारीपन और प्रेम है संपदा। काम से पैदा होगा अशील और प्रेम से पैदा होता है शील। तो तुम्हारा जीवन एक प्रेम का दीया बन जाए।

और ध्यान रखना, प्रेम का दीया तभी बन सकता है जब तुम बहुत जागकर जिओ। जागने का तेल हो, प्रेम की बाती हो, तो परमात्मा का प्रकाश फैलता है। और तब जहाँ अँधेरा पाया था, वहाँ रोशनी हो जाती है; जहाँ काँटे पाए थे, वहाँ फूल हो जाते हैं; जहाँ संसार देखा था, वहाँ निर्वाण हो जाता है; जहाँ पदार्थ के सिवाय कभी कुछ न मिला था, वहीं परमात्मा का हृदय धड़कता हुआ मिलने लगता है। जीसस ने कहा है, उठाओ पत्थर और तुम मुझे छिपा हुआ पाओगे। तोड़ो चट्टान और तुम मुझे छिपा हुआ पाओगे।

ऐसे भी हमने देखे हैं धुएँ में इनकलाब
पहले जहाँ कफस था वहीं आशियाँ बना

जहाँ पहले कारागृह था, हमने ऐसे भी इनकलाब देखे, ऐसी क्रांतियाँ देखीं, जहाँ कारागृह था वहीं अपना निवास बना, घर बना। ये संसार ही, जिसको तुमने अभी कारागृह समझा है —— अभी कारागृह है। संसार कारागृह है ऐसा नहीं, तुम्हारे देखने के ढंग अभी नासमझी के हैं, अंधेरे के हैं।

ऐसे भी हमने देखे हैं दुनिया में इनकलाब
पहले जहाँ कफस था वहीं आशियाँ बना

बुद्ध, महावीर, कृष्ण ऐसे ही इनकलाब हैं। जहाँ तुमने सिर्फ कारागृह पाया और जंजीरें पायीं, वहीं उन्होंने अपना घर भी बना लिया! जहाँ तुमने सिर्फ कीचड़ पायी, वहीं उनके कमल खिले। और जहाँ तुम्हे अंधकार के सिवाय कभी कुछ न मिला, वहाँ उन्होंने हजार-हजार सूरज जला लिए।

मै तुमसे फिर कहता हूँ ——

सिवा इसके और दुनिया में क्या हो रहा है
कोई हँस रहा है कोई रो रहा है
अरे चौक यह ख्वाबे गफलत कहाँ तक
सहर हो गयी है और तू सो रहा है

सहर सदा से ही है, सुबह सदा से ही है, तुम्हारे सोने की वजह से रात मालूम हो रही है। और जागना बिलकुल तुम्हारे हाथ में है। कोई दूसरा तुम्हें जगा न सकेगा। तुमने ही सोने की जिद ठान रखी हो, तो कोई तुम्हें जगा न सकेगा। तुम जागना चाहो, तो जरा सा इशारा काफी है।

बुद्धपुरुष इशारा कर सकते हैं, चलना तुम्हे है। जागना तुम्हें है। अगर अपनी दुर्गंध से अभी तक नहीं घबड़ा गये, तो बात और। अगर अपनी दुर्गंध से घबड़ा गये हो, तो खिलने दो फूल को अब।

'चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधो से शील की सुगंध सर्वोत्तम है'।

आज इतना ही।

प्रेम की आखिरी मंजिल : बुध्दों से प्रेम

१० दिसंबर १९७५
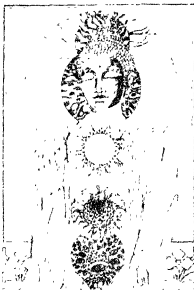
पहला प्रश्न : जिन भिक्षुओं ने बुद्ध की मूर्तियाँ बनायीं और बुद्ध-वचन के शास्त्र लिखे, क्या उन्होंने बुद्ध की आज्ञा मानी ? क्या वे उनके आज्ञाकारी शिष्य थे ?

द्ध की आज्ञा तो उन्होंने नहीं मानी, लेकिन मनुष्य पर बड़ी करुणा की। और बुद्ध की आज्ञा तोड़ने जैसी थी, जहाँ मनुष्य की करुणा का सवाल आ जाए। ऐसे उन्होंने बुद्ध की आज्ञा तोड़कर भी बुद्ध की आज्ञा ही मानी। क्योंकि बुद्ध की सारी शिक्षा करुणा की है।

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

बुद्ध ने कहा मेरी मूर्तियाँ मत बनाना, तो जिन्होंने मूर्तियाँ बनायी उन्होंने बुद्ध की आज्ञा तोड़ी। लेकिन बुद्ध ने ये भी कहा कि जो ध्यान को उपलब्ध होगा, समाधि जिसके जीवन में खिलेगी, उसके जीवन में करुणा की वर्षा भी होगी। तो जिन्होंने मूर्तियाँ बनायी उन्होंने करुणा के कारण बनायीं। बुद्ध के चरण-चिह्न खो न जाएँ, और बुद्ध के चरण-चिह्नों की छाया अनंत काल तक बनी रहे।

कुछ बात ही ऐसी थी कि जिस आदमी ने कहा मेरी मूर्तियाँ मत बनाना, हममें अगर उसकी मूर्तियाँ न बनायी होतीं तो बड़ी भूल हो जाती। जिन्होंने कहा था

हमारी मूर्तियां बनाना, उनकी हम छोड़ भी देते, न बनाते, चलता। बुद्ध ने कहा था मेरी पूजा मत करना, अगर हमने बुद्ध की पूजा न की होती, तो हम बड़े चूक जाते। ये सौभाग्य की घड़ी कभी-कभी, सदियों में आती है, जब कोई ऐसा आदमी पैदा होता है जो कहे मेरी पूजा मत करना। यही पूजा के योग्य है। जो कहता है मेरी मूर्ति मत बनाना, यही मूर्ति बनाने के योग्य है। सारे जगत के मंदिर इसीको समर्पित हो जाने चाहिए।

बुद्ध ने कहा मेरे वचनों को मत पकड़ना, क्योंकि जो मैंने कहा है उसे जीवन में उतार लो। दीये की चर्चा से क्या होगा, दीये को सम्हालो। शास्त्र मत बनाना। अपने को जगाना। लेकिन जिस आदमी ने ऐसी बात कही, अगर इसका एक-एक वचन लिख न लिया गया होता, तो मनुष्यता सदा के लिए दरिद्र रह जाती। कौन तुम्हें याद दिलाता, कौन तुम्हें बताता कि कभी कोई ऐसा भी आदमी हुआ था, जिसने कहा था मेरे शब्दों को अग्नि में डाल देना, और मेरे शास्त्रों को जलाके राख कर देना, क्योंकि मैं चाहता हूँ जो मैंने कहा है वो तुम्हारे भीतर जिए, किताबों में नहीं? लेकिन ये कौन लिखता?

तो निश्चित ही जिन्होंने मूर्तियां बनायी, बुद्ध की आज्ञा तोडी। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ उन्होंने ठीक ही किया। बुद्ध की आज्ञा तोड़ देने जैसी थी। नहीं कि बुद्ध ने जो कहा था, वो गलत था। बुद्ध ने जो कहा था, बिलकुल सही कहा था। बुद्ध से गलत कहा कैसे जा सकता है? बुद्ध ने बिलकुल सही कहा था, मेरी मूर्तियां मत बनाना, क्योंकि कहीं मूर्तियों में तुम मुझे न भूल जाओ। कहीं मूर्तियों में मैं खो न जाऊँ, कहीं मूर्तियां इतनी ज्यादा न हो जाएँ कि मै दब जाऊँ। तुम सीधे ही मुझे देखना।

लेकिन हम इतने अंधे हैं कि सीधे तो हम देख ही न पाएँगे। हम तो टटोलेंगे। टटोल के ही शायद हमें थोड़ा स्पर्श हो जाए। टटोलने के लिए मूर्तियां जरूरी है। मूर्तियों से ही हम रास्ता बनाएँगे। हम उस परम शिखर को तो देख ही न सकेंगे जो बुद्ध के जीवन में प्रगट हुआ। वो तो बहुत दूर है हमसे। आकाश के बादलों में खोया है वो शिखर। उसतक हमारी आँखें न उठ पाएँगी। हम तो बुद्ध के चरण भी देख लें, जो जमीन पर हैं, तो भी बहुत। उन्हीं के सहारे शायद हम बुद्ध के शिखर पर भी कभी पहुँच जाएँ, इसकी आशा हो सकती है।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, जिन्होंने आज्ञा तोड़ी उन्होंने ही आज्ञा मानी। जिन्होंने वचनों को सम्हालकर रखा, उन्होंने ही बुद्ध को समझा। लेकिन तुम्हें बहुत जटिलता होगी, क्योंकि तर्कबुद्धि तो बड़ी नासमझ है।

ऐसा हुआ।

एक युवक मेरे पास आता था। किसी विश्वविद्यालय में अध्यापक था। बहुत दिन मेरी बातें सुनीं, बहुत दिन मेरे सतसंग में रहा। एक रात आधी रात आया और कहा, जो तुमने कहा था वो मैं पूरा कर चुका। मैंने अपने सब वेद-उपनिषद्, गीता कुएँ में डाल दीं। मैंने उससे कहा पागल, मैंने वेद-उपनिषद् को पकड़ना मत इतना ही कहा था। कुएँ में डाल आना,·ये मैंने न कहा था। ये तूने क्या किया?

वेद-उपनिषद् को न पकड़ो तो ही वेद-उपनिषद् समझ में आते हैं। वेद-उपनिषद् को समझने की कला यही है कि उनको पकड़ मत लेना, उनको सिर पर मत ढो लेना। उनको समझना। समझ मुक्त करती है। समझ उससे भी मुक्त कर देती है जिसको तुमने समझा। कुएँ में क्यों फेंक आया? और तू समझता है कि तूने कोई बड़ी क्रांति की, मैं नहीं सोचता। क्योंकि अगर वेद-उपनिषद् व्यर्थ थे, तो आधी रात में कुएँ तक ढोने की भी क्या जरूरत थी? जहाँ पड़े थे पड़े रहने देता। कुएँ में फेंकने वही जाता है, जिसने सिर पर बहुत दिन तक सम्हाल के रखा हो। कुएँ में फेंकने में भी आसक्ति का ही पता चलता है। तुम उसीसे घृणा करते हो जिससे तुमने प्रेम किया हो। तुम उसीको छोड़के भागते हो जिससे तुम बँधे थे।

एक संन्यासी मेरे पास आया और उसने कहा, मैंने पत्नी, बच्चे सबका त्याग कर दिया। मैंने उससे पूछा, वे तेरे थे कब? त्याग तो उसका होता है जो अपना हो। पत्नी तेरी थी? सात चक्कर लगा लिए थे आग के आसपास, उससे तेरी हो गयी थी? बच्चे तेरे थे? पहली तो भूल वहीं हो गयी कि तूने उन्हें अपना माना। और फिर दूसरी भूल यह हो गयी कि उनको छोड़के भागा। छोड़ा वही जा सकता है जो अपना मान लिया गया हो। बात कुल इतनी है, इतना ही जान लेना है कि अपना कोई भी नहीं है, छोड़के क्या भागना है! छोड़के भागना तो भूल की ही पुनरुक्ति है।

जिन्होंने जाना, उन्होंने कुछ भी छोड़ा नहीं। जिन्होंने जाना, उन्होंने कुछ भी पकड़ा नहीं। जिन्होंने जाना, उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता, छूट जाता है। क्योंकि जब दिखायी पड़ता है कि पकड़ने को यहाँ कुछ भी नहीं है, तो मुट्ठी खुल जाती है।

बुद्ध की मृत्यु हुई — तबतक तो किसीने बुद्ध का शास्त्र लिखा न था। ये 'धम्म-पद' के वचन तबतक लिखे न गये थे — तो बौद्ध भिक्षुओं का संघ इकट्ठा हुआ। जिनको याद हो, वो उसे दोहरा दें, ताकि लिख लिया जाए।

बड़े ज्ञानी भिक्षु थे, समाधिस्थ भिक्षु थे। लेकिन उन्होंने तो कुछ भी याद न रखा था। जरूरत ही न थी। समझ लिया, बात पूरी हो गयी थी। जो समझ लिया, उसको याद थोड़ी' रखना पड़ता है। तो उन्होंने कहा कि हम कुछ कह तो सकते हैं, लेकिन वो बड़ी दूर की ध्वनि होगी। वो ठीक-ठीक वही शब्द न होंगे जो बुद्ध के

थे। उसमें हम भी मिल गये हैं। वो हमारे साथ इतना एक हो गया है कि कहाँ हम, कहाँ बुद्ध, फासला करना मुश्किल है।

तो अज्ञानियों से पूछा कि तुम कुछ कहो, ज्ञानी तो कहते हैं कि मुश्किल है तय करना। हमारी समाधि के सागर में बुद्ध के वचन खो गये। अब हमने सुना, हमने कहा कि उनने कहा, इसकी भेद-रेखा नहीं रही। जब कोई स्वयं ही बुद्ध हो जाता है, तो भेद-रेखा मुश्किल हो जाती है। क्या अपना, क्या बुद्ध का? अज्ञानियों से पूछो।

अज्ञानियों ने कहा हमने सुना तो था, लेकिन समझा नहीं। सुना तो था, लेकिन बात इतनी बड़ी थी कि हम सम्हाल न सके। सुना तो था, लेकिन हमसे बड़ी थी घटना, हमारी स्मृति में न समायी, हम अवाक् और चौंके रह गये। घड़ी आयी और बीत गयी, और हम खाली हाथ के खाली हाथ रहे। तो कुछ हम दोहरा तो सकते हैं, लेकिन हम पक्का नहीं कह सकते कि बुद्ध ने ही ऐसा कहा था। बहुत कुछ छूट गया होगा। और जो हमने समझा था, वही हम कहेंगे। जो उन्होंने कहा था, वो हम कैसे कहेंगे? तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी। अज्ञानी कह नहीं सकते, क्योंकि उन्हें भरोसा नहीं। ज्ञानियों को भरोसा है, लेकिन सीमा-रेखाएँ खो गयी हैं।

फिर किसीने सुझाया, किसी ऐसे आदमी को खोजो जो दोनों के बीच में हो। बुद्ध के साथ बुद्ध का निकटतम शिष्य आनंद चालीस वर्षों तक रहा था। लोगों ने कहा आनंद को पूछो। क्योंकि न तो वो अभी बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ है और न वो अज्ञानी है। वो द्वार पर खड़ा है। इस पार संसार, उस पार बुद्धत्व, चौखट पर खड़ा है, देहली पर खड़ा है। और जल्दी करो, अगर वो देहली के पार हो गया, तो उसकी भी सीमा-रेखाएँ खो जाएँगी।

आनंद ने जो दोहराया, वही संग्रहीत हुआ। आनंद की बड़ी करुणा है जगत पर। अगर आनंद न होता, बुद्ध के वचन खो गये होते। और बुद्ध के वचन खो गये होते, तो बुद्ध का नाम भी खो गया होता।

नहीं कि तुम बुद्ध के नाम या वचन से मुक्त हो जाओगे। आग शब्द से कभी कोई जला? जल शब्द से कभी किसीकी तृप्ति हुई? लेकिन सुराग मिलता है, राह खुलती है। शायद तुममें से कोई चल पड़े। सरोवर की बात सुनके किसीकी प्यास साफ हो जाए, कोई चल पड़े। हजार सुनें, कोई एक चल पड़े। लाख सुनें, कोई एक पहुँच जाए। उतना भी क्या कम है!

तो तुम पूछते हो, जिन्होंने बुद्ध की मूर्तियाँ बनायीं क्या उन्होंने आज्ञा का उल्लंघन किया? निश्चित ही। आज्ञा का उल्लंघन किया, करने योग्य था। अगर कहीं कोई अदालत हो, तो मैं उनके पक्ष में खड़ा होऊँ। मैं बुद्ध के खिलाफ उनके पक्ष में

खड़ा होऊँ जिन्होंने मूर्तियाँ बनायीं। उन्होंने संगमरमर के नाक-नक्श से थोड़ी सी खबर हम तक पहुँचा दी।

बुद्ध की मूर्ति बनानी असंभव है। क्योंकि बुद्धत्व अरूप है, निराकार है। बुद्ध की तुम क्या प्रतिमा बनाओगे ? कैसे बनाओगे ? कोई उपाय नहीं है। लेकिन फिर भी अद्‌भुत मूर्तियाँ बनीं। उन मूर्तियों को अगर कोई गौर से देखे, तो मूर्तियाँ कुंजियाँ हैं। तुम्हारे भीतर कोई ताले खुल जाएँगे, गौर से देखते-देखते। तुम्हारे भीतर कोई चाबी लग जाएगी, कोई द्वार अचानक खुल जाएगा।

हमने संगमरमर में मूर्तियाँ बनायीं, क्योंकि संगमरमर पत्थर भी है और कोमल भी। बुद्ध पत्थर जैसे कठोर हैं और फूल जैसे कोमल। तो हमने संगमरमर चुना। संगमरमर कठोर है, पर शीतल। बुद्ध पत्थर जैसे कठोर हैं, पर उन जैसा शीतल, उन जैसा शांत तुम कहाँ पाओगे ? हमने संगमरमर की मूर्तियाँ चुनीं। क्योंकि बुद्ध जब जीवित थे तब भी वे ऐसे ही शांत बैठ जाते थे, कि दूर से देखकर शक होता कि आदमी है या मूर्ति ?

मैंने एक बड़ी पुरानी कहानी सुनी है। एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उस मूर्तिकार को एक ही भय था सदा, मौत का। जब उसकी मौत करीब आने लगी, तो उसने अपनी ही ग्यारह मूर्तियाँ बना लीं। वो इतना बड़ा कलाकार था कि लोग कहते थे, अगर वह किसीकी मूर्ति बनाए तो पहचानना मुश्किल है कि मूल कौन है, मूर्ति कौन है। मूर्ति इतनी जीवंत होती थी।

जब मौत ने द्वार पे दस्तक दी, तो वो अपनी ही ग्यारह मूर्तियों में छिपके खड़ा हो गया। श्वाँस उसने साध ली। उतना ही फर्क था कि वो श्वाँस लेता, मूर्तियाँ श्वाँस न लेती। उसने श्वाँस रोक ली। मौत भीतर आयी और बड़े भ्रम में पड़ गयी। एक को लेने आयी थी, यहाँ बारह एक जैसे लोग थे। लेकिन मौत को धोखा देना इतना आसान तो नहीं। मौत ने जोर से कहा, और सब तो ठीक है, एक जरा सी भूल रह गयी। वो चित्रकार बोला, कौन सी भूल ? मौत ने कहा यही कि तुम अपने को न भूल पाओगे।

लेकिन अगर बुद्ध खड़े होते वहाँ, तो उतनी भूल भी न रह गयी थी। उतनी भी भूल न रह गयी थी, अपनी याद भी न रह गयी थी। अपना होना भी न रह गया था। अगर बुद्ध को तुम ठीक से समझोगे, तो उनके स्वाभिमान में भी तुम विनम्रता को लहरें लेते देखोगे। उनके होने में भी तुम न होने का स्वाद पाओगे।

> नियाज की ही मेरे नाज में भी शान रही
> खुदी की लहर भी आयी तो बेखुदी की तरह

'नियाज की ही मेरे नाज में भी शान रही'। मेरी अस्मिता में, मेरे स्वाभिमान

में भी विनम्रता की ही शान रही, उसकी ही महिमा के गीत चलते रहे। 'खुदी की लहर भी आयी' — और कभी मैंने समझा भी कि मैं हूँ — 'खुदी की लहर भी आयी तो बेखुदी की तरह'। इस तरह समझा कि जैसे नहीं हूँ।

हमने संगमरमर में बुद्ध को खोदा। कभी बुद्ध की प्रतिमाओं के पास बैठके गौर से देखो। ये पत्थर में जो खुदा है, उसमें बहुत कुछ छिपा है। बुद्ध की आँखें देखो, बंद है। बंद आँखें कहती है कि बाहर जो दिखायी पड़ता था, अब व्यर्थ हो गया। अब भीतर देखना है। यात्रा बदल गयी। अब बाहर की तरफ नहीं जाते है, अब भीतर की तरफ जाते हैं। जो दिखायी पड़ता था, अब उसमें रस नहीं रहा। अब तो उसीको देखना है जो देखता है। अब द्रष्टा की खोज शुरू हुई, दृश्य की नहीं। मूर्ति ऐसी स्थिर है, जरा भी कंपन का पता नहीं चलता। ऐसे ही भीतर बुद्ध की चेतना थिर हो गयी है, निष्कंप हो गयी है। जैसे हवा का एक झोंका भी न आए और दीये की लपट ठहर जाए। मूर्ति में हमने यह सब खोदा। मूर्ति तो एक प्रतीक है। अगर तुम उस प्रतीक का राज समझो, तो देखते-देखते मूर्ति को तुम भी मूर्ति जैसे हो जाओगे। अच्छा ही किया जिन्होंने बुद्ध की आज्ञा न मानी।

बुद्ध बिलकुल ठीक ही कहते थे कि मूर्ति मत बनाना, क्योंकि मैं अमूर्त हूँ। आकार मत ढालना, क्योंकि मैं निराकार हूँ। तुम जो कुछ भी करोगे, गलत होगा। सीमा होगी उसकी, मैं असीम हूं। बुद्ध बिलकुल ठीक ही कहते थे। लेकिन ये बात दूसरे बुद्धों के लिए ठीक होगी, तुम सबका क्या होता ? तुम सबके लिए तो निराकार की भी खबर आएगी, तो आकार से। तुम्हारे लिए तो निर्गुण की भी खबर आएगी, तो सगुण से। तुम तो अनाहत नाद भी सुनोगे, तो भी आहत नाद से ही। तुम तो वहीं से चलोगे न, जहाँ तुम हो। जहाँ बुद्ध हैं, वहाँ तो पहुँचना है। वहाँ से तुम्हारी यात्रा न हो सकेगी।

और बुद्ध के ये वचन जिन्होंने इकट्ठे किये, वैसे वचन पृथ्वी पर बहुत कम बोले गये हैं, जैसे वचन बुद्ध के हैं। जैसी सीधी उनकी चोट है और जैसे मनुष्य के हृदय को रूपांतरित कर देने की कीमिया है उनमें, वैसे वचन बहुत कम बोले गये हैं। खो सकते थे ये वचन। और बहुत बुद्ध भी हुए हैं बुद्ध के पहले, उनके वचन खो गये है। उनके शिष्यो मे कोई गहरा आज्ञाकारी न था, ऐसा मालूम होता है। बड़ा दुर्भाग्य हुआ, बड़ी हानि हुई। कौन जाने उनमें से कौन सा वचन तुम्हें जगाने का कारण हो जाता, निमित्त बन जाता।

तो मैं दोनो बातें कहता हूँ। जिन्होंने मूर्तियाँ बनायीं, बुद्ध के वचन तोड़े; जिन्होंने बुद्ध के वचन इकट्ठे किये, उन्होंने बुद्ध के वचन तोड़े; लेकिन फिर भी मैं कहता हूँ, उन्होंने ठीक ही किया। अच्छा ही किया। और गहरे में मैं जानता हूँ कि बुद्ध

भी उनसे प्रसन्न हैं कि उन्होंने ऐसा किया। क्योंकि बुद्ध तो वही कहते हैं, जो वो कह सकते हैं, जो उन्हें कहना चाहिए। शिष्य को तो और भी बहुत सी बातें सोचनी पड़ती हैं, बुद्ध क्या कहते हैं वही नहीं। अँधेरे में भटकते हुए जो हजारों लोग आ रहे हैं, उनका भी विचार करना जरूरी है।

बुद्धों के पास एक प्रेम का जन्म होता है। यद्यपि बुद्ध कहते है प्रेम आसक्ति है। लेकिन बुद्धों के पास प्रेम की आखिरी मंजिल आती है। यद्यपि बुद्ध कहते हैं, मेरे प्रेम में मत पड़ना, पर कैसे बचोगे ऐसे आदमी से ? जितना वो कहते हैं मेरे प्रेम में मत पड़ना, उतना ही उनके प्रति प्रेम उमगता है, उतना ही उनके प्रति प्रेम बहता है। जितना वो तुम्हें सम्हालते हैं, उतना ही तुम डगमगाते हो। कठिन है बहुत। बुद्ध मिल जाएँ और प्रेम में न पड़ना कठिन है। ठीक ही बुद्ध कहते है कि मेरे प्रेम में मत पड़ना। लेकिन बचना असंभव है।

जिस जगह आकर फरिश्ते भी पिघल जाते हैं जोश
लीजिए हजरत सम्हालिए वह मुकाम आ ही गया

फरिश्ते भी जहां पिघल जाते है, जहाँ देवता भी खड़े हों तो प्रेम में पड़ जाएँ —

जिस जगह आकर फरिश्ते भी पिघल जाते हैं जोश
लीजिए हजरत सम्हालिए वह मुकाम आ ही गया

जब बुद्धों के पास कोई आता है तो ऐसे मुकाम पे आ जाता है कि — उनकी शिक्षा है कि प्रेम में मत पड़ना — लेकिन उनका होना ऐसा है कि हम प्रेम में पड़ जाते है। उनकी शिक्षा है कि हमें पकड़ना मत, पर कौन होगा पत्थर का हृदय जो उन्हें छोड़ दे ?

तो फिर करना क्या है ? फिर होगा क्या ? होगा यही कि ऐसे भी पकड़ने के ढग हैं, जिनको पकड़ना नही कहा जा सकता। प्रेम की ऐसी भी सूरतें हैं, जिनमें आसक्ति नहीं। लगाव की ऐसी भी शैलियाँ है, जिनमें लगाव नहीं। प्रेम में डूबा भी जा सकता है और प्रेम के बाहर भी रहा जा सकता है। मैं तुमसे कहता हूँ, जैसे जल में कमल, ऐसे बुद्धके पास रहना होता है। प्रेम में पड़ते भी हैं, और अपना दामन बचाके चलते भी। इस विरोधाभास को जिसने साध लिया, वही बुद्धों के सत्संग के योग्य होता है।

इनमें से दो में से तुमने अगर एक को साधा, अगर तुम प्रेम में पड़ गये, जैसे कि कोई साधारण जगत के प्रेम में पड़ जाता है, तो प्रेम बंधन हो जाता है। तब बुद्ध से तुम्हारा संबंध तुमने सोचा जुड़ा, बुद्ध की तरफ से टूट गया। तुमने समझा तुम पास रहे, बुद्ध की तरफ से तुम हजार-हजार मील दूर हो गये। अगर तुमने सोचा कि संबंध बनाएँगे ही नहीं, क्योंकि संबंध बंधन बन जाता है, तो तुम बुद्ध के

पास दिखायी पड़ोगे, लेकिन पास न पहुँच पाओगे। बिना प्रेम के कभी कोई पास आया ?

तो मैं तुमसे बड़ी उलझन की बात कह रहा हूँ। प्रेम भी करना और सावधान भी रहना। प्रेम भी करना और प्रेम की जंजीर मत बनाना। प्रेम करना और प्रेम का मंदिर बनाना। प्रेम करना और प्रेम को मुक्ति बनाना।

जिस जगह आकर फरिश्ते भी पिघल जाते हैं जोश
लीजिए हज़रत सम्हालिए वह मुकाम आ ही गया

बहुत सम्हल-सम्हल के सतसंग होता है। सत्संग का खतरा यही है कि तुम प्रेम में पड़ सकते हो। और सत्संग का ये भी खतरा है कि प्रेम से बचने के ही कारण तुम दूर भी रह सकते हो। दूर रहोगे तो चूकोगे, प्रेम बंधन बन गया तो चूक जाओगे, ऐसी मुसीबत है! पर ऐसा है। कुछ करने का उपाय नहीं। सम्हल-सम्हल के चलना है। इसलिए सत्संग को खड्ग की धार कहा है। जैसे तलवार की धार पे कोई चलता हो — इधर गिरे कुआं, उधर गिरे खाई।

लीजिए हज़रत सम्हालिए ...

बहुत सम्हाल के चलने की बात है।

दूसरा प्रश्न : चारों ओर मेरे घोर अँधेरा
भूल न जाऊँ द्वार तेरा
एक बार प्रभु हाथ पकड़ ले।

अँधेरा दिखायी पड़ने लगे, मिटना शुरू हो जाता है। क्योंकि न देखने में ही अँधेरे के प्राण हैं।

अगर कविता की पंक्तियाँ ही दोहरा दी हों, तब तो बात दूसरी। अगर ऐसा अनुभव में आना शुरू हो गया हो — 'चारों ओर मेरे घोर अँधेरा', अगर यह वचन उधार न हो, सुना-सुनाया न हो, किसी और की थाली से चुराया न हो, अगर इसका थोड़ा स्वाद आया हो, तो जिसे अँधेरा दिखने लगा उसे प्रकाश की पहचान आ गयी। क्योंकि बिना प्रकाश की पहचान के कोई अँधेरे को भी देख नहीं सकता। अँधेरा यानी क्या ? जबतक तुम प्रकाश को न जानोगे — भला एक किरण सही, भला एक छोटा सा टिमटिमाता चिराग सही — लेकिन रोशनी देखी हो तो ही अँधेरे को पहचान सकोगे।

यही तो घटता है बुद्धपुरुषों के पास। तुम अपने अँधेरे को लेके जब उनकी रोशनी के पास आते हो, तब तुम्हें पहली बार पता चलता है — 'चारों ओर मेरे घोर अँधेरा'। उसके पहले भी तुम अँधेरे में थे। अँधेरे में ही जन्मे, अँधेरे में ही बड़े

हुए, अँधेरे में ही पले-पुसे, अँधेरा ही भोजन, अँधेरा ही ओढ़नी, अँधेरा ही बिछौना, अँधेरा ही श्वांस, अँधेरा ही हृदय की धड़कन, पहचानने का कोई उपाय न था। इसलिए शास्त्र सत्संग की महिमा गाते हैं, और शास्त्र गुरु की महिमा गाते हैं। उस महिमा का कुल राज इतना है कि जबतक तुम किसी ऐसे व्यक्ति के पास न आ जाओ, जहाँ प्रकाश जलता हो, जहाँ दिया जलता हो, तब तक तुम अपने अँधेरे को न पहचान पाओगे। तुलना ही न होगी, पहचान कैसे होगी? विपरीत चाहिए, 'कंट्रास्ट' चाहिए, तो दिखायी पड़ना शुरू होता है। और जब दिखायी पड़ना शुरू होता है, तब घबड़ाहट शुरू होती है। तब जीवन एक बेचैनी हो जाता है। तब कहीं चैन नहीं पड़ता। उठते-बैठते, सोते-जागते, काम करते-न करते, सब तरफ भीतर एक ख्याल बना रहता है —

चारों ओर मेरे घोर अँधेरा
भूल न जाऊँ द्वार तेरा

प्रीतिकर है बात। अँधेरे में पूरी संभावना है कि द्वार भूल जाए। अँधेरे में द्वार का पता कहाँ है? अँधेरे में तो द्वार का सपना देखा है, द्वार कहाँ। लेकिन अगर इतनी याद बनी रहे, और इतनी प्रार्थना बनी रहे, और ये भीतर सुरति, स्मृति चलती रहे — 'भूल न जाऊँ द्वार तेरा', तो यही स्मृति धीरे-धीरे द्वार बन जाती है।

द्वार कहीं तुमसे बाहर थोड़ी' है। द्वार कहीं तुमसे भिन्न थोड़ी' है जिसे खोजना है। द्वार तुमसे प्रगट होगा। तुम्हारे स्मरण से ही द्वार बनेगा। तुम्हारे सातत्य, सतत स्मरण से ही द्वार बनेगा। तुम्हारी प्रार्थना ही तुम्हारा द्वार बन जाएगी। जिसको नानक सुरति कहते हैं, कबीर सुरति कहते हैं, जिसको बुद्ध ने स्मृति कहा है, जिसको पश्चिम का एक बहुत अद्भुत पुरुष गुरजिएफ 'सेल्फ रिमेंबरिंग' कहता था — स्वयं की स्मृति, स्व-स्मृति — वही तुम्हारा द्वार बनेगी।

अँधेरे की याद रखो। भूलने से अँधेरा बढ़ता है। याद रखने से घटता है। क्योंकि याद का स्वभाव ही रोशनी का है। स्मृति का स्वभाव ही प्रकाश का है। याद रखो —

'चारों ओर मेरे घोर अँधेरा'। इसे कभी गीत की कड़ी की तरह गुनगुनाना मत, ये तुम्हारा मंत्र हो जाए। श्वांस भीतर आए, बाहर जाए, इसकी तुम्हें याद बनी रहे। इसकी याददाश्त के माध्यम से ही तुम अँधेरे से अलग होने लगोगे। क्योंकि जिसकी तुम्हें याद है, जिसको तुम देखते हो, जो दृश्य बन गया, उससे तुम अलग हो गये, पृथक हो गये।

'भूल न जाऊँ द्वार तेरा'। भक्त गहन विनम्रता में जीता है। द्वार मिल भी

जाए तो भी वो यही कहेगा — 'भूल न जाऊँ द्वार तेरा'। क्योंकि वो जानता है कि मेरे किये तो कुछ होगा नही। मेरे किये तो सब अनकिया हो जाता है। मैं तो भवन बनाता हूँ, गिर जाते है। मैं तो योजना करता हूँ, व्यर्थ हो जाती है। मैं पूरब जाता हूँ, पश्चिम पहुँच जाता हूँ। अच्छा करता हूँ, बुरा हो जाता है। कुछ सोचता हूँ, कुछ घटता है। मेरे किये कुछ भी न होगा। भक्त कहता है तू ही अगर ...तेरी कृपा अगर बरसती रहे, तो ही कुछ सभव है।

भूल न जाऊँ द्वार तेरा

एक बार प्रभु हाथ पकड़ लो

बहुत ही बढ़िया पंक्ति है। क्योंकि एक बार अगर प्रभु ने हाथ पकड़ लिया, तो फिर छूटता ही नहीं। क्योंकि उसकी तरफ से एक बार पकड़ा गया सदा के लिए पकड़ा गया। और एक बार तुम्हारे हाथ को उसके हाथ का स्पर्श आ जाए, तो तुम तुम न रहे। वो हाथ ही थोड़ी' है, पारस है। छूते ही लोहा सोना हो जाता है। लेकिन तुम्हें अथक टटोलते ही रहना पड़ेगा। वो हाथ मुफ्त नही मिलता है। वो हाथ उन्हींको मिलता है जिन्होंने खूब खोजा है। वो हाथ उन्हीको मिलता है जिन्होंने खोज की पराकाष्ठा कर दी। वो हाथ उन्हींको मिलता है जिन्होंने खोजने में कुछ भी रख न छोड़ा। अगर तुमने थोड़ी भी बचायी हुई है अपनी ताकत, तो तुम चालाक हो। तो तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ जाएगी। अगर तुमने सब दॉव पर लगा दिया, तो तुम्हारी जीत निश्चित है। ये काम जुआरियों का है, दुकानदारों का नहीं। धर्म जुआरियों का काम है, दुकानदारों का नही। हिसाब-किताब मत रखना कि चलो दो पैसा ताकत लगाके देखें, एक आना ताकत लगाके देखें, दो आना ताकत लगाके देखें। ऐसे हिसाब-किताब से उसका हाथ तुम्हारे हाथ में न आएगा। क्योंकि तुम्हारी बेईमानी जाहिर है। जब तुम अपने को पूरा दॉव पर लगा देते हो — पीछे कुछ छूटता ही नही — जब तुम स्वयं ही पूरे दाँव पर बैठ जाते हो, उसी क्षण हाथ हाथ में आ जाता है। उस क्षण हाथ में न आए तो बडा अन्याय हो जाएगा। वैसा अन्याय नहीं है। 'देर है, अंधेर नही'।

लेकिन कहावत में लोग सोचते है कि देर उसकी तरफ से है। वही गलत है। देर तुम्हारी तरफ से है। तुम जितनी देर चाहो लगा दो। तुम बेमन से टटोल रहे हो। तुम टटोलते भी हो और डरे हो कि कहीं मिल न जाए। तुम ऐसे टटोलते भी हो और शंकित हो कि कहीं हाथ हाथ में आ ही न जाए, क्योंकि ये बड़ा खतरनाक हाथ है। फिर तुम तुम ही न हो सकोगे उसके बाद। उसकी एक झलक तुम्हें राख कर जाएगी। उसकी एक किरण तुम्हें सदा के लिए मिटा जाएगी। तुम जैसे हो वैसे न बचोगे। हाँ, तुम जैसे होने चाहिए वैसे बचोगे। जो तुम्हारा स्वभाव है बचने

का। जो कूड़ा-करकट तुमने अपने चारों तरफ इकट्ठा कर लिया है, पद का, प्रतिष्ठा का, नाम का, रूप का, वो सब जलके राख हो जाएगा। तो तुम्हारी प्रार्थना — परमात्मा से तुम्हारी प्रार्थना — बस एक ही हो सकती है, और वो प्रार्थना है कि ये मेरा जो कूड़ा-करकट है, जिसको मैंने समझा कि मैं हूँ, इसे मिटा।

जिंदगी दरिया-ए-बेहासिल है और किश्ती खराब
मैं तो घबरा कर दुआ करता हूँ तूफाँ के लिए

तुम्हारी बस एक ही प्रार्थना हो सकती है कि तुम तूफान के लिए प्रार्थना करो।

'जिंदगी दरिया-ए-बेहासिल है'। किनारा कहीं दिखायी नहीं पड़ता। सारी जिंदगी का अनुभव यही है कि किनारे कहीं नहीं है। 'और कश्ती खराब'। और नाव टूटी-फूटी; अब डूबी, तब डूबी! 'मैं तो घबरा कर दुआ करता हूँ तूफाँ के लिए'। तो मैं एक ही प्रार्थना करता हूँ कि परमात्मा, तूफान भेज दे।

जरा अपनी कश्ती को गौर से तो देखो। जरा अपने चारों तरफ आँख खोलके देखो, किनारे कहाँ हैं। सपने देखें हैं तुमने किनारों के, आशाएँ सँजोयी है तुमने किनारो की, किनारे हैं कहाँ; तुम डरते हो आँख उठाने में भी कि कहीं ऐसा न हो कि किनारा सच में ही न हो। तुम आँख झुकाके किनारों की सोचते रहते हो कि आज नहीं पहुँचे, कल पहुँच जाएँगे। पहुँच जाएँगे। एक बात तो तुमने मान ही रखी है कि किनारा है।

मैं तुमसे कहता हूँ कि जिसे तुम जिंदगी कहते हो उसका कोई भी किनारा नहीं। वो तटहीन उपद्रव है। कोई किनारा नहीं। कभी वहाँ कोई किनारे पे नहीं पहुँचा। न अलेक्जेंडर, न नेपोलियन, कभी कोई वहाँ किनारे पे नहीं पहुँचा। सभी बीच मे ही डूबके मर जाते है। कोई थोड़ा आगे, कोई थोड़ा पीछे। लेकिन आगे पीछे का भी क्या मतलब है, जहाँ किनारा न हो! किनारा होता, तो कोई किनारे के पास पहुँचके डूबता तो कहते, थोड़ा आगे। हम बीच मझधार में डूब जाते तो कहते कि थोड़े पीछे। लेकिन सभी जगह बीच मझधार है। बीच मझधार ही है। किनारा नहीं है।

और कश्ती की तरफ तो देखो जरा, थेगडे लगाए चले जाते हो। एक छेद टूटता है, भरते हो। दूसरा खुल जाता है, भरते हो। पानी उलीचते रहते हो। जिंदगी इस टूटी कश्ती के बचाने में ही बीत जाती है।

जो जानते हैं वो तूफान के लिए प्रार्थना करते हैं। वो कहते हैं परमात्मा, मैं जैसा हूँ मुझे मिटा, ताकि मैं वैसा हो सकूं जैसा तूने चाहा।

जिंदगी दरिया-ए-बेहासिल है और किश्ती खराब
मैं तो घबरा कर दुआ करता हूँ तूफाँ के लिए

और तुम्हारे जीवन में अगर ऐसी प्रार्थना का प्रवेश हो जाए — प्रार्थना यानी मृत्यु की प्रार्थना — और कोई प्रार्थना है भी नहीं। तुमने प्रार्थनाएँ की हैं, मुझे भलीभांति पता है। तुम्हारे मंदिरों में मैंने तुम्हारी प्रार्थनाएँ भी सुनी हैं। तुम्हारी मस्जिदों में, तुम्हारे गुरुद्वारों में तुम्हारी प्रार्थनाएँ खुदी पड़ी हैं। पत्थर-पत्थर पे लिखी हैं। लेकिन तुमने सदा प्रार्थना उसी जिंदगी के लिए की जिसमें कोई किनारा नहीं है। और तुमने सदा प्रार्थना उसी कश्ती को सुधार देने के लिए की, जो न कभी सुधरी है, न सुधर सकती है। तुमने कभी प्रार्थना अपने को डुबा देने के लिए न की। जिसने की, उसकी पूरी हो गयी। और जो डूबने को राजी है, मझधार में ही किनारा मिल जाता है।

जिसे तुम जिंदगी कहते हो, उसका कोई किनारा नहीं। और जिसको मैं परमात्मा कह रहा हूँ, वो किनारा ही किनारा है। वहाँ कोई मझधार नहीं। देखने का ढंग, एक तो अहंकार के माध्यम से देखना है। टूटी कश्ती के माध्यम से। वहाँ डर ही डर है। मौत ही मौत है। और एक अहंकार को हटाके देखना है। वहाँ कोई मौत नहीं, कोई डर नहीं, क्योंकि अहकार ही मरता है, तुम नहीं। तुम्हारे भीतर तो शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो। तुम्हारे भीतर तो अमृत है। तुम्हारे भीतर तो शाश्वत छिपा है, सनातन छिपा है।

अभी मयखाना-ए-दीदार हर ज़र्रे में खुलता है
अगर इंसान अपने आप से बेगाना हो जाए

बस एक छोटी सी बात कि अहंकार न रह जाए।

'अगर इसान अपने आप से बेगाना हो जाए'। जरा अपने से दूर हो जाए, जरा अपने को छोड़ दे, ये अपना होना जरा मिटा दे। 'अभी मयखाना-ए-दीदार हर ज़र्रे में खुलता है'। फिर तो हर कण-कण में परमात्मा की मधुशाला खुल जाती है। फिर तो कण-कण में उसीकी मधुशाला खुल जाती है। फिर तो सभी तरफ उसीका प्रसाद उपलब्ध होने लगता है। बस जरा सी तरकीब है, तुम जरा हट जाओ। तुम्हारे और परमात्मा के बीच में तुम्हारे सिवाय और कोई भी नहीं।

तीसरा प्रश्न : इस प्रवचनमाला में आपने कई बार कहा है, 'एस धम्मो सनंतनो', यही सनातन धर्म है। और आश्चर्य तो ये है कि वह हर बार नये रूप में आपके द्वारा प्रगट हुआ है। क्या सनातन धर्म एक है या अनेक ?

धर्म तो एक है, लेकिन उसके प्रतिबिंब अनेक हो सकते हैं। रात पूरा चाँद निकलता है। सागरों में भी झलकता है, सरोवरों में भी झलकता है, छोटे-छोटे डबरों में भी झलकता है — प्रतिबिंब बहुत हैं।

सागर में बताके भी मैंने तुमसे कहा : एस धम्मो सनंतनो । छोटे सरोवर में भी बताके कहा : एस धम्मो सनंतनो । राह के किनारे वर्षा में भर गये डबरे में भी बताके कहा : एस धम्मो सनंतनो । मैंने बहुत बार कहा । बहुत रूप में कहा । लेकिन ये सब प्रतिबिंब है और जो चाँद है, वो तो कहा नहीं जा सकता । इसलिए तुम और उलझन में पड़ोगे ।

मैंने जब भी कहा : एस धम्मो सनंतनो, यही सनातन धर्म है, तभी प्रतिबिंब की बात कही है । प्रतिबिंब में मत उलझ जाना । इशारा किया । इशारे को मत पकड़ लेना । और जो है ऊपर, वो जो चाँद है असली, उसकी तरफ कोई इशारा नहीं किया जा सकता । अंगुलियाँ वहाँ छोटी पड़ जाती हैं । शब्द वहाँ काफी सिद्ध नहीं होते । और फिर उस चाँद को देखना हो तो तुम्हें गर्दन बड़ी ऊँची उठानी पड़ेगी । और तुम्हारी आदत जमीन में देखने की हो गयी है । तो तुम्हें प्रतिबिंब ही बताए जा सकते हैं ।

लेकिन अगर प्रतिबिंब कहीं तुम्हारे जीवन का आकर्षण बन जाए, कहीं प्रतिबिंब का चुंबक तुम्हें खींच ले, तो शायद आज नहीं कल तुम असली की तलाश में भी निकल जाओ । क्योंकि प्रतिबिंब तो खो-खो जाएगा । जरा हवा का झोंका आएगा, झील कँप जाएगी और चाँद टूट के बिखर जाएगा । तो आज नहीं कल तुम्हें ये ख्याल आना शुरू हो जाएगा, जो झील में देखा है, वो सच नहीं हो सकता । सच की खबर हो सकती है, सच की दूर की ध्वनि हो सकती है -- प्रतिध्वनि हो सकती है, प्रतिबिंब हो सकता है -- लेकिन जो झील में देखा है, वो सच नहीं हो सकता । शब्द में जिसे कहा गया है, वो सत्य नहीं हो सकता । लेकिन शब्द में जिसे कहा गया है वो सत्य का बहुत दूर का रिश्तेदार हो सकता है ।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि एक मित्र ने दूर गाँव से एक मुर्गी भेजी । मुल्ला ने सोरबा बनाया । जो मुर्गी को लेकर आया था उसे भी निमंत्रित किया । कुछ दिनों बाद एक दूसरा आदमी आया । मुल्ला ने पूछा, कहाँ से आए ? उसने कहा मैं भी उसी गाँव से आता हूँ, और जिसने मुर्गी भेजी थी उसका रिश्तेदार हूँ । और रिश्तेदार का रिश्तेदार भी आया था तो उसको भी ठहराया था । उसके लिए भी सोरबा बनवाया । लेकिन कुछ दिन बाद एक तीसरा आदमी आ गया । कहाँ से आ रहे हो ? उसने कहा जिसने मुर्गी भेजी थी, उसके रिश्तेदार का रिश्तेदार हूँ ।

ऐसे तो संख्या बढ़ती चली गयी । मुल्ला तो परेशान हो गया । ये तो मेहमानों का सिलसिला लग गया । मुर्गी क्या आयी, ये तो लोग चले ही आते हैं । ये तो पूरा गाँव आने लगा । आखिर एक आदमी आया, उससे पूछा कि भाई आप कौन

हैं? उसने कहा जिसने मुर्गी भेजी थी, उसके रिश्तेदार का रिश्तेदार का रिश्तेदार का मित्र हूं।

मुल्ला ने सोरबा बनवाया। उस मित्र ने चखा, लेकिन वो बोला ये सोरबा! ये तो सिर्फ गरम पानी मालूम होता है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, ये वो जो मुर्गी आयी थी, उसके सोरबे के सोरबे के सोरबे का मित्र है।

दूर होती जाती हैं चीजें। मैंने तुम्हें झील में दिखाया। तुम ऐसा भी कर सकते हो -- कर सकोगे नहीं, करोगे ही; तुम झील के सामने एक दर्पण में देखोगे। क्योंकि जब मैं तुमसे कहता हूँ तुम मुझे थोड़े ही सुनोगे। तुम्हारा मन उसकी व्याख्या करेगा।

जब मैंने कहा तभी चाँद दूर हो गया। मैं जब देखता हूँ, तब चाँद है; जब मैं तुमसे कहता हूँ तब झील में प्रतिबिंब है। जब तुम सुनते हो और सोचते हो, तब तुमने झील को भी दर्पण में देखा। फिर दर्पण को भी दर्पण में देखते चले जाओगे। ऐसे सत्य से शब्द दूर होता चला जाता है।

इसलिए बहुत बार जिन्होंने जाना है वो चुप रह गये। लेकिन चुप रहने से भी कुछ नहीं होता। जब तुम कह-कह के नहीं सुनते हो, जगाए-जगाए नहीं जगते हो, तो चुप बैठने को तुम कैसे सुनोगे? जब शब्द चूक जाता है, तो मौन भी चूक जाएगा। जब शब्द तक चूक जाता है, तो मौन निश्चित ही चूक जाएगा। फिर भी जो कहा जा सकता है वो प्रतिध्वनि है, इसे याद रखना। उस प्रतिध्वनि के सहारे मूल की तरफ यात्रा करना, तीर्थयात्रा करना।

तंग था जिसके लिए हरफ़े-बयाँ का दायरा
वह फसाना हम खामोशी में सुनाकर रह गये

शब्द छोटे पड़ जाते है। दायरा छोटा है।

तंग था जिसके लिए हरफे-बयाँ का दायरा

कहने की सीमा है। जो कहना है उसकी कोई सीमा नहीं। वाद्य की सीमा है। जो बजाना है उसकी कोई सीमा नही।

वह फसाना हम खामोशी में सुनाकर रह गये

लेकिन खामोशी तो तुम कैसे समझोगे? शब्द भी चूक जाते है। हिलाए-हिलाए तुम नहीं हिलते नीद से। जगाए-जगाए तुम नही जगते नींद से। शब्द तो ऐसे हैं जैसे पास में रखी घड़ी में अलार्म बजता हो। तब भी तुम नही जगते। तो जिस घड़ी में अलार्म नही बजता, उससे तुम कैसे जगोगे।

तो बहुत ज्ञानी चुप रह गये। बहुत ज्ञानी बोले। चुप रहनेवालों को तुमने समझा जानते ही नहीं। बोलने वालों से तुमने शब्द सीखे और तुम पंडित हो गये। लेकिन कुछ ज्ञानियों ने बीच का रास्ता चुना। और बीच का रास्ता ही सदा सही रास्ता है।

उन्होंने कहा भी और इस ढंग से कहा कि अनकहा भी तुम्हें भूल न जाए। उन्होंने कहा भी और कहने के बीच-बीच में खाली जगह छोड़ दी। उन्होंने कहा भी और रिक्त स्थान भी छोड़े। रिक्त स्थान तुम्हें भरने हैं।

तुमने छोटे बच्चों की किताबें देखी हैं? एक शब्द दिया होता है, फिर खाली जगह, फिर दूसरा शब्द दिया होता है। और बच्चों से कहा जाता है बीच का शब्द भरो। जो परमज्ञानी हुए, उन्होंने यही किया। एक शब्द दिया, खाली जगह दी, फिर दूसरा शब्द दिया। बीच की खाली जगह तुम्हें भरनी है। जो मैं कह रहा हूँ, वो प्रतिबिंब है। जो तुम भरोगे, वो चाँद होगा।

सत्य उधार नहीं मिल सकता। सत्य को तुम्हें जन्माना होगा। सत्य को तुम्हें अपने गर्भ मे धारण करना होगा। सत्य तुम्हारे भीतर बढेगा। जैसे माँ के पेट में बच्चा बड़ा होता है। वो तुम्हारा खून, तुम्हारी श्वाँस माँगता है। वो तुम्हारा ही विस्तार होगा। जबतक तुम ही चाँद न बन जाओ, तबतक तुम चाँद को न देख सकोगे।

इसलिए मै बहुत बार कहूँगा, क्योंकि ये बुद्ध के वचन तो अभी बहुत देर तक चलेंगे। बहुत बार बहुत जगह कहूँगा — एस धम्मो सनंतनो। तब तुम स्मरण रखना कि मै यह नहीं कह रहा हूँ कि धर्म बहुत हैं। मै इतना ही कह रहा हूँ कि बहुत स्थान हैं जहाँ से धर्म का इशारा किया जा सकता है। कभी गुलाब के फूल की तरफ इशारा करके कहूँगा — एस धम्मो सनंतनो। कभी चाँद की तरफ इशारा करके कहूँगा — एस धम्मो सनंतनो। कभी किसी छोटे बच्चे की आँखों में झाँकके कहूँगा — एस धम्मो सनंतनो। क्योंकि चाहे गुलाब हो, चाहे आँख हो, चाहे चाँद हो, सौदर्य एक है।

बहुत रूपों में परमात्मा प्रगट हुआ है। हमारे अंधेपन की कोई सीमा नहीं। इतने रूपो में प्रगट हुआ है और हम पूछे चले जाते हैं कहाँ है? कहीं एकाध रूप में प्रगट होता तब तो मिलने का कोई उपाय ही न था। इतने रूपों में प्रगट हुआ है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है। जहाँ जाओ, वहीं सामने आ जाता है। जिससे मिलो, उसीसे मिलना होता है। सुनो झरने की आवाज, तो उसीका गीत; सुनो रात का सन्नाटा, तो उसीका मौन; देखो, सूरज को, तो उसीकी रोशनी; और देखो अमावस को, तो उसीका अँधेरा। इतने रूपों में तुम्हें घेरा है, फिर भी तुम चूकते चले जाते हो। अभागा होता मनुष्य अगर कहीं उसका एक ही रूप होता, एक ही मंदिर होता और केवल वो एक ही जगह मिलता होता। तब तो फिर कोई शायद पहुँच ही न पाता। इतने रूपों में मिलता है, फिर भी हम चूक जाते हैं।

तो मैं बहुत जगह तुमसे कहूँगा — ये रहा परमात्मा! इसका ये मतलब नहीं कि

बहुत परमात्मा हैं। इसका इतना ही मतलब कि बहुत उसके रूप हैं। अनेक उसके ढंग हैं। अनेक उसकी आकृतियाँ हैं। लेकिन वो स्वयं इन सभी आकृतियों के बीच निराकार है। होगा भी। क्योंकि इतने रूप उसीके हो सकते हैं, जो अरूप हो। इतने आकार उसीके हो सकते हैं जो निराकार हो। इतने अनंत-अनंत माध्यमों में वही प्रगट हो सकता है जो प्रगट होके भी पूरा प्रगट न हो पाता हो।

बंदगी ने हजार रुख़ बदले
जो ख़ुदा था वही ख़ुदा है हनूज

प्रार्थनाएँ बदल जाती हैं। बंदगी के ढंग बदल जाते हैं। पूजा बदल जाती है। कभी गुरुद्वारा, कभी मस्जिद, कभी शिवाला; कभी काबा, कभी काशी —— 'बंदगी ने हजार रुख़ बदले'। न मालूम कितने पत्थरों के सामने सिर झुके, और न मालूम कितने शब्दों में उसकी प्रार्थना की गयी, और न मालूम कितने शास्त्र उसके लिए रचे गये।

बंदगी ने हजार रुख़ बदले
जो ख़ुदा था वही ख़ुदा है हनूज

लेकिन आज तक जो ख़ुदा था वही ख़ुदा है।

तो बहुत बार मैं कहूँगा —— एस धम्मो सनंतनो। यही है सनातन धर्म। इससे तुम ये मत समझ लेना कि यही है। इससे तुम इतना ही समझना कि यहाँ भी है। और बहुत जगह भी है। सभी जगह है। सभी जगह उसका विस्तार है। वो तुम्हारे आँगन जैसा नहीं है, आकाश जैसा है, यद्यपि तुम्हारे आँगन में भी वही आकाश है।

चौथा प्रश्न : मेरी हालत त्रिशंकु की हो गयी है। न पीछे लौट सकती, न आगे कोई रास्ता दिखायी पड़ता है। जाऊँ तो जाऊँ कहाँ?

जाने को कहीं है भी नहीं। जहाँ हो वहीं होना है।

अच्छा ही हुआ कि आगे कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ता, नहीं तो जाना जारी रहता। अच्छा है कि पीछे भी लौट नहीं सकते, नहीं तो लौट जाते। इससे बेचैनी मत अनुभव करो। बेचैनी अनुभव होती है, यह मैं समझता हूँ। क्योंकि जाने की आदत हो गयी है। कहीं जाने को न हो, तो आदमी घबड़ाता है। बेकार भी जाने को हो, तो भी निश्चित चला जाता है।

कहाँ जा रहे हैं, इसका इतना सवाल नहीं है। जा रहे है, कुछ काम चल रहा है। लगता है कुछ हो रहा है, कहीं पहुँच रहे हैं। मंजिल की किसको फिकिर है। व्यस्तता बनी रहती है। चलने में उलझे रहते हैं। तो लगता है कुछ हो रहा है। (कौन कहाँ पहुँचा है चलके? तुम भी न पहुँचोगे। कोई कभी चलके नहीं पहुँचा।

जो पहुँचे, रुक के पहुँचे। जिनने जाना, ठहर के जाना। देखो बुद्ध की प्रतिमा को। चलते हुए मालम पडते हैं ? बैठे हैं। जब तक चलते थे तब तक न पहुँचे। जब बैठ गये, पहुँच गये।)

यह तो बडी शुभ घडी है। लेकिन हमारी आदतें खराब हो गयीं। हमारी आदतें चलने की हो गयी हैं। बिना चले ऐसा लगता है, जीवन बेकार जा रहा है। चाहे चलना हमारा कोल्हू के बैल का चलना हो कि गोल चक्कर में घूमते रहते हैं। है वही। रोज तुम उठते हो, करते क्या हो ? रोज चलते हो, पहुँचते कहाँ हो ? साँझ वही आ जाते हो जहाँ सुबह निकले थे। जन्म जहाँ से शुरू किया मौत वही ले आती है। एक गोल वर्तुलाकार है।

मैंने सुना है कि एक बहुत बडा तार्किक तेल खरीदने गया था तेली के घर। तेली का कोल्हू चल रहा था। बैल कोल्हू खीच रहा था, तेल निचुड रहा था। तार्किक था! उसने देखा ये काम, कोई हाँक भी नही रहा है बैल को, वो अपने आप ही चल रहा है।

उसने पूछा, गजब, ये बैल अपने आप चल रहा है! कोई हाँक भी नही रहाँ। रुक क्यो नही जाता ? उस तेलवाले ने कहा महानुभाव, जब कभी ये रुकता है, मै इसको फिर हाँक देता हूँ। इसको पता नही चल पाता कि हाँकनेवाला पीछे मौजूद है या नही।

तार्किक तार्किक था। उसन कहा, लेकिन तुम तो बैठे दुकान चला रहे हो, इसको दिखायी नही पडता ? उस तेलवाले ने कहा, जरा गौर से देखें, इसकी आँखो पर पट्टियाँ बाँधी हुई है। इसे दिखायी कुछ नही पडता। जब भी ये जरा ठहरा या रुका कि मैंने हाँका। पर उस तार्किक ने कहा कि तुम तो पीठ किये बैठे हो उसकी तरफ। पीछे चल रहा है कोल्हू, तुम्हे पता कैसे चलता है ? उसने कहा आप देखते नही बैल के गले मे घटी बाँधी हुई है ? जब तक बजती रहती है, मै समझता हूँ चल रहा है। जब रुक जाती है, उठके मैं हाँक देता हूँ। इसको पता नही चल पाता।

उस तार्किक ने कहा, अब एक सवाल और। क्या ये बैल खडे होके गर्दन नहीं हिला सकता है ? उस तेलवाले ने कहा, जरा धीरे, धीरे बोलें। कही बैल न सुन ले।

तुम जरा अपनी जिंदगी तो गौर से देखो। न कोई हाँक रहा है, मगर तुम चले जा रहे हो। आँख बद है। गले में खुद ही घटी बाँध ली है। वो भी किसी और ने बाँधी, ऐसा नही। हालाँकि तुम कहते यही हो। पति कहता है पत्नी ने बाँध दी। चलना पड़ता है। बेटा कहता है बाप ने बाँध दी है। बाप कहता है बच्चो ने बाँध दी है। कौन किसके लिए घंटी बाँध रहा है! कोई किसीके लिए नहीं बाँध रहा है। बिना घटी के तुम्हे ही अच्छा नही लगता। तुमने घटी को शृगार समझा है।

आँख पे पट्टियाँ है, घटी बँधी है, चले चले जा रहे हो। कहा पहुँचोगे ? इतने दिन चले, कहाँ पहुँचे ? मंजिल कुछ तो करीब आयी होती।

लेकिन जब भी तुम्हे कोई चौकाता है, तुम कहते हो धीरे बोलो। जोर से मत बोल देना, कही हमारी समझ मे ही न आ जाए। तुम ऐसे लोगो से बचते हो, किनारा काटते हो, जो जोर से बोल दे। सतो के पास लोग जाते नही। और अगर जाते है, तो ऐसे ही सतो के पास जाते है जो तुम्हारी आँखो पे और पट्टियाँ बँधवा दें। और, तुम्हारी घटी पे और रग-पालिस कर दे। न बज रही हो तो और बजने की व्यवस्था बना दे। ऐसे सतो के पास जाते है कि तुम्हारे पैर अगर शिथिल हो रहे हो और बैठने की घडी करीब आ रही हो तो पीछे से हाँक दे कि चलो, बैठने से कही कोई पहुँचा है! कुछ करो। कर्मठ बनो। परमात्मा ने भेजा है तो कुछ करके दिखाओ।

थोडा समझना। जीवन की गहनतम बाते करने से नही मिलती। होने से मिलती है। करना तो ऊपर-ऊपर है। पानी पे उठी लहरे हैं। होना है गहराई।

अच्छा ही हुआ, लेकिन व्याख्या गलत हो रही है। प्रश्न है, मेरी हालत त्रिशकु की हो गयी है। एकदम अच्छा हुआ। शुभ हुआ। धन्यवाद दो परमात्मा को। लेकिन शब्द से लगता है कि शिकायत है, शिकवा है। क्योकि तुम्हे लग रहा है ये तो कही के न रहे। पीछे लौट नही सकते। जरूरत क्या है लौटने की पीछे ? लौट सकते तो क्या मिलता ? पीछे से तो होके ही आ रहे हो। कुछ मिलना होता तो मिल ही गया होता। हाथ तुम्हारे खाली है। और पीछे लौटना है! जिस रास्ते से गुजर चुके सिवाय धूल के कुछ भी नही लाए हो साथ, फिर लौटके जाना है ?

तुम कहोगे, छोडो, पीछे नही आगे तो जाने दो। मगर ये रास्ता वही है, जो पीछे की तरफ फैला है, वही आगे की तरफ फैला है। ये एक ही रास्ते की दो दिशाएँ हैं। तुम जिस रास्ते पर पीछे चलते आ रहे हो, उसीपर तो आगे जाओगे न। उसीकी शृंखला होगी। उसीका सिलसिला होगा।

अब तक क्या मिला ? पचास साल की उम्र हो गयी, अब बीस साल और इसी रास्ते पे चलोगे, क्या मिलेगा ? तुम कहोगे, चलो ये भी छोडो, कोई दूसरा रास्ता बता दो। मगर रास्ता तुम चाहते हो (क्योकि चलना तुम्हारी आदत हो गयी है। दौडने की विक्षिप्तता तुम पे सवार हो गयी है। रुक नही सकते, ठहर नही सकते, दो घडी बैठ नही सकते।

क्यो ?

क्योकि जब भी तुम रुकते हो, तभी तुम्हे जिंदगी की व्यर्थता दिखायी पडती है। जब भी तुम ठहरते हो, खाली क्षण मिलता है, तभी तुम्हे लगता है ये तो शून्य है। कुछ भी मैंने कमाया नही। तभी तुम कँप जाते हो। एक सताप पकड़ लेता है। एक

अस्तित्वगत खाई में गिरने लगते हो। उससे बचने के लिए फिर तुम काम में संलग्न हो जाते हो। कुछ भी करने में लग जाते हो। रेडियो खोलो, अखबार पढ़ो, मित्र के घर चले जाओ, पत्नी से झगड़ लो। कुछ भी बेहूदा काम करने लगो। एक गेंद खरीद लाओ, बीच में रस्सी बाँध लो, इससे उस तरफ फेंको, उस तरफ से इस तरफ फेंको।

लोग कहते हैं फुटबाल खेल रहे हैं, कोई कहता है वालीबाल खेल रहे हैं। और लाखों लोग देखने भी इकट्ठे होते हैं। खेलनेवाले तो नासमझ हैं, समझ में आया। कम से कम खेल रहे हैं। लेकिन लाखों लोग देखने इकट्ठे होते हैं। मारपीट हो जाती है। एक गेंद को इस तरफ से उस तरफ करते हो, शर्म नहीं आती। मगर सारी जिंदगी ऐसी है। कुछ भी करने को बहाना मिल जाए। ताश फेंकते रहते हैं, ताश बिखेरते रहते हैं। शतरंज बिछा लेते हैं। जिंदगी में तलवार चलाना जरा महँगा धंधा है। घोड़े वगैरह रखना भी जरा मुश्किल है। हाथी तो अब कौन पाले? शतरज बिछा लेते हो। हाथी-घोड़े चलाते हो। और ऐसे तल्लीन हो जाते हो जैसे सारा जीवन दाँव पे लगा है। तुम अपने को कितनी भाँति धोखे देते हो।

बहुत हुआ, अब जागो। और जागने का एक ही उपाय है कि तुम थोड़ी देर को रोज खाली बैठने लगो। कुछ भी मत करो। करना ही तुम्हारा संसार है। न करना ही तुम्हारा निर्वाण बनेगा। कुछ देर को खाली बैठने लगो। घड़ी-दो घड़ी ऐसे हो जाओ जैसे हो ही नहीं। एक शून्य सन्नाटा छा जाए। श्वाँस चले, चलती रहे, लेकिन कृत्य की कोई आसपास भनक न रह जाए, तुम बस चुपचाप बैठे रहो। धीरे-धीरे — शुरू में तो बड़ी बेचैनी होगी, बड़ी तलफ पकड़ेगी कि कुछ भी कर गुजरो, क्या बैठे यहाँ समय खराब कर रहे हो — लेकिन जल्दी ही तुम पाओगे कि : जीवन की तरंगें शांत होती जाती हैं; भीतर के द्वार खुलते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, उनसे मैं कहता हूँ चुप बैठ जाओ, वो कहते हैं ये हमसे न होगा। कम से कम मंत्र ही दे दें। तो हम वही जपेंगे। मगर करेंगे। माला दे दें, उसको ही फिराते रहेंगे। अब शतरंज में और माला में कोई फर्क है ? चाहे तुम फिल्मी गीत गुनगुनाओ, और चाहे तुम राम-राम जपो, कोई फर्क नहीं। असली सवाल तुम्हारे व्यस्त होने का है। कैसे तुम अव्यस्त हो जाओ, 'अनआकुपाइड' हो जाओ।

ध्यान का अर्थ है करने को कुछ भी न हो, बस तुम हो। जैसे फूल हैं। जैसे आकाश के तारे है। ऐसे बस हो गये। कुछ नहीं करने को। कठिन है बहुत, सर्वाधिक कठिन है। इससे ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं, लेकिन अगर तुम बैठते ही रहे, बैठते ही रहे, बैठते ही रहे, तो किसी दिन अचानक तुम पाओगे बज उठी कोई वीणा भीतर से।

अपार आनन्द का अनुभव

उसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। मैं कुछ कह नहीं सकता, कब ये होगा। तुम पे निर्भर है। आज हो सकता है, जनम भर न हो। तुम पर निर्भर है।

लेकिन किसी दिन अगर जब बज उठेगी तुम्हारी भीतर की वीणा, तब तुम पाओगे व्यर्थ गवाँया जीवन। भीतर इतना बड़ा उत्सव चल रहा था, हम हाथी-घोड़े चलाते रहे। भीतर इतने बड़े आनंद की अहर्निश वर्षा हो रही थी, भीतर स्वर्ग के द्वार खुले थे, हम बजार में गवाँते रहे।

मैं ये नही कह रहा हूँ कि तुम बजार छोड़के भाग जाओ। मैं तुमसे ये कह रहा हूँ कि चौबीस घंटे में दो घड़ी अपने लिए निकाल लो। बाकी सब घडी बजार में गवाँ दो, कोई हर्जा नहीं। जिंदगी के अखीर में तुम पाओगे, जो बैठके तुमने गुजारा समय, वही बचाया, बाकी सब गया।

और एक बार तुम्हारे भीतर का ये अंतर्नाद तुम्हे सुनायी पड़ने लगे -- उसे ओंकार कहो, या जो तुम्हारी मर्जी हो -- जिस दिन ये भीतर का अंतर्नाद तुम्हें सुनायी पड़ने लगेगा, उस दिन फिर तुम बजार में रहो, दूकान में रहो, जहाँ रहो, कोई फर्क नही पड़ता, भीतर की वीणा बजती ही रहती है, सदा बजती रही है। सिर्फ तुम्हें सुनने की आदत नही है। सुनने की सामर्थ्य नहीं है। तुम तालमेल नहीं बिठा पाए हो।

तो अच्छा हुआ कि हालत त्रिशंकु की हो गयी। न पीछे जाने का कोई रास्ता -- भगवान को धन्यवाद दो! न आगे जाने का कोई उपाय -- बड़ा सौभाग्य! अब बैठ जाओ। वहीं बैठ जाओ जहाँ हो -- न पीछे लौट के देखो, न आगे। आँख बद कर लो। कहीं जाना नहीं है। अपने पर आना है।

जिसे तुम खोजते हो, वो तुम में छिपा है। जिसकी तरफ तुम जा रहे हो, वो तुम में बसा है। अखीर में यहीं पाया जाता है कि हम जिसे तलाशते थे, वो तलाश करनेवाले में ही छिपा था। इसीलिए तो इतनी देर लग गयी और खोज न पाए।

आखिरी सवाल : प्रेम मैंने जाना नहीं, यही मेरे जीवन की चुभन रही। यही कारण होगा जिसने मुझे ध्यान में गति दी। ध्यान से अशांति और वैर-भाव मिट रहे हैं। भक्ति और समर्पण मेरे लिए कोरे शब्द रहे। फिर भी ध्यान कर, विशेष-कर प्रवचन में, कई बार ये प्रगाढ़ भाव बना रहता है कि इस जीवन में जो भी मिल सकता था, सब मिला हुआ है।

जीवन में कुछ भी दुर्भाग्य नहीं हैं। बाधाएँ ही सीढ़ियाँ भी बन सकती हैं। और सीढ़ियाँ बाधाएँ भी बन सकती हैं। सौभाग्य और दुर्भाग्य तुम्हारे हाथ में है। जीवन तटस्थ अवसर है। एक राह पर बड़ा पत्थर पड़ा हो, तुम वहीं अटक के बैठ सकते हो कि अब कैसे जाएँ, पत्थर आ गया। तुम उस पत्थर पे चढ़ भी सकते हो। और

तब तुम पाओगे कि पत्थर ने तुम्हारी ऊंचाई बढ़ा दी। तुम्हारी दृष्टि का विस्तार बढ़ा दिया। तुम रास्ते को और दूर तक देखने लगे। और पत्थर के बिना देखना संभव न था। पत्थर सीढ़ी हो गया।

ये प्रश्न है कि मैंने प्रेम जीवन में नहीं जाना, यही मेरे जीवन की चुभन रही। चुभन मत समझो अब।

प्रेम नहीं जाना, निश्चित ही इसीलिए ध्यान की तरफ आना हुआ। उसे सौभाग्य बना लो। अब प्रेम की बात ही छोड़ दो। क्योंकि जिसने ध्यान जान लिया, प्रेम तो उसकी छाया की तरह अपने आप आ जाएगा।

दो ही विकल्प हैं परमात्मा को पाने के। दो ही राहें हैं। एक है प्रेम, एक है ध्यान। जो मिलता है वो तो एक ही है। कोई प्रेम से उसकी तरफ जाता है। उस रास्ते की सुविधाएँ हैं, खतरे भी। सुविधा ये है कि प्रेम बड़ा सहज है, स्वाभाविक है। खतरा भी यही है। इतना स्वाभाविक है कि उसमें उलझ जाने का डर है। होश नहीं रहता। बेहोशी हो जाती है। इसलिए अधिक लोग प्रेम से परमात्मा तक नहीं पहुँचते, प्रेम से छोटे-छोटे कारागृह बना लेते हैं, उन्हींमें बंद हो जाते हैं। प्रेम बहुत कम लोगों के लिए मुक्ति बनता है। अधिक लोगों के लिए बंधन बन जाता है। प्रेम अधिक लोगों के लिए राग बन जाता है; और जबतक प्रेम विराग न हो तबतक परमात्मा तक पहुँचना नहीं होता।

तो प्रेम की सुविधा है कि वो स्वाभाविक है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर प्रेम की उमंग है। खतरा भी यही है कि वो इतना स्वाभाविक है कि उसमें होश रखने की जरूरत नहीं। तुम उसमें उलझ सकते हो।

जिनके जीवन में प्रेम नहीं संभव हो पाया --और बहुत लोगों के जीवन में संभव नहीं हो पाया -- तो बैठके काँटे को पकड़ के मत पूछते रहो। नहीं प्रेम संभव हुआ, चिंता छोड़ो। ध्यान संभव है। और ध्यान के भी खतरे हैं और सुविधाएँ। खतरा यही है कि श्रम करना होगा, चेष्टा करनी होगी। प्रयास और साधना करनी होगी। संकल्प करना होगा। जरा भी शिथिलता की तो ध्यान न सधेगा। अगर जरा भी आलस्य की तो ध्यान न सधेगा। अगर ऐसे ही सोचा कि कुनकुने-कुनकुने कर लेंगे, तो न सधेगा। जलना पड़ेगा। सौ डिग्री पर उबलना पड़ेगा। ये तो कठिनाई है। लेकिन फायदा भी है कि थोड़ा भी ध्यान सधे, तो साथ में होश भी सधता है। क्योंकि प्रयास, साधना, संकल्प।

इसलिए ध्यान सधे, तो कभी भी कारागृह नहीं बनता। कठिनाई है सधने की। प्रेम सध तो जाता है बड़ी आसानी से, लेकिन जल्दी ही जंजीरें ढल जाती हैं। ध्यान सधता है मुश्किल से, लेकिन सध जाए तो सदा ही मोक्ष और सदा ही मुक्ति के आकाश की तरफ ले जाता है।

और दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे कि अगर प्रेम न सधा, तो उन्होंने ध्यान को साध लिया। वो जो ऊर्जा प्रेम में जाती, वही सारी ध्यान में संलग्न हो गयी। या, जो ध्यान न सधा, तो उन्होंने सारी ऊर्जा को प्रेम में समर्पित कर दिया। या तो भक्त बनो, या ध्यानी।

ये एक तरह के लोग हैं।

दूसरे तरह के लोग हैं उनसे प्रेम न सधा, तो ध्यान की तरफ तो न गये, बस प्रेम का रोना लेके बैठे हैं। रो रहे है कि प्रेम न सधा। और उन्हींके तरह के दूसरे लोग भी हैं कि ध्यान न सधा, तो बस वो बैठे है, रो रहे हैं उदास मंदिरों में, आश्रमों मे कि ध्यान न सधा? वो प्रेम की तरफ न गये।

मैं तुमसे कहता हूँ, सब साधन तुम्हारे लिए हैं, तुम किसी साधन के लिए नही। प्रेम से सधे, प्रेम से साध लेना। ध्यान से सधे, ध्यान से साध लेना। साधन का थोड़ा' मूल्य है। तुम बैलगाड़ी से यहाँ मेरे पास आए कि पैदल आए, कि ट्रेन से आए, कि हवाई जहाज से आए, आ गये, बात खतम हो गयी। तुम कैसे आए इसका क्या प्रयोजन है? पहुँच गये, बात समाप्त हो गयी।

ध्यान रखना पहुँचने का। फिर प्रेम से हो कि ध्यान से हो, भक्ति से हो कि ज्ञान से हो। इस उलझन में बहुत मत पड़ना। साधन को साध्य मत समझ लेना। साधन का उपयोग करना है। सीढी से चढ जाना है और भूल जाना है। नाव से उतर जाना है और विस्मरण कर देना है नाव का।

इतनी ही याद बनी रहे कि सब धर्म तुम्हारे लिए है। सब साधन, विधियाँ तुम्हारे लिए हैं। तुम्हीं गंतव्य हो। तुम्हीं हो जहाँ पहुँचना है। तुमसे ऊपर कुछ भी नहीं।

साबार ऊपर मानुस सत्य
ताहार ऊपर नाही

चंडीदास के ये शब्द हैं कि सबसे ऊपर मनुष्य का सत्य है। उसके ऊपर कुछ भी नही है। इसका ये मतलब नही है। इसका इतना ही मतलब है कि मनुष्य अगर अपने सत्य को जान ले, तो परमात्मा को जान ले। 'साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाही'।

तुम सबसे ऊपर हो। क्योंकि तुम अपने अंतरतम में छिपे परमात्मा हो। बीज हो अभी, कभी फूल बन जाओगे। लेकिन बीज में फूल छिपा ही है। न खाद का कोई मूल्य है, न जमीन का, न सूरज की किरणों का। इतना ही मूल्य है कि तुम्हारे भीतर जो छिपा है वो प्रगट हो जाए।

इसलिए व्यर्थ के साधनों की बहुत जिद मत करना। जैसे भी पहुँचो, पहुँच जाना। परमात्मा तुमसे ये न पूछेगा, किस मार्ग से आए? कैसे आए? आ गये, स्वागत है!

आज इतना ही।

भगवान श्री रजनीश का नवीनतम साहित्य

साधना-सूत्र
भक्ति-सूत्र : २
जिन-सूत्र : १
भज गोविंदम्
सहज समाधि भली
पिव पिव लागी प्यास
मेरा मुझमें कुछ नहीं
महावीर-वाणी : ३
एस धम्मो सनंतनो : १
गीता-दर्शन (अ : १८)

कतिपय अन्य

बिन घन परत फुहार
अकथ कहानी प्रेम की
एक ओंकार सतनाम
भक्ति-सूत्र : १
तत्त्वमसि
दिया तले अँधेरा
ताओ-उपनिषद् ३
कस्तूरी कुंडल बसै